महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा

(दस से चालीस तक)

-: लेखक :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

तत्त्वज्ञान विषयक	मूल्य	S.No.
1. जैन विज्ञान		38
2. चौदह गुणस्थान		96
3. आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें		79
4. जीव विचार विवेचन	75/-	123
5. नव तत्त्व-विवेचन	60/-	122
6. दंडक-विवेचन	60/-	135
7. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-	194
8. तीन-भाष्य	150/-	127
9. पहला कर्मग्रंथ	100/-	102
10. दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-	196
11. चौथा कर्मग्रंथ	70/-	197
12. पाँचवाँ कर्मग्रंथ	100/-	204
13. छठा-कर्मग्रंथ	160/-	205
14. ध्यान साधना	40/-	153
15. अचिंत्य चिंतामणि– श्री नवकार (भाग-1)	160/-	216
16. अचिंत्य चिंतामणि– श्री नवकार (भाग-2)	180/-	217
प्रवचन साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
17. मानवता तब महक उठेगी		8
18. मानवता के दीप जलाएं		9
19-20. जैन महाभारत	230/-	18-19
21-22. जैन रामायण		27-28
23. तीर्थ यात्रा		159
24. सफलता की सीढ़ियाँ	125/-	53
25. नवपद प्रवचन		56
26. श्रावक कर्तव्य-भाग-1		74
27. श्रावक कर्तव्य-भाग-2		75
28. प्रवचन रत्न		78
29. प्रवचन मोती		72
30. प्रवचन के बिखरे फूल		103
31. प्रवचनधारा		67
32. आनन्द की शोध		33
33. भाव श्रावक		85
34. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-	97
35. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-	104
36. संतोषी नर-सदा सुखी		87
37. जैन पर्व-प्रवचन		115
38. गुणवान बनो		126
39. सुखी जीवन की चाबियाँ		137
40. पांच प्रवचन		138
41. जीवन शणगार प्रवचन		148
42. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े ! !भाग-1	70/-	169
43. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े ! !भाग-2	65/-	170
44. गागर में सागर		173
45. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1		176
46. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2	125/-	177
47. नवपद आराधना	80/-	182
48. प्रवचन-वर्षा	60/-	199
49. प्रेरक-प्रवचन	80/-	203
50. मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	209
51. शत्रुंजय की गौरव गाथा		89
52. नींव के पत्थर		116
53. गुणानुवाद		141
54. गणधर-संवाद	80/-	212
55. चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	214
56. सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-	219
धारावाहिक कहानी	**मूल्य**	**S.No.**
57. कर्मन् की गत न्यारी		6
58. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है		10
59. तब आंसु भी मोती बन जाते है		24
60. गौतम स्वामी-जंबूस्वामी		46
61. कर्म को नहीं शर्म		49
62. कर्म नचाए नाच		76
63-64. आग और पानी भाग-1-2	115/-	34-35
65. तेजस्वी सितारे		58
66. श्रीपाल मयणा		65
67. सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	50/-	215
छोटी छोटी कहानियां	**मूल्य**	**S.No.**
68. प्रिय कहानियाँ		43
69. मनोहर कहानियाँ		50
70. ऐतिहासिक कहानियाँ		57
71. प्रेरक-कहानियाँ		91
72. सरस कहानियाँ		111
73. मधुर कहानियाँ		98
74. सरल कहानियाँ		142
75. आदर्श कहानियाँ		198
76. प्रेरक प्रसंग		162

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

विधि-विधान उपयोगी	मूल्य	S.No.
77. आओ ! प्रतिक्रमण करें		42
78. आओ ! श्रावक बनें		45
79. Chaitya-Vandan Sootra		52
80. विविध-देववंदन	60/-	55
81. आओ ! पौषध करें		71
82. Panch Pratikraman Sootra	60/-	61
83. शत्रुंजय यात्रा	40/-	36
84. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	73
85. आओ ! उपधान-पौषध करें	75-	109
86. विविध-तपमाला	100/-	128
87. आओ ! भावयात्रा करें भाग-1		130
88. आओ ! भावयात्रा करें भाग-2		166
89. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें	90/-	136
90. जैन संघ-व्यवस्था		187
91. सज्झायों का स्वाध्याय	35/-	139
पू.पंन्यासजी म.का साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
92. वात्सल्य के महासागर		1
93. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे		15
94. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव		44
95. बीसवीं सदी के महान् योगी	300/-	100
96. अजातशत्रु अणगार		161
97. महान् योगी पुरुष	85/-	201
98. महामंत्र की साधना		160
99. नवकार-चिंतन		168
100. अमर-वाणी		101
101. आध्यात्मिक पत्र	60/-	146
102. परम-तत्व की साधना भाग-1		171
103. परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-	178
104. परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	179
105. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1	125/-	183
106. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2	175/-	186
107. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3	150/-	193
108. मंत्राधिराज प्रवचन सार	80/-	207
109. हार्दिक श्रद्धांजलि	190/-	218
अन्य प्रेरक साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
110. मिच्छामि दुक्कडम्		60
111. क्षमापना		69
112. सवाल आपके जवाब हमारे		37
113. शंका और समाधान-1		66
114. शंका-समाधान-भाग-2	40/-	118
115. शंका-समाधान-भाग-3		147
116. शंका समाधान भाग-4	60/-	210
117. धरती तीरथ'री		68
118. चिंतन रत्न		114
119. महावीरवाणी		112
120. जैन शब्द कोश		157
121. नया दिन नया संदेश		158
122. रत्न संदेश भाग-1	150/-	172
123. रत्न संदेश भाग-2	150/-	174
124. बाली चातुर्मास विशेषांक		180
125. उपधान स्मृति विशेषांक		181
126. संस्मरण	50/-	190
127. विवेकी बनों !	90/-	192
128. अमृत रस का प्याला	300/-	200
वैराग्यपोषक साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
129. मृत्यु-महोत्सव		51
130. श्रमणाचार विशेषांक		54
131. सद्गुरु-उपासना		113
132. चिंतन-मोती		90
133. मृत्यु की मंगल यात्रा		16
134-135. शांत सुधारस-हिन्दी-भाग-1-भाग-2	140/-	13-14
136. भव आलोचना		124
137. वैराग्य शतक	100/-	140
138. इन्द्रिय पराजय शतक	50/-	156
139. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-	191
140. समाधि-मृत्यु		195
141. सुख की खोज		143
गुजराती साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
142. हंस श्राद्धव्रत दीपिका		48
143. जीवन ने तुं जीवी जाण		62
144. शीतल नहीं छाया रे (गुज.)		25
145. आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)		63
प्रभु भक्ति प्रधान साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
146. आनंदघन चोबीसी		7
147. अंखिया प्रभुदर्शन की प्यासी		22
148. भक्ति से मुक्ति	40/-	41
149. प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-	84
150. आओ ! पूजा पढाएं		88
151. विविध पूजाएं		125

152. प्रभो ! मन मंदिर पधारो !		110
153. मंगल स्मरण		131
चरित्र-कथाएं	**मूल्य**	**S.No.**
154. जिनशासन के ज्योतिर्धर		81
155. महासतियों का जीवन संदेश		93
156. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1		188
157. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2		189
158. आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र		105
159. पारस प्यारो लागे		99
160. महान् चरित्र		129
161. भगवान महावीर का सचित्र जीवन		83
162. भगवान महावीर		70
163. प्रात:स्मरणीय महापुरुष-1		150
164. प्रात:स्मरणीय महापुरुष-2		150
165. प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-1		151
166. प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-2		152
167. श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-	134
168. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल		184
169. महान् ज्योतिर्धर		86
170. श्रमणशिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी		119
171. बारह चक्रवर्ती	62/-	202
172. महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9 तक)	300/-	220
173. महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40 तक)	275/-	221
युवा-युवति प्रेरक	**मूल्य**	**S.No.**
174. युवानो ! जागो		12
175. युवा संदेश		26
176. जीवन की मंगल यात्रा		17
177. तब चमक उठेगी युवा पीढी		20
178. युवा चेतना विशेषांक		23
179. जीवन निर्माण (विशेषांक)		30
180. यौवन-सुरक्षा विशेषांक		32
181. सन्नारी विशेषांक		59
182. जैनाचार विशेषांक		47
183. आहार विज्ञान विशेषांक		39
184. माता-पिता		77
185. आहार: क्यों और कैसे ?		82
186. ब्रह्मचर्य		106
187. अमृत की बूंदें		64
188. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद		80
अंग्रेजी साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
189. The Message for the Youth		31
190. How to live true life ?		40
191. The Light of Humanity		21
192. Youth will Shine then		121
193 Duties towards Parents		95
194. Pearls of Preaching	60/-	167
195. The Way of Metaphysical Life	60/-	163
196. My Parents	60/-	175
197. Celibacy	70/-	206
मराठी साहित्य	**मूल्य**	**S.No.**
198. राग म्हणजे आग (मराठी)		108
199. आई वडीलांचे उपकार		92
200. अध्यात्माचा सुगंध		155
201. विखुरलेले प्रवचन मोती		117
202. आई चे वात्सल्य		185
अनुवाद-विवेचनात्मक	**मूल्य**	**S.No.**
203. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो		11
204. श्रावक जीवन-दर्शन	250/-	29
205. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन		94
206. आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-	144
207. आओ संस्कृत सीखें भाग-2	220/-	145
208. श्रावक आचार दर्शक		154
209. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	164
210. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	165
211. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी)-भाग-1	100/-	107
212. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी)-भाग-2	100/-	120
213. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी)-भाग-3	125/-	132
214. पंच प्रतिक्रमण (हिन्दी)-भाग-4	140/-	133
215. श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र	206/-	208
216. सामायिक सूत्र विवेचना		2
217. चैत्यवंदन सूत्र विवेचना		3
218. आलोचना सूत्र विवेचना		4
219. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना		5
220. व्यसन-मुक्ति	100/-	211
221. New Message for a New Day	600/-	213

महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा

(दस से चालीस तक)

-: लेखक :-

जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर, परम शासन प्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के

तेजस्वी शिष्यरत्न, अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि, भावाचार्य तुल्य

पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के

कृपापात्र चरम शिष्यरत्न मरुधररत्न,

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

221

प्रकाशक

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स,

507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार,

सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-400 002.

Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : प्रथम • **प्रतियां** : 1500 • **मूल्य** : 275/- रूपये
विमोचन स्थल : श्री जगवल्लभ पार्श्वनाथ जैन श्वे. मूर्तिपूजक आराधक संघ विजयापुर (बिजापूर) (कर्णाटक) • **विमोचन तिथि** : दि. 8-8-2021, रविवार

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें (open book exam की पुस्तक, साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनर्मुद्रित पुस्ककों को छोड़कर) दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी,
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. ललित टी. जैन,
C/o. चंदन एजेन्सी,
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.
M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.अेस.अेस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600



प्रकाशक की कलम से....

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक, व्याख्यान वाचस्पति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के तेजस्वी शिष्यरत्न नमस्कार महामंत्र के बेजोड साधक, बीसवीं सदी के महानयोगी, निःस्पृहशिरोमणि पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपा पात्र चरम शिष्य रत्न मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव, हिन्दी साहित्यकार पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित **221 वीं पुस्तक 'महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा' (दस से चालीस तक)** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

प्रभु महावीर द्वारा स्थापित जिनशासन के गगनांगण में भूतकाल में अनेक तेजस्वी सितारें पैदा हुए हैं-जिन्होंने अपने बुद्धिबल-तपोबल और साधना बल से जिन शासन की अद्‌भुत प्रभावना कर हजारों आत्माओं को सन्मार्ग की राह दिखाई है, उनके जीवन प्रसंगों को पढने से हमारे रोम रोम में प्रभु शासन के प्रति समर्पण का भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता है ।

पूज्य आचार्य भगवंत ने कड़ी महेनत करके उन प्रभावक महापुरुषों के जीवन चरित्र को एक माला में पिरोकर जिन शासन की अपूर्व सेवा की है । हमें पूर्ण विश्वास है कि पूज्य आचार्यश्री के पूर्व प्रकाशनों की भांति यह कृति भी लोकोपयोगी सिद्ध होगी !

लेखक परिचय

मारवाड की मरुभूमि ने अनेक दानवीर व शूरवीरों को जन्म दिया है ।

विश्व विख्यात राणकपूर महातीर्थ के निर्माता धरणा शाह पोरवाल को भी इस भूमि ने जन्म दिया था ।

महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर और भामाशा जैसे दानवीरों को जन्म देने का सौभाग्य भी इसी भूमि को प्राप्त हुआ है ।

शत्रुंजय महातीर्थ के 16 वें उद्धारक कर्माशा जैसे प्रभु भक्तों को भी इसी भूमि ने जन्म दिया है ।

लघुशांति की रचना भी गोडवाड की पंचतीर्थी के नाडोल तीर्थ में मंत्र प्रभावक **मानदेवसूरिजी म.** ने की थी ।

1444 ग्रंथों के प्रणेता **सूरिपुरंदर हरिभद्रसूरिजी म.** को भी जन्म देने का सौभाग्य चित्तोड–राज. की धन्यधरा को प्राप्त हुआ था । भूतकाल में अनेक शासन प्रभावक सूरिवरों के चरण के कमलों से यह भूमि पावन बनी है ।

◆ इसी मारवाड की मरुभूमि के बाली नगर निवासी श्रेष्ठीवर्य छगनराजजी गेनमलजी चोपडा की **धर्मपत्नी रत्नकुक्षीधारिणी चंपाबाई** ने भादो सुदी-3, विक्रम संवत् 2014 दिनांक 16-9-1958 के शुभ दिन ने एक तेजस्वी पुत्र रत्न को जन्म दिया था । नवजात शिशु का नाम रखा गया राजमल, परंतु लाड से उसे **'राजु'** कहते थे । आज भी गोडवाड की जैन जनता में तो वे **'राजु महाराज'** के नाम से ही प्रख्यात है । जन्म-जन्मांतर के सुसंस्कारों का शंबल साथ में लेकर आए राजु का जीवन बचपन से ही धार्मिक संस्कारों से भावित था ।

मात्र 9 वर्ष की उम्र से राजु में वक्तृत्व का बीजारोपण हो चुका था ।

बचपन में स्कूल व हाईस्कूल में तथा धार्मिक पाठशाला में राजु का सर्व प्रथम स्थान रहता था । सूत्रों का अभ्यास हो या पूना विद्यापीठ की परीक्षा हो राजु का प्रथम स्थान ही रहता था ।

15 वर्ष की उम्र में ही बाली में मुमुक्षु कमलाबहन की भागवती-दीक्षा ग्रहण के प्रसंग को देख राजु के मन में इस संसार के प्रति तीव्र वैराग्य भाव पैदा हो गया था ।

एक दिन मात्र 16 वर्ष की उम्र में राजु अपने ही पडौसी फूलचंद मोतीलालजी गेमावत की शादी के प्रसंग पर मुंडारा गया था ।

नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** का चातुर्मास हेतु मुंडारा नगर में प्रवेश हो चूका था ।

संसार से विरक्त बना राजु पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में पहुँच गया । वहाँ जाकर उसने चतुर्थ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान करने के लिए गुरुदेव को विनती की ।

बालक राजु की अंतरंग-योग्यता को देखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने दि. 16-6-1975 के शुभ दिन शुभ वेला में राजु को आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान किया ।

इस व्रत के दृढतापूर्वक पालन के लिए पूज्य गुरुदेवश्री ने एक श्लोक भी प्रदान किया ।

'मातृवत् परदारासु, परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।।'

पूज्य गुरुदेवश्री ने इस श्लोक का रहस्य समझाते हुए कहा, परस्त्री में माता की बुद्धि अर्थात् मातृत्व भाव के दर्शन करने के है । आँखों में यह दृष्टि आ जाय तो जीवन पवित्र बने बिना नहीं रहे ।'

चतुर्थ व्रत ग्रहण करने के बाद भी संयम–मार्ग में अनेक बाधाएं थी...परंतु देव–गुरु की असीम कृपा से माघशुक्ला त्रयोदशी वि.सं. 2033 दि. 2-2-1977 के शुभ दिन अपनी जन्मभूमि बाली में पंच दिवसीय भव्य समारोह के साथ वर्धमान **तपोनिधि पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री हर्षविजयजी गणिवर्य श्री** के वरद हस्तों से राजु ने भागवती–दीक्षा अंगीकार की और **नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक सूक्ष्म तत्तव चिंतक पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्य **मु. श्री रत्नसेनविजयजी म.** बने ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद **'गुर्वाज्ञा'** को अपना जीवन मंत्र बनाते हुए मुनिश्री की आराधना–साधना प्रारंभ हुई ।

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद **पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य श्री** की तारक निश्रा में विशाल पैमाने पर **कनकराजजी सांवतराजजी लोढ़ा–परिवार** की ओर से घाणेराव में आयोजित महामंगलकारी उपधान तप दरम्यान नूतन मुनि की बड़ी–दीक्षा विधि दि. 1-3-1977 के शुभ दिन भव्य समारोह के साथ संपन्न हुई ।

नूतन मुनि गुर्वाज्ञा के अधीन रहकर सम्यग्ज्ञान की आराधना उपासना में जुड गए ।

जैनागम व शास्त्रों के गहम अभ्यास के साथ बहुत ही शीघ्र उनकी प्रवचन व लेखन शक्ति भी विकसित होती गई ।

पूज्यश्री ने अपने 45 वर्ष के संयम पर्याय में जो कुछ साहित्य साधना की हैं, उसका सारा श्रेय वे अपने गुरुदेव को देते है ।

❀ ❀ ❀ ❀

दीक्षा अंगीकार करने के बाद **पूज्य मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** का वि.सं. 2003 प्रथम चातुर्मास पाटण (गुज.) में **प.पू. वर्धमान तपोनिधि पंन्यास प्रवर श्री हर्षविजयजी म.सा.** के सान्निध्य में हुआ ।

उस चातुर्मास दरम्यान संस्कृत की दो बुक की समाप्ति के साथ ही दशहरे से **'श्री सिद्धहैम शब्दानुशासनम्'** संस्कृत व्याकरण का अभ्यास श्रीमान् पंडितजी शिवलालभाई के पास प्रारंभ किया ।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद अपने पूज्य गुरुदेवश्री की अस्वस्थता के कारण **प.पू. तपस्वी पं. श्री हर्षविजयजी म.सा.** आदि के साथ पू. मुनिश्री भी पाटण से विहार कर पिंडवाडा पधारें । पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में 1 मास रहने का मौका मिला । गुरुदेवश्री की हित शिक्षाएँ प्राप्त हुई । तत्पश्चात् पुनः **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.सा.** के साथ पू. मुनिश्री का पाटण आगमन हुआ । पू. पंन्यासजी म. के साथ लकवाग्रस्त वयोवृद्धि **पू.मु. श्री धर्मरत्नविजयजी** भी थे, जिनकी सेवा में सेवाभावी **पू.मु.श्री खांतिविजयजी म.सा.** तथा अखंड वैयावच्ची **पू.मु. श्री जयंतभद्रविजयजी म.** भी थे । पंडित शिवलालभाई व पं. मफतभाई के पास पू. मुनिश्री का पुनः अभ्यास द्रुतगति से प्रारंभ हो चूका था । दिन पर दिन बीतने लगे ।

वि.सं. 2034 में पाटण में स्थिरवास रहे ग्लान **मुनिश्री धर्मरत्नविजयजी म.सा.** की सेवा हेतु **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म., पू.मु. श्री खांतिविजयजी म., मु. श्री जयंतभद्र-विजयजी म.** तथा **मु.श्री रत्नसेनवि. म.** जब पाटण पधारे, तब पूज्य गुरुदेवश्री ने **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.** को कहा, 'प्रवचन में जरुरत पडे तो **'रत्नसेन'** को बिठा देना ।'

फागुण चौमासी ! वि.सं. 2034 का शुभ दिन नजदीक आने लगा । फा.सु. 8 के शुभ दिन **पू.पंन्यास श्री हर्षविजयजी म.** ने पू.मुनिश्री को कहा, 'रतन ! इस चौदस के दिन से तुझे व्याख्यान करना है ।'

पू.मुनिश्री ने कहा, 'भगवंत ! व्याख्यान की मुझ में शक्ति कहाँ है ?'

पूज्य पंन्यासजी म. ने कहा, ''मैं तुझे पहिचानता हूँ, व्याख्यान तुझे ही करना है । बस मेरी आज्ञा है ।''

पूज्य मुनिराजश्री ने पू. पंन्यासजी म.सा. की आज्ञा शिरोधार्य की ।

फागुण सुद–14 का दिन आया । संघ में काफी संख्या में पौषध थे । व्याख्यान में

भी लगभग 400 लोगों की उपस्थिति थी । संयम जीवन के मात्र 14 मास बाद पू. पंन्यासजी म.सा. की निश्रा में पू.मुनिश्री ने तत्त्वार्थ सूत्र की पहली कारिका के ऊपर 1½ घंटे तक प्रेरणादायी प्रवचन किया । संघ के अग्रणी सुश्रावक नंदुभाई, अंबालालभाई आदि प्रसन्न हो गए । फिर तो महिने में पाँच तिथि के दिन पू.मुनिश्री के प्रवचन होने लगे । इस प्रकार चैत्र मास की ओली के दिन आए । पूज्य पंन्यासजी म.सा. की आज्ञा एवं आशीर्वाद से पू.मुनिश्री ने **'नवपद माहात्म्य तथा श्रीपाल और मयणा'** चरित्र पर नौ दिन तक खुब सुंदर प्रवचन किए ।

वि.सं. 2034 के पाटण चातुर्मास बाद **पू.पंन्यास श्री हर्षविजयजी म.** के साथ **मु. श्री रत्नसेनविजयजी म.** पूज्य गुरुदेव अध्यात्मयोगी **पू.पं. श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** को वंदनार्थ पिंडवाडा पधारे ।

एक बार **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** ने नूतन **मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को पूछा, `प्रवचन करते हो ?'

मुनिश्री ने कहा, `कभी–कभी ।'

प्रवचन में पंन्यासजी म. **(हर्षविजयजी म.)** साथ में बैठते है ।

उन्होने कहा, `हाँ जी !'

`बडो की उपस्थिति से कुछ संकोच नहीं होता है ?'

`नही !'

पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने अन्तर्मन से नूतन मुनि को आशीर्वाद दिए ।

गुरु-कृपा के बल से नूतन मुनिश्री की **'प्रवचन प्रतिभा'** दिन–प्रतिदिन खिलने लगी और क्रमशः के **प्रवचन प्रभावक** हुए ।

गुरु–कृपा की ताकत

संवत् 2033 में बामणबाड़जी तीर्थ मे ज्येष्ट मास में भव्य अंजनशलाका महोत्सव के बाद **मु.श्री रत्नसेनविजयजी** को **पू.पंन्यास श्री हर्षविजयजी म.सा.** के साथ चातुर्मास हेतु पाटण जाना था ।

प्रस्थान के पूर्व वे पूज्यपाद गुरुदेवश्री के पास गये । चरणों में वन्दना की ओर फिर हितशिक्षा के लिए निवेदन किया ।

परम कृपालु गुरुदेवश्री ने अत्यन्त ही वात्सल्य भरपूर शब्दों में संयम–जीवन के अनुरुप हितशिक्षा दी और अन्त में बोले **''पाटण जाने के बाद प्रतिदिन अपनी डायरी में शास्त्रीय आधार पर एक चिन्तन वाक्य लिखना ।''**

मुनिश्री ने पूज्यपादश्री की आज्ञा शिरोधार्य की ओर पूज्यपादश्री ने आशीर्वाद स्वरुप वासक्षेप डाला ।

बामणवाड़जी से पाटण की ओर उनका विहार हुआ । पाटण पहुँचने के बाद उन्हें अपनी डायरी में चिन्तन आलेखन प्रारम्भ करना था । सोचा, `क्या लिखूँ ?' पूज्य गुरुदेवश्री के स्मरण के साथ लिखना प्रारम्भ किया । प्रारम्भ में `विनय' आदि विषयों पर थोड़ा–थोड़ा लिखने के बाद उन्होंने **'नमो अरिहंताणं'** पर लिखना चालू किया । थोड़ा–थोड़ा लिखते एक डायरी भर गई ।

चातुर्मास बाद पूज्यपाद गुरुदेवश्री के वन्दनार्थ वे पिंडवाड़ा आए ।

पूज्यपादश्री के चरणों में वन्दना अर्ज की ओर तत्पश्चात् उन्होंने वह डायरी पूज्यश्री के कर–कमलों में अर्पित कर दी ।

शारीरिक दृष्टि से पूज्यपादश्री का स्वास्थ्य इतना अच्छा नहीं था, फिर भी उन्होंने समय निकालकर वह डायरी पढ़ी । उसमें रही हुई भूलों का परिमार्जन भी किया । फिर उपबृंहणा करते हुए आशीर्वाद प्रदान कर और बोले, **``लिखने का अच्छा अभ्यास है ।''**

मुनिश्री ने कहा, ``साहेबजी ! मेरी तो कुछ भी शक्ति नहीं है । आप ही की शक्ति काम कर रही है । मेरी क्या ताकत है ?'' आज वे पूज्यपादश्री के आशीर्वाद का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे है ।

वे मुनि में से गणि–पंन्यास पदारुढ हुए । उन्हें वि.सं. 2067 पोष वदी-1 दि. 20-1-2011 के शुभ दिन कोंकण शत्रुंजय–थाणा की धन्यधरा पर हजारों की जनमेदिनी के बीच **'आचार्य'** पद पर अभिषिक्त किया गया तब से वे **आचार्यश्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से जाने पहिचाने लगे ।

पूज्यश्री द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य देश के कोने कोने में बडे चांव से पढा जाता है ।

पूज्यश्री अपने दीक्षा दिन से प्रतिदिन प्रायः नियमित एकासना एवं प्रतिमास सुदी पंचमी को उपवास का तप करते है ।

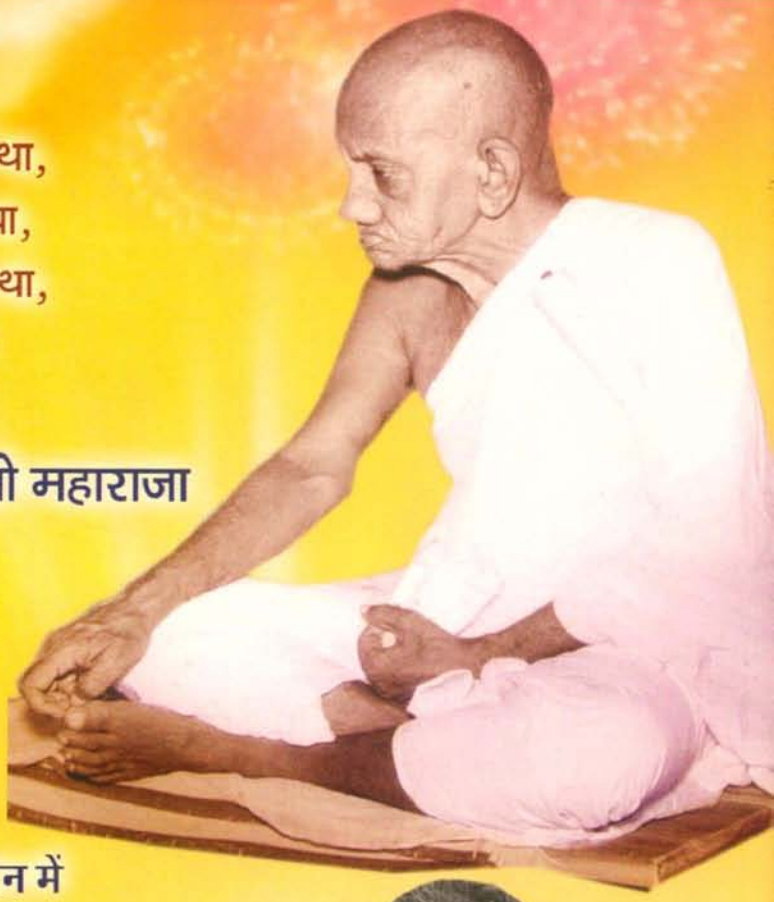
अपने संयम जीवन के 45 वर्षों में पूज्यश्री ने राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्णाटक व तामिलनाडू में लगभग 42000 कि.मी. का पाद विहार व अनेक संघों में चातुर्मास कर सुंदर शासन प्रभावना की है ।

उनके वरदहस्तों से जैन शासन की खूब खूब सुंदर शासन–प्रभावना हो, यही प्रभु से प्रार्थना ।

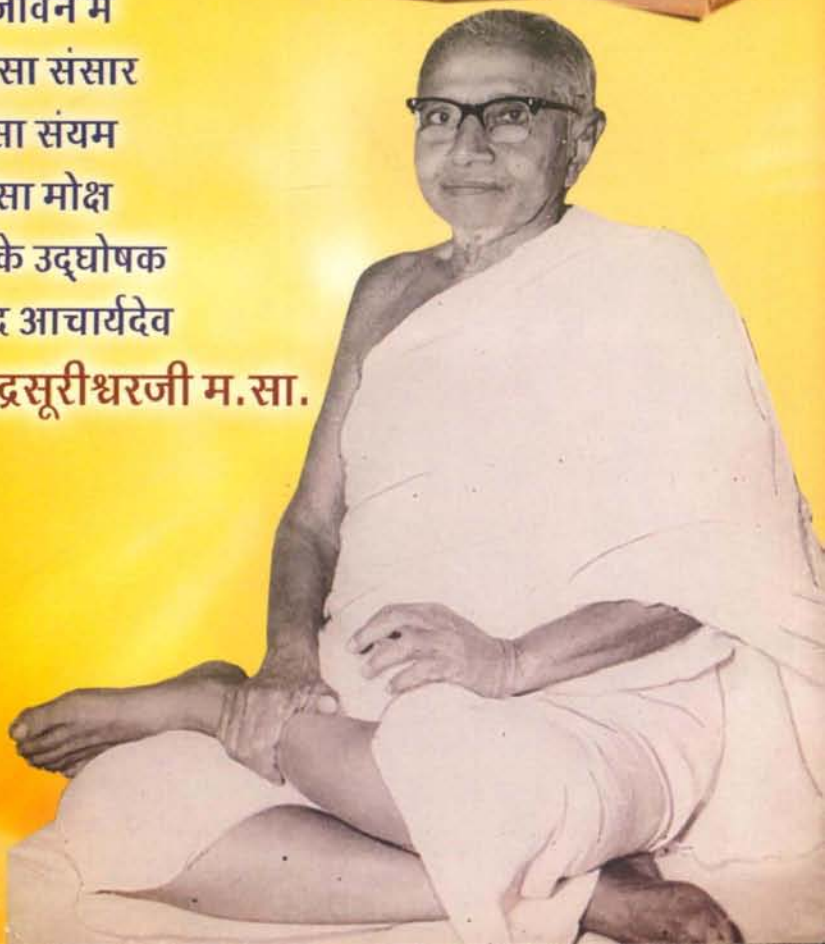
निवेदक

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट–मंडल

स्वाध्याय जिनका प्राण था,
संयम जिनका श्वास था,
समाधि जिनका जीवन था,
ऐसे प्रेम पयोविधि
प.पू.आचार्यदेव
श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा



मानव जीवन में
छोडने जैसा संसार
लेने जैसा संयम
पाने जैसा मोक्ष
इस त्रिपदी के उद्घोषक
स्व. पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.





जिनके श्वासोच्छ्वास में
नवकार और मैत्री भावना
व्याप्त थी, ऐसे पुण्यनाम धेय
बीसवीं सदी के महानयोगी,
नि:स्पृह शिरोमणि
परम पूज्य गुरुदेव पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य



मरुधररत्न, हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराजा**

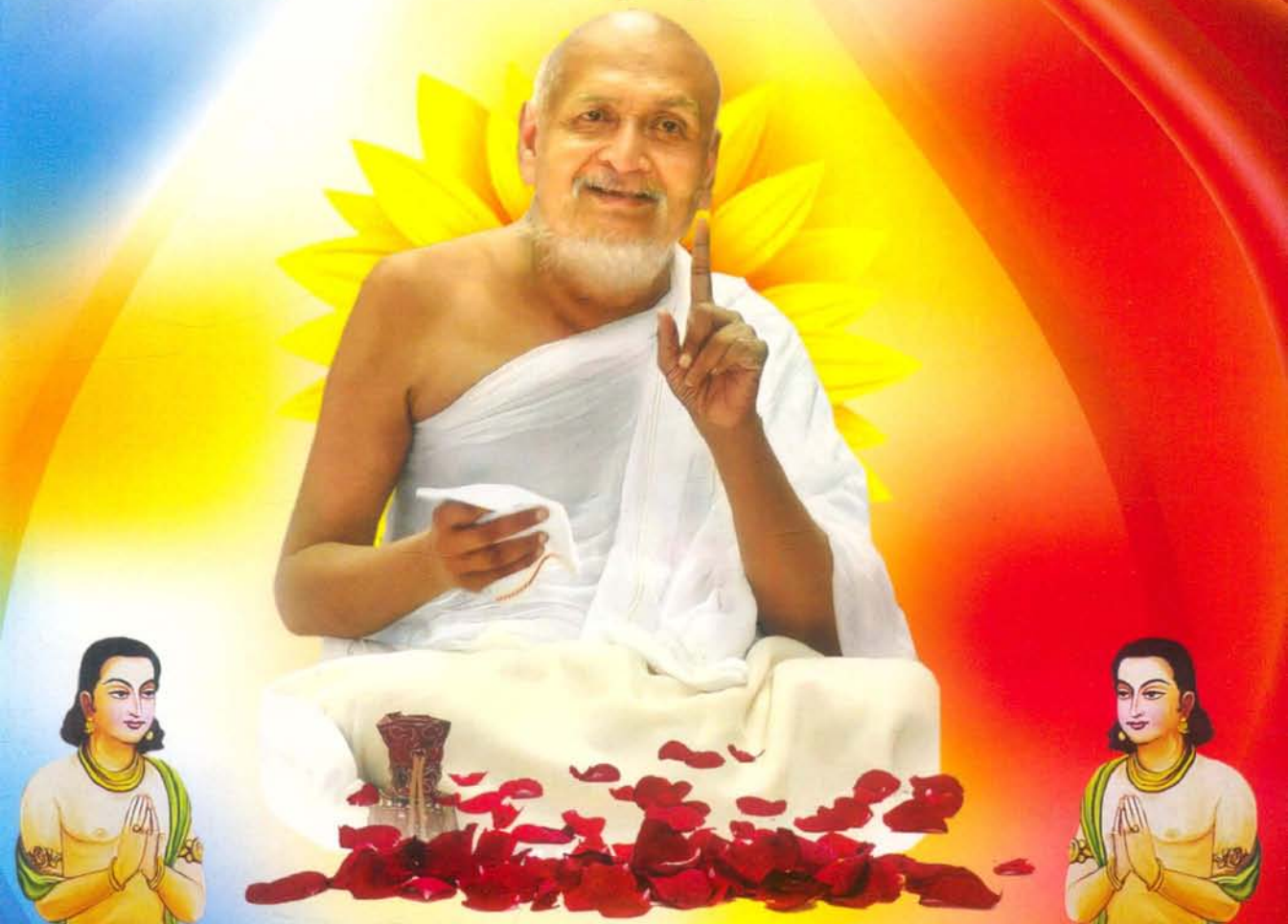
सादर समर्पण

स्वयं के प्रति प्रतिकूल व्यवहार करनेवालों के प्रति भी जिनके दिल में लेश भी प्रतिशोध की भावना नहीं थी ।

जिनके दिल में किसी के प्रति शत्रुता नहीं थी ।

बूरा व्यवहार करनेवालों के प्रति भी जिनके दिल में हित-चिंतन की ही भावना थी ।

अपने प्रति दुर्व्यवहार-ईर्ष्या करनेवालों को भी जीवन के अंतिम समय में समाधि प्रदान की, *ऐसे पुण्यनाम धेय*



करुणामूर्ति पूज्यपाद पंन्यास प्रवर

श्री वज्रसेनविजयजी म.सा.

के पतित पावन कर कमलों में यह 'ग्रंथ' अर्पित करते हुए मैं धन्यता का अनुभव करता हूँ !

आचार्य रत्नसेनसूरि

प्रकाशन-सहयोगी



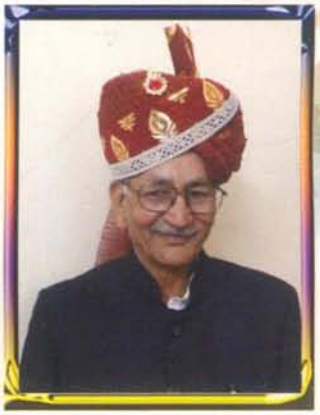
स्व. श्री उम्मेदमल सा. मेहता



स्व. श्रीमती विमलादेवी मेहता



स्व. श्री उत्तमचंद सा. बोहरा (पुदुचेरी)



स्व. श्री महावीरचंद सा. मेहता (जोधपुर)

स्व.माताजी एवं पिताजी स्व. श्रीमती विमलादेवी उम्मेदमल सा. एवं
स्व. बहनोइ सा. उत्तमचंद सा. एवं श्री महावीरचंद सा. की पुण्य-स्मृति में

निवेदक

पुत्री-दामाद	:	मधु-स्व.उत्तम सा. चन्द्रा-गणपत सा.,
		अंजू-दानेश सा., नंदा-स्व. महावीर सा.
पुत्र-पुत्रवधुएँ	:	राजेन्द्र-चन्द्रा, राकेश-शर्मिला, प्रवीण-निशा
पौत्र-पौत्रवधुएँ	:	वैभव-आरती, गौरव-करिश्मा
पौत्र-पौत्री	:	आयुषी, सौरव, चिराग, सानिया, मिवान एवं
		समस्त मेहता परिवार - कोयम्बतुर-जोधपुर (राज.)

फर्म : महावीर लेमिनेट्स, कोयम्बतुर Tel. 04224370164

पट्टधर परंपरा– एक उज्ज्वल इतिहास एवं प्रेरणा स्त्रोत

लेखक : धर्मतीर्थ प्रभावक
पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय
मित्रानंदसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न
ज्योतिष–शिल्प विशारद
पू. आचार्य श्रीमद् विजय भव्यदर्शनसूरीश्वरजी म.सा.

वर्तमान जैन शासन के नायक है–श्रमण भगवान महावीर प्रभु !

पूर्व के तीसरे भव की उत्कृष्ट साधना एवं सर्वोत्कृष्ट भावना के फल स्वरूप प्रभु ने तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किया था । जिसके फल स्वरूप उन्होंने अपने अंतिम भव में तीर्थ की स्थापना की थी ।

यद्यपि तीर्थ की स्थापना के बाद प्रभु वीर सिर्फ 30 वर्ष तक ही रहे, परंतु उनके द्वारा स्थापित शासन 21000 वर्ष तक चलने वाला है ।

प्रभु वीर की शासन की स्थापना के 2577 वर्ष पूर्ण हुए हैं, अभी तो यह शासन लगभग 18500 वर्ष तक चलने वाला है ।

प्रभु का यह शासन कंटकाकीर्ण रहा हैं, अतः इस शासन में अनेक उतार चढाव आए है ।

व्यवहार से कह सकते है कि प्रभुने 30 वर्षों तक शासन चलाया, उसके बाद शासन अनेक आचार्य भगवंतों ने चलाया ।

जिन शासन को समर्पित, जिनाज्ञा के प्रति पूर्ण वफादार, अपने प्राणों का बलिदान देकर भी जिन शासन की रक्षा व प्रभावना करनेवाले धुरंधर जैनाचार्यों ने हम तक यह शासन पहुँचाया है ।

कई जैनाचार्यों ने शासन पर आए आक्रमणों का प्रतिकार करने के लिए कठोर कदम भी उठाए है, कइयों ने अपने प्राणों का बलिदान भी दिया है ।

महावीर प्रभु की इस पट्टधर परंपरा का अवलोकन करते हुए अनेक महापुरुषों की कठोर संयम साधना, कठोर तपश्चर्या, तीव्र वैराग्य, विशिष्ट साधना, उपसर्ग व परिषहों में निडरता, देव–मानव की परीक्षा में अडिगता तथा उनके सिंह सत्त्व को देख यह सिर अहोभाव से उनके चरणों में झूक जाता है ।

एक-एक चरित्र का स्वाध्याय करते हुए देह रोमांचित हो जाता है ।

जैन हिन्दी मार्गस्थ साहित्य के सर्जन में **पू. आचार्य श्रीमद् विजय**

रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराजा का नंबर अग्रिम पंक्ति में है । हिन्दी भाषी पाठकों के हितार्थ उन्होंने विपूल साहित्य का सर्जन किया है ।

हिन्दी भाषा में कई ग्रंथ–पुस्तकों की आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति उन्होंने की है । तत्त्वज्ञान, प्रकरण, प्रवचन, इतिहास, क्रिया–विधि, कथा–चरित्र आदि अनेक विषयों पर उन्होंने कल्पनातीत साहित्य का निर्माण किया है । पाठकों की ओर से उसका योग्य प्रतिभाव भी मिला है । उनका साहित्य लोक भोग्य बना है ।

अपने उपकारी गुरुदेव अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री की अदृश्य कृपा उन पर सतत बरस रही है, उसी के फलस्वरप अल्पकाल में अकेले हाथ ही वे जैन साहित्य में भगीरथ प्रयत्न व पुरुषार्थ कर सके है ।

अपने उपकारी गुरूदेव के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के रूप में उन्होंने गुरूदेव के गुजराती साहित्य को हिन्दी भाषा में अनुदित कर उनका योग्य प्रकाशन भी करवाया है ।

दक्षिण भारत में विचरण दरम्यान चैन्नई व बेंगलोर में उनके दर्शन–वंदन व सहवास का भी मौका मिला था ।

उन्हीं के निर्देश से मुझे इस पट्टधर परंपरा के भाग 1 व 2 के स्वाध्याय का मौका मिला ।

उनमें कई नई नई वस्तुएं भी जानने को मिली ।

–साहित्य का कार्य स्वाध्याय प्रेमी ही कर सकते है ।

❀ इस पट्टधर परंपरा के आलेखन में उन्होंने कई संदर्भ ग्रंथों का उपयोग किया हैं, अतः इस ग्रंथ की विश्वसनीयता में और बढोतरी हो जाती है ।

–इस पट्टधर परंपरा के प्रथम भाग में 1 से 9 तक की पट्टधर परंपरा एवं तत्कालीन श्रेणिक महाराजा, कोणिक, उदायी राजा तथा नौ नंदवंश तथा मौर्य वंश के सुप्रसिद्ध महाराजाओं का इतिहास संग्रहित किया है ।

❀ प्रस्तुत दूसरे भाग में मूल 10 वीं पाटपरंपरा पर आए आ. इन्द्रदिन्नसूरिजी से प्रारंभ होता है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में मूल पट्टधर परंपरा के महापुरुषों के साथ शासन की रक्षा–प्रभावना साहित्य सर्जन आदि विशिष्ट कार्यों से प्रसिद्ध बने तत्कालीन अनेक युग पुरुषों के जीवन चरित्र के प्रेरक प्रसंगों को भी गुंथ लिया गया है, इस कारण यह ग्रंथ विशेष रूप से ग्राह्य बनेगा ।

उदाहरण के रूप में आर्य श्यामाचार्य (कालिका चार्य), मंत्र प्रभावक आचार्य खपूटाचार्य (आज भी जिनका नाम लेकर मंत्र साधना करने से जल्दी सिद्धि

मिलती है ।) दूसरे कालिकाचार्य (जिनसे चतुर्थी के दिन संवत्सरी का प्रवर्तन हुआ) आर्य पादलिप्तसूरि (जिनके नाम से पालीताणा नगर बसा), वृद्धवादिसूरिजी, कल्याण मंदिर स्तोत्र के रचयिता एवं सम्राट् विक्रमादित्य प्रतिबोधक श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी, आचार्य सिंहसूरिजी के समय ईसाई मत के स्थापक के भारत आगमन की बात, कई निह्नवों के प्रसंग, शत्रुंजय के उद्धार की ऐतिहासिक घटनाएं, चार अनुयोग के विभाजन कर्ता आर्यरक्षितसूरिजी, दिगंबर मत की व्युत्पत्ति में कारणभूत शिवभूति, तत्त्वार्थ सूत्र के रचयिता वाचकवर्य उमास्वातिजी, उपमिति भव प्रपंचा के रचयिता सिद्धर्षि गणी, माथूरी एवं वल्लभी आगम वाचना का परिचय, तार्किक शिरोमणि श्री मल्लवादिसूरिजी, जैन रामायण एवं जैन महाभारत के रचयिता आ. विमलसूरिजी म., श्रुतसमुद्धारक देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण, आगम पंचांगी का संक्षिप्त परिचय, कुलपाकजी तीर्थ की स्थापना, भक्तामर स्तोत्र के रचयिता मंत्र प्रभावक मानतुंगसूरिजी म., 1444 ग्रंथों के रचयिता हरिभद्रसूरिजी म., अद्वैतमत के स्थापक शंकराचार्य, आम राजा प्रतिबोधक एवं प्रतिदिन 1000 गाथाएं कंठस्थ करनेवाले बप्पभट्टीसूरिजी, वादिवेताल शांतिसूरिजी, महाकवि धनपाल एवं शोभन मुनि, नवांगी टीकाकार, स्तंभन पार्श्वनाथ के प्रकट कर्ता और जयतिहुयण स्तोत्र के रचयिता अभयदेवसूरिजी, विमलशा मंत्री, मलधारी अभयदेवसूरिजी एवं भवभावना ग्रंथ के रचयिता हेमचन्द्रसूरिजी आदि आचार्य भगवंतों के अनेक प्रेरणा दायी प्रसंगों को भी संग्रहित किया गया है ।

चरित्र ग्रंथों में कई मत–मतांतर मिलते हैं, परंतु इससे भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है । कथा के मूल रहस्य व आशय को पकडकर चलना चाहिये ।

लगभग चार भागों में विभाजित इस पट्टधर परंपरा में श्रमण भगवान महावीर से लेकर विक्रम की 20-21 वीं सदी तक की परंपरा का समावेश किया गया है ।

इन विस्तृत चरित्रों में वैराग्य प्रेरक प्रेरणा दायक बातों का भी समावेश किया गया है । समस्त चरित्रों के आलेखन में लेखक श्री ने प्रचंड पुरुषार्थ किया है । यह प्रत्यक्ष हुए बिना नहीं रहता है ।

इतिहास का आलेखन करना खूब कठिन कार्य है । इतिहास बनाने से नहीं बनता है, उन उन प्रकार के महान कार्यों से बनता है । विशिष्ट कार्य करने से इतिहास बनता है ।

ज्ञानी पुरुष ग्रंथों की रचना तो स्वयं करते है, परंतु इतिहास की रचना स्वयं नहीं करते है, इतिहास अन्य द्वारा रचा जाता हैं अर्थात् ऐतिहासिक घटनाओं का निर्माण अलग व्यक्ति करता है और उसके आलेखन का कार्य अन्य व्यक्ति करता है ।

इतिहास व चरित्र के आलेखन में दो बातों का ध्यान रखना होता है–उन उन ऐतिहासिक पात्रों के साथ अन्याय नहीं होना चाहिये और कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं आनी चाहिये । निष्पक्ष और गुणानुरागी जीव ही यह कार्य अच्छी तरह से कर सकते हैं ।

पट्टधर परंपरा के प्रथम भाग में वीर संवत् 300 तक की घटनाओं का संकलन किया गया है तो इस दूसरे भाग में वीर संवत् 300 से 1648 तक अर्थात् विक्रम संवत् पूर्व 170 से विक्रम संवत् 1178 तक का इतिहास संग्रहित किया है ।

पूज्यपाद अध्यात्मयोगी, नमस्कार महामंत्र के विशिष्ट विरल चिंतक, अजातशत्रु, पद–प्रतिष्ठा से अलिप्त, **समतासिद्ध पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न हिन्दी साहित्यकार, गोडवाड के गौरव पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.** सुंदर प्रवचनकार भी है । उनकी हिन्दी भाषा अत्यंत ही सरल है । बाल–युवा और वृद्ध सभी को ग्राह्य ऐसी उनकी प्रवचन व लेखन शैली है । वे प्रकृति से खूब सरल है । जहां भी विचरण करते है, चातुर्मास करते हैं, वे ज्ञान की गंगा बहाते रहते है । **'अर्हद् दिव्य संदेश'** मासिक के माध्यम से वे जिनवाणी का अच्छा प्रचार–प्रसार कर रहे है । उनके द्वारा सरल व सुबोधशैली में आलेखित हिन्दी साहित्य भारत के कोने कोने में पहुँचा है । जिन क्षेत्रों में साधु–साध्वी का विचरण नहीं हैं अथवा नहींवत् हैं, उन क्षेत्रों में यह साहित्य खूब उपकारक बना है ।

इतिहास के स्वाध्याय के माध्यम से हम भूतकाल में विचरण करते है, इतना ही नहीं, सिंहसत्त्ववाले उन तेजस्वी महापुरुषों का जीवन चरित्र पढने से हमारी पामरता व नि:सत्त्वता दूर हो जाती है ।

ज्ञान–दर्शन और चारित्र के विषय में आई हुई शिथिलता के लिए दिल में स्वयं के प्रति नफरत भाव पैदा होता है । सियाल मिटकर सिंह बनने का भाव पैदा होता है । शासन के लिए कुछ करने का मन होता है । उपकारी अविच्छिन्न परंपरा को आगे बढाने का मनोरथ पैदा होता है । प्रमाद को दूर कर अप्रमत्त भाव से आराधना करने का उत्साह प्रकट होता है–उसमें अवश्य वृद्धि होती है ।

इस पट्टधर परंपरा के स्वाध्याय द्वारा सभी के दिलों–दिमाग में शुभ भावों की खूब खूब वृद्धि हो, इसी मनोकामना के साथ !

विजय भव्यदर्शनसूरि

बेंगलोर-वि.सं. 2077

चैत्र सुदी-13

(वीर प्रभु जन्म कल्याणक दिन)

लेखक संपादक की कलम से

आज से लगभग 12 वर्ष पूर्व जब **'भरहेसर की सज्झाय'** का हिन्दी विवेचन तैयार कर रहा था, तब भरहेसर में आनेवाले महापुरुषों के जीवन आलेखन के बाद इस अवसर्पिणी काल में हुए 63 शलाका पुरुष (24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव) तथा प्रभु महावीर की पाट परंपरा में हुए जिनशासन के महान ज्योतिर्धर महापुरुषों के जीवन चरित्र आलेखन की मन में इच्छा जगी थी ।

भवोदधि तारक पूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा से 63 शलाका पुरुषों का आलेखन व प्रकाशन हो चूका है ।

अन्य-अन्य पुस्तकों के आलेखन समय प्रभुवीर के शासन में हुए अनेक ऐतिहासिक महापुरुषों का आलेखन किया था परंतु श्रृंखलाबद्ध रूप में पट्टधर परंपरा का आलेखन नहीं हो पाया था ।

पिछले दो वर्षों से चातुर्मास दरम्यान **'प्रभुवीर की पाट परंपरा'** पर अनेक प्रवचन हुए थे ।

प्रवचन के माध्यम से उन महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को सूक्ष्मता से अवगाहन करने का सौभाग्य मिला, इस निमित्त त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र, प्रभावक चरित्र, पार्श्वनाथ परंपरा का इतिहास (भाग-3), जैन परंपरानो इतिहास (भाग-4) तथा अन्य भी इतिहास संबंधी अनेक पुस्तकें पढने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।

परमोपकारी, भवोदधि तारक, परमाराध्यपाद परम गुरुदेव पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री की अदृश्य कृपा से आज **'भगवान महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा'** का आलेखन साकार होने जा रहा है ।

यद्यपि इस दूसरे भाग में प्रभुवीर की 10 से 40 तक की पट्टधर-परंपरा तक का संग्रह किया है, आगे की पट्टधर-परंपरा का वर्णन तीसरे व चौथे भाग में किया गया है ।

पाटपरंपरा के साथ तत्कालीन मंत्र प्रभावक आर्य खपुटाचार्य दूसरे कालिकाचार्य, सिद्धसेन दिवाकरसूरि, आर्य रक्षितसूरि, बप्पभट्टीसूरि, मंत्र प्रभावक वीरसूरि, यशोभद्रसूरि, सिद्धर्षि गणी तथा मलधारी अभयदेवसूरि, हेमचन्द्रसूरि आदि महापुरुषों के भी जीवन प्रसंगों का संकलन इस द्वितीय भाग में किया है ।

वे ऐतिहासिक पात्र हमें जीवन जीने की सच्ची प्रेरणा देते है ।
उनके महान आदर्श हमारे भविष्य को भी उज्ज्वल बनाते है ।

इतिहास अर्थात् भूतकाल में बनी घटनाओं को पुनः याद करना । इतिहास सिर्फ पढने की वस्तु नहीं

है । इतिहास हमें बहुत कुछ सिखाता है । वर्तमान में कैसे जीना और अपने भविष्य को कैसा बनाना ? उसकी सुंदर प्रेरणा इतिहास से मिलती है ।

जन्म से जैन होने के बावजूद भी कई जैनों को अपने जैन धर्म के इतिहास का कुछ भी पता नहीं है ।

भूतकाल में जैन धर्म के इतिहास को समझने के लिए अनेक महापुरुषों ने संस्कृत–प्राकृत भाषा में अनेक ग्रंथों का निर्माण किया है ।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने त्रिषष्टी शलाका पुरुष चरित्र ग्रंथ में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव आदि महान् पुरुषों का तथा परिशिष्ट पर्व में भगवान महावीर के शासन में हुए सुधर्मास्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक के महापुरुषों के जीवन प्रसंगों का विस्तार से, सुंदर आलेखन संस्कृत भाषा में काव्य के रुप में 36000 श्लोकों के माध्यम से किया है । परंतु कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यश्री का यह सब सर्जन संस्कृत भाषा में है । जबकि आज जैन संघ में से प्राकृत-संस्कृत भाषा लुप्त प्रायः हो गई है । इस कारण इतिहास की सामग्री विद्यमान होने पर भी हम जैन अपने ही इतिहास से अनभिज्ञ हो गए है ।

यद्यपि गुजराती भाषा में जैन इतिहास संबंधी विपुल साहित्य उपलब्ध है और नवसर्जन भी हो रहा है, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के साहित्य की बहुत बडी कमी रही है ।

ग्रंथ के अनुरूप प्रस्तावना लिखकर शासन प्रभावक **आचार्य श्री भव्यदर्शनसूरिजी म.** ने ग्रंथ का गौरव बढाया है, इसके लिए वे भी धन्यवाद के पात्र है ।

पाट परंपरा के ऐतिहासिक महापुरुषों की हिन्दी स्तुतियों की रचना सुविनीत मुनिश्री स्थूलभद्रविजयजी ने की है ।

ऐतिहासिक पात्र व घटनाओं में कई जगह मत-मतांतर देखने को मिलते है । पूर्व में प्रकाशित संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, हिन्दी आदि ग्रंथों के आधार पर यह पट्टधर-परंपरा तैयार की हैं, अतः छद्मस्थतावश कहीं भी जिनाज्ञा से विपरीत आलेखन हुआ हो तो त्रिविध-त्रिविध **मिच्छा मि दुक्कडं ।**

पार्श्व भवन, विजयापुर (बिजापूर)
कर्णाटक, आसाढ वदी–चौथ,
वि.सं. 2077, दि. 27-7-2021

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद
पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी
गणिवर्य पादपद्मरेणु
–रत्नसेनसूरि

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ट नं.
1.	**10वें पट्टधर आ. श्री इन्द्रदिन्नसूरि**	**1**
	1. मंत्र प्रभावक आचार्य प्रियग्रंथसूरिजी	1
	2. आर्य श्यामाचार्य (प्रथम कालिकाचार्य)	2
2.	**11वें पट्टधर आ. श्री दिन्नसूरि**	**4**
	3. मंत्र प्रभावक–आर्य खपुटाचार्य	5
	4. मंत्रवादी आचार्य रुद्रदेवसूरिजी	7
	5. युगप्रधान दूसरे कालिकाचार्यजी	8
	साध्वीजी की शील रक्षा	9
	संवत्सरी तिथि परिवर्तन	11
	शिष्य को बोध	13
	6. शासन प्रभावक श्री आ. पादलिप्तसूरिजी	*15*
	1. भौतिक सुख की अपूर्णता	15
	2. सन्तान-प्राप्ति	16
	3. विनय किसका अधिक ?	18
	4. नि:स्पृहता	19
	5. शासनरक्षा और प्रभावना	20
	7. आचार्य वृद्धवादिसूरिजी	*29*
	8. विक्रम प्रतिबोधक सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी	*30*
	विक्रमादित्य को प्रतिबोध	31
	महाज्ञानी सूरिदेव	32
	मंदिर–निर्माण	34
	विद्या प्राप्ति	34
	विराट् छ'री पालक संघ	35
	भूल सुधार	35
	साहित्य सर्जन	36
	विविध–उपमाएं	38
3.	**12वें पट्टधर आ.श्री सिंहगिरिसूरि**	**39**
	9. मंत्र प्रभावक आचार्य समितसूरिजी	39
	ईसाई मत	41
	10. छठा निह्नव–रोहगुप्त	42
4.	**13वें पट्टधर युगप्रधान वज्रस्वामीजी**	**44**
	सुनंदा को हार	48
	चारित्र प्रभाव	50
	ग्यारह अंगों के ज्ञाता	51
	महान् ज्ञानी	52

क्र.	विषय	पृष्ट नं.
	शत्रुंजय का तेरहवां उद्धार	53
	रुक्मिमणी को प्रतिबोध	58
	संघरक्षा	59
	शासन प्रभावना	60
	अनशन स्वीकार	61
	11. अनुयोग विभाजनकर्ता आर्यरक्षितसूरिजी	*62*
	1. माँ ! तू प्रसन्न क्यों नहीं ?	62
	2. दीक्षा स्वाकीर	69
	3. निर्यामणा	75
	4. अपूर्व ज्ञान साधना	80
	5. परिवार का उद्धार	87
	6. पुष्यमित्र	92
	7. इन्द्र का आगमन	95
	8. समाधिमरणम्	97
5.	**14वें पट्टधर आ. श्री वज्रसेनसूरिजी**	**99**
	तीसरी आगम वाचना	101
	12. सातवां निह्नव–गोष्ठामाहिल	*102*
6.	**15वें पट्टधर आ. श्री चन्द्रसूरिजी**	**106**
	13. दिगंबर-मत उत्पत्ति आठवाँ निह्नव–शिवभूति	*108*
	मत भेद	111
	श्वेतांबर–दिगंबर मान्यता भेद	112
7.	**16वें पट्टधर वनवासी गच्छ आ. श्री समंतभद्रसूरिजी**	**115**
8.	**17वें पट्टधर आ. श्री वृद्धदेवसूरिजी**	**117**
	14. शासन प्रभावक आचार्य जज्जिगसूरिजी	*118*
9.	**18वें पट्टधर आ. श्री प्रद्योतनसूरिजी**	**120**
10.	**19वें पट्टधर आ. श्री मानदेवसूरिजी**	**121**
11.	**20 वें पट्टधर आ. श्री मानतुंगसूरिजी**	**124**
	15. वाचकवर्य उमास्वातिजी	*129*
	16. चूर्णिकार श्री जिनदास गणि महत्तर	*131*
12.	**21वें पट्टधर आ. श्री वीरसूरिजी**	**133**
13.	**22 वें पट्टधर आ. श्री जयदेवसूरिजी**	**133**
14.	**23 वें आ. श्री देवानंदसूरिजी**	**134**

क्र.	विषय	पृष्ट नं.
	माथुरी और वल्लभी–चौथी आगम वाचना	134
	17. तार्किक शिरोमणि आ. मल्लवादीसूरिजी	*143*
15.	**24वें पट्टधर आ. श्री विक्रमसूरिजी**	**145**
	18. आ. श्री शिवशर्मसूरिजी	*145*
	19. आचार्य चंद्रर्षि महत्तर	*145*
	20. वाचक संघदास गणी	*146*
	21. आ. विमलसूरिजी	*146*
16.	**25वें आ. श्री नरसिंहसूरिजी**	**147**
17.	**26वें आ. श्री समुद्रसूरिजी**	**148**
	22. देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण एवं 5वी आगम वाचना	*148*
	आगम–साहित्य	150
	कल्पसूत्र का जाहिर वाचन (प्रवचन)	152
	23. वाचकवंश	*153*
18.	**27वें आ. श्री मानदेवसूरिजी (दूसरे)**	**156**
	24. आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	*157*
19.	**28वें आ. श्री विबुधप्रभसूरिजी**	**158**
	25. कुल्पाकजी तीर्थ	*158*
20.	**29वें आ. श्री जयानंदसूरिजी**	**161**
	26. कोट्यार्य महत्तर	*161*
21.	**30वें आ. श्री रविप्रभसूरिजी**	**162**
22.	**31वें आ. श्री यशोदेवसूरिजी**	**163**
	27. सूरिपुरन्दर–आचार्य हरिभद्रसूरिजी	*163*
	वाद-विवाद	167
	श्रुत–भक्ति	172
	साहित्य–सर्जन	173
23.	**32वें पट्टधर आ.श्री प्रद्युम्नसूरिजी**	**177**
	28. आ. श्री बप्पभट्टीसूरिजी	*178*
	सरस्वती साधना	179
	आम राजा से मिलन	180
	आचार्यपद प्रदान	183
	पूज्य बप्पभट्टीसूरिजी का अपूर्ण त्याग	183
	शंका का विष	184
	अग्निपरीक्षा	187
	वादिकुंजर केसरी	188
	प्रतिबोध	189
	आम राजा और गिरनार संघ	189
	29. अद्वैत मत स्थापक–शंकराचार्य की लीला	*191*
24.	**33 वें आ. श्री मानदेवसूरिजी**	**193**
25.	**34 वें आ. श्री विमलचन्द्रसूरिजी**	**193**
	30. आचार्य जीवदेवसूरिजी	*194*
	चमत्कार	195
	प्रतिबोध	196
	31. मंत्र प्रभावक आचार्य वीरसूरिजी	*199*
	अंग–विद्या प्राप्ति	200
	यक्ष-प्रतिबोध	201
	आचार्य पदवी	202
	अष्टापद यात्रा	202
	रोग-मुक्ति	203
	पट्टधर नियुक्ति	203
	32. मंत्र प्रभावक आ. श्री यशोभद्रसूरिजी	*204*
	अपूर्व–त्याग	204
	लब्धि–प्रयोग	205
	चमत्कार	207
	कालधर्म	208
	33. वासुदेवसूरिजी	*209*
	34. सिद्धर्षि गणी	*212*
	सिद्धर्षि की अनुपम भेंट 'उपमिति'	216
	कृतज्ञता का आदर्श	216
	तीन कुटुंब का परिचय	219
	विशाल–बोध	220
	जीवों के भेद	221
26.	**35वें पट्टधर वड–गच्छ का प्रारंभ आ. श्री उद्योतनसूरिजी**	**222**
27.	**36वें पट्टधर आ. श्री सर्वदेवसूरिजी**	**223**
	35. वादिवेताल आ. श्री शांतिसूरिजी	*224*
	36. परमार्हत् धनपाल	*227*
	स्वाध्याय–मग्नता	231
	धनपाल कवि की दृढ़ता	235
	तिलक मंजरी	237
	राजा को पश्चात्ताप	238
	महान रचनाएँ	240
	37. नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी	*241*
28.	**37वें पट्टधर आ. श्री देवसूरिजी**	**246**
	विमलशा मंत्री	*246*
29.	**38वें आ. श्री सर्वदेवसूरिजी**	**254**
30.	**39वें आ.श्री यशोभद्रसूरिजी**	**255**
	38. आ.श्री नेमिचन्द्रसूरिजी	*255*
	39. मलधारी आ. श्री अभयदेवसूरिजी	*257*
	40. मलधारी हेमचन्द्रसूरीश्वरजी	*258*
	साहित्य रचना	260
31.	**40 वें आ. श्री मुनिचन्द्रसूरिजी**	**262**
	अपूर्व धारणा शक्ति	262
	वाद में अजेय	263



पट्टधर पद प्राप्ति–
वीर संवत् 339

आ.श्री इन्द्रदिन्नसूरिजी

स्तुति

दसवें हुए पट्टधार आर्य इन्द्रदिन्नसूरीश्वरा,
ब्राह्मण प्रतिबोधक हुए, तब प्रियग्रंथसूरीश्वरा,
''पशुहिंसा में धर्म नहीं'' इस सत्य को स्थापन किया,
प्रभु वीर पाट परम्परा को, भाव से करुं वंदना ।।13।।

भगवान महावीर की 9 वीं पाटपरंपरा में हुए **आचार्य सुस्थितसूरिजी** की पाटपरंपरा में प्रभुवीर के 10 वें पट्टधर कौशिक गोत्रीय आर्य **इन्द्रदिन्नसूरिजी** हुए । उन्होंने गुजरात के मोढेरा प्रदेश में सुंदर प्रभावना की । उनके ही गुरु भाई **प्रियग्रंथसूरिजी** हुए ।

मंत्र प्रभावक आचार्य प्रियग्रंथसूरिजी-1

भारत भूमि के राजस्थान प्रांत में अजमेर के पास आया हर्षपुर नगर था । उस नगर में 300 जैन मंदिर और 400 अजैन मंदिर थे । उस नगर में ब्राह्मणों का खूब जोर था । उनके 1800 घर थें ।

एक बार जैन शासन के मंत्र प्रभावक **आचार्यश्री प्रियग्रंथसूरिजी म.** विहार करते हुए हर्षपुर नगर में पधारे ।

उस समय ब्राह्मणों ने उस नगर में एक यज्ञ का आयोजन किया था, उस यज्ञ में एक बकरे की बलि देनी थी । प्राचीन काल में यज्ञों में पशु की भी बलि देते थे । अश्वमेध यज्ञ में घोडे की तथा नरमेध यज्ञ में मनुष्य की भी बलि दी जाती थी ।

वे ब्राह्मण बकरे को सजाकर यज्ञ की वेदी के पास ले जा रहे थें । श्रावकों के माध्यम से जब आचार्य भगवंत को इस बात के समाचार मिले तो उन्होंने उन श्रावकों को वासक्षेप देकर कहा, **'यह वासक्षेप बकरे के ऊपर डाल देना ।** वासक्षेप के प्रभाव से यह बकरा देवताधिष्ठित हो जाएगा । बस, आगे सब ठीक हो जाएगा ।

यज्ञ मंडप में जाकर श्रावकों ने पूज्य गुरुदेव के द्वारा दिया वासक्षेप बकरे के ऊपर डाल दिया ।

उसी समय वह बकरा अंबिकादेवी से अधिष्ठित हो गया और मनुष्य की भाषा में उन ब्राह्मणों को फटकारते हुए बोला, 'ओ ब्राह्मणों ! ***तुम मुझे बलि के लिए ले जा रहे हो, परंतु मैं भी तुम्हारी तरह निर्दयी बन गया तो क्षणभर मैं तुम्हें खत्म कर सकता हूँ ! जिस प्रकार गुस्से में आए हनुमानजी ने लंका को जला दी थी, उसी प्रकार मैं तुम्हारे गांव को जला सकता हूँ !***

ब्राह्मणों ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

बकरे ने कहा, 'मैं अग्निदेव हूँ और यह बकरा मेरा वाहन है ।

तुम इस बकरे को क्यों मार रहे हो ? क्या पशुओं की हिंसा करना भी धर्म हो सकता है ? यदि पशु-हिंसा को धर्म कहोंगे तो अधर्म किसे कहोंगे ?

यदि तुम्हें सच्चा धर्म समझना हैं तो जैनाचार्य **प्रियग्रंथसूरिजी** के पास जाओ । वे तुम्हें सच्चा धर्म समझाएंगे । वे सत्यवादी में सर्व श्रेष्ठ है ।

देवता अधिष्ठित उस बकरे के मुख से इन बातों को सुनकर वे ब्राह्मण स्तब्ध हो गए ।

वे **प्रियग्रंथसूरिजी** के पास गए । पूज्य आचार्य भगवंत ने उन्हें सत्य धर्म समझाया ।

उन सभी ब्राह्मणों ने वीतराग निर्दिष्ट जैन धर्म का स्वीकार किया ।

इस प्रकार जैनाचार्य **प्रियग्रंथसूरिजी म.** ने अपनी मंत्र शक्ति के प्रभाव से जैन धर्म की अद्‌भुत प्रभावना की ।

जन्म–वीर संवत् 280

दीक्षा–वीर संवत् 300
स्वर्गवास–वीर संवत् 376

आर्य श्यामाचार्य (प्रथम कालिकाचार्य)-2

'प्रभावक-चरित्र' के अनुसार वीर संवत् 280 में उनका जन्म हुआ था और 20 वर्ष की युवावस्था में उन्होंने युगप्रधान गुणाकरसूरिजी के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की थी ।

वीर संवत् 335 में युगप्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए थे ।

वे द्रव्यानुयोग के प्रकांड विद्वान् थे ।

एक बार महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी भगवंत अपनी धर्म देशना में निगोद के स्वरूप का खूब सूक्ष्मता से वर्णन कर रहे थे ।

प्रभु के मुख से इस वर्णन को सुनने के बाद इन्द्र ने प्रभु को प्रश्न किया, 'हे प्रभु ! क्या भरत क्षेत्र में आपकी तरह निगोद के स्वरूप का वर्णन करनेवाले कोई महात्मा विद्यमान है ?'

भगवान ने कहा, 'हे इन्द्र ! भरत क्षेत्र में श्यामाचार्य मेरी तरह ही निगोद के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ है ।'

प्रभु के मुख से इस बात को सुनकर ब्राह्मण का रूप कर इन्द्र स्वयं श्यामाचार्य (कालिकाचार्य) के पास आया और उंसने आचार्य भगवंत को निगोद का स्वरूप पूछा ।

आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान के बल से निगोद के स्वरूप का सूक्ष्म निरूपण किया, जिसे सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गया और आचार्य भगवंत के विशिष्ट ज्ञान की प्रशंसा करने लगा ।

इन्द्र ने अपना मूल स्वरूप प्रकट किया । उसके बाद अपने आगमन की निशानी के रूप में इन्द्र महाराजा ने उपाश्रय का द्वार जो पूर्वाभिमुख था, उसे पश्चिमाभिमुख कर दिया ।

शिष्य जब गौचरी वहोरकर उपाश्रय में आने लगे, तब उन्हें उपाश्रय का द्वार नहीं मिला ! पूज्य आचार्य भगवंत के निर्देश से वे उपाश्रय में आए ।

पूज्य आचार्य भगवंतने अपने शिष्यों को इन्द्र के आगमन और उपाश्रय के द्वार को बदलने की बात कही । सुनकर सभी शिष्यों को खूब आश्चर्य हुआ ।

–श्यामाचार्य ने द्रव्यानुयोग के अक्षय भंडार समान **'पन्नवणा सूत्र'** (प्रज्ञापना सूत्र) की भी रचना की । इस सूत्र में 36 पद है और 7787 श्लोक प्रमाण विवरण है । अधिकांश भाग गद्य में है और प्रश्नोत्तरी शैली में है । यह समवायांग सूत्र का उपांग माना जाता है ।

इस सूत्र पर पू. हरिभद्रसूरिजी ने 3728 श्लोक प्रमाण तथा आ. मलयगिरि ने 16000 श्लोक प्रमाण टीका भी रची है ।

कलिंग की दूसरी आगम वाचना में श्यामाचार्य भी विद्यमान थे ।

96 वर्ष की उम्र में वीर संवत् 376 में उनका कालधर्म हुआ था ।



आ. श्री दिन्नसूरिजी

स्तुति

आजीवन नीति तप करे, उपकरण मर्यादा धरे,
आचार्य दिन्नसूरि हुए, पट्टधार जो ग्यारहवें,
उस काल में कई और भी सूरिवर हुए ज्योतिर्धरा,
प्रभु वीर पाट-परंपरा को भाव से करुं वंदना ।।14।।

हुए आर्य खपुटाचार्य, वृद्धवादिदेवसूरिवरा,
श्री पादलिप्तजी, रुद्रदेवजी, सिद्धसेन दिवाकरा,
चतुर्थी को संवत्सरी करे, कालिकाचारज तदा,
प्रभु वीर पाट-परंपरा को भाव से करुं वंदना ।।15।।

आचार्य इन्द्रदिन्नसूरिजी की पाट पर प्रभु महावीर के 11 वें पट्टधर **आचार्य दिन्नसूरिजी** हुए । वे वीरप्रभु निर्वाण की पांचवी सदी के प्रभावक पुरुष हुए, वे गौतम गोत्रीय थे ।

उन्होंने दक्षिण भारत में कर्णाटक तक विहार किया था, उनके वरद हस्तों से खूब शासन प्रभावना हुई थी । उनका जीवन खूब त्याग व तपोमय था । वे प्रतिदिन लूखी नीवी का पच्चक्खाण करते थे अर्थात् उन्हें छह विगई का त्याग था । वे उपधि में सिर्फ 14 उपकरण रखते थें ।

उनके समय तक किसी साधु के कालधर्म होने पर उसके शव को जंगल में जाकर परठ लिया जाता था ।

एक बार चंदेरी में किसी महात्मा का कालधर्म हुआ ।

श्रावकों ने आकर पूज्यश्री को विनंति की, *'साधु के मृत देह को जंगली प्राणी सियाल, कुत्ते-कौएं आदि खा जाते हैं, यह अनुचित लगता है । अजैन लोग भी उसकी निंदा करते है । हम इस मृत साधु के मृतदेह का अग्नि संस्कार करना चाहते है ।'*

आचार्य भगवंत मौन रहे । उसके बाद पारिठावणिय की विधि के बाद श्रावकों ने उन महात्मा का अग्नि संस्कार किया । उनके काल में यह प्रथम घटना थी, उसके बाद सभी महात्माओं के अग्नि संस्कार होने लगे । आचार्य श्री के मुख्य दो शिष्य थे –

(1) आर्य शांति श्रेणिक (2) आर्य सिंहगिरि ।

आर्य शांति श्रेणिक के शिष्य परिवार का विहार क्षेत्र उच्चानगर के आसपास था, अतः उनसे उच्चानागरी शाखा निकली । उसी शाखा में तत्त्वार्थ सूत्र के रचयिता वाचक उमास्वातिजी हुए ।

आर्य शांतिश्रेणिक के चार शिष्यों से चार शाखाएं निकली ।

(1) स्थविर आर्य श्रेणिक से आर्यश्रेणिका ।

(2) स्थविर आर्य तापस से आर्य तापसी ।

(3) स्थविर आर्य कुबेर से आर्य कौबेरी ।

(4) ऋषि पालित से ऋषि पालिता शाखा निकली ।

मंत्र प्रभावक-आर्य खपुटाचार्य-3

अपनी प्रवचन-लब्धि आदि शक्ति के द्वारा अजैनों के हृदय में भी परमात्म शासन की स्थापना करें, उन्हें शासन प्रभावक कहते हैं । भूतकाल में ऐसे अनेक शासन-प्रभावक आचार्य भगवंत हुए हैं ।

अपनी विशिष्ट मंत्र-शक्ति के द्वारा अजैनों के हृदय में जैन शासन की स्थापना करनेवाले आचार्य भगवंत 'मंत्र-प्रभावक' कहलाते हैं ।

जैन शासन के इतिहास में मंत्र प्रभावकों में आर्य **खपुटाचार्यजी** का भी अपना विशिष्ट नाम है ।

आर्य खपुटाचार्य के अस्तित्वकाल में पाटलिपुत्र में देवभूति नाम का राजा राज्य करता था । वह अत्यंत पराक्रमी था, साथ में ब्राह्मणों का परम भक्त था ।

एक बार उस राजा ने राजसभा में घोषणा की कि **ब्राह्मण ब्रह्मा की संतानें हैं, अतः सर्वपूज्य हैं । जैन साधुओं को भी उन्हें नमस्कार करना होगा ।**

सर्वविरतिधर जैन साधु, किसी भी अविरतिधर को प्रणाम नहीं करते हैं ।

राजा की उपर्युक्त आज्ञा में जैन शासन की मर्यादा का सर्वथा भंग था, अतः जैनों के लिए एक समस्या खड़ी हो गई ।

पाटलिपुत्र के संघ ने खपुटाचार्य भगवंत को विनती की, ``प्रभो ! इस समस्या का कोई योग्य समाधान ढूंढा जाय ।''

शासन की हितचिंता करनेवाले खपुटाचार्य ने पाटलिपुत्र के संघ को आश्वासन दिया और कहा कि सब ठीक हो जाएगा, संघ बिल्कुल चिंता न करे ।

पूज्य आचार्य भगवंत ने अपने विद्वान् शिष्य **आचार्य महेन्द्रसूरिजी** को कुछ विद्याएँ प्रदान की और साथ में मंत्र अधिष्ठित बेंत प्रदान की ।

आचार्य महेन्द्रसूरिजी म. विहार करते हुए पाटलिपुत्र पधारे ।

राजा को कहलाया कि सभी ब्राह्मणों को राज दरबार में बुला दिया जाय । मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए आ रहा हूँ ।

जैनाचार्य की इस बात को सुनकर राजा खुश हो गया । उसने नगर के सभी मुख्य 500 ब्राह्मणों को राज दरबार में बुला दिया ।

राजा की आज्ञा होते ही 500 ब्राह्मण राज दरबार में आ गए और **जैनाचार्य महेन्द्रसूरिजी** के चारों ओर बैठ गए ।

उसी समय जैनाचार्य ने राजा को कहा, **'पहले किस दिशा के ब्राह्मणों को नमस्कार करुं ?'**

राजा ने कहा, 'पूर्व दिशा पवित्र मानी जाती है, अतः पहले पूर्व दिशा के ब्राह्मणों को नमस्कार करों ।'

महेन्द्रसूरिजी म. ने अपने हाथ में रही कनेर की बेंत पूर्व दिशा में घुमाई और यह क्या ? सभी ब्राह्मण मूर्च्छित होकर भूमि पर ढल पड़े !

यह दृश्य देख राजा तो स्तब्ध हो गया इसी बीच आचार्य भगवंत ने दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में भी वह बेंत घुमा दी !

इसके साथ ही चारों दिशाओं में रहे 500 ब्राह्मण बेहोश होकर भूमि पर ढेर हो गए !!

सभी ब्राह्मणों को मूर्च्छित देख राजा घबरा गया । उसने हाथ जोड़कर आचार्यश्री को विनती की, 'मेरे इस अपराध को माफ करें ।' आचार्यश्री ने कहा, 'शासनदेव कूपित हुए है, अतः उन्हें प्रसन्न करों ।' तुमने आज तक जैन साधुओं को खूब सताया है । इसी का यह फल है ।

उसी समय आकाश वाणी हुई, **'यदि ये ब्राह्मण जैन भागवती दीक्षा अंगीकार करेंगें तो ही इस सजा से मुक्त हो सकेंगे ।'** मरता क्या नहीं करता ?

आचार्य भगवंत के मंत्र प्रभाव से वे ब्राह्मण होंश में आए । उन्होंने आचार्य भगवंत की आज्ञा शिरोधार्य की । **महेन्द्रसूरिजी** उन ब्राह्मणों को लेकर अपने गुरुदेव खपुटाचार्य के पास आए । खपुटाचार्य ने उन सभी को भागवती दीक्षा प्रदान की । इस घटना से भरुच के ब्राह्मण खूब नाराज हुए परंतु आचार्यश्री के आगे उनका कुछ न चला । जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई ।

◆ एक बार विहार करते हुए खपुटाचार्य गुड शस्त्र नगर पधारे और वहां बहुकर नाम के बौद्ध वादी के साथ वाद कर उसे पराजित किया !

अपनी हार के आघात से बहुकर की मृत्यु हो गई । वह मरकर यक्ष बना ! वह जैन संघ को हैरान-परेशान करने लगा । उसने अपनी मूर्ति और मंदिर बनाने का आदेश दिया । लोगों ने यक्ष की मूर्ति बनवाई और उसकी पूजा करने लगे । वह यक्ष लोगों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने लगा ।

संघ ने जाकर खपुटाचार्य को बात की, 'जो जैन, यक्ष–मूर्ति को प्रणाम नहीं करते हैं, उन्हें यह यक्ष खूब हैरान करता है ।'

आचार्य भगवंत ने कहा, **'चिंता न करे, कल सब ठीक हो जाएगा ।'**

आचार्यश्री ने घोषणा की कि कल वे बौद्ध व यक्ष मंदिर में आएंगे ।

आचार्यश्री की इस घोषणा को सुनकर सभी बौद्ध खुश हो गए । यदि जैनाचार्य यक्ष मंदिर में आएंगे तो अन्य जैन तो स्वतः आ जाएंगें ।

दूसरे दिन जैनाचार्य ने बौद्ध व यक्ष मंदिर में प्रवेश किया । वे बौद्ध लोग खुश हो गए । परंतु यह क्या ? जैसे ही जैनाचार्य ने बौद्धमंदिर में प्रवेश किया । मंदिर में बौद्ध की प्रतिमा आचार्यश्री

को नमन करने लगी । उसके बाद आचार्यश्री मंदिर से बाहर निकले तो वे बौद्ध की मूर्तियां व यक्ष की मूर्ति भी बाहर आ गई और उनके पिछे पिछे चलने लगी । इतना ही नहीं, बहुत ही वजनदार पत्थर की दो कुंडियां भी उनके पिछे चलने लगी ।

यह दृश्य देख वहां का बौद्धराजा **वेणी**-वक्षराज और अन्य लोग भी खूब प्रभावित हुए और उन सभी ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया !

प्रभावक चरित्र ग्रंथ में **प्रभाचंद्रसूरिजी** लिखते हैं कि `गुडशस्त्र नगर में आज भी आधी झुकी हुई यक्ष की प्रतिमा विद्यमान है, जो निर्ग्रंथ नमित के नाम से जानी जाती है ।

कालक्रम से भरुच में आए अश्वावबोध-तीर्थ को बौद्धों ने अपने कब्जे में कर लिया था ।

आर्य खपुटाचार्य ने अपनी मंत्र व विद्या शक्ति के प्रभाव से बौद्धों के अधिकार में से उस तीर्थ को मुक्त कर जैनों को प्रदान करवाया था और उसका जीर्णोद्धार भी करवाया था ।

`प्रभावक चरित्र' के अनुसार आर्य खपुटाचार्य वीर सं. 484 तथा तपागच्छ पट्टावली के अनुसार उनका कालधर्म वीर सं. 453 है ।

मंत्रवादी आचार्य रुद्रदेवसूरिजी-4

एक बार महान प्रभावक आचार्य **पादलिप्तसूरिजी म.** मानखेटपुर पधारे उसी समय **रुद्रदेवसूरिजी म.** भी मानखेटपुर पधारे ।

मानखेटपुर का कृष्ण नाम का राजा **पादलिप्तसूरिजी म.** का परम भक्त था ।

आचार्य रुद्रदेवसूरिजी म. योनिप्राभृत श्रुत के अच्छे ज्ञाता था ।

किन पदार्थों के संयोजन से जड़ व जीव पैदा होते है उसका विस्तृत वर्णन योनि प्राभृत में आता हैं । यह ज्ञान पात्र शिष्यों को ही दिया जाता है ।

एक बार आचार्यश्री अपने शिष्यों को रात्रि में **योनि प्राभृत** का अध्ययन करा रहे थे, उसमें अमुक द्रव्यों के संयोजन से मत्स्य पैदा होने की बातें थी ।

उसी समय एक मच्छीमार दिवाल के पास खड़ा रहकर इन बातों को ध्यान से सुन रहा था । आचार्यश्री को इस बात का पता नहीं था ।

दूसरे ही दिन से वह मच्छीमार वह प्रयोग करने लगा ।

घर बैठे ही वह सैकडों मछलियाँ पैदा करने लगा । अब उसे नदी व समुद्रतट पर जाने की भी जरूरत नहीं थी ।

इस प्रकार वह मत्स्य पैदा कर अपना जीवन निर्वाह करने लगा ।

कुछ वर्षों के बाद जब आचार्यश्री विहार कर उसी नगर में वापस पधारे तब वह मच्छीमार आचार्यश्री का आभार मानने लगा, **`आपकी कृपा से मेरा धंधा अच्छा चल रहा है ।'**

आचार्यश्री ने कहा, `कैसे ?,

उसने कहा, `वर्षों पूर्व आपने मत्स्य उत्पादन का प्रयोग बताया था, वह मेरे लिए वरदान सिद्ध हो गया। मेरा जीवन निर्वाह खूब आसान हो गया।

यह सुनकर आचार्य भगवंत को खूब खेद हुआ। `अहो ! मेरे ज्ञान का यह दुष्परिणाम ? हजारों मत्स्य की उत्पत्ति व विनाश में मैं निमित्त बना ?!

इस पाप व्यवसाय से मुक्ति के लिए आचार्यश्री ने उसे रत्न की उत्पत्ति का उपाय बताकर उसके पास से मत्स्य की हिंसा व मांसाहार भी छुड़वा दिया।

कहीं ऐसी बात आती हैं कि उसे सिंह की उत्पत्ति का प्रयोग बताया। उस मच्छीमार ने वह प्रयोग किया। सिंह पैदा हुआ और उसे ही खा गया। आचार्यश्री ने यह उपाय बताकर अल्प हानि व अधिक लाभ का ही कार्य किया। अन्यथा परंपरा से उसकी हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती ही जाती।

युगप्रधान दूसरे कालिकाचार्यजी-5

भारत देश की पवित्र आर्यभूमि !

धारावास नगर ! वीरसिंह राजा और सुरसुंदरी रानी ! राजा अत्यंत ही न्यायप्रिय और प्रजा का हितैषी था ! अपने सुख-दु:ख को गौण करके भी प्रजा के सुख-दु:ख की उसे अधिक चिंता थी। एक शुभ दिन शुभ मुहूर्त में सुरसुंदरी ने एक तेजस्वी पुत्र रत्न को जन्म दिया। नगर में चारों ओर खुशियाँ मनाई गई...क्रमशः बालक का नाम रखा गया **कालक**।

कुछ समय बाद राजरानी ने रूप रूप की अंबार ऐसी तेजस्वी कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया **सरस्वती** !

यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही राजकुमार कालक शस्त्र और शास्त्र कला में निपूण बन गया। सरस्वती ने भी स्त्रियों की सभी कलाएँ हांसिल की।

कालक को घुड़सवारी का खूब शौक था।...एक दिन घोड़े पर सवारी करते हुए वह नगर से दूर-सुदूर क्षेत्र में पहुंच गया। एक उद्यान के पास उसने विश्राम लिया।

भाग्ययोग से उस समय उसी उद्यान में **गुणाकरसूरिजी म.** धीर-गंभीर स्वर से धर्म देशना दे रहे थे। पूज्य आचार्य भगवंत की मेघ-गंभीर ध्वनि के मधुर शब्द कालककुमार के कान तक पहुंचे। उसके दिल में जिनवाणी श्रवण के प्रति एक आकर्षण पैदा हुआ...और वह भी उस प्रवचन सभा में जाकर बैठ गया। पूज्य आचार्य भगवंत की भवनिस्तारिणी-वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना के वे मेघ गंभीर शब्द कालक कुमार के अन्तर्मन को छू गए। पूज्य आचार्य भगवंत की एक ही देशना ने कुमार का हृदय परिवर्तन कर दिया। अभी तक उसके दिल में भौतिक सुख-समृद्धि का जो आकर्षण था...वह आकर्षण तत्क्षण समाप्त हो गया !

संसार के सभी भौतिक सुख उसे असार व तुच्छ प्रतीत होने लगे और उसका मन वैराग्य रंग से रंजित हो गया । बस, उसी समय उसने त्याग धर्म को स्वीकार करने का दृढ संकल्प कर लिया ।

कुछ समय बाद कालक अपने घर लौटा । उसने दीक्षा की अनुमति के लिए अपने माता-पिता को समझाया किंतु मोहाधीन माता-पिता इस प्रकार दीक्षा की अनुमति कैसे दे सकतें ?

आखिर कालिक के दृढ वैराग्य के आगे माता-पिता को झुकना पड़ा और एक दिन कालक भागवती दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हो गया ।

कालक की बहिन सरस्वती को जब पता चला कि मेरा भाई वीतराग प्रभु के बताए हुए त्याग मार्ग पर जाने के लिए सुसज्ज बना है... वह अपने भाई के पास जाकर बोली, 'भैय्या ! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह पाऊंगी ?'

कालक ने कहा, ***'इस संसार में कौन किसका है ? इस देह के संबंध तो इस जीवन पर्यंत के हैं, जब कि आत्मा के संबंध तो भव-भव में उपकारी है । मानव देह तो शाश्वत अजरामर मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए है, इस जीवन में ही मोक्ष के उपायभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना-साधना हो सकती है । जिसे सच्चे आत्महित की चाह हैं, उसे संसार के क्षणिक सुखों का त्याग कर देना चाहिए ।***

भाई की बात बहन के गले उतर गई...और वह भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई ।

एक शुभ दिन कालक और सरस्वती ने मोह के बंधनों का परित्याग कर चारित्र धर्म स्वीकार कर लिया । कालक मुनि बनें और सरस्वती साध्वी बनी । दीक्षा अंगीकार करने के बाद कालक मुनि रत्नत्रयी की आराधना–साधना में एकदम ओत-प्रोत बन गए ।

तीव्र क्षयोपशम और सतत पुरुषार्थ के फलस्वरूप कालक मुनि अल्पकाल में ही श्रुतज्ञान के पारगामी बन गए । उनकी विशिष्ट योग्यता जानकर पूज्य गुरुदेव ने उन्हें जैन शासन का महान् आचार्यपद प्रदान किया । तब से वे **कालिकसूरिजी** के नाम से प्रख्यात हुए ।

साध्वीजी की शील रक्षा

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा । एक शुभ दिन ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए कालिकाचार्य अपने विशाल परिवार के साथ उज्जयिनी नगरी में पधारें । उस समय उनकी बहन साध्वी सरस्वती भी अपनी गुरुणी के साथ उज्जयिनी में ही थी ।

उस समय अवंतिदेश में **गर्दभिल्ल** राजा का शासन था, जो अत्यंत ही कामुक था । सरस्वती साध्वी के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर गर्दभिल्ल राजा एकदम मोहित हो गया । उसने अपने सैनिकों के द्वारा सरस्वती साध्वी का अपहरण करा दिया और उसे अपने अंतः पुर में भिजवा दी । ज्योंहि कालिकाचार्य को इस बात का पता चला त्योंहि एक बहिन के नाते नहीं, किंतु जैन शासन के एक स्तंभ समान साध्वीजी के शील के रक्षण के लिए वे राजदरबार में पहुँच गए ।

गर्दभिल्ल राजा को समझाते हुए उन्होंने कहा, 'यदि राजा ही भक्षक हो जाय तो प्रजा का क्या हाल होगा ? आप सरस्वती साध्वी को मुक्त कर दें ।'

आचार्य भगवंत ने अनेक युक्ति प्रयुक्तियों के द्वारा राजा को समझाने की कोशिश की परंतु कामांध बने राजा पर आचार्य भगवंत के शब्दों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा ।

आचार्य भगवंत ने सोचा, **''शक्ति होते हुए अन्याय को सहन करना तो कायरता ही है ।''**

उन्होंने प्रतिज्ञा ली **'यदि मैं धर्मभ्रष्ट राजा को पद्भ्रष्ट न करुं तो संघ के प्रत्यनीक, शासन घातक और संयम विनाशक की जो गति हो, वह मेरी गति हो ।'**

गर्दभिल्ल राजा के सैन्यबल तथा विद्याशक्ति से पू. आचार्य भगवंत अच्छी तरह से परिचित थे । कुछ दिनों तक तो शून्य मनष्क की तरह नगर में इधर उधर घूमने लगे, तत्पश्चात् वेष परिवर्तन कर कालिकाचार्य ने उज्जयिनी नगरी छोड़ दी ।

आस पास के राजाओं पर उन्होंने अपनी नजर डाली, किंतु किसी में इतना मनोबल और दृढनिश्चय नहीं था कि जो गर्दभिल्ल को चुनौती दे सके । आखिर वे वहां से आगे बढ़ते हुए सिंधु नदी के तट को पार कर हिन्द के बाहर ईरान पहुँचे । अपनी विद्या के बल से उन्होंने शक राजा के छोटे छोटे शाही सामंतों के साथ मैत्री का संबंध स्थापित किया ।

एक बार इरान के शहनशाह ने गुस्से में आकर अपने अधीन 96 शक-सामंतों के मस्तक मंगवाएं ! कालिकाचार्य को ज्योंहि इस बात का पता चला, वे वहां आ पहुँचे । उन्होंने सभी शक सामंतों को आश्वासन देते हुए कहा, 'तुम्हें यदि बचना है तो हिंदुस्तान चलो, 'मैं तुम्हें उज्जैन का राज्य दिला दूंगा ।'

कालिकाचार्य की इस बात को सुनकर वे सभी सामंत राजा तैयार हो गए । सभी सामंतराजा कालिकाचार्य के साथ अपने अपने काफिले को लेकर आगे बढ़ने लगे । सिंधु नदी को पार कर वे सौराष्ट्र के किनारे आए । वर्षाऋतु आ जाने से उन्हें वहां कुछ समय के लिए रुकना पड़ा । तत्पश्चात् वहां से आगे बढ़कर लाट देश की राजधानी भरुंच पहुँचे । वहां के शासक बलमित्र-भानुमित्र को साथ लेकर मालवदेश के सीमा तट पर आ गए ।

गर्दभिल्ल राजा को अपनी गर्दभी विद्या का अत्यधिक अभिमान था । गर्दभी विद्या की साधना करने पर वह विद्या गर्दभी के रूप में आती और किल्ले पर खड़ी रहकर जोर से आवाज करती, जिसके फलस्वरूप 5 मील के भीतर रहे सभी लोग मर जाते । इस विद्या के अभिमान के कारण गर्दभिल्ल ने अपनी ओर से कुछ भी तैयार नहीं की थी ।

इधर कालिकाचार्य ने 108 लक्ष्यवेधी बाणावलियों को योग्य स्थान पर नियुक्त कर दिया । उस गर्दभी विद्या ने जैसे ही अपना मुंह खोला, 108 बाणावलियों ने एक साथ 108 बाण छोड़कर उसके मुंह को भर दिया परिणाम स्वरूप वह कुछ भी शब्दोच्चार नहीं कर सकी । आखिर रुष्ट होकर उस गर्दभी ने गर्दभिल्ल राजा के ऊपर मल-मूत्र किया और गुस्से में आकर पैरों से प्रहार कर अदृश्य हो गई !

उसके बाद उन शक राजाओं ने गर्दभिल्ल की सेना पर हमला किया । लीला मात्र में ही

उन शक राजाओं ने गर्दभिल्ल को परास्त कर दिया और उसे पकड़कर कैद कर दिया । गर्दभिल्ल को आचार्य भगवंत के सामने प्रस्तुत किया गया ।

गर्दभिल्ल का मुंह शर्म के मारे नीचे झुक गया था । उसे पू. आचार्य भगवंत ने कहा, **'सती साध्वी पर अत्याचार करने का यह तो नाम मात्र का फल है, इसका पूरा फल तो नरक गति में मिलेगा ।'**

वे शक लोग गर्दभिल्ल को मार डालना चाहते थे, परंतु कालिकाचार्य ने दया कर उसे बंधन मुक्त किया । गर्दभिल्ल जंगल में चला गया वहां केसरी सिंह ने उसे मार डाला, वह मरकर नरक में चला गया ।

सरस्वती साध्वी को बंधन मुक्त किया गया । अतिचार दोष की आलोचना कर पुनः साध्वी संघ में उनका प्रवेश कराया गया । आचार्य भगवंत ने भी वेष परिवर्तन कर पुनः जैनाचार्य के रूप में श्री संघ का नेतृत्व संभाला ।

संवत्सरी तिथि परिवर्तन

अपने चरण कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए कालिकाचार्य अपने विशाल परिवार के साथ भृगुकच्छ (भरूच) पधारें । उस समय भरूच में पू. आचार्य भगवंत के भांजे बलमित्र और भानुमित्र राज्य करते थें । ज्योंहि उन्हें पूज्य आचार्य भगवंत के आगमन के समाचार मिले, उन्होंने खूब धूमधाम के साथ पूज्य आचार्य भगवंत का नगर-प्रवेश कराया ।

प्रतिदिन आचार्य भगवंत मेघ के समान गंभीर स्वर से धर्मदेशना देने लगे । पूज्य आचार्यदेवश्री के वचनामृत का पानकर श्रोतागण परमतृप्ति का अनुभव करने लगे । राजा के अति आग्रह से पूज्य आचार्यदेवश्री ने अपने विशाल परिवार के साथ भरूच में ही चातुर्मास किया ।

पूज्य आचार्य भगवंत के प्रति राजा के दिल में बढ़ती हुई श्रद्धा व आस्था को देखकर राजपुरोहित का मन ईर्ष्या से जलने लगा । ऐसे भी निकट भूतकाल में ही कालिकाचार्य ने उस पुरोहित को वाद में पराजित किया था । इस कारण उसके दिल में पूज्य आचार्य भगवंत के प्रति वैर की गांठ बंध चूकी थी, वह ऐसे अवसर की ताक में था ताकि अपने वैर का बदला ले सके ।

कुछ दिन व्यतीत होने के बाद अवसर देखकर राजा के कान फूंकते हुए पुरोहित ने कहा `राजन् ! **इस धरती पर कालिकाचार्य से बढ़कर पवित्र पुरुष और कौन हो सकता है ? कैसा निर्मल उनका संयम है ?'**

राजा ने कहा, `बिल्कुल ठीक बात है, इस धरती पर ऐसे पवित्र पुरुषों का अस्तित्व यदा कदा ही देखने को मिलता हैं ।'

`राजन् ! ऐसे महापुरुष के चरणकमल जिस धरती पर गिरे, वह धरती भी कितनी पवित्र कहलाती हैं । मुझे तो यही एक चिंता सता रही हैं कि नगर की समस्त भूमि उनके चरण कमलों से पवित्र बन चूकी हैं तो फिर उस धरती पर पैर रखेंगे तो क्या हम पाप में भागीदार नहीं होंगे ?'

राजपुरोहित की इस बात को सुनकर सरल हृदयी राजा असमंजस में पड़ गिरा । वह सोचने लगा `अहो ! यह तो बड़ी विकट समस्या आ खड़ी हुई है । शास्त्रों में तो लिखा हैं **`अपनी**

शक्ति हो तो गुरु की भक्ति करनी चाहिए, किंतु आशातना तो कभी नहीं ! ओहो ! क्या मुझ से घोर आशातना हो रही हैं ?'

'पुरोहितजी ! क्या उस आशातना के पाप से बचने का कोई उपाय हैं ?'

'हाँ ! राजन् ! एक उपाय हैं ।'

'कौनसा उपाय ? जल्दी बताओ !'

'राजन् ! आचार्य भगवंत नगर छोड़कर विहार कर जाय तो आप और प्रजाजन गुरु की घोर आशातना के पाप से बच सकते हैं, अन्यथा नहीं ।'

'पुरोहितजी ! जिन आचार्य भगवंत को इतने आडंबर के साथ नगर में प्रवेश कराया । उन्हें हम यहां से चले जाने के लिए कैसे कह सकते हैं ?

'राजन् ! इसके लिए एक सुंदर उपाय है ।'

'कौन सा ?'

'जैन साधु स्वयं के लिए बनाई गई भिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं, उस भिक्षा को वे आधाकर्मी दोष से दूषित कहते हैं, आपकी आज्ञा हो तो समस्त नगरवासियों को सूचना दी जाय कि साधुओं की भक्ति के लिए मिष्टान्न आदि बनाया जाय ।'

बस ! पुरोहित की यह बात राजा के दिमाग में बैठ गई और उसने वैसा ही करने के लिए आदेश दे दिया ।

दूसरे दिन जब साधु भगवंत भिक्षा के लिए निकले तो उन्हें कहीं से भी निर्दोष भिक्षा प्राप्त नहीं हुई । घर घर में दोषित भिक्षा थी ।

आखिर, भिक्षा की दुर्लभता को देखकर आचार्य भगवंत ने वहां से विहार करने का निश्चय किया । राजा ने भी अपनी मूक सम्मति प्रदान कर दी । और एक दिन पूज्य आचार्य भगवंत ने अपने विशाल परिवार के साथ प्रतिष्ठानपुर नगर की ओर अपना विहार प्रारंभ कर दिया ।

प्रतिष्ठानपुर में सातवाहन राजा राज्य करता था, ज्योंहि उसे आचार्य भगवंत के आगमन के समाचार मिले, उसके आनंद का पार न रहा । उसने अत्यंत ही आदर सम्मान के साथ पूज्य आचार्य भगवंत का नगर प्रवेश कराया । नगर प्रवेश के दिन से ही पूज्य आचार्य भगवंत की प्रवचन-गंगा का प्रवाह तीव्रगति से बहने लगा । श्रोतागण भी पूज्य आचार्यश्री की पवित्र-वाणी में आत्म स्नान कर अपनी पतित आत्मा को पावन करने लगे ।

दिन पर दिन बीतने लगे । एक दिन आचार्य भगवंत ने निकट भविष्य में आ रहे पर्वाधिराज महापर्व की महत्ता समझाई ।

आचार्य भगवंत ने कहा, **'पर्युषण यह जैनों का महापर्व है, इस पर्व की आराधना कर सभी जीवों को आत्मशुद्धि करनी चाहिए ।'**

राजा ने पूछा, 'इस पर्व का प्रारंभ कब से होगा ?'

आचार्य भगवंत ने कहा, ***'भादो वदी त्रयोदशी से इस पर्व का प्रारंभ होता हैं और भादो***

सुदी पंचमी के दिन इस पर्व की समाप्ति होती हैं । इन आठ दिनों में अंतिम दिन का अत्यधिक महत्त्व है ।'

राजा ने सोचा `भादो सुदी पंचमी के दिन तो इस देश में इन्द्रध्वज का महोत्सव होता है और उस महोत्सव प्रसंग पर मुझे अवश्य उपस्थित रहना पड़ता है ।' इस प्रकार सोचकर राजा ने कहा `गुरुदेव ! क्या इस संवत्सरी के महापर्व में कुछ परिवर्तन नहीं हो सकता हैं ? क्योंकि भादो सुदी पंचमी के दिन तो नगर में इन्द्र महोत्सव होता है और वहां मुझे उपस्थित होना अनिवार्य हैं ।

राजा की इस प्रार्थना को सुनकर आचार्य भगवंत कुछ देर तक मौन रहे और फिर सोचकर बोले **'राजन् ! छठ के दिन तो संवत्सरी की आराधना नहीं हो सकती है । अभी चातुर्मास के प्रारंभ का दिन असाढ सुदी पूनम है, पूनम से पचासवें दिन संवत्सरी महा पर्व की आराधना करनी चाहिए, ऐसी शास्त्र आज्ञा है । उस आज्ञा का उल्लंघन करने वाला आराधक नहीं, किंतु विराधक कहलाता है ।**

'परंतु हाँ ! किसी संयोग में पंचमी की छठ नहीं कर सकते है किंतु पंचमी की चतुर्थी अवश्य कर सकते है ।'

`तो भगवंत ! आपकी महती कृपा होगी, आप संवत्सरी महापर्व एक दिन पहले करने की आज्ञा फरमाइए ।'

पूज्य आचार्यदेवश्री ने लाभालाभ देखकर उस वर्ष संवत्सरी की आराधना भादो सुदी-4 के दिन की । तत्कालीन समस्त संघ ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की ।

1100 वर्ष बीतने के बाद भी आज संवत्सरी महापर्व की आराधना भादो सुदी चतुर्थी के दिन हो रही है । यह पूज्य आचार्यदेवश्री की अप्रतिम प्रतिभा का ही प्रभाव है ।

भगवान महावीर भी कहकर गये थे कि–कालकाचार्य से पंचमी की सांवत्सरी चतुर्थी के दिन होगी । वह प्रथा अंत तक चलेगी ।

शिष्य को बोध

विषमकाल के प्रभाव से कालिकाचार्य के शिष्य अविनीत हो गए । उन्होंने उन शिष्यों को सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए...परंतु वे सब प्रयत्न निष्फल गए । कालिकाचार्य वृद्ध हो चूके थे । एक दिन उन शिष्यों को शिक्षा करने के ध्येय से शय्यातर को कहा, `मेरे शिष्य अविनीत और प्रमादी हो गए हैं, अतः उनका परित्याग कर अपने प्रशिष्य **'सागर'** के पास सुवर्ण भूमि की ओर जा रहा हूँ... मैं उन्हें कहे बिना ही जाने वाला हूँ, क्योंकि उच्छृंखल शिष्यों के साथ रहना तो कर्मबंध का हेतु है, मेरे चले जाने के बाद यदि उन्हें अपनी भूल समझ में आ जाए...और वे अत्यंत ही आग्रह करे तो बताना कि पूज्य आचार्य भगवंत सुवर्णभूमि गए है, अन्यथा नहीं ।'

दूसरे दिन जब वे सभी शिष्य निद्राधीन थे, तभी कालिकाचार्य ने किसी को भी कहे बिना वहां से विहार कर दिया ।

वे क्रमशः विहार करते हुए सुवर्णभूमि पधारे, जहां साधुओं की बस्ती में सागराचार्य अपने शिष्यों को वाचना दे रहे थे ।

सागराचार्य, कालिकाचार्य के प्रशिष्य ही थे, किंतु अभी तक उनकी मुलाकात नहीं हो पाई थी, अतः सागराचार्य अपने प्रगुरुदेव को पहिचान नहीं पाए...एक सामान्य साधु समझकर कालिकाचार्य को उन्होंने बस्ती प्रदान कर दी...परन्तु अभ्युत्थान आदि किसी प्रकार का विनय नहीं किया ।

धीर गंभीर कालिकाचार्य ने भी अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया ।

सागराचार्य ने कहा, `कहां से आ रहे हो ?'

कालिकाचार्य ने कहा, `अवंति से ?'

तत्पश्चात् सागराचार्य अपने शिष्यों को वाचना देने लगे, वाचना के बाद बुद्धिमद से सागराचार्य ने वृद्ध मुनि (कालिकाचार्य) को कहा, `क्या कुछ समझ में आ रहा हैं ।'

हाँ !

`तो आगे जो श्रुतस्कंध पढाता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनना ।' कालिकाचार्य मौन रहे ।

इधर प्रातः काल होने पर कालिकाचार्य के शिष्यों ने जब अपने गुरुदेव को नहीं देखा तो उन्हें अत्यंत ही पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने शय्यातर को पूछा, `क्या आपने हमारे गुरुदेव को देखा हैं ?'

शय्यातर ने कहा, `तुम्हारे आचार्य ने तुम्हें कुछ नहीं कहा तो मुझे कैसे कहेंगे ?'

अपने गुरुदेव की शोध के लिए शिष्यों ने चारों ओर छानबीन की, कहीं नहीं मिलने पर जब शय्यातर को पुनः पूछा तो शय्यातर ने कहा, **`तुम्हारे जैसे अविनीत शिष्यों को अनुयोग ग्रहण करने में प्रमादी जानकर, वे अपने प्रशिष्य सागराचार्य के पास सुवर्ण भूमि चले गए है ।'**

सभी शिष्यों को अपनी भूल का तीव्र पश्चात्ताप हुआ । पुनः ऐसी भूल न हो, इस भावना से उन सभी शिष्यों ने सुवर्णभूमि की ओर अपना विहार चालू कर दिया ।

बीच मार्ग में जब लोग पूछते कि `कौन से आचार्य भगवंत जा रहे हैं तो शिष्य जवाब देते `कालिकाचार्य ।'

कर्णोपकर्ण अपने विशाल परिवार के साथ कालिकाचार्य के आगमन की बात सुवर्णभूमि में पहुँची । अपने प्रगुरुदेव के आगमन के समाचार से प्रसन्न हुए सागराचार्य भी नगर में से बाहर आए ।

कालिकाचार्य के शिष्यों ने सागराचार्य और उनके शिष्यों को देखा । परस्पर मिलन हुआ ।

उसके बाद कालिकाचार्य के शिष्यों ने सागराचार्य को पूछा `क्या अपने गुरुदेव कालिकाचार्य यहां पधारे है ?'

सागराचार्य ने कहा, `नहीं ! अपने गुरुदेव को तो मैंने नहीं देखा है । हाँ ! अवंति से एक वृद्ध महात्मा जरूर पधारे है ।

`कहाँ है वे महात्मा ?'

सागराचार्य ने अपनी बस्ती में रहे वृद्ध महात्मा की ओर ईशारा किया ।

कालिकाचार्य के सभी शिष्य अपने गुरुदेव को तत्काल पहिचान गए । उन्होंने अपने गुरुदेव के चरणों में वंदन किया और अपने घोर अपराध की क्षमा याचना की ।

सागराचार्य को जब इस बात का पता चला कि अहो ! ये वृद्ध महात्मा तो मेरे प्रगुरुदेव कालिकाचार्य हैं, उन्हें भी अपनी भूल पर अत्यंत पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने भी अपने अपराध की माफी मांगी ।

उसके बाद विनम्र स्वर से सागराचार्य ने प्रगुरुदेव को पूछा 'मैं अनुयोग की व्याख्या बराबर कर रहा था ?'

गुरुदेव ने कहा, 'व्याख्या बराबर थी किंतु उसका गर्व मत करना ।'

सागराचार्य को प्रतिबोध देते हुए गुरुदेव ने कहा, 'मुट्ठी भर धूल को एक स्थान से दूसरे स्थान और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर रखने से वह धूल कम होती जाती है, बस, इसी प्रकार तीर्थंकरों से प्रतिपादित ज्ञान गणधर...आचार्य आदि के माध्यम से अपने पास तक जो पहुँचा है, वह अल्प अल्पतर ही होता गया है ।' सागराचार्य ने अपनी भूल स्वीकार की ।

वीर निर्वाण संवत् 465 (लगभग) में कालिकाचार्य का स्वर्गवास हुआ था ।

शासन प्रभावक श्री आचार्य पादलिप्तसूरिजी-6

1. भौतिक सुख की अपूर्णता

कोशला नगरी ! नगरी के शासक थे विजयवर्म ! महाराजा अत्यन्त न्यायप्रिय और प्रजावत्सल थे । वे सतत प्रजा की हित-चिन्ता करते थे । प्रजा के सुख दुःख में वे पूर्ण सहभागी थे, अतः प्रजा के हृदय में महाराजा के प्रति पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा थी ।

उसी नगरी में **फुल्ल** नामक एक धनाढ्य सेठ भी रहता था । **प्रतिमा** नामकी उसकी धर्मपत्नी थी । उनका दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्ण था । धन और वैभव की कोई कमी नहीं थी ! ***किन्तु संसार की यह विचित्रता है कि यहाँ व्यक्ति का सुख किसी न किसी ढंग से अपूर्ण अवश्य होता है । किसी को धन का पूर्ण सुख है तो स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं है । धन भी है, शरीर भी स्वस्थ है तो गोद में खिलाने के लिए सन्तान नहीं है । सन्तान हो किन्तु पुत्र न हो तो भी दुःख । सभी पुत्र ही हों, एक भी पुत्री न हो तो भी दुःख ।***

इस प्रकार एक सुख की कमी और उसको पूर्ण करने की आशा, शेष समस्त सुखों के स्वाद को नष्ट कर देती है ।

फुल्ल और प्रतिमा का दाम्पत्य-जीवन हर प्रकार से भरपूर था, किन्तु एक सन्तान का अभाव उन्हें सतत खटकता रहता था और उस दुःख से वे संतप्त थे ।

पुत्र-प्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक देवी-देवताओं की आराधना की, किन्तु **पुण्य अनुकूल न हो तो देव भी क्या कर सकते हैं ?**

अन्त में पुण्य अनुकूल हुआ । दम्पति ने पार्श्वनाथ प्रभु की अधिष्ठात्री नागजातीय वैरोट्या देवी की अट्ठम के तपपूर्वक आराधना की । आराधना से देवी प्रसन्न हुई और उन्होंने पुत्र की माँग की ।

देवी ने कहा **''विद्याधर गच्छ में महाप्रभाविक कालिकाचार्य नामक प्रभावक पुरुष हुए हैं । उनकी परम्परा में अभी नागहस्ति आचार्यदेव विद्यमान हैं । उनके पाद-प्रक्षालन के जलपान से तुम्हें पुत्र-प्राप्ति होगी ।''**

देवी की इस बात को सुनकर दम्पत्ति का हृदय आनन्द से भर आया । प्रतिमा ने आचार्य भगवन्त के पास जाने का संकल्प किया ।

आचार्य नागहस्ति सत्त्वशाली और महाप्रभावक पुरुष थे । अभी कुछ दिनों पूर्व ही अपने विशाल शिष्य-परिवार के साथ शाही स्वागतपूर्वक उनका नगर में पदार्पण हुआ था ।

प्रतिमा देवी उपाश्रय में पहुँची । आचार्य भगवन्त स्थण्डिल भूमि जाकर अभी-अभी उपाश्रय में लौटे थे । उनके आगमन के साथ ही सभी मुनिगण अपने-अपने आसन से खड़े हो गए थे और उनके पाद-प्रक्षालन आदि से गुरु-भक्ति कर रहे थे । पाद-प्रक्षालन के जल को परिष्ठापन करने के लिए एक मुनि दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे तभी प्रतिमा देवी ने मुनि को वंदन किया और गुरुदेव के पाद प्रक्षालन के जल की माँग की, मुनि ने प्रतिमा को कुछ जल दिया । वह तुरन्त उस जल को पी गई ।

जलपान के बाद वह आचार्य भगवन्त की ओर आगे बढ़ी । उसने देवी के वरदान की सब बात आचार्य भगवन्त को सुना दी ।

आचार्य भगवन्त ने कहा, ''हे श्राविका ! तूने दस हाथ दूर रहकर यह जलपान किया है, अतः तेरा पुत्र तुझ से दस योजन दूर मथुरा में बड़ा होगा और इस पुत्र के बाद तुझे नौ पुत्रों की और भी प्राप्ति होगी ।''

प्रतिमा ने कहा, ''गुरुदेव! **पुत्र का जन्म हो और वह मुझ से दूर रहे, इससे तो वह आपके पास रहे, उसे ही मैं श्रेष्ठ समझती हूँ । अतः पुत्र-जन्म के बाद पहला पुत्र मैं आपको अर्पित कर दूंगी ।''**

गुरुदेव ने कहा, ''भद्रे ! तू भाग्यशालिनी है, तेरी कुक्षि से पैदा हुआ पुत्ररत्न अत्यन्त प्रतिभाशाली होगा, वह अनेक जीवों का उद्धार करेगा और जैनशासन की विजय-पताका को चारों ओर फैलाएगा ।''

2. सन्तान-प्राप्ति

समय बीतने में क्या देर लगती है ! नदी के जलप्रवाह की भाँति वह प्रतिक्षण अविरत बहता रहता है । प्रतिमा गर्भवती हुई । वह गर्भ की पूर्ण सावधानी रखने लगी । गर्भ में शुभ (पुण्यशाली) जीवात्मा का आगमन हो तो गर्भवती स्त्री को शुभ दोहद होते हैं और गर्भ में पापी जीवात्मा के आगमन होने पर गर्भवती स्त्री को अनेकविध अशुभ दोहद होते हैं ।

गर्भ के प्रभाव से प्रतिमा देवी को दानादि के शुभ दोहद पैदा हुए । इस प्रकार गर्भ को वहन करते हुए समय बीतने लगा और एक दिन प्रतिमादेवी ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

दासी ने पुत्र-जन्म के समाचार सेठजी को दिए । पुत्र-जन्म के समाचार सुनकर सेठजी के हर्ष का पार नहीं रहा । उन्होंने पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाया ।

अत्यन्त तेजस्वी, रूपवान और प्रसन्नमुख पुत्ररत्न को प्राप्त कर प्रतिमादेवी और फुल्ल का स्वप्न साकार हो गया । उन्होंने देवी के वरदान के अनुरूप पुत्र का नाम **'नागेन्द्र'** रखा ।

पुत्र नागेन्द्र माँ के लाड़-प्यार में बड़ा होने लगा ।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बिल्कुल अल्प वय में ही माँ ने अपनी सन्तान गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर दी और फिर गुरुदेव की आज्ञानुसार स्वयं ही पुत्र का लालन-पालन करने लगी ।

समय बीतने पर नागेन्द्र बड़ा हुआ । गुरुदेव के सत्संग और सम्पर्क से बालक नागेन्द्र की प्रतिभा प्रगट होने लगी । गुरुदेव ने बालक की योग्यता देख मुनि दीक्षा की सम्मति प्रदान की, तदनुसार उनके गुरुभ्राता **संग्रामसिंहसूरिजी** महाराज के शुभ सान्निध्य में 8 वर्षीय बालक नागेन्द्र की दीक्षा अत्यन्त धूमधाम के साथ सम्पन्न हुई ।

नूतन मुनि के ज्ञानाभ्यास आदि का कार्यभार **मंडन** मुनि को सौंपा गया ! मंडन मुनि गीतार्थ और शास्त्र के पारगामी थे । मंडन मुनि के शुभ सान्निध्य में नागेन्द्र मुनि अल्प समय में ही शास्त्र के पारगामी बन गए । एक बार आचार्य भगवन्त ने नागेन्द्र मुनि को कांजी का जल लाने के लिए भेजा ।

गुरूदेव की आज्ञा स्वीकार कर नागेन्द्र मुनि जल लाने के लिए गृहस्थ के घर गए । कांजी का जल बहोरकर गुरूदेव के पास आए । जल किसने बहोराया ? इसके जवाब में वे बोले :–

अंबं तंबच्छीए अपुप्फियं पुप्फदंतपंतीए ।
नवसालिकंजियं नव वहूए कडुएण मे दिन्नं ।।

अर्थ : लाल वस्त्र वाली, अऋतुवंती, पुष्प सदृश दंत पंक्तिवाली नववधू ने बड़े ही प्रमोद से मुझे नये चावलों की कांजी प्रदान की है ।

श्रृंगार गर्भित वर्णन सुनकर गुरूदेव बोले–

''पलित्तओ ! तू राग की अग्नि से प्रदीप्त हो गया है ।''

नागेन्द्र ने कहा, ''गुरूदेव ! कृपा करो, एक मात्रा और बढ़ा दो । ताकि **'पलित्तओ'** के बदले **'पालित्तओ'** हो जाऊँ ।'' पालित्तओ अर्थात् पादलेप विद्या वाला । इस विद्यापूर्वक पैर पर लेप करने से व्यक्ति इच्छानुसार आकाश में गमन कर सकता है ।

शिष्य की प्रतिभा से गुरूदेव अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने नागेन्द्र मुनि को आकाशगमन (पादलेप) की विद्या प्रदान की ।

नागेन्द्र मुनि की उम्र 10 वर्ष की ही थी, किन्तु उनकी प्रतिभा वृद्धों को भी आश्चर्य में डाल देती थी । अतः गुरुदेव ने उन्हें योग्य जानकर आचार्य पद से विभूषित किया ।

नागेन्द्र मुनि अब **पादलिप्तसूरि** हो गए ।

3. विनय किसका अधिक ?

पादलिप्तसूरि महाराज वय में छोटे थे, किन्तु उनका अन्तरंग व्यक्तित्व आकाश की भाँति विराट् था । अल्पवय होने पर भी उनका बाह्य व्यक्तित्व विशिष्ट था । उनमें भीम और कांत दोनों गुणों का संगम था । वे वात्सल्य के महासागर थे । उनके वात्सल्य के अमीपान के लिए लोग सदैव तरसते थें । दूर-सुदूर तक उनके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व की ख्याति फैल चुकी थी ।

एक बार वे विहार कर पाटलिपुत्र पधारे । पाटलिपुत्र का शासक था **मुरंड** । आचार्यश्री की वाक् छटा और बुद्धिचातुर्य ने उसके मन को मोह लिया था । गुरुदेव की वाणी सुनने की उसे तीव्र लालसा थी । आचार्यश्री के उपदेशों से वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने जैन-धर्म अंगीकार कर लिया ।

एक बार आचार्य भगवंत की उपस्थिति में राजा ने राजसभा में कहा, **''राजकुल में महान् विनय है ।''**

तत्काल आचार्यदेव ने राजा को समझाते हुए कहा, **''नहीं । जो विनय गुरुकुल में है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है, चाहे तो उसकी परीक्षा कर लो ।''**

राजकुल में ज्यादा विनय या गुरुकुल में ? सभी के हृदय में इस प्रश्न के समाधान की जिज्ञासा पैदा हुई ।

आचार्यश्री ने कहा, ''आप अपने राजकुमार को बुलाएँ और उसे गंगा किस ओर बहती है ?'' इसकी जानकारी के लिए भेजें ।

राजा ने तत्काल राजकुमार को बुलवाया । थोड़ी ही देर में राजकुमार उपस्थित हो गया ।

राजा ने कहा, ''कुमार ! जाओ । देखकर आओ, गंगा किस ओर बहती है ।''

महाराजा की आज्ञा सुनकर राजकुमार ने राजसभा से प्रस्थान किया ।

थोड़ी ही देर बाद आचार्यश्री ने अपने नूतन शिष्य को बुलाया और उसे आज्ञा की कि 'जाओ । देखकर आओ, गंगा किस ओर बहती है ? शिष्य ने भी आदेश स्वीकार कर नमन किया और वे बाहर निकल आए ।'

राजा ने राजकुमार और नूतन मुनि के जाने के बाद दो गुप्तचरों को यह जानने के लिए नियुक्त किया कि राजकुमार और मुनि कहाँ-कहाँ जाते हैं ।

महल से निकलने के बाद राजकुमार ने सोचा, **'यह सभी जानते हैं कि गंगा पूर्व की ओर बहती है, राजा भी जानता है और प्रजा भी, फिर व्यर्थ ही गंगा तट पर जाने का परिश्रम क्यों करूँ ?'** ऐसा सोचकर वह नगर में ही इधर-उधर घूमने लगा ।

राजमहल से निकलने के बाद नूतन मुनि ने अनेक लोगों से पूछा 'गंगा किस ओर बहती है ?' सभी ने कहा, 'पूर्व में ।'

परन्तु नहीं। मुझे प्रत्यक्ष जाकर तसल्ली कर लेनी चाहिए, क्योंकि गुरुदेव की आज्ञा है और उनकी आज्ञा सदैव सप्रयोजन होती है, निष्प्रयोजन नहीं, ऐसा सोचकर वे गंगा-तट पर पहुँचे। जल में बहते हुए पत्तों से गंगा-प्रवाह की दिशा का निर्णय किया। अन्त में अपना दण्ड नदी में डाल कर पक्का निर्णय कर लिया कि गंगा पूर्व में ही बहती है। ऐसा निर्णय कर वे गुरुदेव के पास लौटे। तब तक राजकुमार भी आ चुका था।

राजा ने पूछा, ''राजकुमार ! देख आए, गंगा किस ओर बहती है ?''

राजकुमार, ''हाँ। देख लिया। गंगा पूर्व में बहती है।''

फिर राजा ने नूतन मुनि से पूछा। उन्होंने अपनी पूरी बात कह दी।

राजा ने गुप्तचरों से सही जानकारी प्राप्त की। **राजा को सत्य की प्रतीति हो गई कि जो विनय गुरुकुल में है, वह राजकुल में नहीं है।**

4. निःस्पृहता

भरूच में सिद्धनागार्जुन नामक क्षत्रिय पुत्र था। वह अत्यन्त ही पराक्रमी और साहसी था। कहते हैं बाल्यवय में (3 वर्ष की उम्र में) उसने एक सिंह के बच्चे को मार डाला था। वह सिद्ध रसायन का प्रेमी था, अतः उसका अधिकांश समय जंगल में बीतता था। कई महात्माओं की कृपा से उसे अनेक वनस्पति और जडी बुट्टियाँ का ज्ञान प्राप्त किया था। सुवर्णरस का प्रयोग भी उसने सिद्ध कर लिया था। अनेक औषधियों से सम्पन्न होकर वह अपने नगर में आया।

आचार्य पादलिप्तसूरिजी म. अपने विशाल शिष्य-परिवार के साथ उसी नगर में विराजमान थे। उसने सुना कि आचार्य भगवन्त के पास **पादलेप विद्या है**, जिसके बल से आकाश में गमन किया जा सकता है। आकाशगामिनी विद्या के लोभ से उसने एक कटोरे में सुवर्णसिद्धिरस भरकर अपने सेवक के द्वारा **पादलिप्तसूरि म.** के पास भिजवाया। उस सेवक ने आचार्य भगवन्त को सब घटना सुना दी। निःस्पृही सूरि ने पात्रसहित वह सुवर्णरस कचरे में फिकवा दिया।

क्या जैनाचार्य धन से खरीदे जा सकते है ? कदापि नहीं।

सुवर्णरस की ऐसी उपेक्षा देखकर उस सेवक को बड़ा अफसोस हुआ। आचार्यश्री ने कहा, ''अरे ! तू व्यर्थ चिन्ता क्यों करता है, तुझे पात्र और भोजन मिल जाएगा।'' आचार्यश्री की सूचना से उसे श्रावक के घर भोजन करा दिया गया।

भोजन कर वह शिष्य आचार्यश्री के पास आया। आचार्यश्री ने उसे अपने पेशाब से भरी हुई काँच की शीशी दी और बोले, ''मेरी ओर से यह नागार्जुन को दे देना।''

सेवक ने सोचा, ''अहो ! ये कैसे पागल हैं ? ऐसे मूर्खों के साथ दोस्ती कर नागार्जुन को क्या लाभ होगा ?'' इत्यादि सोचकर उस सेवक ने जाकर वह शीशी नागार्जुन को सौंप दी।

नागार्जुन ने उस शीशी को सूंघा। उसमें से बदबू आ रही थी। तत्काल उसे पत्थर पर गिराकर तोड़ दी। शीशी के टुकड़ें-टुकड़ें हो गए और पेशाब उस पत्थर पर बह गया।

थोड़ी देर बाद औषधि तैयार करने के लिए नागार्जुन ने उस पत्थर पर आग लगाई तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

''अरे यह क्या !'' सम्पूर्ण पत्थर सुवर्ण का बन गया था ।

आचार्यश्री के मूत्र में इस प्रकार की सिद्धियों को देख उसका गर्व दूर हो गया । वह सोचने लगा, ''मुझे तो वर्षों की मेहनत के बाद सुवर्ण रस की सिद्धि हुई है, जबकि इस महात्माओं के मल-मूत्र में भी सिद्धियाँ स्वयं वास करती हैं ?''

नागार्जुन आचार्यश्री के अंतरंग व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुआ और उनका चरणकिंकर बन गया ।

आचार्यश्री पादलेप की विद्या से शत्रुंजय आदि महातीर्थों की यात्रा कर लौटे, तब नागार्जुन ने लेप को पहिचानने के लिए आचार्यश्री का पाद-प्रक्षालन किया । पाद-प्रक्षालन के जल की सुगन्ध से 107 औषधियों का ज्ञान हो गया ।

नागार्जुन जंगल में जा पहुँचा । उसने उन औषधियों की शोध की । शोध के परिणामस्वरूप उसे वे औषधियाँ मिल गई । उसने उन औषधियों का मिश्रण कर पादलेप तैयार किया । उस लेप को तैयार कर उसने अपने पैरों में लगाया, जिसके फलस्वरूप वह कुछ उड़ा, किन्तु एक औषधि की न्यूनता के कारण वह तुरन्त नीचे गिर पड़ा, जिससे उसके घुटनों में से रक्त बहने लगा ।

नागार्जुन की यह स्थिति देख आचार्यश्री बोले, **''नागार्जुन ! गुरु के बिना कभी विद्या सिद्ध नहीं हो सकती है ।''**

उसने कहा, ''गुरुदेव ! यह तो मैंने अपनी बुद्धि की परीक्षा की है ।''

आचार्यश्री ने कहा, ''यदि मैं तुझे विद्या सिखा दूँ तो बदले में तू मुझे क्या देगा ?''

नागार्जुन ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की । तत्काल आचार्यश्री ने अपूर्ण औषधि को पूर्ण करने की विधि बतला दी ।

बस, नागार्जुन के हृदय में आकाश-गमन की जो तीव्र उत्कण्ठा थी वह साकार हो गई ।

उसके बाद तो नागार्जुन आचार्यदेवश्री का परम भक्त बन गया और उस भक्ति के फलस्वरूप उसने शत्रुंजय की तलहटी में गुरुदेव की स्मृति के लिए पादलिप्त नगर बसा दिया, जो आज पालिताना हो गया । साथ ही शत्रुंजय तीर्थ पर भगवान महावीर का भव्य जिनालय भी बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा बड़े ही उत्साह से आचार्यश्री के करकमलों द्वारा सम्पन्न की गई ।

5. शासनरक्षा और प्रभावना

पृथ्वी प्रतिष्ठान नगर में प्रख्यात महाराजा **सातवाहन** राज्य करता था । एक दिन उसकी राज-सभा में प्रकांड विद्वान चार महाकवियों का आगमन हुआ । राजा उनकी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुआ ।

वे कवि आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र में निपूण थें । उन सभी को 1-1 लाख श्लोक कंठस्थ थें ।

वे सब अब अपनी बात राजा को सुनाना चाहते थें । आयुर्वेद में निष्णात कवि अपनी बात 1 लाख श्लोक द्वारा कहना चाहता था ।

राजा ने कहा, ``मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं तुम्हारें 1 लाख श्लोक सुन सकूं ।''

कवि नेकहा, ``मैं 1 लाख का सार 50 हजार श्लोकों में सुना देता हूँ ।''

राजा ने कहा, ``इतना भी समय नहीं है ।''

कवि ने कहा, 1000 श्लोक में सुनाऊं ?

राजा ने कहा, 'नहीं !'

आखिर राजा की संक्षिप्त रुचि भावना को देखकर चारों कवियों ने एक ही श्लोक में अपने अपने ग्रंथों का सार सुना दिया ।

उन्होंने कहा, **'जीर्णे भोजनमात्रेयः कपिलः प्राणिनां दया ।**
बृहस्पति रविश्वासः, पाञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम् ।।

अर्थ :– 1) आत्रेय कवि कहता हैं कि पूर्व का भोजन पच जाय, उसके बाद ही भोजन करना यह आयुर्वेद ग्रंथ का सार है ।

2) कपिल कवि कहता है कि प्राणियों पर दया करना, यही धर्मशास्त्रों का सार है ।

3) बृहस्पति कवि कहता है कि किसी पर विश्वास नहीं करना, यही अर्थ शास्त्र का सार है ।

4) पांचाल कवि कहता है कि स्त्री के साथ कोमल व्यवहार करना, यही कामशास्त्र का सार है ।

महादान को प्राप्त कर सभी प्रसन्न हुए, फिर भी उन्होंने कहा, ``राजन् ! आपने तो हमारे काव्य की प्रशंसा की, किन्तु आपके परिवार ने तो प्रशंसा नहीं की ।''

कवियों की यह बात सुनकर महाराजा ने तत्काल भोगवती वेश्या को आदेश दिया कि तू इन कवियों की प्रशंसा कर ।

भोगवती ने कहा, ``राजन् ! मैं तो पादलिप्त आचार्य की ही स्तुति करती हूँ, उनके सिवाय इस दुनिया में स्तुति का पात्र और कौन है ? आकाश-गामिनी विद्या के अधिपति **पादलिप्तसूरिजी म.** जो विद्यासिद्ध महापुरुष हैं, उनको छोड़कर इस दुनिया में अन्य गुणवान पुरुष कौन है ?''

वेश्या की यह बात सुनकर **शंकर** नाम का एक ईर्ष्यालु व्यक्ति बोला, ``मात्र आकाश में उड़ने से क्या ? आकाश में उड़ने मात्र से हम उन्हें विद्वान् नहीं मान सकते । हाँ ! यदि वे मरकर भी जीवित हो जायें, तो हम उनकी विद्वत्ता मान सकते हैं ।''

भोगवती ने कहा, ``अरे ! इसमें क्या बड़ीं बात है ? यह भी उनके लिए असम्भव नहीं है । जैन महर्षि तो देवताओं की भाँति अतुल्य प्रभाव वाले होते हैं ।'' वेश्या का यह कथन सुनकर महाराजा के हृदय में एक कुतूहल पैदा हुआ । मुझे अवश्य ही **पादलिप्तसूरि** की प्रतिभा देखनी चाहिए । बस, इस बात का निर्णय कर महाराजा ने मानखेट नगर में रहे हुए आचार्य म. को अपने नगर में पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

महाराजा के आमंत्रण को प्राप्त कर **पादलिप्तसूरिजी म.** ने पृथ्वी प्रतिष्ठानपुर नगर की ओर विहार यात्रा प्रारम्भ की । कुछ ही दिनों में वे नगर के बाह्य उद्यान में आ पहुँचे ।

महाराजा को आचार्य म. के आगमन के समाचार प्राप्त हुए । **आचार्य भगवन्त की प्रतिभा की जानकारी हेतु महाराजा ने आचार्य म. के पास घी से भरा हुआ एक कटोरा भेजा ।**

राजसेवक घी से भरा हुआ कटोरा लेकर आचार्य भगवन्त के सम्मुख उपस्थित हुआ । घी से भरे हुए कटोरे को देखकर आचार्य भगवन्त महाराजा के अन्तरंग अभिप्राय को पहिचान गए । उन्होंने घी से भरे हुए कटोरे में एक तीक्ष्ण सूई खोंच दी और वह कटोरा वापस महाराजा के पास भिजवा दिया ।

घी से भरे हुए कटोरे के बीच सूई को देखकर महाराजा आचार्य भगवन्त की प्रतिभा से प्रभावित हुए ।

घी से भरा कटोरा भेजकर राजा ने आचार्य भगवन्त से यह प्रश्न किया था कि, **''हे महात्मन् ! मेरी यह राजसभा अनेक प्रकाण्ड विद्वज्जनों से भरी हुई है, मेरी इस राजसभा में आपका प्रवेश कैसे होगा ?''**

राजा के इस प्रश्न के जवाब में आचार्य भगवन्त ने कहा, **''हे राजन् ! जिस प्रकार घी से भरे हुए कटोरे में यह सूई अपना स्थान आसानी से बना लेती है और थोड़े भी घी को बाहर नहीं निकालती है, इसी प्रकार मैं भी अपनी बुद्धिप्रतिभा से आपकी राज-सभा में प्रवेश कर लूंगा ।''**

आचार्य भगवन्त की बुद्धि से अत्यन्त प्रभावित महाराजा ने दूसरे ही दिन आचार्य भगवन्त का भव्य नगरप्रवेश कराया ।

आचार्य भगवन्त की तेजस्वी प्रतिभा के दर्शन के लिए दूर-सुदूर से प्रजा उमड़ रही थी । नगर में स्थान-स्थान पर तोरण बँधे हुए थे । अनेकविध वाद्य यंत्रों की सुमधुर-ध्वनि के साथ वह स्वागत-यात्रा आगे बढ़ रही थी । आचार्य भगवन्त की इस भव्य स्वागत-यात्रा को देख एक पांचाल कवि का हृदय ईर्षा की आग से जल उठा ।

थोड़ी देर बाद वह स्वागत यात्रा राजसभा में पहुँची । वह राज-सभा धर्म-सभा में बदल हो गई । आचार्य भगवन्त ने उच्च आसन ग्रहण किया । सभी प्रजाजनों ने आचार्य भगवन्त को वन्दना की, तत्पश्चात् सभी प्रजाजन अत्यन्त नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़े हो गए । आचार्य भगवन्त ने मेघवत् अति गम्भीर व सुमधुर ध्वनि से मंगलाचरण प्रारम्भ किया । आचार्य भगवन्त के मुख से शब्द क्या निकल रहे थे, मानो अमृत का स्त्रोत ही प्रवाहित हो रहा था ।

मंगलाचरण के बाद आचार्य भगवन्त की वैराग्यमय देशना का श्रवण कर सभी प्रजाजन भाव विभोर हो उठे ।

देशना समाप्त हुई...आचार्य भगवन्त ने 'सर्व मंगल' का पाठ किया ।

आचार्य भगवन्त की देशना से अत्यन्त प्रभावित महाराजा ने आचार्य भगवन्त का अभिवादन किया और प्रतिदिन धर्मदेशना प्रदान करने के लिए अत्यन्त आग्रहपूण विनति की । आचार्य भगवन्त ने महाराजा की विनति स्वीकार की ।

अब प्रतिदिन आचार्य भगवन्त राजसभा में पधारने लगे और अपनी तीक्ष्ण बुद्धि-प्रतिभा से जैनदर्शन के गूढ़तम तत्त्वों को सरल भाषा में प्रगट करने लगे । आचार्य भगवन्त की देशना का श्रवणकर अनेक व्यक्तियों के हृदय परिवर्तित हो गए और उन्होंने अपने जीवन को सात्त्विक बना लिया ।

अधिकांश श्रोता कथाप्रिय होते हैं । अतः कथा के माध्यम से उन्हें बहुत कुछ समझाया जा सकता है ।

आचार्य भगवन्त ने भी अपनी काव्य प्रतिभा से 'तरंग-लोला' नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की वे ज्यों-ज्यों उसके श्लोक पढ़ते थे, त्यों त्यों प्रजाजन भावविभोर हो जाते थे ।

आचार्य भगवन्त की काव्य प्रतिभा से सभी प्रसन्न थे, किन्तु उस पांचाल कवि का दिल ईर्ष्या से जल रहा था । ***सूर्य तो अपनी तेजस्वी प्रभा से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश से भर देता है, किन्तु उस समय भी उल्लू अपनी आँखें बन्द कर देता है, चारों ओर सूर्य का प्रकाश होने पर भी उसे कुछ दिखाई नहीं देता है, इसें सूर्य का क्या दोष है ?***

बस, ईर्ष्या की आग में जल रहे उस कवि ने आचार्य भगवन्त की भव्य प्रतिभा को कलंकित करने के लिए एक भयंकर योजना बना ली ।

आचार्य भगवन्त के मुख से उस काव्य-कथा का श्रवण कर उस पांचाल कवि ने वह कथा पुराने कागजों पर लिख डाली । आग के धुएँ में उन कागजों को पुराना बनाकर, कृतिकार के रूप में अपने पूर्वजों का नाम जोड़ दिया । इस प्रकार आचार्य भगवन्त की काव्य-कृति में परिवर्तन कर एक दिन वह एकान्त में महाराजा के पास जा पहुँचा ।

महाराजा ने उसकी क्षेम-कुशलता पूछी और आगमन का विशेष कारण पूछा ।

पांचाल कवि ने कहा-``राजन् ! एक महत्त्व की बात कहने आया हूँ, किन्तु मुझे लगता है कि आप उस ओर ध्यान नहीं दे सकोगे ।''

राजा ने कहा, ``कविराज ! ऐसी क्या बात है, जो हो वह सत्य कहो, मैं अवश्य ही तुम्हारी बात पर ध्यान दूंगा ।''

कवि ने कहा, ``राजन् ! बात ऐसी है कि जब कोई व्यक्ति किसी में आसक्त हो जाता है, तब वह उस व्यक्ति में रहे दोष की बात को सुनने के लिए तैयार नहीं होता है और कदाचित् सुन भी ले तो भी उसे मानने के लिए तैयार नहीं होता है ।''

राजा ने कहा, ``कविराज ! आखिर आप क्या कहना चाहते हो ?''

कवि ने कहा, ``राजन् ! बात ऐसी है कि आप आचार्य **पादलिप्तसूरि म.** की **'तरंगलोला'** काव्य कृति से अत्यन्त आकृष्ट बन चुके हो, परन्तु आपको पता है, उस कृति के कर्त्ता कौन हैं ?''

राजा ने कहा, ``इसमें पूछने की क्या बात है, इसके कर्ता **पादलिप्तसूरि म.** ही है ।''

''राजन् ! यहीं आप भूल कर रहे हैं । जब आत्मप्रसिद्धि की आकांक्षा अत्यन्त बढ़ जाती है, तब व्यक्ति अन्य की कृति पर भी अपना स्वामित्व कर लेता है और इस प्रकार माया कर अपनी प्रसिद्धि फैलाता है । आपको पता नहीं है, ''तरंगलोला'' के कर्त्ता तो हमारे विद्वान् पूर्वज हैं, उन्होंने ही इस कृति की रचना की है और उसी कथा पर जैनाचार्य अपना अधिकार जमाना चाहते हैं । यह कितना मायाचार चल रहा है ?''

``कविराज ! क्या ऐसी बात है ? क्या इस बात का कोई प्रमाण है ?''

``हाँ ! हाँ ! राजन् ! प्रमाण के बिना तो मेरी बात को माने भी कौन ? यह देखिए । हमारे पूर्वजों की इस महान् कृति को !'' कविराज ने वह प्रति दिखा दी ।

राजा ने ऊपर-ऊपर से उस कृति को देख लिया और कवि के वचनों पर विश्वास कर बोला, ``अहो ! इतने धूर्त है जैनाचार्य ! मैं तो उन्हें महान् समझता था ।''

आचार्य भगवन्त के प्रति महाराजा के हृदय में जो सद्भाव था, वह सद्भाव लुप्त हो गया और उसका स्थान तिरस्कार ने ले लिया ।

अपने नियमित कार्यक्रमानुसार दूसरे दिन जब आचार्य भगवन्त राजसभा में पधारे, तब राजा ने अपना मुँह मोड़ लिया । **समझदार के लिए ईशारा काफी होता है,** इस उक्ति के अनुसार आचार्य भगवन्त ने सोचा, **'अवश्य ही दाल में कुछ काला होना चाहिए, अन्यथा प्रतिदिन सम्मान करने वाला राजा, मेरे आगमन के साथ अपना मुँह क्यों मोड़ लेता ?'**

राजा के इस अनादर को देख आचार्य भगवन्त एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उपाश्रय में लौट आए ।

थोड़ी ही देर में पवनगति से यह बात नगर में फैल गई कि जैनाचार्य ने पांचाल कवि के पूर्वजों की कृति चुराकर अपने नाम की प्रसिद्धि की है ।

जैन मुनि तो मान और अपमान को समान गिनते है । आचार्य भगवान को अपमान की कोई परवाह नहीं थी, किन्तु एक जैनाचार्य पर कलंक यह जिनशासन का कलंक है ।

पादलिप्तसूरिजी म. ने सोचा `जब तक यह कलंक दूर नहीं किया जाएगा, तब तक जैनशासन की **हीलना** होगी, अतः मुझे किसी भी प्रकार से इस कलंक को दूर करने के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए' इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर आचार्य भगवन्त कलंक निवारण का उपाय सोचने लगे ।

सूक्ष्म बुद्धि के निधान आचार्य भगवन्त को एक क्षण में उपाय सूझ गया । उन्होंने श्रावक वर्ग में से कुछ गम्भीर और प्रौढ़ श्रावकों को बुलाया और एकान्त में ले जाकर उनसे कहा, **''तरंगलोला काव्य की रचना मैंने की है, फिर भी मुझ पर जो यह कलंक आया है, उसके**

U-25479

निवारण के लिए मुझे एक उपाय सूझा है, उस उपाय को तुम्हें गुप्त रखना होगा और उनके लिए आपको बहुत कुछ त्याग करना पड़ेगा । क्या आप इसके लिए तैयार हो ?''

सभी श्रावकों ने कहा, ``गुरुदेव ! इस कलंक निवारण के लिए हम अपना सर्वस्व बलिदान देने के लिए तैयार हैं ।''

गुरुदेव ने कहा, ``तो सुनो मेरी बात ! यहाँ से मैं थोड़ी देर बाद अपने आसन पर चला जाऊँगा, वहाँ जाकर अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर दूंगा । मेरा शरीर निश्चेष्ट हो जाएगा । आप मुझे मृत घोषित कर देना । तत्पश्चात् मेरी श्मशान-यात्रा निकालना । समस्त राजमार्गों से घुमाकर मेरी शव यात्रा उस पांचाल कवि के द्वार से भी निकालना । मेरी इस श्मशान-यात्रा से उसे यदि पश्चात्ताप हो जाय, तब तो कलंक का निवारण हो ही जाएगा ।

पांचाल कवि को पश्चात्ताप न हुआ तो...?'' श्रावकों ने अपने हृदय की वेदना प्रगट की ।

आचार्य भगवन्त ने कहा, ``महानुभावो ! आप घबराओं मत । मुझे आत्म विश्वास है कि इस योजना में मुझे सफलता मिलेगी और जैनशासन का कलंक धूमिल हो जाएगा । यदि उस कवि को पश्चात्ताप न हो तो मेरा जीवन्त अग्नि संस्कार कर देना ।''

``गुरुदेव ! इस प्रकार की बात सुनकर तो हमारा हृदय ही कांप रहा है ।'' श्रावकों ने कहा ।

``महानुभावो ! अपने इस भौतिक देह से भी इस जैनशासन की कीमत अत्यधिक है और इसके लिए मुझे अपना बलिदान भी करना पड़े तो वह मुझे सहर्ष स्वीकार है । अतः शासन के इस कलंक निवारण के लिए आपको इस कार्य में सहयोग देना ही चाहिए ।''

अन्त में सभी श्रावकों ने आचार्य भगवन्त की आज्ञा शिरोधार्य की ।

आचार्य भगवन्त अपने आसन पर आकर बैठ गए । थोड़ी ही देर बाद उन्होंने सोने का बहाना किया और उन्होंने अपने प्राण ब्रह्मरंध्र में स्थापित कर लियें । बाह्य श्वास को उन्होंने रोक दिया । उनका शरीर निश्चेष्ट हो गया ।

समय बीतने लगा । एक बजा...दो बजा...परन्तु आचार्यदेव उठे नहीं ।

``गुरुदेव शायद ज्यादा थके हुए होंगे, इसीलिए आज ज्यादा आराम कर रहे है ।'' इत्यादि सोचकर पहले तो सभी शिष्य निश्चिन्त थे...परन्तु काफी समय बीतने के बाद भी जब आचार्य भगवन्त नहीं उठे...तो शिष्य-गण ने निकट आकर देखा...और मुख पर से कपड़ा हटाया ।

मुख देखते ही सभी शिष्य अवाक् रह गए...नाड़ी और धड़कन देखी...नाड़ी बन्द थी... शरीर के किसी भाग में हलन-चलन नहीं थी । दृश्य देखते ही कई शिष्य धरती पर मुर्च्छित हो गए...``अरे ! अचानक गुरुदेवश्री को क्या हो गया ?'' कुछ शिष्य संभलकर वैद्य को बुलाने गए ।

थोड़ी देर में वैद्य आकर उपस्थित हो गए...देखते ही देखते आसपास से श्रावक भी आ गए । वैद्य ने आचार्यश्री की नाड़ी देखी / परखी और दुःखी हृदय से बोला, ``आचार्यश्री का स्वर्गवास हो गया है ।''

दु:खद समाचार सुनते ही सभी शिष्यगण धरती पर ढल पड़े और सभी की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी ।

थोड़ी ही देर में नगर के मुख्य श्रावक वहाँ उपस्थित हो गए ।

चारों ओर सन्नाटा छा गया । जो भी आया...पूज्य गुरुदेवश्री की मृत्यु के समाचार से दु:खी हो गया ।

''अरे ! क्रूर काल ने हमारा सर्वस्व छीन लिया ।''

आचार्यश्री की मृत्यु के समाचार हवा की भाँति चारों ओर फैल गए । पहले तो जिसने भी सुना, उसे विश्वास नहीं आया...परन्तु जब यही समाचार अनेक लोगों के मुख से जानने को मिले...तब सभी को एकदम आघात पहुँचा ।

अनेक श्रावक और श्राविकाएँ करुण रुदन करने लगें ।

''अरे ! इस क्रूर काल ने हमारा शिरच्छत्र लूट लिया ? अब हमारा योगक्षेम कौन करेगा ?''

देखते-ही-देखते आचार्यश्री के अन्तिम दर्शनार्थ चारों ओर से भीड़ उमड़ पड़ी ।

सभी लोग आ-आकर आचार्यश्री का अन्तिम पूजन करने लगे और अश्रुपूर्ण नेत्रों से श्रद्धांजलि अर्पित करने लगे ।

सभी के दिल में दर्द था और आँखों में आँसू थे । बस ! थोड़ी देर में ये समाचार आसपास के जैन संघों में पहुँचाए गए । जिसने भी समाचार सुना, आघात से करुण रुदन करने लगा ।

आकाश में बादल छा गए । सूर्य मंडल बादलों की ओट में छिप गया । मानो ! आचार्यश्री के देहविलय से प्रकृति को भी बड़ा आघात लगा हो । अत: उसने भी अपना सौंदर्य समेट लिया और शोकमग्न होकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने लगा ।

लोग दूर-दूर से आने लगे । इधर आचार्यश्री की श्मशान यात्रा के लिए दु:खी हृदय से तैयारियाँ प्रारंभ हुई ।

कुछ युवक, दर्शनार्थ आ रही भीड़ की व्यवस्था सँभाल रहे थे तो कुछ युवा जरीयन की पालखी की तैयारी में जुटे हुए थे । सभी के मुख पर उदासीनता छाई हुई थी ।

श्मशान यात्रा की तैयारियाँ चल रही थी । सभी ने दु:खी हृदय से रात्रि व्यतीत की । हजारों लोगों ने आकर आचार्य भगवन्तश्री का पूजन किया ।

प्रात: काल हुआ और ठीक आठ बजे आचार्यश्री के देह को जरीयन की पालखी में बिठाने की तैयारी प्रारंभ हुई । **जय जय नंदा... जय जय भद्दा** से चारों ओर का आकाश मंडल गूंज उठा ।

ठीक आठ बजे पूज्य आचार्य भगवन्तश्री के पवित्र देह को पालखी में बिठाया गया...लोग अन्तिम दर्शन करने लगे...और थोड़ी ही देर बाद आचार्यश्री की श्मशान-यात्रा प्रारम्भ हो गई ।

चारों ओर भीड़ थी...सभी के नेत्र अश्रुपूर्ण थें ।

नगर के महाराजा को भी आचार्यश्री के स्वर्ग-गमन के समाचार मिले । समाचार सुनते ही उनका दिल वेदना से भर आया ।

राजा सोचने लगा, ``इतनी छोटी उम्र ! और अचानक बिना किसी रोग से...उनकी अचानक मृत्यु हो जाना, अवश्य ही विचारणीय बात है ।

``मुझे लगता है । आचार्यश्री पर जो कलंक आया...उस कलंक की वेदना को वे सहन नहीं कर पाए...और अचानक उनका हृदय रुक गया हो । इसके सिवाय अन्य कोई कारण नहीं हो सकता...न तो उनके देह में कोई रोग था...अतः अवश्य ही यही कारण होना चाहिए ।''

राजा सोचने लगा, ``अहो ! छोटी सी बालवय । आचार्यश्री की कैसी भव्य प्रतिभा थी ! उनके स्वर्गगमन से मैंने एक महान् प्रतिभा खो दी है ।'' राजा ने भी अपना शोक-संदेश भेजा ।

इधर आचार्यदेवश्री की श्मशान-यात्रा प्रारम्भ हो चुकी थी । मुख्य राजमार्गों को पार करते हुए वह श्मशान-यात्रा धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी ।

पांचाल कवि का मकान जिस राजमार्ग पर था...उस मार्ग पर श्मशान यात्रा का आगमन हुआ । **``जय जय नंदा...जय जय भद्दा''** के नाद से आकाश मण्डल गूंज रहा था ।

गवाक्ष में बैठे पांचाल कवि ने दूर से आ रही उस श्मशान-यात्रा को देखा...वह तुरन्त नीचे आया । उसने किसी व्यक्ति से पूछा, ``यह श्मशान-यात्रा किसकी निकल रही है ।''

उस व्यक्ति ने कहा, ``प्रचण्ड प्रतिभाधारी जैनाचार्य **श्रीमद् पादलिप्तसूरीश्वरजी म.** की यह श्मशान-यात्रा है ।''

पांचाल कवि ने आश्चर्य से पूछा, ``क्या उनका स्वर्गवास हो गया ?''

``हाँ ! हृदय-गति रुक जाने से कल ही उनका स्वर्गवास हो गया था ।''

उस व्यक्ति ने कहा...और इतना कहकर वह भी पूज्यवर आचार्यश्री के अन्तिम दर्शनार्थ आगे बढ़ गया ।

आचार्यश्री के स्वर्गगमन के समाचार सुनते ही पांचाल कवि को भी अत्यन्त आघात लगा । सोचने लगा, **'आचार्यश्री का वास्तविक हत्यारा तो मैं ही हूँ...अहो, मैंने ही राजा के कान फूंक कर उनको कलंकित किया है...सम्भव है, आचार्यश्री उस आघात को सहन न कर पाए हों...और उनके प्राण पखेरू उड़ गए हों ।**

अहो मैं कितना पापी ! एक तुच्छ स्वार्थ के लिए मैंने ऋषि-हत्या कर दी । अहो ! उस भयंकर पाप से मेरा कैसे छुटकारा होगा ? अब क्या करूँ ?...मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है । एक संन्यासी को बदनाम कर मैंने अपनी आत्मा को दुःख के गर्त में डाल दिया है । धिक्कार हो...मेरी स्वार्थवृत्ति को ।'

पांचाल कवि का हृदय पश्चात्ताप से भर आया । उसने देखा-``आचार्यश्री की श्मशान-यात्रा निकट आ रही है...तो क्यों नहीं, उनके अंतिम दर्शन कर अपनी आत्मा को पावन करूँ...उनसे अपने पाप की क्षमा-याचना करूँ ।'' इतना सोचकर वह उस राज-मार्ग पर आ गया ।

पालखी आगे बढ़ रही थी, उसने उस पालखी को रुकवाया और आचार्यश्री को अष्टांग-प्रणिपात कर बोला, ``अहो ! अहो ! महासिद्धि के पात्र ऐसे आचार्य स्वर्ग में चले गए । सत्पात्र में

ईर्ष्या और सत्यव्रत में दृष्टि को रक्त करने वाले मेरे जैसे को पाप से मुक्ति मिलने वाली नहीं है, रत्नाकर की तरह समस्त शास्त्रों के निधानभूत आचार्यश्री के प्रति मत्सर भाव धारण करने वाले मुझे धिक्कार हो ।'' इसके साथ ही अपने पाप का पश्चात्ताप करते हुए वह बोला–

'सीसं कह वि न फुट्टं, जमस्स पालित्तयं हरंतस्स ।
जस्स मुह निज्झराओ, तरंगलोला नई वूढा ।।'

अर्थ : `**पादलिप्तसूरि म.** का हरण करते हुए यमराज का मस्तक फूट क्यों नहीं गया, जिनके मुख्य रूपी झरने से `तरंगलोला' नाम की नदी (कथा) प्रगट हुई ।'

इस प्रकार ज्यों ही पांचाल कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि `तरंगलोला' के कर्त्ता तो **पादलिप्तसूरिजी म.** हैं, त्योंही पालखी में बिराजमान **आचार्यदेवश्री पादलिप्तसूरिजी म.** ``पांचाल कवि के सत्यवचन से मैं जीवित हुआ हूँ ।'' इस प्रकार कहते हुए पालखी में से कूद पड़े ।

आचार्यश्री को जीवंत जानकर चारों ओर आनन्द की लहर फैल गई । सूरिवर शतायु बनें और **'जैनं जयति शासनम्'** के नारों से आकाश मंडल गूँज उठा । पांचाल कवि के `तरंगलोला' के कर्त्ता पूज्यपाद **आचार्यश्री पादलिप्सूरिजी म.** ही हैं' इन सत्यवचनों से **पादलिप्तसूरिजी म.** जीवित हो गए हैं, समाचार राजा को भी मिले ।

राजा को पांचाल कवि पर अत्यन्त गुस्सा आया । उसने आज्ञा फरमाकर पांचाल कवि को देशनिकाले की सजा दी । पूज्यपाद आचार्य **पादलिप्तसूरिजी म.** का पुनः नगर में भव्य प्रवेश हुआ । श्मशान-यात्रा शोभा-यात्रा में बदल गई । राजा के दिल में भी आचार्य भगवन्त के प्रति बहुमान भाव पैदा हुआ । पहले जो चारों ओर जैनधर्म की निन्दा हो रही थी, उसके बदले जैनशासन की दुगुनी चौगुनी प्रशंसा होने लगी । इस प्रकार पूज्यपाद आचार्यश्री **पादलिप्तसूरिजी म.** ने शासनरक्षा के लिए सर्वस्व समर्पण कर अपने जीवन की भी परवाह न की और अन्त में जैनशासन की पताका दिग्-दिगंत तक फहराई ।

• पूज्यपाद आचार्यश्री **पादलिप्तसूरिजी म.** ने शास्त्रोक्त प्रतिष्ठाविधि को प्रतिपादित करनेवाला **'निर्वाणकलिका'** काल ज्ञान, ज्योतिष करंडक टीका, तरंगलोला और **'प्रश्नप्रकाश'** नामक ज्योतिःशास्त्र की भी रचना की थी ।

स्वर्गगमन – जिनका सम्पूर्ण जीवन जिनशासन के चरणों में समर्पित था ऐसे शासन प्रभावक पूज्यपाद आचार्य **भगवन्तश्री** ने अपनी मधुर व प्रभावक वाणी द्वारा जीवन पर्यन्त जैनशासन की अद्भुत प्रभावना की और अन्त में अपने मृत्युकाल को निकट जानकर विमलाचल-शत्रुंजय महातीर्थ पधारे । वहाँ 32 दिन का अनशन स्वीकार कर वीर निर्वाण सातवी सदी के उत्तरार्द्ध में समाधिपूर्वक उन्होंने अपने देह का त्याग किया । और दूसरे देवलोक में देव बने ।

भक्त नागार्जुन ने **पादलिप्तसूरि म.** के नाम के अनुरूप पालीताणा नगर बसाया । वह नगर आज भी **पादलिप्तसूरिजी म.** की याद दिलाता है ।

आचार्य वृद्धवादिसूरिजी-7

गौड देश ! कोशला **गांव !**

किसी ब्राह्मण दम्पती ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

जिसका नाम **'मुकुंद'** रखा गया । धीरे धीरे मुकुंद बड़ा होने लगा ।

गत जन्म के ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के फलस्वरूप मुकुंद की स्मरण शक्ति मंद थी । बहुत श्रम करने पर भी उसे ज्यादा याद नहीं रहता था ।

वृद्धावस्था में प्रवेश के साथ मुकुंद ब्राह्मण को जैनाचार्य **स्कंदिलसूरि** का योग प्राप्त हो गया ।

सद्गुरु के समागम से मुकुंद में वैराग्य भाव पैदा हुआ । गुरुदेव ने उसके तीव्र वैराग्य भाव को देखकर भागवती दीक्षा प्रदान की । नूतन मुनि में ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा थी परंतु क्षयोपशम मंद होने से ज्यादा महेनत करने पर भी उन्हें खूब कम याद रहता था ।

एक बार वे रात्रि में जोर जोर से गाथाएं कंठस्थ करने लगे ।

रात को जोर से चिल्लाते हुए देखकर किसी मुनि ने उनकी मजाक करते हुए कहा, **'महाराज ! बहुत पढ लिखकर क्या सांबेले पर फूल उगाना चाहते हो ?'**

इस कटाक्ष को सुनकर नूतन मुनि को थोड़ा बूरा लगा ! वे सोचने लगे ! क्या इस उम्र में मैं अभ्यास नहीं कर पाऊंगा ?

ज्ञान की तीव्र अभिलाषा होने से गुर्वाज्ञा प्राप्त कर नूतन मुनि ने 21 दिन के उपवास के साथ सरस्वती की आराधना की । सरस्वती देवी ने वरदान देते हुए कहा, 'तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हो ।'

मुकुंद मुनि के आनंद का पार न रहा । वे अपनी बस्ती में आए । सभी मुनि इकट्ठे हो गए ।

मुकुंद मुनि ने उपाश्रय के एक कोने में मुशल (सांबेला) देखा । उसी समय किसी मुनि का किया हुआ कटाक्ष उन्हें याद आ गया ।

उन्होंने सरस्वती की स्तुति करते हुए कहा,

'अस्मादृशा जडा यदि भारति ! त्वत्प्रसादतः । भवेयुर्वादिनः प्राज्ञा, मुशलं पुष्पतां ततः ।।'

हे सरस्वती देवी ! 'आपकी कृपा से हमारे जैसे जड़ लोक भी पंडित और वादी बन जाते हैं, तो इस मूसल पर भी फूल उग जाय ।'

और उसी समय चमत्कार हुआ । उस मूसल पर फूल उग गए ।

यह दृश्य देख सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

भरुच के नालियरी पाड़ा के जिनालय में जाकर उन्होंने मंत्र जाप किया था । मंत्र जाप के प्रभाव से उन्हें **सरस्वती** सिद्ध हो गई थी । उन्होंने सांबेला पर फूल उगाकर कटाक्ष करनेवाले मुनि को चुप कर दिया था । माँ सरस्वती की असीम कृपा से उनका क्षयोपशम खूब विकसित हुआ । अल्प समय में ही उन्होंने शास्त्रों का गहन अभ्यास कर लिया ।

उन्होंने कई वादियों को भी जीत लिया, जिसके फल स्वरूप उनके गुरुदेव ने उन्हें आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया । उसके बाद वे **वृद्धवादिसूरिजी** के नाम से प्रख्यात हुए ।

विक्रम प्रतिबोधक सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी-8

कात्यायन गोत्रीय ब्राह्मण विद्वान् सिद्धसेन को अपनी विद्या पर अत्यधिक गर्व था । उनकी माता का नाम देवश्री तथा पिता का नाम देवर्षि था । उस समय वह अपराजेय वादी की तरह लोक में प्रसिद्ध था । उसने अनेक वादियों को वाद में परास्त कर अपनी कीर्ति दिग्-दिगंत तक फैला दी थी !

उसने मनोमन संकल्प किया था, **'मैं अपराजित-वादी हूँ, यदि कोई मुझे वाद में हरा दे तो मैं आजीवन उसका शिष्य बन जाऊं ।'**

एक बार उसने वृद्ध **वादिदेवसूरिजी म.** की वादी के तौर पर प्रशंसा सुनी । उसे यह प्रशंसा अत्यंत चुभने लगी । वह उस प्रशंसा को सहन नहीं कर पाया और तत्काल उसने **वादिदेवसूरिजी** से वाद करने का संकल्प किया । वह **वादिदेवसूरिजी** की शोध में निकल पड़ा ।

उस समय वृद्ध **वादिदेवसूरिजी** किसी जंगल में से विहार कर रहे थे । उनकी शोध करता हुआ अहंकारी सिद्धसेन जंगल में आ पहुँचा और आचार्य भगवंत को देखकर बोला, **'मैं आपके साथ वाद करना चाहता हूँ ।'**

आचार्य भगवंत ने कहा, `वाद करने की तुम्हारी भावना स्वीकार्य है, किंतु वाद तो राजसभा में विद्वानों की उपस्थिति में होना चाहिए, ताकि विद्वान् लोग जय-पराजय का सत्य निर्णय कर सके । इस जंगल में हम शास्त्रार्थ कैसे कर सकेंगे ?'

आचार्य भगवंत की नेक सलाह भी सिद्धसेन के गले नहीं उतर पाई । **जब वस्त्र पर काला रंग चढ़ा होता है, तब उस वस्त्र को अन्य रंग से रंगना असंभवित हो जाता है, उसी प्रकार जब व्यक्ति अभिमान से ग्रस्त होता है, तब उसे न्यायपूर्ण नेक सलाह भी पसंद नहीं आती है ।**

सिद्धसेन ने कहा, `वाद के लिए देरी किस बात की ? वाद तो अभी होना चाहिए । और वाद में जय-पराजय के निर्णायक का ही सवाल है, तो गाय को चरानेवाला यह गोपाल ही अपना निर्णायक बन जाएगा ।'

यद्यपि आचार्य भगवंत को सिद्धसेन की बात दिल से मंजूर नहीं थी, फिर भी समयज्ञ आचार्य भगवंत ने उसकी बात स्वीकार कर ली ।

चर्चा के प्रारंभ के पूर्व उस गोपालक को निर्णायक बना दिया गया ।

सर्वप्रथम सिद्धसेन ने अपना मत प्रस्थापित किया । उसे पता था कि आचार्य भगवंत सर्वज्ञ शासन के अनुयायी हैं, अतः उसने सर्वज्ञत्व के अस्तित्व के निषेध में अनेकविध युक्ति-प्रयुक्तियों के साथ अस्खलित प्रवाह में संस्कृत भाषा में अपना मत स्थापित किया ।

उन्होंने अपनी भाषा में अपने पांडित्य का पूरा-पूरा प्रदर्शन किया था, परंतु वह सब **'भैंस के आगे भागवत'** की तरह उस गोपाल के आगे निरर्थक था ।

उसके बाद समयज्ञ आचार्य भगवंत ग्रामीण भाषा में नाचते हुए एवं ताली बजाते हुए सरल उपदेश देते हुए बोले,

'नवि मारियइ नवि चोरियइ, परदारगमण निवारियइ ।
थोवा थोवं दाइयइ, सग्गि टुकु टुकु जाइयइ ।।'

अर्थ :– हिंसा न करें, चोरी न करें, परस्त्री गमन न करें और जो कुछ भी पास में हो उसमें से थोड़ा-थोड़ा दान करे, यह सब करने से धीरे-धीरे स्वर्ग की ओर आगे बढ़ा जाता है ।'

आचार्य भगवंत तालबद्ध रूप से नाचते हुए इस प्रकार बोले कि वह ग्रामीण गोपाल एकदम खुश हो गया और उसने तुरंत ही निर्णय दे दिया कि जो आचार्य भगवंत ने कहा, वह सत्य है ।

पंडित सिद्धसेन का अभिमान बर्फ की तरह गल गया । तुरंत ही उसने अपनी हार स्वीकार करी ली वह आचार्य भगवंत का शिष्य बनने के लिए तैयार हो गया ।

परंतु आचार्य भगवंत ने कहा, 'भाई ! अपने वाद का निर्णय गोपाल क्या करेगा ? जय-पराजय का वास्तविक निर्णय विद्वानों की सभा में होना चाहिए ।' उसके बाद राजसभा में **वृद्धवादिसूरिजी** व सिद्धसेन का पुनः वाद हुआ और वाद में **वादिदेवसूरिजी म.** ने सर्वज्ञत्व की सिद्धि के अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करके सिद्धसेन को मौन कर दिया ।

सिद्धसेन ने भी अपनी हार स्वीकार कर ली और उसने अपने **वादिदेवसूरिजी** का शिष्यत्व स्वीकार लिया । सिद्धसेन दीक्षित बनकर **कुमुदचन्द्रमुनि** बने, जो आगे चलकर आचार्य पदवी के बाद **सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी** के नाम से प्रख्यात हुए ।

विक्रमादित्य को प्रतिबोध

एक बार **वृद्धिवादिदेवसूरिजी म.** के समर्थ शिष्यरत्न **सिद्धसेन महाराज** को प्राकृत भाषा में विरचित आगमों को संस्कृत में रूपांतरित करने का विचार आया । उन्होंने नमस्कार महामंत्र को **'नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय–सर्वसाधुभ्यः'** के रूप में संस्कृत में रूपांतरित कर उस पद को लेकर गुरु के पास गए । उनके इस कृत्य से गुरुदेव अत्यंत ही नाराज हुए ।

गुरुदेव ने कहा, 'तीर्थंकर परमात्मा सर्वज्ञ थे और गणधर भगवंत भी महान् ज्ञानी थे । उन्होंने ग्यारह अंगों की रचना प्राकृत में और चौदह पूर्व की रचना संस्कृत में की, इसके पीछे उनकी जनकल्याण की ही भावना थी । कहा भी है–

'बालस्त्रीमन्द-मूर्खाणां जनानुग्रहणाय सः
प्राकृतामिहाकार्षीदनास्थाऽत्र कथं हि वः ।।'

सिद्धसेन ने कहा– 'गुरुदेव ! मेरी भूल हो गई हैं, अतः मुझे योग्य प्रायश्चित्त प्रदान कर शुद्ध करे ।'

सिद्धसेनसूरिजी के इस अपराध के लिए उन्हें **पारांचित** प्रायश्चित्त दिया गया, जिसमें 12 वर्ष तक गुप्तवेष में रहकर कठोर तप के साथ किसी विशिष्ट राजा को प्रतिबोध देना था ।

महाज्ञानी सूरिदेव

सम्राट् विक्रमादित्य हाथी पर सवार होकर नगर भ्रमण कर रहे थे । उसी समय **सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.** सामने से आ रहे थे । विक्रमादित्य ने सुना था **'सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.** सर्वज्ञपुत्र कहलाते हैं ।' अतः उनके ज्ञान की परीक्षा करने के लिए उसने हाथी पर बैठे-बैठे ही मन से पूज्य आचार्यश्री को नमस्कार किया ।

तत्क्षण आचार्यश्री ने अपना हाथ ऊँचा कर **'धर्मलाभ'** की आशिष दी ।

आचार्यश्री की परीक्षा करने के लिए राजा ने कहा, 'मैंने आपको हाथ जोडकर नमस्कार नहीं किया, फिर भी आपने मुझे 'आशीर्वाद' दिया । क्या आपका 'धर्मलाभ' इतना सस्ता है ?

पूज्य आचार्यश्री ने कहा, 'राजन् ! नमस्कार तीन प्रकार से होता है– मानसिक, वाचिक और कायिक ! आपने काया से नमस्कार नहीं किया, परंतु मन से किया है ।

राजा ने कहा, 'आपको कैसे पता चला ?'

आचार्यश्री ने कहा, 'आपके आकार विशेष से !'

राजा ने कहा, 'अन्य साधु तो धनवान, पुत्रवान और दीर्घायु बनने का आशीर्वाद देते हैं, आपने इसमें से कोई भी आशीर्वाद न देकर **'धर्मलाभ'** का आशीर्वाद क्यों दिया ?'

आचार्य श्री ने कहा,

''दीर्घायुर्भव भण्यते यदि पुनस्तन्नारकाणामपि,
सौख्यार्थं धनवान् भवेद्यदि पुनस्तद्म्लेच्छकानामपि ।
संतानाय च पुत्रवान् भव पुनस्तत् कुर्कुटानामपि,
तस्मात् सर्वप्रदोऽस्तु भवतां श्री धर्मलाभः श्रिये ।।''

'यदि मैं **'दीर्घायु भव'** का आशीर्वाद देता हूँ तो दीर्घ आयुष्य तो नारक जीवों को भी होता है । उस दीर्घायुष्य से वे सुखी कहाँ !

यदि सुखी बनने के लिए **'धनवान् भव'** का आशीर्वाद देता हूँ तो वह धन तो हिंसक, व्यभिचारी आदि के पास भी होता है ।

यदि **पुत्रवान् भव** का आशीर्वाद देता हूँ तो अधिक बच्चे तो मुर्गी और गधी को भी होते हैं, परंतु इससे वे सुखी कहाँ !

इसी कारण 'सच्चे सुख को प्रदान करनेवाले **'धर्मलाभ'** का आशीर्वाद दिया है ।'

इस बात को सुनकर राजा बहुत खुश हो गया । उसने आचार्यश्री को एक करोड सुवर्ण (सोनामहोर) देने का वचन दिया ।

आचार्यश्री ने कहा, 'हम तो भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करते हैं-हमें धन की आवश्यकता नहीं है ।'

आचार्यश्री की निःस्पृहता को जानकर राजा ने भी वह धन वापस लेने से इन्कार कर दिया ।

आखिर आचार्यश्री की अनुमति से वह धन जीर्ण मंदिरों के उद्धार में व्यय किया गया !

'धर्मलाभ' ही एक पूर्ण आशीर्वाद है । शुद्ध धर्म की साधना ही मोक्ष का कारण है । उस धर्म की आराधना से जब तक आत्मा का मोक्ष न हो, तब तक आत्मा को संसार में भी अर्थ और काम के ऊँचे सुख ही प्राप्त होते हैं । सिर्फ धन व पुत्र आदि तो पापानुबंधी पुण्य के उदय से भी प्राप्त हो सकते हैं, परंतु उनकी प्राप्ति के बाद भी मनुष्य सुखी हो जाएगा, ऐसी गारंटी कहाँ है ?

धनवान व्यक्ति भी रोगी है-प्रतिकूल पुत्र-पत्नीवाला है तो वह सुखी कहाँ ? व्यक्ति पुत्रवान हो, परंतु वह पुत्र, आज्ञांकित नहीं हो तो सुख कहाँ । वह तो सिरदर्द को बढ़ानेवाला ही होता है ।

अतः सच्चे धर्म की आराधना ही मनुष्य को सच्चा सुख प्रदान कर सकती है ।

अवधूत के वेष में रहे **सिद्धसेनसूरिजी म.** गांव गांव घूमने लगे । एक बार क्रमशः घूमते हुए उज्जयिनी नगरी में पधारे और वहां महाकाल के मंदिर में शिवलिंग की ओर पैर करके सो गए । सुबह होने पर पूजारी ने उन्हें उठाने की कोशिश की, परंतु उसके सभी प्रयत्न निष्फल गए । पूजारी ने जाकर राजा को शिकायत की । राजा की आज्ञा से वह पूजारी अवधूत वेष में रहे **सिद्धसेनसूरिजी** को चाबूक से पीटने लगा । परंतु आश्चर्य ! चाबूक के मार में भी अवधूत योगी पूर्ण स्वस्थ थे, जब कि अंतःपुर के भीतर रही रानियाँ चाबूक के प्रहार से चिल्ला रही थी ।

इस बात का पता चलने पर राजा ने अवधूत को पिटना बंद कराया और स्वयं महाकाल के मंदिर में आकर उपस्थित हो गया ।

राजा ने कहा, `शिवलिंग की ओर पैर करके आपको नहीं सोना चाहिए ।'

बैठकर सिद्धसेन ने कहा, `राजन् ! तुम जिन्हें विश्व वंद्य कहते हो, वह इस पद के योग्य नहीं है ।

राजा ने पुनः पूछा, `कैसे ?'

सिद्धसेन ने कहा, `यह लिंग मेरे नमस्कार को सहन करने में शक्तिमान नहीं है ।

राजा ने कहा, `ऐसा नहीं हो सकता है । आप प्रत्यक्ष दिखाओं तो मैं मानने के लिए तैयार हूँ ।'

उसी समय **सिद्धसेनसूरिजी** ने **कल्याण मंदिर स्तोत्र** की रचना प्रारंभ की । कल्याण मंदिर के 11 वें श्लोक के उच्चारण के साथ ही शिव लिंग में से धुआँ निकलने लगा, थोडी ही देर में लिंग फटा और बिंब प्रगट हुआ । 32 वें श्लोक में वह प्रतिमा स्थिर हो गई ।

यह सब देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । पूज्य आचार्य भगवंत ने आदि से लेकर अंत तक **'अवंति पार्श्वनाथ'** प्रभु का इतिहास बतलाया, और कहा कि अवंतिसुकुमाल के पुत्र महाकाल ने अवंति पार्श्वनाथ का मंदिर बनाया था । उसके बाद हुए जैन धर्म के द्वेषी पुष्यमित्र राजा ने वहां

महादेव का मंदिर बना दिया था । प्रतिबुद्ध हुए विक्रम राजा ने जैन धर्म स्वीकार किया । विक्रमादित्य के अधीन अन्य 18 राजाओं ने भी जैनधर्म स्वीकार किया ।

उन्हें **'दिवाकर'** का बिरुद प्रदान किया, तब से वे **'सिद्धसेन दिवाकर'** के नाम से जगत् में प्रसिद्ध हुए ।

शिवमंदिर के रूप में बदला हुआ अवंति पार्श्वनाथ का तीर्थ पुनः प्रकाश में आया । इस प्रतिमा के प्रभाव से जैन शासन का यश चारों दिशाओं में फैला । आज भी यह तीर्थ उज्जैन में क्षिप्रानदी के तट पर विद्यमान है ।

जैन शासन के महान् प्रभावक **सिद्धसेनदिवाकरसूरि** द्वारा विरचित न्यायवतार, सम्मतितर्क, द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका तथा कल्याणमंदिर स्तोत्र आदि आज भी विद्यमान है । जो उनकी सूक्ष्म, तीक्ष्ण-प्रज्ञा व प्रतिभा की याद दिलाते हैं ।

मंदिर-निर्माण

एक बार ॐकारपूर के जैन संघ ने सिद्धसेनसूरिजी के आगे निवेदन किया कि यहाँ के ब्राह्मण हमें जिन मंदिर निर्माण में विघ्न डाल रहे है ।

सिद्धसेनसूरिजी ने संघ को आश्वासन देते हुए कहा, 'थोड़ा धैर्य रखों, सब ठीक होगा ।'

उसके बाद सिद्धसेनसूरिजी उज्जैन पधारे । उनके उपदेश से विक्रमादित्य ने ॐकारपुर में जैन मंदिर का निर्माण कराया और वहां ॐकार पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की, इतना ही नहीं, मंदिर के रक्षण के लिए राजा ने बारह गांव भेंट भी दिए ।

यह स्थान आज 'एकलिंग' के रूप में प्रसिद्ध है । वहां जिनालय के बदले शिवालय है । वहां चारों ओर देहरियों में जैन चिह्न विद्यमान हैं, इससे ख्याल आता है कि वहां जैन मंदिर था, जिसे ब्राह्मणों ने शिवमंदिर में बदल दिया । उसके पास नागदा हैं, वहां भी प्राचीन जैन मंदिर है तथा अनेक जैन मंदिरों के खंडहर आज भी है ।

विद्या प्राप्ति

एक बार **सिद्धसेनसूरिजी म.** विहार करते हुए चित्तोड पधारे । वहां उन्होंने एक प्राचीन स्तूप देखा । उन्होंने देखा, 'यह स्तूप किसी लकडी या पत्थर का नहीं है । किंतु लेप्यमय पदार्थों से बना है । इसे खोलने के लिए कइयों ने प्रयत्न किए, परंतु किसी को सफलता नहीं मिली ।

आचार्यश्री ने खूब बारीकी से उसका निरीक्षण किया । अपनी घ्राण शक्ति द्वारा लेप के पदार्थों को जान लिया, फिर उन द्रव्यों का प्रयोग कर उस स्तूप के आवरण को हटा दिया ।

उस स्तूप में अनेक ताडपत्रीय पुस्तकें थीं । आचार्यश्री ने हाथ डाला और एक पन्ना उठा लिया । वे उसे पढने लगे । उस ताडपत्र में सुवर्ण सिद्ध का प्रयोग और सरसों में से सैनिक पैदा करने की विद्या थी ।

उसी समय शासन देवता प्रकट हुए । उनके हाथ में रहा पन्ना छीन लिया और बोले, शासन प्रभावना के लिए जितनी आवश्यकता हैं, उतना तुम्हें मिल गया है ।' उसी समय वह पन्ना स्तूप में रख दिया गया और स्तूप का द्वार बंद हो गया ।

आचार्यश्री को दो विद्याएं प्राप्त हो गई ।

(1) सर्षप विद्या के प्रभाव से सरोवर में डाले सर्षप के अनुपात में शस्त्र सहित सैनिक निकलते थे, जो दुश्मन का नाश कर पुनः सरोवर में अदृश्य हो जाते थें ।

(2) स्वर्ण सिद्धि विद्या से कोई भी धातु सोने में बदल जाती थी ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक बार पू. आचार्य भगवंत विहार करते हुए कर्मारगांव पधारे ! पूज्यश्री के उपदेश से देवपाल राजा ने जैन धर्म का स्वीकार किया ।

आचार्य भगवंत उसी नगर में बिराजमान थे, तभी कामरुदेश के राजा विजयवर्मा ने उस नगर पर आक्रमण कर लिया । देवपाल राजा के पास धनशक्ति और सैन्य बल परिमित था । विजयवर्मा के पास धन व सैन्यबल अधिक था । राजा ने अपने रक्षण के लिए पूज्य आचार्य भगवंत को विनंति की ।

आचार्य भगवंत ने अपनी विद्याओं के प्रयोग द्वारा उसे सुवर्ण व सैन्य बल में मदद की ।

देवपाल ने आचार्यश्री की मदद से विजयवर्मा को हरा दिया । इससे राजा व प्रजा में आनंद छा गया ।

विराट् छ'री पालक संघ

सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म. की प्रेरणा से सम्राट् विक्रमादिव्य ने अवंति से शत्रुंजय महातीर्थ का छ'री पालक संघ का आयोजन किया । इस संघ में 14 मुकुटबद्ध राजा, 70 लाख श्रावकों के कुटुंब, **सिद्धसेनसूरिजी** आदि 500 साधु, 169 स्वर्ण मंदिर, 300 रजतमंदिर, 500 हाथीदांत के मंदिर, 1800 चंदन के मंदिर, छ हजार हाथी तथा 18 लाख घोड़े आदि विराट् सामग्री थीं ! प्रभु महावीर के शासन में शत्रुंजय महातीर्थ का यह एक विराट् संघ था ।

भूल सुधार

आचार्यदेव सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी प्रकांड विद्वान ही नहीं, प्रचंड प्रतिभा संपन्न भी थे । उनकी जबान पर मानो साक्षात् सरस्वती नृत्य करती थी । उनके उपदेश अमृत का पान करने के लिए सम्राट् विक्रमादित्य आदि भी तरसते थे । उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा अनेक राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध दिया था ।

'संग जैसा रंग' के नियमानुसार राजा-महाराजाओं के अतिसंपर्क के कारण आचार्य भगवंत अपने साधु धर्म की आचार संहिता के परिपालन में उपेक्षा करने लगे और राजमहल में

जाने-आने के लिए पालखी-सुखासिका का उपयोग करने लगे । उनकी प्रचंड प्रतिभा के कारण कोई भी व्यक्ति उनकी इस आचार शिथिलता की ओर अंगुली उठाने की हिम्मत नहीं करता था ।

कर्णोपकर्ण यह बात **वृद्धवादीदेवसूरिजी म.** तक पहुँची । उनका करुणार्द्र हृदय पुकार उठा, **'अहो ! इस संसार में अज्ञानी मार्ग भूले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, परंतु सिद्धसेन जैसा ज्ञानी भी मार्ग भूल जाए तो यह कितना बड़ा आश्चर्य कहलाएगा ?'**

तुरंत ही आचार्य भगवंत ने अपने मार्ग भूले शिष्य को पुनः सन्मार्ग में प्रस्थापित करने का संकल्प किया और वृद्धवय में भी विहार करते हुए अपने मूल वेष को छिपाकर सिद्धसेन की पालखी उठाने वाले भारवाहक बन गए ।

सिद्धसेनसूरिजी म. पालखी में बैठ गए और **वादिदेवसूरिजी म.** उनकी पालखी उठाने लगे ।

वृद्धवादिदेवसूरिजी म. अतिवृद्ध होने से पालखी के वजन को अच्छी तरह से वहन नहीं कर पा रहे थे । अतः जब पालखी ऊंची-नीची होने लगी, तब **सिद्धसेनसूरिजी** ने उस भारवहक को संबोधित करते हुए कहा-

'भूरिभारभराक्रान्तः स्कन्धः किं तव बाधति ?'

हे भारवहक ! अति भार उठाने के कारण क्या तुम्हारा स्कंध पीड़ा अनुभव कर रहा है ?

भवितव्यतावश **सिद्धसेनसूरिजी म.** ने **'बाधति'** प्रयोग में भूल कर ली । यद्यपि वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे, फिर भी उनके मुख से **'बाधति'** का गलत प्रयोग हो गया । इस **'बाधति'** शब्द को सुनते ही **वृद्धवादिदेवसूरिजी** ने कहा :–

'न तथा बाधते स्कन्धो, यथा बाधति बाधते ।'

हे विद्वत् शिरोमणि ! मेरा स्कंध उतनी पीड़ा का अनुभव नहीं कर रहा है, जितनी पीड़ा का अनुभव आपका **'बाधति'** प्रयोग कर रहा हैं ।'

ये शब्द सुनते ही **सिद्धसेनसूरिजी म.** एकदम चौंक उठे–**'अहो ! मेरी भूल बताने वाले मेरे गुरुदेव के अलावा अन्य कौन हो सकता हैं ?'**

तुरंत वे पालखी में से नीचे उतर पड़े । वे अपने गुरुदेव को तत्काल पहचान गए और अपनी भूल की क्षमा याचना करने लगे ।

आचार्य गुरुदेव ने कहा, `वत्स ! शिष्य की शिथिलता का पाप गुरु को भी लगता है । तेरी भूल के निवारण के लिए ही मैं यहां आया हूँ । तेरे जैसे के लिए यह आचार की शिथिलता उचित नहीं है ।' समझदार को ईशारा पर्याप्त होता है । **सिद्धसेनसूरिजी म.** ने भी तुरंत अपनी भूल सुधार दी ।

साहित्य सर्जन

पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.सा. के अस्तित्वकाल में ब्राह्मण परंपरा में गौतम ऋषि ने **'न्यायसूत्र'** की रचना की थी तथा बौद्ध पंडित नागार्जुन ने

'मध्यमावतार' ग्रंथ की रचनाकर तर्कवाद की स्थापना की थी ।

उस समय प्रमाण व नय के पथार्थ स्वरूप को समझने के लिए **पू. आचार्य सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.सा.** ने संस्कृत भाषा में (1) **'न्यायावतार'** ग्रंथ की रचना की । उस ग्रंथ के 32 श्लोकों में उन्होंने पक्ष, साध्य, हेतु, दृष्टांत तथा हेत्वाभास आदि के जैन शासन को मान्य लक्षणों का निरूपण किया था । **'जैन न्याय'** का यह पहला ग्रंथ है ।

(2) सन्मति तर्क :– नयों के यथार्थ बोध के लिए उन्होंने **'सन्मति तर्क'** ग्रंथ की रचना की । इस ग्रंथ में 166 गाथाएं है । उसके प्रथम कांड में सप्त भंगी और नयों का सुंदर वर्णन किया है । द्वितीय कांड में दर्शन-ज्ञान की मीमांसा की है ।

उन्होंने अनेक युक्तियों के द्वारा केवली भगवंत को केवलज्ञान व केवल दर्शन रूप उपयोग एक ही होता हैं, इस बात का समर्थन किया ।

जबकि **श्री जिनभद्र गणि** क्षमाश्रमण ने पहले समय में केवलज्ञान व दूसरे समय में केवलदर्शन के उपयोग को आगम प्रमाण से सिद्ध किया है ।

तीसरे कांड में ज्ञेय तत्त्व तथा अनेकांतवाद का स्वरूप समझाया है ।

जैन प्रवचन का यह महान प्रभावक ग्रंथ है । आगम पंचांगी में भी इसका आदर पूर्वक उल्लेख किया है । इसी ग्रंथ पर **पू. आचार्य अभयदेवसूरिजी म.सा.** ने 25000 श्लोक प्रमाण तत्त्वबोध विधायिनी टीका रची है ।

श्रमण जीवन में गोचरी में आधाकर्मी भिक्षा में प्रायश्चित्त का विधान है, परंतु दर्शन शास्त्र के **'सन्मतितर्क'** आदि ग्रंथों के अभ्यास के लिए यदि किसी क्षेत्र में साधु को निर्दोष भिक्षा सुलभ न हो तो यतनापूर्वक अकल्प्य ऐसे आधा कर्म आदि का सेवन करे तो भी साधु को प्रायश्चित्त नहीं आता है, ऐसा उल्लेख है, इसी विधान से इस ग्रंथ की महिमा का ख्याल आ जाता है ।

(3) द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका :– इस ग्रंथ में 32 श्लोक प्रमाण की 32 बत्तीसियां है । वर्तमान में 31 उपलब्ध है । कुल 706 श्लोक मिलते है - शेष नष्ट हो चूके है ।

ये बत्तीसियाँ पद्य में है, उसमें अनेक छंदों में श्लोकों की रचना की गई है ।

महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सा. ने न्याय ग्रंथों में सन्मतितर्क और द्वात्रिंशद्वात्रिंका की छाया दिखाई देती है ।

इन बत्तीसियों में वाद, वेद, बौद्ध, सांख्य प्रबोध आदि में उन उन दर्शनों की चर्चा है ।

कुछ बत्तीसी में महावीर प्रभु की अद्‌भुत व बेजोड़ स्तुतियाँ हैं, जिन्हें देख पू. कलिकाल सर्वज्ञ **श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.** भी कहते है ।

'क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था, अशिक्षितालापकला क्व चैषा ?'

कहाँ **पू. आचार्य सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.** की वे महान अर्थवाली स्तुतियाँ और कहाँ अशिक्षित के आलापवाली मेरी स्तुतियाँ ?

(3) नयावतार :– द्वादशार नय चक्र की न्यायागमानुसारिणी टीका में इस ग्रंथ का उल्लेख मिलता है ।

गंध हस्ति विवरण :– पू. शीलांकाचार्यजी के निर्देशानुसार आचारांग के पहले अध्ययन पर **पू. आचार्य सिद्धसेनसूरिजी म.** ने **गंध हस्ति** विवरण की रचना की है ।

विविध-उपमाएं

वीर निर्वाण लगभग 500 में **पू. आचार्य सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.सा.** का कालधर्म हुआ ।

सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी के कालधर्म के बाद हुए अनेक महापुरुषों ने उन्हें अनेक उपमाएं दी है ।

(1) **पू. हरिभद्रसूरिजी म.** ने स्व रचित **'पंच वस्तु'** में उन्हें **श्रुतकेवली** कहा है–

'सुअ केवलिया जओ भणियं ।
आयरिय सिद्धसेणेण, सम्मइए पइट्ठिअजसेण ।
दूस्सयणिसा-दिवायर, कप्पत्तणओ तदक्खेया ।।

दूषम काल की रात्रि में सूर्य समान होने से दिवाकर नाम वाले और प्रतिष्ठित यशवाले **सिद्धसेनसूरिजी म.** ने कहा है–

(2) आचार्यश्री की बहन ने भी दीक्षा ली थी, जिसका नाम सिद्धश्री रखा था । संदेश वाहक ने आकर आचार्यश्री के कालधर्म के समाचार देते हुए कहा, **'स्फुरन्ति वादिखद्योता सम्प्रति दक्षिणापथे !**
अर्थ : दक्षिणपथ में अब वादी रूपी जुगनु खिल रहे है ।'

यह बात सुनकर सिद्धश्रीने कहा–

'नूनमस्तं गतो वादी, सिद्धसेनदिवाकरः ।'

– सचमुच, **सिद्धसेनदिवाकर** नाम के वादी का स्वर्गवास हो गया है ।

(3) स्याद्वाद रत्नाकर में **वादिदेवसूरिजी म.** ने उन्हें **'अद्वितीय ग्रंथकार'** कहा है ।

(4) कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यश्री ने अपने व्याकरण में **सिद्धसेनदिवाकर** को **'सर्वश्रेष्ठ कवि'** की उपमा दी है **अनुसिद्धसेनं कवयः ।**

(5) समरादित्य चरित्र के संस्कृत में कर्ता प्रद्युम्नसूरि ने उन्हें **'महावादी'** की उपमा दी है ।

(6) प्रभावक चरित्र में प्रभाचंद्रसूरि ने उन्हें **'समर्थ प्रभावक'** कहा है ।

(7) यशोविजयजी म. ने समकित की सज्झाय में उन्हें **'कवि प्रभावक'** कहा है ।



स्वर्गवास–वीर संवत् 547

आ.श्री सिंहगिरिसूरिजी

स्तुति

सिंह सत्त्वधारक सिंहगिरि, बारहवें है पट्टधरा,
थे शिष्य उनके मंत्र ज्ञाता, आर्य समितसूरीश्वरा,
तापस प्रतिबोधन से तब, शाखा चली ब्रह्मदीपिका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।16।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 12 वें पट्टधर के रूप में **आचार्य सिंहगिरिजी** हुए । उनका विशेष जीवन चरित्र उपलब्ध नहीं है । वे कौशिक गोत्रीय थे और प्रकांड विद्वान् थे । उनके मुख्य चार शिष्य थे ।

(1) स्थविर आर्य समितसूरिजी :– वे महान् प्रभावक वज्रस्वामीजी के सांसारिक मामा थे । इनके संयम से प्रभावित होकर ब्रह्मद्वीप के तापसों ने उनके पास दीक्षा ली थी, जिससे ब्रह्मदीपिका शाखा निकली थी ।

(2) आर्य धनगिरि :– वे वज्रस्वामी के पिता थे । गर्भवती पत्नी को छोड़कर उन्होंने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी ।

(3) आर्य वज्रस्वामी :– वे धनगिरि के पुत्र थे और सिंहगिरि के पट्टधर हुए थे ।

(4) आर्य अर्हद् दत्त

आर्य सिंहगिरि जातिस्मरण ज्ञान के धारक थे । उनके शासन में जिनशासन की खूब प्रभावना हुई थी । वीर संवत् 547 में उनका समाधि पूर्वक कालधर्म हुआ था ।

मंत्र प्रभावक आचार्य समितसूरिजी-9

तुंबवन गांव में धनपाल नाम का गौतम-गोत्रीय वैश्य रहता था । उसके पुत्र का नाम **समित** और पुत्री का नाम **सुनंदा था** । समित की धनगिरि के साथ मैत्री थी । धनपाल ने अपनी पुत्र **सुनंदा** का विवाह **धनगिरि** के साथ करवाया था ।

सद्गुरु के समागम से विरक्त बने **समित** ने आर्य **सिंहगिरि** के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा अंगीकार करने के बाद समित मुनि ने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया, आगे चलकर वे मंत्र शास्त्र में निष्णात बने । उनकी योग्यता–पात्रता देखकर गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया । वे आर्य **समितसूरि** के नाम से प्रख्यात हुए ।

सुनंदा के गर्भवती बनने के बाद धनगिरि ने भी आचार्य सिंहगिरि के पास भागवती-दीक्षा अंगीकार की । उसी सुनंदा के पुत्र ने भी आगे चलकर दीक्षा ली थी ।

आभीर देश में **अचलपुर** नाम का गांव था, उस गांव के पास कृष्णा और पूर्णा नदी के बीच तपस्वियों का एक आश्रम था । उस आश्रम में एक तापस लोगों को चमत्कार दिखाकर अपनी और आकर्षित कर रहा था ।

वह अपने पांवों में लेप लगाकर नदी की जल सतह पर भूमि की तरह चलता था । वह नदी के जल पर चलकर गांव में भिक्षा के लिए आने जाने लगा । यह दृश्य प्रत्यक्ष देख गांव के लोग आश्चर्य चकित हो, तापस की प्रशंसा करने लगे ।

चारों ओर उस तपस्वी के तप धर्म की प्रशंसा होने लगी ।

लोग उस तापस पर प्रशंसा के फूल बरसाने लगे, `अहो ! उसके जैसा तपस्वी दुनिया में और कौन होगा, जो इस प्रकार जल में पानी की सतह पर चलता हो । तापस के प्रति लोगों के इस आकर्षण को देख कुछ श्रावकों ने आचार्य भगवंत को विनती करते हुए कहा, `गुरुदेव ! ये आभीर लोग उस तापस के चमत्कार को देख उनके भक्त बन गए हैं, परंतु जैन लोग भी तापस से प्रभावित हो रहे है । आप इस नगर में पधारकर कुछ चमत्कार दिखलाए तो जैन लोग अपने धर्म में स्थिर रह सकेंगे ।

आचार्य भगवंत ने कहा, `अपने जैन शासन में भी भूतकाल में अनेक मंत्र प्रभावक आचार्य हुए है और वर्तमान में भी **खपुटाचार्य, महेन्द्रसूरि** जैसे अनेक प्रभावक आचार्य है ।

जैन शासन के प्रभावक आचार्य मंत्र-तंत्र के ज्ञाता होने पर भी वे अपनी आत्म-साधना में मस्त होते है, अतः वे किसी प्रकार का चमत्कार दिखलाते नहीं है ।

मैं यह मानता हूँ कि वह तापस जो चमत्कार बतला रहा हैं, वह कोई चमत्कार नहीं है । परंतु हाथ सफाई मात्र है । पांवों में अमूक द्रव्यों का लेप करने पर मनुष्य पानी की सतह पर भूमि की तरह चल सकता है ।

उस तापस के भंडाफोड़ का उपाय मैं तुम्हें दिखलाता हूँ– **'तुम उसे आदरपूर्वक भोजन का आमंत्रण देना । भोजन के पूर्व गर्म जल से उसके दोनों पांव बराबर घिसकर धो देना । जिससे उसका लेप निकल जाएगा । फिर क्या होता है वह सब तुम प्रत्यक्ष देख सकोंगे ।'**

बस, दूसरे दिन श्रावकों ने उस तापस को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रण दिया ।

जैनों का आमंत्रण उस तापस ने तुरंत स्वीकार लिया । दूसरे दिन वह तापस भोजन के लिए श्रावकों के घर आया । श्रावकों ने गर्म उसके दोनों पांव जल से बराबर धो दिये ।

वह तापस पादप्रक्षालन के लिए मना करने लगा, परंतु श्रावकों ने कहा, **'यह तो हमारा रिवाज है ।'** गर्म पानी के कारण तापस का लेप निकल चूका था । फिर भी सोचने लगा, `कुछ अंश में लेप रहा होगा, अतः मैं नदी पार कर पाऊंगा ।'

भोजन के बाद वह तापस नदी किनारे आया । अनेक लोग तापस के चमत्कार को देखने के लिए नदी तट पर आए ।

तापस ने नदी में पांव रखा । परंतु यह क्या ? वह तो नदी में डूबने लगा ।

तापस को डूबते देख लोग चिल्लाने लगे, 'अरे ! यह तापस तो पानी में डूब रहा हैं ।'

इसी बीच मंत्र प्रभावक **समितसूरिजी म.** वहां उपस्थित हो गए ।

उनके आगमन के साथ ही वातावरण शांत हो गया । उन्होंने किसी श्रावक द्वारा नदी में चूर्ण डलवाया और वे बोले, **'हे कृष्णा और पूर्णा नदियों ! मुझे सामने किनारे जाना है, मुझे मार्ग दो !'**

उसी समय चमत्कार हो गया । दोनों नदियां संकुचित हो गई । जाने का मार्ग खुला हो गया । सूरिजी उस तापस को लेकर ब्रह्मद्वीप पर गए । वहां रहे 500 तापसों ने आचार्यश्री का महान प्रभाव देखा और वे आचार्यश्री के चरणों में गिर पड़े । आचार्यश्री ने कहा, **'इन चमत्कारों से कोई आत्म कल्याण होनेवाला नहीं है । आत्म कल्याण के लिए तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधना जरूरी है ।'**

सभी तापसों को आचार्यश्री की बात पसंद पड़ी । सभी ने उनके चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की । **समितसूरि** द्वारा जो परंपरा चली वह ब्रह्मदीपिका शाखा हुई ।

ईसाई मत

आचार्य सिंहगिरिसूरिजी के अस्तित्व काल में ईसाई मत के प्रवर्तक ईसामसीह भारत आए थे । उन्होंने जैन धर्म का भी अभ्यास कर उसकी कई बातें अपने मत में अपनाई थी ।

'इंजिल में लिखा है कि' उस समय दरम्यान ईसा का ज्ञान बढने लगा तथा उसकी आत्मा भी बलवान् हुई ।' अर्थात् ईसामसीह ने 13 से 30 वर्ष तक ज्ञान प्राप्त कर आत्मा का विकास किया था ।

रूस के यात्रिक मो. निकोलस नोटो विशे संपादित "Unknown Life of Jesus Christ" में लिखा है कि– 13 वर्ष की उम्र में ईसामसीह विवाह न कर व्यापारियों के काफिले के साथ गुप्त रूप से सिंध चला गया था, वहां से वह काशी गया । उसे वैश्य व शुद्रों की संगति पसंद थी। वहां 6 वर्ष रहकर धर्म ज्ञान प्राप्त किया था । कपिलवस्तु में जाकर बौद्धमत का भी ज्ञान प्राप्त किया था । इस प्रकार 12 वर्ष रहकर ईरान गया था । वहां धर्म का उपदेश देता हुआ 30 वर्ष की उम्र में जेरुसलम पहुँचा था ।

''दी क्रूसी फ्रीकेशन बाय एन आइ वीटनेस'' में लिखा है कि 'जेरुसलम में आकर ईसु आदर्श मंडल का सभ्य बना था ।''

गुप्त मंडल के एक इसीर के पत्र से पता चलता है कि 'रोमन सुबा पाइलेट ने ईसु को क्रोस पर चढाया तब वह मरा नहीं था परंतु मूर्च्छित हो गया था जोसफ उसके देह को ले गया था और निकोदमस ईसीरे ने उसे ठीक किया था । उसके बाद ईसु गुप्त ही रहे थे । वे गुप्त रीति से धर्म प्रचार करते थे । इस बीच वे अपने शिष्यों से 10 बार मिले थे ।

ईसु ने जैन धर्म की कई प्रथाओं का स्वीकार किया था ।

(1) महावीर प्रभु के 11 गणधर व 1 शिष्याभास (गोशाला) था । ईसु के भी 11 सुशिष्य व 1 शिष्याभास था ।

(2) प्रभु समवसरण में बैठकर देशना देते थे ईसु पहाड पर बैठकर उपदेश देते थे, जो गिरि प्रवचन कहलाते है ।

(3) जैन लोग 50 वे दिन संवत्सरी मनाते है । बाईबल करार दूसरा अध्याय-2 में 50 वें दिन 11 शिष्यों के प्रवचन प्रारंभ होने का मानते है ।

(4) जैन अष्टमी-चतुर्दशी को विशेष आराधना प्रतिक्रमण करते है । ईसाई प्रति रविवार को पाप का स्वीकार करते है ।

(5) जैन परिषहों को सहने में साधुता मानते है । ईसाई मत में भी 'कोई एक गाल पर तमाचा मारे तो उसके आगे दूसरा गाल रखने का निर्देश है ।'

(6) जैन तीर्थंकरों की प्रतिमा मानते है ईसाई भी ईसामसीह के चित्र को मानते है और उसकी पहिचान के लिए ईसुख्रिस्त का नाम या रोटी की टोकरी के साथ मछली का चित्र रखते है ।

छठा निह्नव-रोहगुप्त-10

(त्रैराशिकमत)

भगवान महावीर के निर्वाण के 544 वर्ष के बाद में रोहगुप्त नाम का निह्नव हुआ । अंतरंजिका नगरी में श्रीगुप्त नाम के विद्वान पूर्वधर महात्मा थे ।

उसी नगरी में एक पोट्टशाल नाम का परिव्राजक आया । उसे अपने ज्ञान का खूब अभिमान था । **'मेरे ज्ञान से मेरा पेट कहीं फट नहीं जाय'** इसलिए वह अपने पेट पर लोहे का पट्टा बांधता था । हाथ में जामुन वृक्ष की डाली लेकर घूमता था, वह मानता था कि इस जंबूद्वीप में मेरे जैसा कोई विद्वान नहीं है ।

राजसभा में आकर बोला, **'इस नगर में कोई वादी हो तो मैं उसके साथ वाद करने के लिए तैयार हूँ ।'** राजा ने नगर में पोट्टशाल से वाद करने के लिए पटह बजवाया ।

श्रीगुप्त आचार्य के रोहगुप्त नाम का एक विद्वान शिष्य था । वह पास के गाँव में रहा हुआ था । अपने गुरुदेव के आगमन को जानकर वह गुरु वंदन के लिए आ रहा था-तभी उसने पोट्टशाल से वाद करने का पटह सुना ।

रोहगुप्त ने वह पटह स्वीकार कर लिया और गुरुदेव की अनुमति लेने के लिए गुरुदेव के पास आया ।

उसने गुरुदेव को कहा, 'जैन शासन की हीलना न हो इसलिए इस पटह का मैंने स्वीकार लिया है ।'

गुरुदेव ने कहा, 'उसके पटह को स्वीकार कर तुमने ठीक नहीं किया ।'

रोहगुप्त ने पूछा, 'क्यों ?'

'वह कपटी वादी है । वाद में हार गया तो वह प्रतिवादी को अपनी विद्याओं के बल से परेशान किए बिना नहीं रहता है ।'

रोहगुप्त ने कहा, **'आपकी बात सही है, परंतु मैंने उसकी बात स्वीकार ली है, अब वाद न होगा तो जैन शासन की हीलना होगी ।'**

गुरुदेव ने कहा, 'तुम जीत जाओगे तो वह विद्याओं का प्रयोग करेगा । उससे बचने के लिए मैं तुम्हें पाठसिद्ध 7 विद्याएँ देता हूँ । वह तुम पर चूंहे छोड़ेगा तो तुम बिल्ली छोड़ना । वह तुम पर साँप छोड़े तो तुम नेवला छोड़ना । वह तुम पर हिरण छोड़े तो तुम सिंह छोड़ना, वह तुम पर बिच्छू छोड़े तो तुम मोर छोड़ना । इस प्रकार करने से उसकी विद्याएँ निष्फल हो जाएगी ।

फिर भी कोई अन्य विद्या प्रयोग करे तो मैं तुम्हें अभिमंत्रित रजोहरण देता हूँ । इस प्रकार गुरु से अनुमति लेकर रोहगुप्त राजसभा में गया । राजसभा में पोट्टशाल व रोहगुप्त आमने-सामने आ गए । वादी-प्रतिवादी का वाद प्रारंभ हुआ ।

वाद में पोट्टशाल की शर्त थी कि मैं जो बात रखूँ उसका प्रतिवादी खंडन करे ।

उस पोट्टशाल ने जैन मत को मान्य पदार्थ की स्थापना की ।

उसने कहा, **'जगत् में दो राशि है-जड और चेतन ।'**

रोहगुप्त ने सोचा, **'अहो ! यह तो जैन मत की मान्यता है, इसका कैसे खंडन किया जाय ?'** फिर भी वादी को जीतने की अभिलाषा से उसने कहा, **'जगत् में तीन राशि हैं- जीव, अजीव और नो जीव । वादी ने कहा- काल दो हैं-दिन और रात ।'**

रोहगुप्त ने कहा, **'काल तीन हैं-दिन, रात और संध्या काल ।'** इस प्रकार पोट्टशाल दो-दो वस्तुएँ बताने लगा तो रोहगुप्त उसे तीन-तीन वस्तुएँ बताने लगे ।

आखिर पोट्टशाल की हार हुई । निराश हुए पोट्टशाल ने अपनी विद्याओं का प्रयोग चालू किया । रोहगुप्त ने विरोधी विद्याओं द्वारा उसे जीत लिया ।

आखिर पोट्टशाल ने गर्दभी विद्या फेंकी तो रोहगुप्त ने अभिमंत्रित ओघा घुमाया । वह गर्दभी विद्या वापस लौटी और गधी के रूप में पोट्टशाल के ऊपर पेशाब कर अदृश्य हो गई ।

परिव्राजक की हार और रोहगुप्त की जीत हो गई । रोहगुप्त अपने गुरुदेव के पास आया । उसने सारी घटना का वर्णन किया ।

रोगगुप्त के मुख से त्रिराशि की प्ररूपणा की बात सुनकर गुरुदेव ने कहा, 'रोहगुप्त ! तुमने जैन शासन की प्रभावना की, यह बहुत अच्छा किया परंतु जिन मत से विरुद्ध त्रिराशि की बात कही, वह अच्छा नहीं किया, अतः राजदरबार में जाकर अपनी भूल के लिए **'मिच्छा मि दुक्कडं'** देकर आ जाओ ।

अपनी भूल की क्षमा मांगने में रोहगुप्त का अभिमान बाधक बना । वह क्षमा मांगने के लिए तैयार नहीं हुआ । गुरुदेव ने खूब समझाया । जिनमत से विरुद्ध प्ररूपणा के अनर्थ भी समझाए परंतु उसने अपना हठाग्रह नहीं छोड़ा ।

आखिर गुरुदेव ने उसे संघ से बाहर कर दिया ।

प्रभु वीर के शासन में वह छठा निह्नव कहलाया । उसने अपना त्रैराशिक मत चलाया । उसके मत में द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक और उभयास्तिक ये तीन नय थे ।



जन्म–वीर संवत् 496
दीक्षा–वीर संवत् 504

उम्र–88 वर्ष
स्वर्गवास–वीर संवत् 584
विक्रम संवत् 114

युगप्रधान वज्रस्वामीजी

स्तुति

आजन्म वैरागी अनुपमज्ञानी दशपूरवधरा,
प्रतिबोधकर रुक्मणि के, गिरिराज के उद्धारका,
श्री वज्रस्वामीजी करे, तब वैरीशाखा स्थापना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।17।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 13 वें पट्टधर के रूप में **पू. आचार्य सिंहगिरिसूरिजी** के पट्टधर **युगप्रधान पू. वज्रस्वामी** हुए । उनका जन्म वीर संवत् 496 में, दीक्षा वीर संवत् 504 में युगप्रधान पद वीर संवत् 548 में तथा स्वर्गवास वि.सं. 584 में हुआ था ।

अवंती देश !

तुंबवन नगर !!

उस नगर में **धन** श्रेष्ठी रहता था । वह अत्यंत ही न्यायप्रिय और पापभीरु था । उस धन श्रेष्ठी को धनगिरि नाम का इकलौता बेटा था । पूर्वभव की आराधना और सुसंस्कारों के फलस्वरूप बाल्यकाल से ही धनगिरि के मन में संसार के प्रति विरक्ति का भाव था ।

यौवन में काम-उन्माद की अधिक संभावना रहती है । बिहावने जंगलों को निर्भयता से पार करने में समर्थ नवयुवक भी यौवन के वन में जहाँ-तहाँ भटक जाता हैं । परन्तु विरल आत्माएँ ऐसी होती हैं जो यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने पर भी यौवन का उन्माद उनके अन्तर्मन को छू नहीं पाता है ।

काजल से भरी कोठरी में प्रवेश करने के बाद बेदाग बाहर निकलना कठिन है, उसी प्रकार यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के बाद भोग सुखों से अलिप्त रहना, अत्यंत कठिन है ।

धनगिरि अलग ही माटी का इंसान था । उसके दिल में भौतिक सुखों का लेश भी आकर्षण नहीं था...उसे वैषयिक सुख अत्यंत ही तुच्छ प्रतीत होते थे ।

उसी नगरी में **धनपाल** नाम का सेठ रहता था । उसके **आर्यसमित** नाम का पुत्र और **सुनंदा** नाम की पुत्री थी । यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही चंद्रमा की सोलह कलाओं की भाँति सुनन्दा का रूप सौंदर्य एकदम खिल उठा था ।

सुनंदा ने धनगिरि के बाह्य सौंदर्य को देखा और उसे अपने दिल में बसा लिया । उसने मनोमन धनगिरि के साथ शादी करने का संकल्प किया ।

सुनंदा धनगिरि को दिल से चाहती थी, परन्तु धनगिरि के मन में सुनंदा के प्रति कुछ भी आकर्षण नहीं था । उसके मन तो रूपवती नारी एक मात्र हाड़-मांस की पुतली ही थी ।

आखिर, नारी देह में है क्या ? साक्षात् रति की अवतार समान लगती विश्व-सुंदरी के देह पर से चमड़ी हटा दी जाये...तो उस ओर नजर डालने का भी मन नहीं होगा । कितना बीभत्स है यह देह ! जिसके भीतर हाड़-मांस-खून-चर्बी-मल-मूत्र आदि ही रहा हुआ है ।

धनगिरि के दिल में नारीदेह का थोड़ा भी आकर्षण नहीं था । उसका मन मुक्ति-वधू को पाने के लिए लालायित था । जिस संयम की साधना से मुक्ति-वधू का संगम हो सके, उसे पाने के लिए वह अत्यंत ही आतुर था ।

दीक्षा की प्रबल भावना होने पर भी पारिवारिक दबाव के आगे धनगिरि को झुकना पड़ा । अनिच्छा से भी उसे सुनंदा के साथ लग्न-ग्रंथि से जुड़ना पड़ा ।

लग्न जीवन की स्वीकृति के बाद भी उसके दिल में संयम का आकर्षण पूर्ववत् बना हुआ था । वह संयम ग्रहण के लिए सानुकूल संयोगों की प्राप्ति की प्रतीक्षा कर रहा था । कुछ समय व्यतीत हुआ...और सुनंदा गर्भवती बनी ।

अष्टापद महातीर्थ की यात्रा करते समय गौतम स्वामी भगवान ने जिस तिर्यक् जृंभक देव को प्रतिबोध दिया था...उस देव का आयुष्य पूरा हो गया । देवायु की समाप्ति के साथ ही उस देव का सुनंदा की कुक्षि में अवतरण हुआ । गर्भ में एक महान् आत्मा का अवतरण होने से सुनंदा ने एक सुंदर स्वप्न देखा । उसका देह खुशी से रोमांचित हो उठा...उसका हृदय प्रसन्नता से भर आया ।

एक महान् आत्मा का गर्भ में अवतरण होता है तब चारों ओर वातावरण में प्रसन्नता छा जाती है ।

धनगिरि ने सोचा, ``सुनंदा पुत्र के सहारे अपना जीवन निर्वाह आसानी से कर सकेगी'' इस प्रकार विचार कर उसने सुनंदा को कहा, ``प्रिये ! मेरा मन तो पहले से ही संयम लक्ष्मी को पाने के लिए अत्यंत उत्सुक था...यह बात मैंने पहले से ही स्पष्ट कर दी थी...अब तू गर्भवती बन चुकी है, भविष्य में तेरा पुत्र तुझे सहायक बन सकेगा । अतः तू मुझे दीक्षा के लिए अनुमति दे ।''

यद्यपि सुनंदा के लिए पति के प्रेमपाश के बंधन को तोड़ना अत्यंत कठिन था...परन्तु धनगिरि ने लग्न-जीवन की स्वीकृति के पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी थी...अतः उसको बोलने के लिए कोई अवकाश नहीं था । अनिच्छा होते हुए भी उसे मूक सहमति प्रदान करनी पड़ी ।

...बस, सहमति मिलते ही धनगिरि, सिंहगिरि मुनि के पास पहुँच गया। जर्जरित धागे की भाँति मोहपाश के बंधन को तोड़कर उसने भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली। सुनंदा के भाई आर्यसमित ने भी सिंहगिरि के पास जाकर दीक्षा ले ली !

वह युग था परमार्थ का, छोटे-छोटे निमित्तों को पाकर अथवा जिनवाणी का अमृत पान करने वाले नव युवा भी भौतिक सुखों को तिलांजलि देकर चारित्र धर्म को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे।

सुनंदा सुखपूर्वक अपना गर्भ वहन करने लगी। गर्भस्थ शिशु को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचे...उसका वह पूरा-पूरा ध्यान रखने लगी। समय व्यतीत हुआ...और एक शुभ दिन सुनंदा ने अत्यंत ही तेजस्वी पुत्र-रत्न को जन्म दिया। सुनंदा के आनंद का पार न रहा। **सुनंदा की सखियों ने उसे पुत्र-जन्म की बधाई दी।**

खुशहाली के माहौल में किसी सखी ने बात करते हुए कहा, ''अरे ! इस बच्चे के पिता ने दीक्षा नहीं ली होती तो यह पुत्र-जन्मोत्सव और भी अच्छा होता।''

नवजात शिशु के कान में ये शब्द गये और इन शब्दों ने उसके मन पर जादुई असर किया। इन शब्दों के श्रवण के साथ ही उसकी अन्तश्चेतना जागृत हो उठी।

पूर्व के देवभव में गणधर गौतमस्वामी के मुखारविंद से पुंडरीक-कंडरीक अध्ययन के माध्यम से जिस मोक्षमार्ग का श्रवण किया था...उनके संस्कारों के फलस्वरूप नवजात शिशु के हृदय में वैराग्य भाव का बीजारोपण हो गया। उसके परिणामस्वरूप वह चारित्र धर्म अंगीकार करने के लिए उत्सुक हो गया। वह बालक मन-ही-मन सोचने लगा, ''अहो ! मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे पिता ने भागवती दीक्षा स्वीकार की है। संयम के बिना इस संसार से आत्मा का निस्तार नहीं है...अतः मुझे भी यह संयम अवश्य स्वीकार करना चाहिए।...परन्तु मैं अपनी माँ की इकलौती संतान होने के कारण वह मुझे अनुमति कैसे देगी ?''

वह छोटा सा बालक चारित्र धर्म की स्वीकृति के लिए अपनी माँ की अनुमति पाने का उपाय सोचने लगा। आखिर सोचते-सोचते उसे एक उपाय हाथ लग गया।

''माँ को मुझसे कंटाला आ जाय तो वह मुझे दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान कर सकेगी''

इस प्रकार विचार कर उस नवजात शिशु ने माँ को कंटाला पैदा कराने के लिए निष्कारण ही जोर से रोना चालू किया। नवजात शिशु के रुदन को जानकर माँ ने उसे चुप करने के लिए अनेक उपाय किए...परन्तु यह कोई वेदना-जन्य रुदन नहीं था...यहाँ तो रोने का मात्र बहाना था।

यदि सकारण रुदन होता तो योग्य समाधान द्वारा उसे रोका जा सकता था। सोये हुए को जगाया जा सकता है परन्तु जो सोने का बहाना कर रहा हो, उसे जगाना शक्य नहीं है।

नवजात शिशु के रुदन के पीछे कोई शारीरिक पीड़ा थी नहीं...अतः सुनंदा ज्यों-ज्यों उस शिशु को शांत करने का प्रयास करती, त्यों-त्यों वह शिशु और अधिक रुदन करता। इस प्रकार सतत रुदन के द्वारा वह न तो माता को खाने देता...और न सोने देता। सुनंदा किसी भी काम से जुड़ी होती, उसी समय वह बालक जोर-जोर से रुदन कर माँ के कार्य में विक्षेप डालने की कोशिश करता। बालक के सतत रुदन के कारण माँ सुनंदा हैरान-परेशान हो गई।

इस प्रकार छह मास का दीर्घ समय व्यतीत हो गया...और आचार्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ तुंबवन नगर में पधारे। नगरवासियों ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत किया। गोचरी के समय जब धनगिरि मुनि गोचरी के लिए जाने लगे, तब किसी पक्षी के कलरव को सुनकर गुरुदेव ने धनगिरि मुनिवर को कहा, ***''हे मुनिवर ! आज गोचरी में सचित्त या अचित्त जो भी भिक्षा मिले, उसे ग्रहण कर लेना।''***

धनगिरि मुनि ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की। यद्यपि जैन मुनि अपनी भिक्षा में अचित्त व कल्प्य पदार्थ ही बहोरते हैं, फिर भी गुरुदेव ने जब सचित्त या अचित्त कुछ भी लेने को कहा...उस समय धनगिरि मुनि ने किसी प्रकार का तर्क नहीं किया। वे जानते थे कि **गीतार्थ गुरुदेव जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसके पीछे परमार्थ की भावना रही होती है।**

अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर धनगिरि मुनिवर, आर्यसमित मुनि के साथ गोचरी के लिए नगर में निकल पड़े।...भिक्षा के लिए आगे बढ़ते हुए वे सुनंदा के भवन में आ गए...और उन्होंने जोर से **'धर्मलाभ'** कहा।

'धर्मलाभ' की ध्वनि सुनते ही सुनंदा की सखियाँ भी वहाँ आ गईं।

सुनंदा ने कहा, ''मैं इस पुत्र के रुदन के कारण अत्यंत कंटाल गई हूँ...अतः आप इसे ग्रहण करें। आपके पास रहकर यह सुखी रहता हो तो उससे मुझे खुशी होगी।''

धनगिरि ने कहा, **''इस पुत्र को ग्रहण करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है...परन्तु स्त्रियों के वचन का कोई भरोसा नहीं है। वे जो आज बोलती हैं...कल वापस बदल जाती हैं अतः इस विवाद का अंत लाने के लिए किसी को गवाही करना जरूरी है।''**

उसी समय सुनंदा ने कहा, ''ये आर्यसमित मुनि और ये मेरी सखियाँ साक्षी रहेंगे।''

सुनंदा की यह बात सुनकर धनगिरि मुनि ने अपनी झोली फैलाई और उसी समय सुनंदा ने अपना छह महीने का पुत्र धनगिरि की झोली में डाल दिया।

धनगिरि ने सोचा, ''अहो ! गुरुदेव कितने ज्ञानी हैं ! सचित्त भिक्षा के लिए जो सम्मति दी, उसका यही रहस्य था कि आज भिक्षा में इस बालक की प्राप्ति होगी।''

धनगिरि मुनि अपनी झोली में बालक को उठाकर अपने गुरुदेव के पास पधारे। बालक के अतिभार को वहन करने के कारण धनगिरि मुनि का हाथ, एकदम नम चुका था...भारी वजन को उठाकर आए धनगिरि को देखते ही सिंहगिरि आचार्य सम्मुख गए और उन्होंने अपने दोनों हाथों से उस झोली को उठा ली। झोली के अतिभार को देखकर गुरुदेव बोले, **''अहो ! यह वज्र की भाँति क्या लाये हो ?''**

उसी समय सिंहगिरि ने अपने आसन पर से उस बालक को देखा...गुरुदेव के मुख से निकले **'वज्र'** शब्द के कारण उस बालक का नाम **'वज्र'** रखा गया।

सिंहगिरि ने वह बालक साध्वीजी भगवंत को सौंप दिया। साध्वीजी भगवंत के उपाश्रय में श्राविकाएँ उस बालक का अच्छी तरह लालन-पालन करने लगीं। वे श्राविकाएँ अत्यंत ही प्रेम और वात्सल्य से बालक की अच्छी तरह से संभाल लेने लगीं।

रात्रि के समय में जब साध्वीजी भगवंत ग्यारह अंगों का स्वाध्याय करतीं थीं...तब यह बालक **'वज्र'** साध्वीजी भगवंत के मुख से स्वाध्याय की उन गाथाओं को अत्यंत ही ध्यान पूर्वक सुनता था...पूर्व जन्म की आराधना और तीव्र ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण, बालक वज्र को वे सारी गाथाएँ कंठस्थ हो जातीं। इस प्रकार मात्र तीन वर्ष की वय में ही बालक वज्र ग्यारह अंग के ज्ञाता बन गया।

सुनंदा की हार

संसार के संबंध स्वार्थ से भरे हुए हैं। सांसारिक संबंधों में हमें जहाँ-तहाँ स्वार्थ की बदबू दिखाई देती है।

सुनंदा को जब इस बात का पता चला कि उसका बालक साध्वीजी के उपाश्रय में रहा हुआ है और वह एकदम शांत हो चुका है, वह साध्वीजी के पास आ पहुँची और अपने बालक को ले जाने के लिए आग्रह करने लगी।

जिस सुनंदा ने रोते हुए बालक का स्वेच्छा से त्याग किया था...आज वही सुनंदा चुप हुए उस बालक वज्र को पुनः अपने अधिकार में लेने के लिए साध्वीजी म. के पास **आग्रह करने लगी।**

साध्वीजी भगवंत ने कहा, ''इस बालक पर हमारा कोई अधिकार नहीं है...यह तो गुरुदेव की अमानत है अतः पूज्य आचार्य गुरुदेव की अनुमति बिना यह बालक हम तुम्हें सौंप नहीं सकते हैं।''

कुछ समय बाद आर्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ पुनः उस नगर में पधारे। सुनंदा धनगिरि मुनि के पास पहुँची और अपने पुत्र को ले जाने के लिए आग्रह करने लगी।

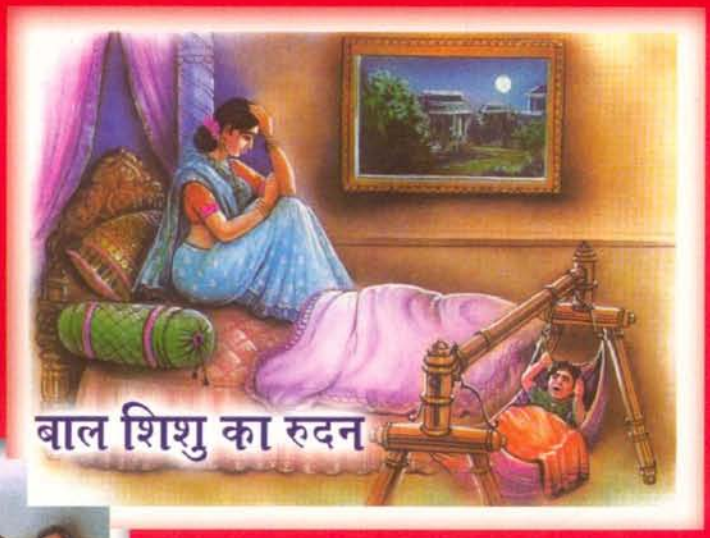
धनगिरि ने समझाते हुए उसे कहा, ''यह बालक मैंने अपनी इच्छा या बलात्कार से ग्रहण नहीं किया है, अनेक की साक्षी में तुमने ही यह बालक मुझे सौंपा है...अतः इसे वापस लेने के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए। **सज्जन पुरुषों का वचन तो पत्थर की लकीर की भाँति होता है।''**

बहुत कुछ समझाने के बाद भी सुनंदा ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। तत्पश्चात् संघ के अग्रणी श्रावकों ने उसे समझाने की कोशिश की...फिर भी वह नहीं मानी। वह अपनी जिद् पर अटल रही...इतना ही नहीं, अपने पुत्र को पाने के लिए वह राजदरबार में जा पहुँची। उसने जाकर राजा को शिकायत की।

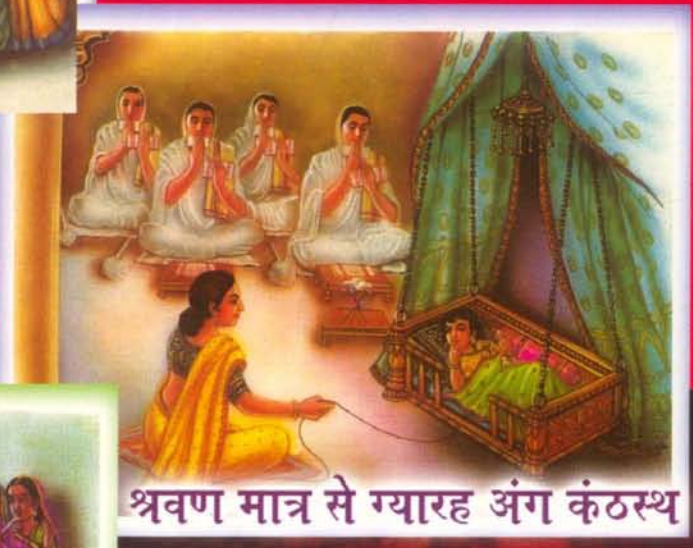
सुनंदा की बात सुनकर राजा भी अचरज में पड़ गया। वह सोचने लगा, **'जैन साधु कभी भी अदत्त का ग्रहण नहीं करते हैं, तो इस घटना के पीछे रहे रहस्य को जानना चाहिए।'** सुनंदा की शिकायत के बाद धनगिरि आदि मुनियों ने भी जाकर राजा को वास्तविकता समझाई। राजा सोच में पड़ गये।

आखिर सोच-विचार कर राजा ने धनगिरि मुनि और सुनंदा को समाधान देते हुए कहा, ''कल तुम दोनों अपने परिवार के साथ राजसभा में उपस्थित रहना और इस बालक को भी उपस्थित रखना।''

शासन प्रभावक वज्रस्वामीजी

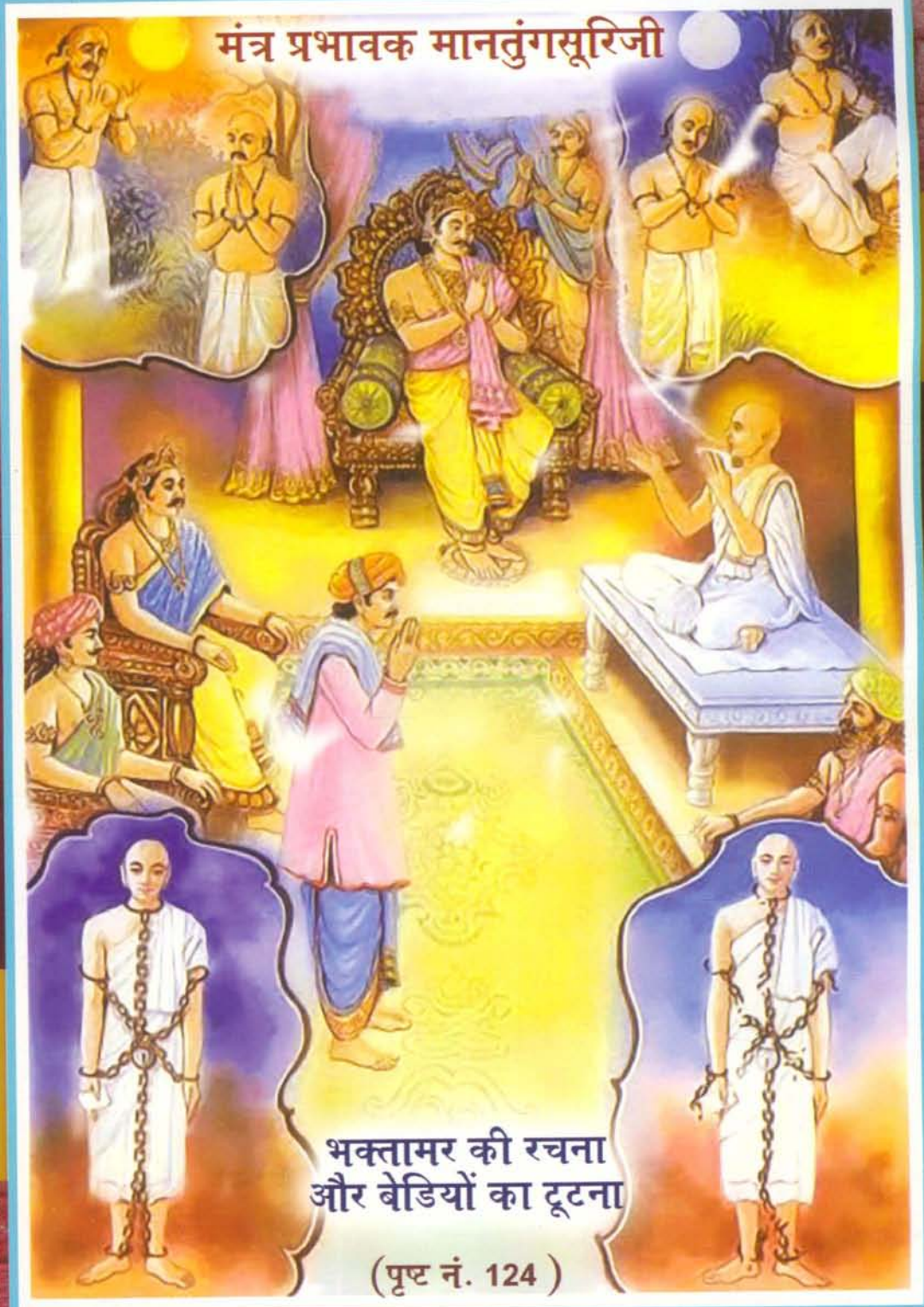

बाल शिशु का रुदन


शिशु का अर्पण


श्रवण मात्र से ग्यारह अंग कंठस्थ


बाल वज्र का नृत्य

(पृष्ट नं. 44)


मंत्र प्रभावक मानतुंगसूरिजी
भक्तामर की रचना
और बेडियों का टूटना
(पृष्ट नं. 124)

बस, दूसरे दिन बालक वज्र के न्याय को पाने के लिए सुनंदा अपनी सखियों के साथ बालक के योग्य खिलौने व भोजन सामग्री लेकर राज-सभा में उपस्थित हो गई। धनगिरि मुनि भी दूसरे दिन अपने साथी मुनियों के साथ वहाँ उपस्थित हो गए।

दोनों पक्ष आमने-सामने बैठ गए। न्याय के लिए राजा बीच में बैठ गया। ठीक समय पर राजा ने न्याय करते हुए कहा, ``बालक वज्र को सभा के बीच में उपस्थित किया जाय...वह जिस ओर जाना चाहे, उस ओर जा सकेगा।''

उसी समय सुनंदा ने कहा, ``यह बालक इन साधुओं के साथ लंबे समय से परिचित है, अतः इसे पहले मैं बुलाऊंगी।''

राजा ने इस बात में अपनी सहमति प्रदान की। राजा की ओर से सहमति मिलते ही सुनंदा अपने पुत्र को आकर्षित करने के लिए मिठाई और खिलौने आदि बताने लगी...परन्तु वह वज्र उन खिलौनें तथा खाने-पीने की सामग्री से लेश भी आकर्षित नहीं हुआ।

सुनंदा ने कहा, ``बेटा ! तू मेरे पास आ जा। तेरे पिता तो दीक्षा लेकर मुझे छोड़कर चले गए है...अब तो तू ही मेरे लिए आधार-स्तम्भ है। बेटा ! तेरे बिना भविष्य में मेरा कौन सहारा है ? मैंने तुझे 9 मास तक गर्भ में वहन किया है, अतः तू मेरे पास आकर अपने ऋण के भार से मुक्त बन ! मैं तेरे लिए खाने-पीने-खेलने की खूब सामग्री लेकर आई हूँ।''

माता के आग्रह भरे इन वचनों को सुनकर वज्र सोचने लगा, ***''अहो ! लोक में माता-पिता को तीर्थरूप कहा गया है, यह बात सत्य है, किंतु वे तो इसी लोक में सुख देनेवाले हैं...परन्तु गुरु और संघ तो परलोक में भी सुखदायी हैं...और यह संघ तो तीर्थंकरों के लिए भी आदर पात्र है...अतः संघ की आराधना में माँ की आराधना का समावेश हो जाता है...भूतकाल में संसार में भटकती हुई इस आत्मा की अनंत माताएँ हो चुकी हैं। इस आत्मा ने समुद्र के जल से भी अधिक माँ का दूध पिया है...यह संघ तो मोक्षसुख प्रदान करने वाला है अतः इसकी आराधना करूंगा तो अल्पभवों में ही मेरी आत्मा का कल्याण हो सकेगा''***

इस प्रकार विचार कर बालक वज्र अपने स्थान पर ऐसे ही खड़ा रहा।

कुछ देर बाद धनगिरि मुनि ने रजोहरण बताते हुए कहा, ``हे बालक वज्र ! **यदि तू धर्म को भजना चाहता है तो कर्म रूपी रज को साफ करने में समर्थ इस रजोहरण को धारण कर। कर्म के बंधन से ग्रस्त जीव को अन्य सामग्री तो हर भव में सुलभ है किंतु कर्म का उच्छेद करने में समर्थ इस धर्म की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है।''**

अपने उपकारी गुरु भगवंतों के इन वचनों को सुनकर बालक वज्र एकदम खुश हो गया।

उसी समय संघ ने रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखते हुए कहा, ``हे वज्र ! यदि तुझे संयम ग्रहण करने की इच्छा हो तो इस रजोहरण को ग्रहण कर, अन्यथा माता ने जो वस्तुएँ प्रदान की हैं, उन्हें ग्रहण कर।''

वज्र ने सोचा, ``माता की अपेक्षा श्रीसंघ मेरे लिए विशेष आदरणीय है।'' इस प्रकार विचार कर उसने वह रजोहरण अपने हाथ में ले लिया और उसे मस्तक पर धारण कर नाचने लगा।

उसके बाद वह बालक वज्र पिता–मुनि की गोद में जाकर बैठ गया । उसी समय मंगल वाद्ययंत्रों की ध्वनि से आकाश-मंडल गूंज उठा ।

राजा ने संघ व गुरुजनों का आदर सत्कार किया । सुनंदा ने सोचा, ``अहो ! मेरा यह पुत्र दीक्षा ले लेगा । पहले भी मेरे भाई व पति ने दीक्षा अंगीकार की है, अतः अब मैं अकेली घर पर रहकर क्या करूंगी ? मैं भी उसी मार्ग को स्वीकार करती हूँ ।'' इस प्रकार विचार कर उसने भी सिंहगिरि आचार्य भगवंत के पास जाकर भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली ।

चारित्र प्रभाव

छह वर्ष की लघुवय में बालक वज्र को भागवती दीक्षा प्रदान की गई । क्रमशः वज्रमुनि आठ वर्ष के हुए ।

एक बार वज्रमुनि को साथ में लेकर आचार्य भगवंत ने अवंती की ओर विहार प्रारंभ किया । विहार दरम्यान अचानक वर्षा होने लगी । उस समय सभी साधु यक्षमंडप में आ गए । उस समय वज्रमुनि के सत्त्व की परीक्षा करने के लिए उनके पूर्वभव का मित्र तिर्यक् जृंभक देव वहाँ पर आया और सार्थवाह का रूप धारण कर छावनी डालकर वहाँ पर रहा ।

अप्काय व वायुकाय की विराधना के भय से वे साधु उस यक्ष मंडप में रहकर आराधना करने लगे । इसी बीच उस सार्थवाह ने आकर गुरुदेव को कहा, ``हे प्रभो ! मुझ पर कृपा कर आप अपने साधु को भिक्षा के लिए हमारे तंबू में भेजें ।''

गुरुदेव ने बाहर नजर की, तब पता चला कि वर्षा बंद हो चुकी है । आचार्य भगवंत ने वज्रमुनि को भिक्षा के लिए भेजा । उसी समय वज्रमुनि की परीक्षा के लिए उस देव ने सूक्ष्म जल बूंदों की वृष्टि प्रारंभ की । तत्काल वज्रमुनि वहीं पर रुक गए । कुछ देर बाद उस देव ने जलबिंदुओं का संहरण कर लिया । तत्पश्चात् वज्रमुनि तंबू में पधारे ।

वज्रमुनि ने अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगाकर द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव का निरीक्षण किया और वे सोचने लगे, ***''अहो ! इसके पैर भूमि को स्पर्श नहीं कर रहे हैं...इसके नेत्र भी स्थिर हैं तथा यह जो अन्न बहोरा रहा है, वह अन्न भी इस क्षेत्र में सुलभ नहीं है ।''*** इन बातों का विचार करते हुए वज्रमुनि ने निर्णय किया कि सचमुच यह तो **देव-पिंड** होना चाहिए और देव पिंड साधु के लिए **अकल्प्य** कहा गया है । इस प्रकार निर्णय कर वज्र मुनि ने कुछ भी बहोरने से इन्कार कर दिया ।

बालक वज्रमुनि के इस उत्कृष्ट सत्त्व बल को देखकर वह देव प्रसन्न हो गया । उसने वज्रमुनि को **वैक्रियलब्धि** प्रदान की ।

◆ दूसरी बार पुनः किसी देव ने वज्रमुनि की परीक्षा की । उस परीक्षा में उस देव ने वणिक् का रूप किया और घेबर का दान करने लगा...परन्तु वज्रमुनि पुनः उस वणिक् के देवस्वरूप को पहिचान गये ।

वज्रमुनि ने वह देव-पिंड लेने से इन्कार कर दिया । परिणामस्वरूप उस देव ने वज्रमुनि को **आकाशगामिनी विद्या** प्रदान की ।

ग्यारह अंगों के ज्ञाता

बाल्यवय में ही वज्रमुनि ग्यारह अंगों के ज्ञाता बने थे । परन्तु उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन नहीं किया । अन्य किसी भी मुनि को वज्रमुनि की विद्वत्ता का कोई परिचय नहीं था ।... अतः जब वज्रमुनि प्राथमिक–प्रारंभिक सूत्रों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, तब स्थविर मुनि, वज्रमुनि को अध्ययन के लिए प्रेरणा देते । वे कहते, **''वज्रमुनि ! यह लघुवय अध्ययन की वय है । इस वय में अध्ययन करोगे तो तुम्हें विशेष लाभ होगा । इस वय में अध्ययन की उपेक्षा करना उचित नहीं है ।''**

अन्य मुनियों को कहाँ पता था कि ये वज्रमुनि वय में बाल होते हुए भी श्रुत के पारगामी हैं । ... यद्यपि वज्रमुनि अत्यंत गंभीर थे, परंतु एक छोटी सी एक घटना ने गुरूदेव की भ्रांति दूर कर दी और उन्हें ख्याल आ गया कि वज्रमुनि तो महाज्ञानी है ।

एक बार अन्य सभी मुनि गोचरी के लिए बाहर गये हुए थे । गुरूदेव सिंहगिरि स्थंडिल भूमि गये हुए थे । उस समय वसति (बस्ती) में वज्रमुनि अकेले थे ।

कुतूहलवश वज्रमुनि ने सभी मुनियों की उपधि मंडलाकार स्थापित कर दी और स्वयं गुरू की भाँति (वाचनाचार्य बनकर) बीच में बैठकर ग्यारह अंग के गंभीर सूत्रों पर प्रभावशाली ढंग से वाचना देने लगे । थोड़ी देर बाद सिंहगिरि वसति के निकट आ गए । उन्हें दूर से वज्रमुनि की वाचना के शब्द सुनाई दिए ।

वे सोचने लगे, ''अहो ! क्या सभी मुनि बाहर से आ गए हैं और वज्र उन्हें वाचना दे रहा है ?'' गुरूदेव ने बंद द्वार के छिद्र में से झाँककर देखा-उन्होंने अकेले वज्रमुनि को अंगगत पदार्थों पर वाचना देते हुए देखा । उन्हें अत्यंत ही आश्चर्य हुआ । ''अहो ! यह बाल मुनि ग्यारह अंगों का ज्ञाता है ? परन्तु आश्चर्य है कि अभी तक इसने अपने ज्ञान का कभी प्रदर्शन नहीं किया । अहो ! इसकी गंभीरता कितनी है ?''

''यदि मैं उपाश्रय में अचानक प्रवेश करूंगा तो यह शर्मिंदा हो जाएगा'' इस प्रकार विचार कर सिंहगिरि गुरूदेव ने द्वार पर आकर जोर से ''निसीहि-निसीहि-निसीहि'' कहा । अपने गुरुदेव के इन वचनों को सुनकर वज्र मुनि ने गुरूदेव के आगमन को पहिचान लिया । तत्क्षण उसने सारी उपधि नियत स्थान पर रख दी और वे तत्काल गुरूदेव के सम्मुख आकर गुरुदेव की चरणरज दूर करने लगे और उसके बाद गुरूदेव को योग्य आसन पर बिठाकर उनका पाद प्रक्षालन करने लगे ।

ज्ञान के साथ ही वज्रमुनि की गंभीरता देखकर सिंहगिरि गुरूदेव अत्यंत प्रसन्न हुए । तत्पश्चात् अन्य मुनियों को उनकी ज्ञान की गरिमा का ख्याल कराने के लिए अपने विनीत शिष्यों को बुलाकर कहा, ''मैं चार दिन के लिए आसपास के गाँवों में विहार करना चाहता हूँ ।''

शिष्यों ने कहा, ''गुरूदेव ! हम भी आपके साथ चलेंगे ।''

गुरूदेव ने कहा, ''आधा–कर्मी आदि गोचरी संबंधी दोषों की संभावना होने के कारण सभी का साथ चलना उचित नहीं है ।''

शिष्यों ने कहा, ''भगवंत ! तो फिर हमें वाचना कौन देगा ?''

गुरूदेव ने कहा, ''यह वज्रमुनि तुम्हें वाचना देगा ।''

शिष्यों ने गुरूदेव के इस वचन को तत्काल **'तहत्ति'** कहकर स्वीकार लिया...परन्तु उन्होंने लेश भी तर्क नहीं किया कि यह बालक वज्र हमें क्या वाचना देगा ।

''अहो ! ज्ञानी गुरूदेव के वे शिष्य भी कितने विनीत और समर्पित होंगे । लेश भी तर्क-वितर्क किये बिना उन्होंने गुरूदेव के वचन को 'तहत्ति' कहकर स्वीकार कर लिया ।

सिंहगिरि गुरूदेव के विहार करने के बाद वे सभी मुनिवर बाल वज्रमुनि के पास ग्यारह अंग-गत सूत्रों की वाचना लेने लगे । वज्रमुनि अपनी वाक् प्रतिभा के द्वारा इस प्रकार सरल विधि से अंगगत पदार्थों को समझाने लगे कि अल्प बुद्धिवाले शिष्य भी अच्छी तरह से सूत्रों के रहस्यों को समझने लग गए ।

कुछ दिनों के बाद जब गुरूदेव लौटे, तब उन्होंने पूछा, ''अध्ययन कैसा चल रहा है ?''

सभी मुनियों ने कहा, ''आपकी कृपा से हमारा अध्ययन सुखपूर्वक चल रहा है । अब हमेशा के लिए वज्र मुनि ही हमारे लिए 'वाचनाचार्य' हो ।''

शिष्य मुनियों के इन शब्दों को सुनकर सिंहगिरि ने कहा, **''इसकी अद्‌भुत गुणगरिमा और ज्ञान को बतलाने के लिए ही मैंने यहाँ से विहार किया था ।''**

उसके बाद वज्रमुनि ने भी तपश्चर्यादि विधिपूर्वक गुरूदेव के पास से वाचना ग्रहण की और गुरूदेव के पास जितना ज्ञान था, वह ज्ञान ग्रहण कर लिया ।

महान् ज्ञानी

आर्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ विहार करते हुए आगे बढ़ रहे थे । इधर अवंती नगर में दशपूर्वधर महर्षि भद्रगुप्तसूरिजी म. बिराजमान थे । आर्य सिंहगिरि ने सोचा, ''वज्रमुनि का क्षयोपशम अत्यंत तीव्र है, यह वज्र पूर्वों का अभ्यास करने में समर्थ है । तत्र बिराजमान भद्रगुप्तसूरिजी दशपूर्वों के ज्ञाता हैं । यह वज्र, भद्रगुप्तसूरिजी म. के पास ज्ञानार्जन कर सकता है ।'' इस प्रकार विचार कर आर्य सिंहगिरि ने वज्रमुनि को भद्रगुप्तसूरिजी म. के पास जाकर पूर्वों का अभ्यास करने के लिए आज्ञा प्रदान की ।

गुर्वाज्ञा स्वीकार कर अन्य मुनियों के साथ वज्रमुनि ने अवंती की ओर अपनी विहार-यात्रा प्रारंभ की । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वज्रमुनि उज्जयिनी नगरी के बाहर पहुँच गए ।

इधर प्रभात समय में आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी म. अपने शिष्यों को कहने लगे, **''आज मैंने रात्रि में एक सुंदर स्वप्न देखा । मेरे हाथ में रहा दूध का पात्र कोई पी गया और उसने तृप्ति का अनुभव किया ।** इस स्वप्न के आधार पर मैं अनुमान करता हूँ कि आज किसी बुद्धिशाली साधु का आगमन होना चाहिए, जो मेरे पास में रहे दश पूर्वों का ज्ञान ग्रहण कर सकेगा । अहो ! आज किसी योग्य पात्र की प्राप्ति होगी और मेरे दश पूर्व का संग्रह सफल-सार्थक बनेगा ।''

आचार्य भगवंत अपने शिष्यों के साथ यह वार्तालाप कर रहे थे, तभी वज्रमुनि ने वसति में

प्रवेश किया । स्वप्न में दृष्ट आकृति-प्रकृति के अनुसार ही वज्रमुनि को देखकर भद्रगुप्तसूरिजी म. एकदम प्रसन्न हो गए । उसी समय आचार्य भगवंत ने कहा, ``मुनिवर ! तुम कुशल हो न ! तुम्हारी विहार-यात्रा कुशलता पूर्वक चल रही है न ? तुम्हारे गुरुदेव सकुशल हैं न ? इस बार अचानक अवंती में आने का विशेष प्रयोजन ?''

``हे भगवन् ! आपश्री ने पहले ही मेरी कुशलता पूछी...यह सब आपश्री का प्रसाद है । आपश्री की असीम कृपा से कुशल मंगल है । पूज्यपाद गुरुदेवश्री भी सकुशल हैं और उन्होंने दशपूर्वों के अध्ययन के लिए मुझे आपश्री के पास भेजा है ।''

वज्रमुनि की यह बात सुनकर आचार्य भगवंत एकदम खुश हो गए...और उन्होंने शुभदिन शुभमुहूर्त में ज्ञानदान प्रारंभ किया । वज्रमुनि विनयपूर्वक अध्ययन करने लगे...इसके परिणामस्वरूप अल्पकाल में ही वे वज्रमुनि दशपूर्वों के ज्ञाता बन गए ।

तत्पश्चात् भद्रगुप्तसूरिजी म. की अनुज्ञा लेकर वज्रमुनि ने दशपुर नगर की ओर प्रयाण प्रारंभ किया । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वज्रमुनि दशपुर नगर में पहुँचे । वहाँ पर पूर्व भव के मित्र जृंभक देवता ने मिलकर वज्रमुनि के दशपूर्व की ज्ञानप्राप्ति का भव्य महोत्सव किया । गुरुदेव ने योग्य जानकर उन्हें आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया । तत्पश्चात् सिंहगिरि गुरुदेव ने अनशन-व्रत स्वीकार किया और अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर स्वर्ग में गए ।

शत्रुंजय का तेरहवां उद्धार

विक्रम संवत् 108में वज्रस्वामी की निश्रा में जावडशा ने शत्रुंजय महातीर्थ का तेरहवाँ उद्धार कराया था ।

सौराष्ट्र देश !

मधुमती नगरी (आज का महुवा गाँव) में अत्यंत ही धर्म परायण और धर्म श्रद्धालु भावडशा सेठ रहते थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम **भावलादेवी** था । राजदरबार में सेठ का खूब मान सन्मान था । लक्ष्मीदेवी की पूरी महेर थी । आनंद और उत्साह के साथ उनके दिन व्यतीत हो रहे थे ।

परन्तु जीवन में एक अमंगल घडी का आगमन हुआ और लक्ष्मीदेवी ने घर में से विदाई ली । कुछ ही समय में सारी स्थिति बदल गई । भावडशा एकदम निर्धन हो गए । ऐसी स्थिति में भी भावडशा ने अपना धर्म नहीं खोया । उनका सत्त्व वैसा ही बना रहा । धर्मतत्त्व के प्रति उनके अन्तर्मन में जो श्रद्धा और आस्था थी, उसमें लेश भी कमी नहीं आई । त्रिकाल प्रभु पूजा और उभयकाल प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाएँ वे उतने ही उत्साह और उल्लास के साथ करने लगे । धन गया लेकिन उन्होनें धर्म को जाने नहीं दिया ।

एक दिन दो महात्मा विहार करते हुए मधुमती पधारें । वे दोनों महात्मा भिक्षा के लिए भावडशा के घर आए । भावडशा की धर्मपत्नी भावलादेवी ने खुब आदर-बहुमान के साथ महात्मा को गोचरी बहोराई । गोचरी बहोराने के बाद भावलादेवी ने महात्मा को पूछ लिया `हे प्रभो ! मेरे घर में लक्ष्मीदेवी का पुनरागमन कब होगा ?'

यद्यपि इस प्रकार के प्रश्न साधु भगवंतों को पूछना उचित नहीं हैं...और कदाचित् अज्ञानतादि के कारण किसी श्रावक ने पूछ लिया हो तो भी निर्ग्रंथ गुरु भगवंत उसका कोई जवाब नहीं देते है अथवा जवाब टाल देते है । परंतु इसमें भी एक अपवाद हैं...गीतार्थ गुरु भगवंत भावी लाभालाभ को देखकर उसका समुचित जवाब दे सकते हैं ।

प्रश्न को सुनकर गीतार्थ मुनिवर ने भावलादेवी को जवाब देते हुए कहा, 'आज कोई व्यक्ति घोड़ी बेचने के लिए आए तो तुम वह घोड़ी खरीद लेना...उस घोड़ी के आगमन के बाद तुम्हारे घर में धन की अभिवृद्धि होगी !'

पूज्य गुरु भगवंत जानते थे कि इसी के पुत्र के हाथों से जैन शासन के पवित्र शत्रुंजय महातीर्थ का जीर्णोद्धार होनेवाला है । इसीलिए आगे चलकर बोले, **'धन की प्राप्ति के साथ तुम्हें पुत्र-प्राप्ति होगी और वो ही पुत्र शत्रुंजय महातीर्थ का जीर्णोद्धार करेगा ।'**

इतना कहकर मुनि भगवंत वहां से चले गए । उपकारी गुरू भगवंत के श्रीमुख से अपने भावी शुभ को जानकर भावडशा और भावलादेवी ने उसी समय सुकन की गांठ बांध ली ।

भोजन के बाद भावडशा बाजार में गए । वहां पर उन्होंने कामधेनु के समान सुकनवंती घोडी को देखा । घोड़ी को देखते ही भावडशा को मुनि का वचन याद आ गया । यद्यपि उसके पास कोई विशेष संपत्ति नहीं थी, फिर भी कुछ उधार रकम लेकर भावड़ाशा ने वह घोड़ी खरीद ली । कुछ समय व्यतीत होने के बाद उस घोड़ी ने एक अश्वरत्न को जन्म दिया । वह घोड़ा जब तीन वर्ष का हुआ, तब तपन राजा ने तीन लाख रुपए देकर वह घोड़ा खरीद लिया । सेठ की गरीबी दूर हो गई । उनके अन्तर्मन में धर्म श्रद्धा खूब बढ़ गई ।

उस धन से सेठ ने दूसरी घोड़ियाँ खरीदी । इसके फलस्वरुप उसके पास 108 अश्वरत्न तैयार हो गए ।

भावडशा ने एक शुभ दिन वे सारे घोड़े विक्रमराजा को भेंट दिए । उन घोड़ों को देखकर राजा खुश हो गया । प्रसन्न होकर उसने भावडशा को महुवा (मधुमती) सहित बारह गांव भेंट दिए ।

भावडशा ने मधुमती नगरी में प्रवेश किया और उसी शुभदिन शुभ मुहूर्त में भावला देवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया । देवतुल्य उस पुत्र का **जावडशा** नाम रखा गया ।

दूज के चांद की तरह वह जावडशा दिन दुना और रात चौगुना बढ़ने लगा । देखते ही देखते उसने यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया । शस्त्र व शास्त्रकला में वह निपूण बन गया । एक शुभ दिन अत्यंत ही रूपवान् और गुणवान् सुशीला नाम की कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ ।

इधर एक दिन अत्यंत ही समाधिपूर्वक भावडशा ने इस दुनिया से चिर विदाई ली । परिवार की समस्त जवाबदारी जावडशा के कंधों पर आ गई । नेक और ईमानदारी के साथ जावडशा अपनी जवाबदारियों को वहन करने लगे । **पिता की याद में जावडशा ने मधुमती में एक नूतन जिनमंदिर का निर्माण कराया ।**

दुषमकाल के प्रभाव से मुगल लोगों का भारत में आगमन हुआ । सौराष्ट्र आदि देशों पर आक्रमण कर वे अपार धन संपत्ति व स्त्री-पुरुषों का अपहरण कर उन्हें अपने देश में ले जाने लगें । दुर्भाग्य से जावडशा उन यवनों के जाल में फंस गया । वे यवन जावडशा को अपने देश ले गए । बुद्धि, बल और अपनी होशियारी से जावडशा मुगलों की कैद में से मुक्त हो गया और बादशाह का सलाहकार बन गया । वहां पर भी उसने महावीर प्रभु के चैत्य का निर्माण कराया !

कुछ समय बाद उस यवनदेश में जैन मुनियों का आगमन हुआ । उन मुनियों ने शत्रुंजय महातीर्थ की महिमा का गान किया और कहा कि इस पंचमकाल में जावडशा इस तीर्थ का उद्धार करेगा ।

मुनियों के मुख से शत्रुंजय महातीर्थ के उद्धारक के रूप में अपना नाम सुनकर जावडशा ने पूछा, 'क्या वह जावड मैं ही हूँ या अन्य कोई होगा ?'

मुनियों ने कहा, **'पुंडरीक गिरि के अधिष्ठायक हिंसक बन गए है । पचास योजन के क्षेत्र को उज्जड बना दिया है । यदि कोई व्यक्ति उस हद में प्रवेश करता हैं तो मिथ्यात्वी बना कपर्दी यक्ष उसे मार डालता है । युगादिदेव की प्रतिमा भी अपूज रह गई हैं अतः ऐसी विकट परिस्थिति में इस तीर्थ के उद्धार का लाभ आपको प्राप्त हो रहा है । चक्रेश्वरी देवी को प्रसन्न कर आदिनाथ प्रभु के बिंब को प्राप्त कर लो ।'**

मुनियों के मुख से इन बातों को सुनकर जावडशा का हृदय हर्ष और शोक की मिश्रित अनुभूति करने लगा । शत्रुंजय महातीर्थ की हुई दुर्दशा का उसके मन में अत्यंत ही खेद था तो दूसरी ओर उस तीर्थ के उद्धार का परम सौभाग्य उसे प्राप्त होनेवाला है, इस बात की उसे खुशी भी थी । जावडशा जागृत हो गए । अपने परिवार के साथ वे मधुमती लौट आए । यहां आने के बाद उन्होंने चक्रेश्वरी देवी का ध्यान प्रारंभ किया ।

एक मास के उपवास के बाद प्रकाश पुंज फैलाती हुई चक्रेश्वरी देवी प्रगट हुई और बोली, **'वत्स ! तेरे सत्त्व को धन्यवाद है । तक्षशिला नगरी में जाकर वहां के राजा जगन्मल्ल को बात करना । बाहुबली के द्वारा निर्मित धर्मचक्र के आगे रहे जिनबिंब को तुम देख सकोगे । वह बिंब अत्यंत ही चमत्कारी है ।'** इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई ।

देवी के आदेश एवं सहायता के वचन को प्राप्तकर जावडशा तक्षशिला में गए और वहां के राजा जगन्मल्ल को भेंट धरकर मधुर वचनों से प्रसन्न किया । धर्मचक्र में से ऋषभदेव प्रभु की प्रतिमा लेकर आए । बीच मार्ग में मिथ्यादृष्टि देवताओं ने अनेक उपद्रव किए । परंतु सत्त्वशाली जावडशा उन उपद्रवों से लेश भी परास्त नहीं हुए । इस प्रकार क्रमशः आगे बढते हुए एक शुभ दिन रथ में आकर आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा के साथ मधुमती में प्रवेश किया !

कुछ समय पूर्व जावडशा ने व्यापार के लिए अपने सामूहिक वाहन चीन आदि देशों में भेजे थें, परंतु वायु अनुकूल नहीं होने के कारण वे वाहन सुवर्ण द्वीप में चले गए थें, वहां से अपार सुवर्ण संपत्ति से भरे हुए वे वाहन उसी दिन समुद्र तट पर आ गए !

प्रभुजी के नगर प्रवेश के शुभ दिन जावडशा को एक साथ दो समाचार मिले-

(1) उद्यानपाल ने आकर समाचार दिए कि पूज्यपाद वज्रस्वामीजी अपने शिष्यवृंद के साथ नगर बाहर पधारे हैं ।

(2) समुद्रतट से आकर एक भाई ने समाचार दिए कि आपके सभी वाहन अमाप सुवर्ण लेकर सुरक्षित रूप से वापस लौट आए है ।

एक क्षण के लिए तो जावडशा भी विचार मग्न हो गए-**'मैं पहले कहां जाऊं ? आए हुए सुवर्ण को पाने के लिए समुद्र तट पर जाऊं या पूज्य गुरुदेव के दर्शन-वंदन के लिए नगर बाहर जाऊं ?'**

एक ओर लौकिक नश्वर धन-संपत्ति-दूसरी और लोकोत्तर गुण-संपत्ति ! आखिर सोचते हुए जावडशा ने निर्णय लिया कि मैं पहले गुरुदेव के पास ही जाऊंगा, **'क्योंकि बाह्य धन-संपत्ति का योग तो आत्मा के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता हैं, जबकि लोकोत्तर ऐसे संत महात्मा का मिलन तो एकांततः आत्मोद्धार के लिए होगा ।'** इस प्रकार विचारकर जावडशा अपने विशाल परिवार के साथ नगर बाहर आ गए ।

अपने उपकारी गुरुदेव के दर्शन कर वे अत्यधिक प्रसन्न हुए । उन्होंने अत्यंत ही भावपूर्वक गुरूदेव को वंदना की ।

उसी समय आकाश मार्ग में से एक देव का आगमन हुआ । गुरूदेव के चरणों में भावपूर्वक वंदना करके बोला, 'हे गुरूदेव ! आपके उपकार को मैं कभी भूल नहीं सकता । आपका मुझ पर असीम उपकार है । गत भव में मैं शराब का व्यसनी था, उस समय आपने उपदेश देकर मुझे उस व्यसन से मुक्त किया था...परंतु एकबार शराब की तीव्र आसक्ति के कारण महल के ऊपरी भाग में बैठकर शराब पीने के लिए तैयार हो गया था...उसी समय किसी पक्षी द्वारा भक्षण किए जा रहे सांप का जहर उस शराब में गिरा ! मुझे इसका पता नहीं होने से मैंनें वह शराब पी ली । मुझे सांप का जहर चढ़ने लगा ! मुझे अपनी भूल का ख्याल आ गया । अहो ! मैंने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी..मुझे अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप हुआ । पाप के तीव्र पश्चात्ताप और नवकार महामंत्र के स्मरण के फल स्वरूप मैं मरकर यक्ष निकाय में उत्पन्न हुआ । मेरा नाम कपर्दी यक्ष है । मेरे अधीन एक लाख यक्ष है । हे प्रभो ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करे, मैं आपकी क्या सेवा करुं ?'

इतना कहकर वह कपर्दी यक्ष वज्रस्वामी के चरणों में बैठ गया ।

उसी समय वज्रस्वामी ने जावडशा को संबोधित करते हुए सिद्धगिरि का माहात्म्य समझाया और कहा, 'हे पुण्यशाली ! तू इस महातीर्थ की यात्रा कर और इस तीर्थ का उद्धार कर ! तेरे इस कार्य में मैं, कपर्दी यक्ष और तेरा भाग्य सहायता करेगा ।'

गुरूदेव के मुख से शत्रुंजय के माहात्म्य को सुनकर जावडशा एकदम खुश हो गए । उनके हृदय में आनंद की सीमा नहीं रही !

गुरूदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसने तत्काल सिद्धगिरि की ओर जाने का संकल्प किया और उसकी तैयारी प्रारंभ कर दी ।

संघ प्रयाण के पहले दिन किसी दुष्टदेव ने संघपति की सती स्त्री जयमती के शरीर में ज्वर पैदा किया...परंतु वज्रस्वामीजी की दृष्टि मात्र से वह रोग उपशांत हो गया । उसके बाद ज्यों-ज्यों संघ आगे बढता गया, त्यों-त्यों दुष्ट देवों द्वारा अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे परंतु नवीन कपर्दी यक्ष उन सब उपद्रवों को अपनी शक्ति द्वारा दूर करने लगा । इस प्रकार क्रमशः आगे बढता हुआ

वह संघ आदिपुर पहुँच गया । उस समय किसी दुष्ट देव ने वृक्ष के पत्तों की तरह गिरिराज को कंपित किया ! वज्रस्वामी ने शांति कर्म कर उस गिरिराज को पुनः निश्चल किया !!

पूज्य वज्रस्वामी ने शुभ मुहूर्त प्रदान किया । उस शुभ मुहूर्त में वह संघ जिनप्रतिमा को लेकर क्रमशः गिरिराज पर चढा । मिथ्यात्वी देवों ने अपने उपद्रव चालू रखें ! परंतु नूतन कपर्दी यक्ष ने उन सब उपद्रवों को दूर किया । इस प्रकार संघ गिरिराज के शिखर पर पहुँचा । परंतु दुष्ट देवों ने वहां पर हड्डी, मांस, चर्बी, रक्त, केश आदि बिखेरकर गिरिराज को अपवित्र कर दिया । उस समय जावडशा ने अपने नौकरों को आदेश दिया और शत्रुंजय महानदी से जल मंगवाकर उस गिरिराज को पुनः पवित्र करा दिया ।

जावडशा ने गिरिराज पर रहे ध्वस्त बने जिनमंदिरों को देखा । उसे अत्यंत ही खेद हुआ । रात्रि में सारा संघ निद्राधीन हुआ, तभी दुष्ट देव ने उस जिन प्रतिमा को पर्वत पर से नीचे उतार दी ! प्रातःकाल होने पर जैसे ही जावडशा को इस बात का पता चला, उसे अत्यंत ही खेद हुआ ।

वज्रस्वामी ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया और कहा कि यह प्रतिमा नीचे उतार दी गई है । जावडशा पुनः उस प्रतिमा को ऊपर ले आए । रात्रि में उस मिथ्यात्वी देव ने उस प्रतिमा को पुनः नीचे ला दी ! दिन में वह प्रतिमा शत्रुंजय के शिखर पर और रात्रि में वह प्रतिमा नीचे आ जाती थी ! इस प्रकार इक्कीस दिन तक यह क्रम चलता रहा ।

उसके बाद वज्रस्वामी ने रात्रि में जावडशा और कपर्दी यक्ष को बुलाकर कहा, **'हे कपर्दी ! तू शक्तिमान हैं तो अब अपनी शक्ति का प्रयोग बता !'**

उसके बाद जावडशा को कहा, 'हे जावड ! तेरे दिल में आदिनाथ प्रभु के प्रति अपूर्व भक्ति है । अतः तुम अपनी धर्मपत्नी सुशीलादेवी के साथ रथ के पहियों के नीचे सो जाओ । वे मिथ्यात्वी देव समर्थ होने पर भी तुम्हारे इस पराक्रम के आगे टिक नहीं सकेंगें । उस समय सारा संघ मेरे साथ कायोत्सर्ग ध्यान में रहेगा ।'

गुरू भगवंत के मुख से इन वचनों को सुनकर जावडशा तुरंत तैयार हो गया ।

दूसरे दिन आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा को ऊपर चढाने के बाद जावडशा और उसकी पत्नी रथ के पहियों के नीचे सो गए । वज्रस्वामी और सारा संघ कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर हो गया ।

रात्रि के समय में दुष्ट देवों ने भयंकर उपद्रव चालू किए । परंतु उनका कुछ भी नहीं चला । आखिर जावडशा की जीत हुई ।

प्रातःकाल होने पर उस प्रतिमा को पर्वत के शिखर पर ही सभी ने देखा । सभी के उत्साह-उल्लास का पार नहीं था ।

मंगल वाद्य यंत्रों के साथ उस प्रतिमा को जिनमंदिर में प्रवेश कराया गया । मंदिर में रही सभी अशुद्धि आशातनाओं को दूर किया गया ।

उस समय पहले के मिथ्यात्वी कपर्दी यक्ष ने भयंकर उपद्रव मचाना चालू किया । नए कपर्दी यक्ष ने उसका प्रतिकार किया । **आखिर वह पुराना कपर्दी यक्ष वहां से भाग गया और सौराष्ट्र के दक्षिण समुद्र किनारे पर चंद्र-प्रभास तीर्थ में चला गया और वहां उसने दूसरा नाम धारण किया ।**

इधर नूतन जिनबिंब की खूब उत्साह के साथ प्रतिष्ठा विधि संपन्न हुई ।

उस समय मंदिर की ध्वजा चढाने के लिए जावडशा अपनी पत्नी के साथ मंदिर के शिखर पर चढे । मंदिर की ध्वजा चढाने के बाद जावडशा सोचने लगे, **'अहो ! आज मेरा कैसा अहोभाग्य ! इस तीर्थ के जीर्णोद्धार का लाभ मुझे प्राप्त हुआ । मेरा जन्म सफल हो गया । कपर्दी यक्ष ने मुझे सहायता की । वज्रस्वामी जैसे महान् गुरुदेव प्राप्त हुए ! अब मैं संसार का त्याग कर जिनेश्वर के ध्यान में लीन बनकर सर्व कर्मों को खपा दूँ !'** इस प्रकार जावडशा और उसकी पत्नी शुभ ध्यान की धारा में लीन बने हुए थे । तभी उनका हृदय बंद हो गया । उनका आयुष्य वहीं समाप्त हो गया । वे समाधि मृत्यु प्राप्त कर चौथे देवलोक में देव बने । उसी समय तीर्थ के रक्षक उत्तम देवताओं ने उन दोनों के मृतदेह को उठाकर क्षीर सागर में डाल दिया !

इधर जावडशा के पुत्र जाजनाग ने जब अपने माता-पिता को नहीं देखा तो उसे अत्यंत ही खेद हुआ । उसके बाद चक्रेश्वरी देवी ने मधुर वचनों से उसे शांत किया और तीर्थ भक्ति के प्रभाव से तुम्हारे माता-पिता समाधि मृत्यु को प्राप्तकर चौथे देवलोक में देव बने हैं, इत्यादि बातें कही ! जाजनाग का शोक दूर हुआ । उसके बाद जाजनाग संघ लेकर गिरनार पर्वत पर गया ।

इस प्रकार विक्रम संवत् 108 में जावडशा ने शत्रुंजय महातीर्थ का 13वाँ उद्धार किया ।

रुक्मिणी को प्रतिबोध

पृथ्वीतल पर विचरते हुए वज्र स्वामी अपनी प्रवचन लब्धि से भव्य जीवों को प्रतिबोध देने लगे । 500 शिष्यों के गुरू पद पर प्रतिष्ठित वज्रस्वामी आचार्य भगवंत जहाँ भी जाते, वहाँ अद्भुत शासन प्रभावना होती । अनेक भव्यात्माएँ देशविरति और सर्वविरति धर्म को स्वीकार करती थीं ।

इधर पाटलीपुत्रनगर में धन-धान्य से समृद्ध एक सेठ रहता था, उस सेठ की पुत्री का नाम **रुक्मिणी** था । उस नगर में वज्रस्वामी की साध्वियाँ श्राविकाओं के आगे धर्मोपदेश देती थी ! धर्मोपदेश के अन्तर्गत वे वज्रस्वामी के रूप, लावण्य, सौभाग्य आदि गुणों का वर्णन करती थीं । वज्रस्वामी के रूप-लावण्य आदि गुणों को सुनकर उस रुक्मिणी ने निश्चय कर लिया कि इस जीवन में वज्रस्वामी के साथ ही विवाह करना है ।

रुक्मिणी के इस संकल्प को जानकर साध्वीजी भगवंत ने उसे समझाते हुए कहा, ``रुक्मिणी ! तुम्हारा यह संकल्प उचित नहीं है । जैन मुनि तो स्त्री के सर्वथा त्यागी होते हैं । उनके साथ पाणि-ग्रहण करने का तेरा संकल्प कभी भी साकार नहीं हो सकेगा ।''

रुक्मिणी ने कहा, ``मैं अपना प्रयत्न करूंगी । प्रयत्न करने पर भी सफलता नहीं मिली तो मैं भी दीक्षा अंगीकार कर लूंगी ।''

वज्रस्वामी अपने विशाल परिवार के साथ विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर में पधारे । वहाँ के राजा ने भव्य महोत्सव पूर्वक आचार्य भगवंत का नगर- प्रवेश कराया ।

अनेक साधुओं के रूप में समानता होने से राजा वज्रस्वामी को पहिचान नहीं पाया । अन्य साधुओं के द्वारा वज्रस्वामी का परिचय प्राप्त होने पर राजा ने अत्यंत ही भावपूर्वक वज्रस्वामी को वंदन-प्रणाम किया । तत्पश्चात् वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना सुनी ।

वज्रस्वामी के आगमन को सुनकर रुक्मिणी ने लज्जा का परित्याग कर अपने पिता को कहा, **''मैं इस जीवन में एक मात्र वज्र के साथ ही लग्न करना चाहती हूँ, यदि मेरी इच्छा पूर्ण नहीं होगी तो मैं मृत्यु को वर लूंगी ।''**

पुत्री की यह बात सुनकर धनावह श्रेष्ठी, दिव्य आभरणों व अलंकारों से अलंकृत अपनी पुत्री को लेकर वज्रस्वामी के पास आया । लोक-मुख से वज्रस्वामी के अद्‌भुत रूप, लावण्य आदि गुणों का वर्णन सुनकर धनावह-श्रेष्ठी अत्यंत खुश हो गया और सोचने लगा, ''अहो ! मेरी पुत्री धन्य है जो इस प्रकार के श्रेष्ठ व रूपवान् वर को वरना चाहती है ।''

तत्पश्चात् धनावह श्रेष्ठी ने वज्रस्वामी को वंदन-नमस्कार किया...और धर्मोपदेश सुनने के बाद वह हाथ जोड़कर विनती करते हुए बोला, ''मेरी यह पुत्री आप में आसक्त है, अतः इसके साथ पाणि-ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करें । इस कन्या के पाणि-ग्रहण के प्रसंग में मैं एक करोड़ सुवर्ण प्रदान करूंगा ।''

धनावह सेठ के इन शब्दों को सुनकर वज्रस्वामी ने कहा, ***''संसार के भोग-सुख तो नदी के जलतरंग तथा हाथी के कान की भाँति अत्यंत ही चपल हैं । संसार के भोग-सुख तो पुण्य रूपी लक्ष्मी में राग पैदा करानेवाले हैं । स्त्री और लक्ष्मी का दान खूब सोच-विचार करके देना चाहिए । मेरा शरीर तो हाड़-मांस-रुधिर व चर्बी आदि से पूरा-पूरा भरा हुआ है उसमें आसक्त होना तो सिर्फ मूर्खता है ।***

''यदि तुम्हारी पुत्री योग्य वर को वरना चाहती है तो वह संयम रूपी वर के साथ पाणिग्रहण करे, जो देवों को भी दुर्लभ है और जिसके आगे सभी सद्‌गुण किंकर समान हैं । रूप और लक्ष्मी भी जिसकी दासी है...सभी क्रियाएँ भी जिसके आगे तुच्छ हैं । जिसमें किसी प्रकार का दूषण नहीं है...और जिसकी भक्ति से मोक्ष भी सुलभता से प्राप्त हो सकता है ।''

''इस संसार में जीवन के साथ मृत्यु का भय जुड़ा हुआ है-यौवन के साथ वृद्धावस्था का भय लगा हुआ है । देह के सौंदर्य के साथ रोग का भय जुड़ा हुआ है । अंजलि में रहा जल जिस प्रकार प्रतिक्षण कम होता जाता है...उसी प्रकार अपना आयुष्य भी प्रतिक्षण नष्ट होता जाता है ।''

वज्रस्वामी के वैराग्य सभर उपदेशों को सुनकर रुक्मिणी का मोह रूपी ज्वर शांत हो गया और लग्न के लिए आई हुई रुक्मिणी ने भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली । वज्रस्वामी की वाणी सुनकर अनेक भव्यात्माएँ भी जिनधर्म के प्रति आदर वाली बनीं ।

संघरक्षा

वज्रस्वामी ने **आचारांग सूत्र** के **महापरिज्ञा अध्ययन** में से आकाशगामिनी विद्या का उद्धार किया ।...परन्तु भविष्य में सभी प्राणी अल्प सत्त्ववाले होंगे, यह जानकर उन्होंने वह विद्या किसी साधु को प्रदान नहीं की ।

एक बार वज्रस्वामी विहार करते हुए उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़े । वहाँ पर भयंकर अकाल पड़ा था । भयंकर दुष्काल के कारण संघ की स्थिति अत्यंत ही दयनीय थी ।

संघ ने वज्रस्वामी को विनती करते हुए कहा, ''दुष्काल के कारण हमारी स्थिति अत्यंत ही खराब है। दुष्काल के साम्राज्य में पुनः पुनः भोजन करने पर भी तृप्ति नहीं होती है। भिक्षुओं के भय से श्रेष्ठीजन भी अपना द्वार नहीं खोलते हैं। क्रय-विक्रय का व्यवहार भी दुर्लभ हो गया है। विहार करके आए हुए साधुओं के लिए शुद्ध अन्न की प्राप्ति दुर्लभ हो गई है। इस संघ का उद्धार करने में आप ही समर्थ हो।''

संघ की इस दयनीय स्थिति का वर्णन सुनकर वज्रस्वामी ने सोचा, **''सामर्थ्य होने पर भी यदि संघ का रक्षण न किया जाय तो वह व्यक्ति दुर्गतिगामी बनता है, यह संघ तो तीर्थंकरों को भी पूज्य है।''** इस प्रकार विचार कर वज्रस्वामी ने अपनी लब्धि के बल से चक्रवर्ती के चर्मरत्न की भाँति एक लंबा पट्ट बिछाया और उस पर पूरे संघ को उठाकर आकाशगामिनी विद्या के बल से आकाश में उड़ने लगे। इसी बीच कोई शय्यातर किसी काम के लिए अन्यत्र गया हुआ था। वापस लौटते समय वज्रस्वामी को संघ के साथ उड़ते हुए देखकर वह बोला, ''हे प्रभो ! मैं आपका शय्यातर था...अभी हम साधर्मिक हैं तो मुझे ऐसे स्थान में अकेले छोड़कर क्यों जाते हो ?''

इस प्रकार शय्यातर की इस बात को सुनकर वज्रस्वामी ने सूत्रार्थ का स्मरण किया...**''जो साधर्मिक; स्वाध्याय, चारित्र व धर्म की प्रभावना में तत्पर हों उन्हें मुनि अवश्य तारें।''** आगम के इस पाठ को याद कर वज्रस्वामी ने उस श्रावक को भी अपने विद्या पट्ट में ले लिया। उसके बाद वज्रस्वामी सकलसंघ के साथ सुकाल प्रदेश की ओर आगे बढ़ने लगे।

उस पट्ट को लेकर वज्रस्वामी महापुरी नगरी में पधारे...जहाँ सुकाल होने से संघ के सभी सदस्य सुखी बनें।

शासन प्रभावना

महापुरी नगरी का राजा और वहाँ की प्रजा बौद्धधर्मी थीं। इस कारण जैन और बौद्धों के बीच में परस्पर वाद होता रहता था। जब पर्युषण महापर्व आए, तब प्रजाजनों ने जाकर राजा को निवेदन किया, ''हे राजन् ! जैनों का वार्षिक पर्व आया हुआ है, अतः आप माली लोगों के पास से सभी फूल अपने मंदिरों में मंगवा दें। जैनों को फूल नहीं मिलने से उनका अभिमान दूर हो जाएगा।''

प्रजाजनों की यह बात सुनकर राजा ने सभी मालियों को यह आज्ञा कर दी। परिणामस्वरूप जैनों को प्रभु भक्ति के लिए कुछ भी फूल नहीं मिल पाए।

लोगों ने जाकर वज्रस्वामी को बात करते हुए कहा, **''तीर्थ की उन्नति के लिए साधु भी हमेशा प्रयत्नशील होते हैं, अतः आपको भी शासन की उन्नति के लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए।''**

लोगों की यह बात सुनकर आकाशगामिनी विद्या के बल से वज्रस्वामी माहेश्वरी वन में गए। उस वन में धनगिरि का मित्र तड़ित् नाम का माली था। वज्रस्वामी के आगमन को देखकर वह खुश हो गया और बोला, ''आपके दर्शन कर आज मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ...मेरे योग्य सेवा कार्य फरमाएँ।''

वज्रस्वामी ने कहा, ''कल हमारा वार्षिक पर्व है, अतः उसके लिए महापुरी नगरी में प्रभु-भक्ति के लिए पुष्प चाहिए।'' यह सुनकर उस माली ने 20 लाख पुष्प प्रदान किए। उन्हें लेकर वे लघु हिमवंत पर्वत पर गए और वहाँ शाश्वत जिन प्रतिमाओं को वंदन कर वहाँ के देवता के पास

से तथा बीच मार्ग में हुताशन यक्ष के वन देवता के पास से फूल लिये । इन सब फूलों को लेकर वे महापुरी नगरी में पधारे और वहाँ पर भव्यातिभव्य प्रभु भक्ति का महोत्सव किया ।

वज्रस्वामी के इस प्रभाव को देखकर बौद्धराजा भी अत्यंत ही प्रभावित हुआ । राजा, प्रजाजनों ने जैन धर्म को स्वीकार किया । जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना हुई ।

अनशन स्वीकार

अपने चरण कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए वज्रस्वामी अपने उपदेश द्वारा अनेक भव्यजीवों पर उपकार करने लगे । वे वज्रस्वामी क्रमशः विहार करते हुए दक्षिण पथ में पधारे । वहाँ एक बार उन्हें श्लेष्म की तकलीफ हुई । शिष्यों के आग्रह से उन्होंने सूंठ का टुकडा लिया और उसे कान पर रख दिया । वे औषध के रूप में सूंठ का टुकड़ा वापरना भूल गए । प्रतिक्रमण समय मुहपत्ति की प्रतिलेखना करते समय जब वह सूंठ का टुकड़ा नीचे गिरा-तब वे सोचने लगे, ''अहो ! लगता है अब मेरा आयुष्य स्वल्प ही है ।''

अपने आयुष्य की अल्पता जानकर वज्रस्वामी ने अनशन करने का निश्चय किया ।

उस समय 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा । वज्रस्वामी ने अपने शिष्य वज्रसेन आदि को अन्यत्र विहार की आज्ञा दी । भयंकर दुष्काल के कारण भिक्षा की दुर्लभता देखकर वज्रसेन मुनि ने कहा, ''मैं विद्या के बल से (विद्या पिंड) भिक्षा लाकर तुम्हारा पोषण करूँगा और यदि विद्यापिंड पसंद न हो तो अनशन व्रत स्वीकार करना चाहिए ।'' वज्रसेन मुनि की यह बात सुनकर सभी 500 शिष्य भी अनशन व्रत स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए ।

एक छोटे से बालमुनि को किसी बहाने से छोड़कर वज्रस्वामी अपने 500 शिष्यों के साथ पर्वत पर चढ़ने लगे । उस समय बालमुनि ने सोचा, ''यदि मैं भी पर्वत पर चढूंगा तो अपने गुरूदेव को अप्रीति होगी'', इस प्रकार विचार कर पर्वत के निम्न भाग में ही बालमुनि ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर अनशन व्रत स्वीकार कर लिया । मक्खन के पिंड की तरह बालमुनि का कोमल देह गल गया और समाधि मृत्यु प्राप्त कर वे देवलोक में चले गए । बालमुनि के अपूर्व सत्त्व से प्रसन्न हुए देवताओं ने आकर उनका महोत्सव किया ।

जब अन्य मुनियों को बालमुनि के अद्‌भुत पराक्रम का पता चला तो वे और भी अधिक वैराग्य वाले हुए और सभी ने अनशन व्रत स्वीकार लिया ।

वज्रस्वामी को चलित करने के लिए किसी मिथ्यादृष्टि देवी ने आकर उपसर्ग करने प्रारंभ किए । परन्तु वज्रस्वामी लेश भी चलित नहीं हुए । आखिर देवी की अप्रीति को जानकर वज्रस्वामी अन्य स्थान पर गये और वहाँ पर क्षेत्रदेवता का कायोत्सर्ग कर अनशन कर लिया । अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर वे स्वर्ग में गए । इन्द्र ने आकर उस स्थान पर तीर्थ की स्थापना की ।

वज्रस्वामी के स्वर्गगमन के बाद सौधर्मइन्द्र ने आकर रथ में बैठकर उस पर्वत को प्रदक्षिणा दी, उसके बाद वह पर्वत रथावर्तगिरि के नाम से प्रख्यात हुआ । पंचमंगल महाश्रुत स्कंध जो स्वतंत्र आगम के रूप में था, उसे वज्रस्वामी ने मूलसूत्र के साथ जोड़ दिया ।

वज्रस्वामी के स्वर्ग गमन के बाद दसवें पूर्व, चौथे संघयण और संस्थान काविच्छेद हो गया ।

जन्म–वि.संवत् 522, वि.संवत् 52
दीक्षा–वि.संवत् 544, वि.संवत् 77

युग प्रधान पद
वि.संवत् 584, वि.संवत् 114
स्वर्गवास–वि.संवत् 597, वि.संवत् 127

अनुयोग विभाजनकर्ता आर्यरक्षितसूरिजी-11

1. माँ ! तू प्रसन्न क्यों नहीं ?

संगीत के सूरीले स्वरों में अन्तर के भावों को अभिव्यक्त करने की शक्ति रही हुई है। परमात्मभक्ति के रस में निमग्न भक्त जब वीणा के मधुर स्वरों के साथ तन्मय बन जाता है...तब उसे पता ही नहीं चलता है कि समय कितना बीत चुका है।

संगीत के स्वरों ने किसको आकर्षित नहीं किया ? भोगी और योगी, दोनों के आकर्षण का केन्द्र बना है संगीत।

भोगी को पसंद है कामोत्तेजक संगीत।

योगी को पसंद है भक्ति और समर्पण का संगीत।

किसी का समर्पण होता है...विशुद्ध आत्मा के चरणों में...तो किसी का समर्पण होता है जड़ के रंगों से रंजित भौतिक देह और देही के प्रति।

समर्पण आनंद भी देता है और विषाद भी।

शाश्वत तत्त्व के प्रति किया गया समर्पण आनंद में परिणत होता है।

क्षणिक पदार्थों के प्रति किया गया समर्पण अन्त में विषाद को जन्म देता है।

प्रातः काल की मधुर वेला में प्रकृति का सौंदर्य सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। पूर्व दिशा में लालिमा छा चुकी थी। उषा देवी सूर्यनारायण के स्वागत के लिए आतुर थी। कोयल के सूरीले संगीत से वातावरण मनमोहक बन रहा था। धरती माता सूर्यकिरणों की चादर ओढ़ने के लिए उत्सुक थी।

दशपुर की जनता में आज आनंद समा नहीं रहा था। प्रजाजनों के हृदय सरोवरों में आनंद की ऊर्मियाँ उछल रही थीं।

महाराजा से लेकर सामान्य जन तक सब के हृदय में बड़ी भारी उत्सुकता थी।

स्नान आदि से निवृत्त होकर, सुंदर व बहुमूल्य वस्त्रों व अलंकारों को धारण कर सभी प्रजाजन नगर के बाहर स्थित **मनोरम** उद्यान की ओर जा रहे थें। नारियाँ गीत गा रही थीं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चल रहे लोगों से वातावरण प्रफुल्लित बना हुआ था। कभी हाथी की गर्जना...तो कभी घोड़े का हेषारव बालकों के दिल को प्रसन्न कर रहा था।

प्रजावत्सल महाराजाधिराज **उदायन** भी रथ में आरूढ़ हो चुके थे । वे भी मनोरम उद्यान की ओर आगे बढ़ रहे थे । वीणा, बाँसुरी, ढोलक, मृदंग व अन्य वाद्ययंत्रों के स्वर से वातावरण संगीतमय बना हुआ था । सभी नर-नारियों के मुखमंडल पर प्रसन्नता थी । जयजयकार के नारों से समूचा आकाश मण्डल गूंज रहा था । चारों ओर स्वागत की शहनाइयाँ बज रही थीं ।

गत दिन नगर में चारों ओर नगर-रक्षकों के द्वारा आर्यरक्षित के आगमन व स्वागत की यह उद्घोषणा हो चुकी थी–

''दशपुर नगर के शृणगार समा विप्रवर सोमदेव पुरोहित के पुत्र पण्डितवर्य आर्यरक्षित चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर पाटलीपुत्र नगर में पधार रहे हैं । ज्ञान की गंगोत्री समान आर्यरक्षित के स्वागत के लिए महाराजा स्वयं नगर के बाहर पधारेंगे...अतः सभी प्रजाजन को इस स्वागत यात्रा में पधारने के लिए महाराजा की आज्ञा है ।''

नगर के नर-नारियों के हृदय में नया उत्साह व नयी उमंग थी । सबसे अधिक आनंद तो विप्रवर **सोमदेव** को था । सोमदेव के हृदय में आनंद समा नहीं रहा था ।

लगभग बारह वर्ष के बाद पिता-पुत्र का मिलन होनेवाला था । सोमदेव अपने दिलोदिमाग में अनेक कल्पना-चित्र संजो रहा था ।

आज वह अपने पुत्र के प्रति गर्व ले रहा था । ''मेरा पुत्र चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आ रहा है,...वह राजसभा की शोभा में चार चांद लगाएगा...मेरी कीर्ति का ध्वज दिग्-दिगन्त तक फैलाएगा ।''

वह भी सज–धज कर अपने मित्र परिवार के साथ मनोरम उपवन में जाने के लिए निकल पड़ा था ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस देश के राजा महाराजा भी विद्वानों का आदर-सत्कार और सम्मान करते थें । ''विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'' की उक्ति को वे प्राचीन राजा-महाराजा अपने जीवन में सार्थक करते थें । वाद-संवाद-संगोष्ठी तथा प्रवचन आदि के माध्यम से प्रजाजन में संस्कारों के सिंचन के लिए वे अत्यंत जागरूक रहते थें ।

दशपुर के राजा उदायन भी विद्वत्-प्रिय थे । वे अपनी राजसभा में विद्वानों को योग्य स्थान देते थे और उन्हें गौरव व सम्मान देते थे ।

कुछ ही दिनों पूर्व राजा को आर्यरक्षित की प्रतिभा के समाचार मिले थे...तभी से उनके दिल में आर्यरक्षित के स्वागत की तीव्र इच्छा थी । अपनी भावना के अनुरूप महाराजा ने आर्यरक्षित के स्वागत के लिए सम्पूर्ण नगर में घोषणा करवा दी थी ।

दशपुर की प्रजा भी विद्याव्यासंगी थी । विद्वानों के प्रति प्रजा के दिल में सद्भावना थी । इसी का फल था कि सभी प्रजाजन मनोरम उद्यान की ओर जा रहे थें ।

पंडितवर्य आर्यरक्षित पास ही के गाँव से आ रहे थे...उनके दो परिचित मित्र भी उनके साथ थे ।

बराबर शुभ-मुहूर्त में आर्यरक्षित मनोरम उद्यान में आ पहुँचे ।

उनके आगमन के साथ ही **''पण्डितवर्य आर्यरक्षित की जय हो''** के नाद से सम्पूर्ण आकाश मंडल गूँज उठा ।

महाराजा उदायन और विप्रवर सोमदेव अग्र पंक्ति में खड़े थे ।

आर्यरक्षित ने सर्वप्रथम महाराजा और अपने उपकारी पिता सोमदेव के चरणों में प्रणाम किया ।

वर्षों बाद पिता-पुत्र का वह अद्‌भुत मिलन था । दोनों की आँखों में हर्षाश्रु बह रहे थें । पुत्र के दिल में समर्पण और सम्मान का भाव था । पुत्र के इस नम्र व्यवहार से सोमदेव का हृदय आनंद से भर आया...पिता ने पुत्र को हृदय से आशीर्वाद दिए ।

त्याग, नम्रता और समर्पण आर्य संस्कृति के जीवंत प्रतीक हैं । राजा ने आर्यरक्षित को आशीर्वाद दिया...और उसे हाथी पर आरूढ़ किया । वाद्य-यंत्रों की ध्वनि और जय-जयकारों से सारा आकाशमंडल गूंज उठा ।

नगरवासियों ने आर्यरक्षित का हार्दिक स्वागत और अभिनंदन किया । आर्यरक्षित भी हाथ जोड़कर सभी का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे । स्वागत-यात्रा धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी ।

सभी के दिल में आनंद और उत्साह था । चारों ओर भीड़ जमा थी ।

सभी के मुख पर प्रसन्नता थी...परन्तु आर्यरक्षित कुछ विचारों में खो गये थे । उनकी नजर चारों ओर घूम रही थी । ज्यों-ज्यों उनकी नजर दौड़ रही थी...त्यों-त्यों उनका दिल व्यथा से भर रहा था । भीड़ के बीच स्वजन-कुटुम्बी व मित्रजन सभी दिखाई दे रहे थें...परन्तु **वात्सल्यमूर्ति माँ के कहीं दर्शन नहीं हो पा रहे थे !**

माँ तो वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति होती है । उसके रोम-रोम में सन्तान के प्रति प्रेम और वात्सल्य होता है ।

विशाल भीड़ के बीच माँ के दर्शन न होने से आर्यरक्षित का मन व्यथित हो उठा । सभी स्वजन मित्रजन आ गए...परन्तु माँ क्यों नहीं आई ?

'क्या माँ को मेरा स्वागत पसंद नहीं ? क्या माँ के दिल में अब मेरा कोई स्थान नहीं ? क्या माँ के प्रति मुझ से कोई अविनय हो गया ? क्या माँ स्वस्थ नहीं है ?' इत्यादि अनेक विचारों ने आर्यरक्षित के मन को घेर रखा था ।

ज्यों-ज्यों स्वागत यात्रा-आगे बढ़ रही थी...त्यों-त्यों माँ के दर्शन की उत्कंठा तीव्र बनती जा रही थी...परन्तु अफसोस ! नगर के किसी भी द्वार पर आर्यरक्षित को अपनी माँ के दर्शन नहीं हो सके ।

माँ के बिना उसे यह स्वागत आडम्बर, नीरस प्रतीत हो रहा था ।

आर्यरक्षित के मन में माँ के प्रति अद्‌भुत समर्पण और सम्मान था ।

उनकी हर नजर माँ को शोध रही थी...परन्तु उनकी दर्शन-पिपासा किसी भी तरह से शान्त नहीं हो पा रही थी ।

बाह्य चक्षुओं से आर्यरक्षित सभी के अभिवादन को स्वीकार कर रहे थे...परन्तु उनके अभ्यन्तर नेत्र तो माँ के दर्शन के लिए तड़प रहे थे ।

स्वागत-यात्रा राजमार्गों से गुजर रही थी...धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ वह जुलूस राजमहल

की ओर मुड़ा । राजमहल के पास ही विशाल सभामंडप तैयार था । राजभवन में शोभायात्रा की समाप्ति हुई और वह स्वागत यात्रा राजसभा के रूप में बदल गई ।

उदायन महाराजा अपने राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुए । तालियों की गड़गड़ाहट से सभामंडप गूंज उठा ।

महामंत्री ने सभा का संचालन प्रारंभ किया ।

पंडितवर्य आर्यरक्षित ने योग्य आसन ग्रहण किया ।

प्रजाजन भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गए ।

सर्वप्रथम खड़े होकर महामंत्री ने हाथ जोड़कर महाराजा को प्रणाम किया । तत्पश्चात् परमात्मा की जय बुलवाकर सभा को शान्त किया । फिर वे बोले ``प्रिय प्रजाजन ! आज आपके दिल में आनंद-उल्लास देखकर मेरा मन-मयूर नाच उठा है । आप सबको ज्ञात है कि विप्रवर सोमदेव पुरोहित के ज्येष्ठ पुत्र **आर्यरक्षित** चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर अपने नगर में पधारे हैं । आज हमने आर्यरक्षित का भव्य स्वागत किया । निकट भविष्य में ही आर्यरक्षित हमारी राजसभा के एक विशिष्ट अंग बनेंगे...और उनकी बुद्धि, प्रतिभा से समस्त प्रजा लाभान्वित बनेगी ।''...इसके पश्चात् महामंत्री ने आर्यरक्षित का विशेष परिचय दिया ।

महामंत्री के बाद स्वयं महाराजा ने खड़े होकर आर्यरक्षित को पुष्पहार पहिनाकर उसका हार्दिक स्वागत और अभिनन्दन किया और कहा-``आज से हमारी सभा को एक अनमोल रत्न की प्राप्ति हुई है, जिससे हमारी राजसभा की शोभा में चार चांद लगेंगे ।''

अंत में आर्यरक्षित ने अत्यंत विनम्र भाव से कहा- ***''वास्तव में मैं इस स्वागत के योग्य नहीं हूँ । महाराजा तथा पूजनीय माता-पिताश्री के शुभाशीर्वाद से ही मैं थोड़ा-बहुत ज्ञानार्जन कर सका हूँ...वास्तव में यश के हकदार तो वे ही हैं...उनकी ही कृपा से मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान मिला है, अतः इस सम्मान के अधिकारी तो वे पूज्यवर हैं ।''***

इतना कहकर आर्यरक्षित ने अपना आसन ग्रहण किया । तत्पश्चात् नगर के मुख्य व्यक्तियों ने आर्यरक्षित की प्रशस्ति करते हुए काव्यपाठ प्रस्तुत किए ।

थोड़ी ही देर बाद महामन्त्री ने प्रजाजनों का आभार मानकर सभा विसर्जित कर दी ।

आर्यरक्षित अपने स्वजन-मित्रजन वर्तुल के साथ अपने घर की ओर आगे बढ़ने लगे । हर दृष्टि-हर नजर में वे अपनी माँ को खोज रहे थे...परन्तु कहीं आगे भी उन्हें अपनी प्यारी माँ के दर्शन नहीं हो पाए । तीर्थसमा माँ की चरण-रज के स्पर्श के लिए उनके दिलो-दिमाग में तड़पन थी । जल बिना मछली की भाँति उन्हें इस स्वागत में भी कोई आनंद नहीं आ रहा था ।

आर्यरक्षित ने सोचा, `शायद घर के द्वार पर माँ खड़ी होगी...माँ के दर्शन कर मैं पावन बन सकूंगा ।' परन्तु घर भी आ गया । आर्यरक्षित की आशा के बादल बिखर गए...माता के दर्शन की पिपासा शान्त न हो पाई... पड़ौस की स्त्रियों ने अक्षत और कुंकुम का तिलक कर आर्यरक्षित का स्वागत किया ।

आर्यरक्षित ने घर आंगण में प्रवेश किया...परन्तु कहीं भी उन्हें अपनी प्राणप्यारी माँ दिखाई नहीं दी...आखिर मन में घुमड़ रहा वह प्रश्न वाचा के द्वारा व्यक्त हो ही गया ।

आर्यरक्षित ने पुकारा-''माँ...माँ...माँ...ओ माँ !''

परन्तु घर के किसी कोने से कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं हुआ ।

आखिर आर्यरक्षित ने पूछ ही लिया. ''माँ कहाँ है ?''

पता चला, माँ ऊपरी खंड में बैठी है और सामायिक कर रही है । माँ की ममता का प्यासा आर्यरक्षित अत्यंत तेजी से ऊपरी खंड में पहुँच गया । दूर से ही उसने माँ के दर्शन किए और उसकी आँखें हर्ष व आनन्द से भीग गईं ।

आर्यरक्षित ने दूर से ही माँ के चरणों में प्रणाम किया ।

परन्तु आश्चर्य ! माँ ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया ।

माँ रुद्रसोमा उच्चतम संस्कारों से युक्त महासती सन्नारी थी । बचपन से ही उसने जैन धर्म का गहन अभ्यास किया था । जीव क्या है ? पुण्य और पाप क्या हैं ? इत्यादि तत्त्वों की वह पूर्ण ज्ञाता थी । तत्त्व की वह मात्र शुष्क ज्ञाता ही नहीं थी, उसने जैन तत्त्वज्ञान को जीवन में आत्मसात् भी किया था...उसके रोम-रोम में जिनेश्वर परमात्मा के प्रति अपूर्व भक्ति और समर्पण का भाव था । उसका हृदय मैत्री के भाव से भावित था । ईर्ष्या, द्वेष व अहंकार की कालिमा को उसने प्रेम-मैत्री व नम्रता के जल से धो दिया था । जगत् के यथार्थ स्वरूप का उसे ज्ञान था । जगत् के कर्मजन्य वैचित्र्य भावों को देखकर भी वह समत्व भाव में स्थिर थी ।

सम्यग्दर्शन का प्रदीप उसकी अंतरात्मा में प्रज्वलित था । आत्मबंधन रूप राग-द्वेष के यथार्थ स्वरूप की वह ज्ञाता थी । **''ममत्व ही बंधन है ।''** इस सनातन सत्य को मात्र उसने जाना ही नहीं था, बल्कि उसे जीवन में आत्मसात् भी किया था...और इसी के फलस्वरूप उसे यह भौतिक संसार एक बंधन-सा प्रतीत हो रहा था । जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा बताए हुए सनातन सत्य के प्रति उसके दिल में अपूर्व श्रद्धा थी । **''संसार के भौतिक सुख क्षणिक हैं, नाशवंत हैं, इन सुखों की प्राप्ति से, आत्मा कभी तृप्त होने वाली नहीं है''**, -यह बात उसके दिल में जम चुकी थी ।

रुद्रसोमा के मन में त्याग-तप और विरक्ति की भावना थी । वह अनेक बार सोचती थी, **''इस संसार के बंधन से मैं कब छूटूंगी ?...वह दिन कब आएगा जब मैं संसार के नश्वर सम्बन्धों से मुक्त होकर शाश्वत पदार्थ-आत्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ सकूंगी ! क्या मेरी संतान इसी भौतिक मार्ग पर चलेगी ? अहो ! क्या मेरी संतान भी भौतिकवाद के रंग में रंग जाएगी ? क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे मैं अपनी संतान को संसार के इस भयंकर जाल से मुक्त कर सकूँ ?''**

वह सदा परमात्मा की पूजा-भक्ति करती और प्रभु से भव-निर्वेद, मोक्ष-संवेग, मार्गानुसारिता आदि गुणों की प्रार्थना करती थी ।

माँ रुद्रसोमा को भी ये समाचार मिल चुके थे कि उसका पुत्र चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आज नगर में प्रवेश कर रहा है...और महाराजा की ओर से उसका स्वागत होनेवाला है...परन्तु उस स्वागत यात्रा में वह नहीं गयी थी । थोड़ी ही देर बाद रुद्रसोमा की सामायिक पूर्ण

हुई । सामायिक में वह मौन थी...उसने अपने पुत्र आर्यरक्षित को कुछ भी नहीं कहा था क्योंकि वह जानती समझती थी कि सामायिक में संसार सम्बन्धी किसी भी प्रकार का चिंतन नहीं करना चाहिए । उस नियम के पालन में वह दृढ़ थी ।

आर्यरक्षित भी जानता था कि माँ सामायिक में है, अतः उनके चरणों का स्पर्श नहीं हो सकता है...अतः वह भी माँ के सामने मौन खड़ा था ।

रुद्रसोमा ने सामायिक पूर्ण की और तत्क्षण आर्यरक्षित प्यारी माँ के चरणों में गिर पड़ा । उसकी आँखों से आनन्द के अश्रु प्रवाहित होने लगे । आर्यरक्षित ने देखा, `माँ के चेहरे पर कोई प्रसन्नता सूचक चिह्न नहीं है ।'

उसने पूछा-``माँ ! ओ माँ ! आज नगर के समस्त प्रजाजन के दिलों में आनन्द की ऊर्मियाँ उछल रही हैं । सभी खुश हैं...परन्तु तेरी आँखों में विषाद क्यों ?''

उसने सोचा-``इतने शास्त्रों के अध्ययन के बाद भी यदि मैं अपनी माँ को खुश नहीं कर सका...तो मुझे धिक्कार है ।''

इतना सोचकर उसने कहा-``ओ माँ ! तेरी अप्रसन्नता का कारण क्या है ? ...तेरे मुख पर विषाद देखकर मेरा दिल काँप रहा है, माँ ! जो भी कारण हो, मुझे कह, मैं तेरे मुख की विषादावस्था को देखने में असमर्थ हूँ ।''

``माँ ! मेरी जो भूल हो...मुझे बता । मैं तेरी आज्ञा शिरोधार्य करूंगा । दुनिया को प्रसन्न करने में मुझे आनन्द नहीं है, मैं तो तेरी प्रसन्नता चाहता हूँ ।'' बोलते-बोलते आर्यरक्षित का गला भर आया...वह आगे कुछ भी नहीं बोल पाया । श्रमणोपासिका माँ रुद्रसोमा ने अपने पुत्र में मातृभक्ति का आदर्श देखा,...शान्त और गम्भीर स्वर से अपनी वाचा प्रकट करते हुए वह बोली-

``बेटा, मैं तेरी माँ हूँ...इसलिए अप्रसन्न हूँ ।''

माँ के शब्द आर्यरक्षित ने सुने...परन्तु वह कुछ भी समझ नहीं पाया ।

उसने कहा-``माँ होकर...अप्रसन्नता का कारण ? मेरी समझ में नही आ रहा है ।''

``बेटा ! आर्यरक्षित ! मेरे दिल में तेरे प्रति प्रेम है...स्नेह है...वात्सल्य है । मेरे हृदय में तेरी हितचिन्ता का झरना बह रहा है...मैं चाहती हूँ, तू पूर्णता प्राप्त करे ।''

``माँ ! तुझे पता नहीं है, मैं चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आया हूँ...राजा और प्रजा सभी का सम्माननीय बना हूँ । क्या मेरी इस विद्या में अपूर्णता दिखाई दे रही है ?''

``बेटा ! मेरे दिल में मात्र इस जीवन की चिन्ता नहीं है । तू जानता है कि **इस देह में रहा आत्म-तत्त्व शाश्वत है । इस देह के विनाश के साथ आत्मा का कोई नाश होने वाला नहीं है । देह क्षणिक है, देही (आत्मा) शाश्वत है । देह की चिन्ता / देह के सौन्दर्य की चिन्ता के लिए जीवन नहीं है...इस जीवन की सार्थकता तो आत्मा की पूर्णता पाने में है ।''**

``बेटा ! तू जिस विद्या को पढकर आया है...वह तो विनाशी तत्त्व की विद्या है । इस विद्या के अभ्यास से पद, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति की प्राप्ति हो सकती है...परन्तु वह सब क्षणिक है । क्षणिक

पदार्थों में आनन्द पाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। तू जानता ही है कि इस दुनिया के भौतिक पदार्थों का सौन्दर्य व अस्तित्व क्षणिक और विनाशी है।''

''बेटा ! मेरे दिल में तेरे प्रति अपार स्नेह है...मुझे आनन्द होता यदि तू शाश्वत तत्त्व की विद्या सीख कर आता। क्षणिक तत्त्व का आनन्द विनाशी है...शाश्वत तत्त्व का आनन्द अविनाशी है।''

''यह जीवन अल्पकालीन है...इस जीवन में यदि शाश्वत तत्त्व से अनुराग न जन्मे तो फिर किस जीवन में आत्म-तत्त्व की साधना कर पायेंगे ? अतः बेटा ! इस दुर्गतिप्रद विद्या के अध्ययन से मैं कैसे प्रसन्न बनूँ ?'' माँ ने अपने दिल की व्यथा व्यक्त की।

''माँ ! ओ माँ ! तेरे दिल में मेरे प्रति स्नेह है...और मेरे दिल में तेरे प्रति भक्ति है...मेरे लिए तो तू ही तीर्थ है...तू ही सर्वस्व है...तू जो आज्ञा करेगी, वह मुझे स्वीकार्य है, बोल ! मैं कौन-सा अध्ययन करूँ तो तुझे प्रसन्नता होगी ? ...मुझे तेरा आशीर्वाद प्राप्त होगा ?'' बेटे ने कहा।

''बेटा ! तेरी इस समर्पण भावना से मुझे प्रसन्नता है। बेटा ! तू यदि **दृष्टिवाद** का अध्ययन करे तो मुझे बडी प्रसन्नता होगी।''

माँ के मुख से 'दृष्टिवाद' का नाम सुनकर आर्यरक्षित प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा, 'दृष्टिवाद' नाम ही कितना सुन्दर है ! तो फिर उसके अध्ययन में तो कितना आनन्द आएगा ?''

''माँ ! ओ प्यारी माँ ! मुझे बता...यह 'दृष्टिवाद' मुझे कौन पढाएगा ?''

माँ ने कहा, **''हे वत्स ! मेरी बात तू ध्यानपूर्वक सुनना। इस 'दृष्टिवाद' के ज्ञाता जैनमुनि होते हैं। वे महासत्त्वशाली होते हैं, सन्मार्गगामी होते हैं...और उस मार्ग पर चलते समय बीच में कितने ही परिषह-उपसर्ग आएँ तो भी वे सन्मार्ग से च्युत नहीं होते हैं। आत्म-साधना ही उनका जीवनमंत्र होता है। भौतिक जगत् से वे परे होते हैं। अब्रह्म और परिग्रह के पाप से वे सर्वथा मुक्त होते हैं। संसार में जीवात्मा को इन्हीं दो पापों का आकर्षण होता है...परन्तु ये जैनमुनि इन दोनों पापों से सर्वथा मुक्त होते हैं-इतना ही नहीं वे अपने जीवन में, जीवन-निर्वाह के लिए भी किसी जीव की हिंसा नहीं करते हैं। उनके जीवन में अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। उनका मन परमार्थ में स्थित होता है। दुनिया के क्षणिक और भौतिक सुखों के वे त्यागी होते हैं...जीवन का हर पल वे आत्मा के शुद्धिकरण में व्यतीत करते हैं। इतना ही नहीं वे सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र की साक्षात् मूर्ति होते हैं।**

इस प्रकार जैनमुनि के जीवन का वृत्तान्त कहने के बाद रुद्रसोमा ने कहा, ''बेटा ! इस ''दृष्टिवाद'' के ज्ञाता तोसलीपुत्र आचार्य हैं।''

''माँ ! ओ माँ ! मुझे जल्दी कह...वे आचार्य कहाँ बिराजमान हैं ?''

''बेटा ! वे आचार्य भगवंत अभी इक्षुवाटिका में बिराजमान हैं।''

``माँ ! वे मुझे ``दृष्टिवाद'' पढ़ाएंगे न ?''

``हाँ ! बेटा ! वे तुझे अवश्य दृष्टिवाद सिखाएंगे...तू नम्र है...तू विनीत है ...आज्ञांकित है...तू अवश्य उनका कृपापात्र बनेगा । बेटा ! जा, मेरा शुभाशिष है, तू दृष्टिवाद का अध्ययन कर ।''

``माँ ! तेरी इस मंगल-भावना को पूर्ण करने के लिए मैं कल ही प्रातःकाल आचार्य भगवंत के पास जाऊंगा ।'' आर्यरक्षित ने कहा ।

माँ की आँखों में हर्षाश्रु आ गए । आर्यरक्षित माँ के चरणों में गिर पड़ा । रुद्रसोमा ने पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर शुभ आशीर्वाद दिया ।

माँ-पुत्र ने शाम का भोजन किया । तत्पश्चात् आर्यरक्षित अपने शयनकक्ष में पहुँच गया ।

2. दीक्षा स्वीकार

स्वप्न की दुनिया बड़ी विचित्र है । स्वप्न-सृष्टि मानव हृदय में अनेक प्रकार के उत्पात भी मचाती है और आशा की उज्ज्वल किरणें भी चमका देती है । स्वप्न की अगम्य कल्पना में मानव कभी नन्दनवन में पहुँच जाता है...तो कभी मरुभूमि के भयावह रेगिस्तान में भी । कभी हर्ष से नाच उठता है...तो कभी शोक से क्रन्दन कर बैठता है । स्वप्न की रंगीली दुनिया में कभी उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच जाता है तो कभी गहरी खाई में गिर जाता है ।

पण्डितवर्य आर्यरक्षित शय्या पर सोया हुआ था...परन्तु उसकी आँखों में तन्द्रा या निद्रा नहीं थी...वह अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पनाओं में डूबा हुआ था । जैनाचार्य के पवित्र चरित्र के श्रवण के बाद उसके मन में नई आशा और नई किरण प्रस्फुटित हो रही थी ।

आकाश में पूर्णिमा का चंद्र अपनी सोलह कलाओं के साथ खिला हुआ था । चंद्र की निर्मल ज्योत्स्ना धरती के अन्धकार पट को चीर रही थी ।

वातावरण में नीरवता व्याप्त थी । आर्यरक्षित के मन में जैनाचार्य से मिलने की तीव्र उत्सुकता उत्कंठा थी । आर्यरक्षित विचारों में खोया हुआ था...धीरे-धीरे रात्रि आगे बढ़ने लगी...और आर्यरक्षित निद्राधीन हो गया । वह एक नवीन स्वप्नसृष्टि में खो गया ।

नदी के नीर की भाँति समय का प्रवाह अस्खलित गति से बहता रहता है । हाँ ! कोई उस प्रवाह के बीच नवीन सृजन कर देता है...तो कोई प्रमाद के वशीभूत होकर समय को व्यर्थ गँवा देता है ।

रात्रि व्यतीत हुई...मुर्गे ने बाँग दी...मंगल ब्राह्ममुहूर्त में आर्यरक्षित की निद्रा खुली...शय्या पर बैठकर उसने परमात्मा का नाम-स्मरण किया । ब्रह्मअर्चना की । स्नानादि से निवृत्त होकर फिर वह माँ के चरणों में पहुँच गया । उसने माँ के चरणों में बहुमानपूर्वक प्रणाम किया । माँ ने पुत्र को आशिष दी । माँ का मन प्रसन्नता से भर आया ।

ऊषा रानी का सोनेरी पालव सरोवर के सुमधुर जल पर फैल गया था । पूर्व दिशा में मृदु और शीतल वायु चारों दिशाओं में नवीन जीवन भर रहा था । कोयल का कूजन प्रारंभ हो चुका था ।

माँ की शुभाशिष लेकर आर्यरक्षित ने इक्षुवाटिका की ओर प्रस्थान किया ।

मन में उत्साह और उमंग हो तो चरणों में भी सहज गति होती है और मन यदि विषादग्रस्त हो तो गति में भी सतत ब्रेक लगा रहता है ।

आर्यरक्षित के दिल में उमंग और उत्साह था...अतः वह अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ रहा था ।

आर्यरक्षित की ख्याति और उसके आगमन को सुनकर अनेक मित्रजन आर्यरक्षित को बधाई और भेंट देने के लिए दशपुर आ रहे थें । गत दिन भी दूर-दूर से अनेक मित्रजनों ने आकर आर्यरक्षित का अभिवादन किया था ।

सोमदेव पुरोहित के एक मित्र, जो खेती का व्यवसाय करता था, उसे कल देरी से आर्यरक्षित के आगमन के समाचार मिले थे, अतः वह आज सूर्योदय के पूर्व ही अपने गाँव से निकलकर सोमदेव पुरोहित के घर आ रहा था । बीच मार्ग में उसे आर्यरक्षित मिल गया, उसने आर्यरक्षित का हार्दिक स्वागत किया और उसे गन्ने के टुकडें भेंट देने लगा । आर्यरक्षित ने इक्षुदण्ड गिने । बराबर साढ़े नौ टुकड़े थें ।

आर्यरक्षित ने कहा-''पूज्यवर ! मैं माता की आज्ञा से बाहर जा रहा हूँ...कार्य समाप्ति के बाद शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा । आप मेरे घर पधारें और माता पिता को यह भेंट प्रदान करें ।''

आर्यरक्षित की यह बात सुनकर उस मित्र ने नगर की ओर प्रस्थान किया ।

संसार के रंगमंच पर होने वाली घटनाओं के पूर्वसंकेत बतलाने में शकुन-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । शकुन किसी भी घटना का सर्जक नहीं है...किन्तु सूचक अवश्य है । शुभ-अशुभ शकुन से हम भविष्य में होनेवाली घटनाओं का अनुमान कर सकते हैं ।

आर्यरक्षित सोचने लगा-''इक्षुवाटिका की ओर मैं जा रहा हूँ और मुझे इक्षुखण्ड के जो शकुन हुए हैं...वे अत्यंत शुभ लगते हैं । जहाँ तक मुझे लगता है 9½ गन्नों के संकेतानुसार मुझे दृष्टिवाद के 9½ अध्याय अथवा पूर्वों का बोध हो सकेगा । इससे अधिक बोध सम्भव नहीं है ।''... इत्यादि सोचते हुए आर्यरक्षित आगे बढ़ने लगा । थोड़ी देर में वह इक्षुवाटिका में पहुँच गया ।

इक्षुवाटिका के एक खण्ड में तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत विराजमान थे । उस खण्ड में अनेक मुनिवर स्वाध्याय और ध्यान में तल्लीन थे । स्वाध्याय की शब्दध्वनि सुनकर आर्यरक्षित द्वार पर ही खड़ा हो गया और असमंजस में डूब गया, ''अहो ! ये जैन मुनि स्वाध्याय में मग्न बने हुए हैं । इनके पास कैसे जाना चाहिए ? क्या बोलना चाहिए ? किस प्रकार बात-चीत करनी चाहिए ? इत्यादि विधि से तो मैं अनभिज्ञ हूँ ।'' जिससे ज्ञान पाना है-उनके औचित्य का किसी प्रकार से भंग न हो जाए'' यह चिन्ता आर्यरक्षित को सताने लगी ।

वह सोचने लगा-''अन्दर जाऊँ ? या न जाऊँ ?''

पुण्यशाली को किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए कोई विशिष्ट प्रयत्न और पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता है, उसके लिए तो लक्ष्मी स्वयं द्वार पर आकर खड़ी होती है ।

आर्यरक्षित चिन्तामग्न था कि मैं आचार्य भगवंत के पास कैसे जाऊँ ?... उसे भय था कि कोई अविधि हो जाए तो कहीं लाभ के बदले नुकसान न हो जाए !

थोड़ी ही देर में नगर से एक **''ढड्ढर''** सुश्रावक आचार्य भगवंत को वन्दन करने के लिए इक्षुवाटिका में आया । उसने आचार्य भगवंत के खंड में प्रवेश किया । द्वार पर छिपकर आर्यरक्षित ''ढड्ढर'' श्रावक की प्रत्येक क्रिया को सूक्ष्मता से देखने लगा । ढड्ढर श्रावक ने गुरुदेव के चरणों में विधिपूर्वक वन्दन किया ।

बुद्धिनिधान आर्यरक्षित ने ढड्ढर श्रावक की गुरुवन्दन विधि को बराबर याद कर लिया ।

जिस व्यक्ति पर सरस्वती की कृपा बरसती हो...उस पुण्यधन आत्मा को, एक ही बार सुनने से याद हो जाए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आर्यरक्षित में अवधारणा की कोई अपूर्व शक्ति थी ।

गुरुवन्दन कर ढड्ढर श्रावक गुरु-चरणों में बैठ गया ।

बस ! मन में अत्यन्त ही शुभभाव को धारण कर आर्यरक्षित ने गुरुदेव के खण्ड में प्रवेश किया और सर्वप्रथम मस्तक पर अंजलि स्थापित कर, मस्तक झुकाते हुए **''मत्थएण वंदामि''** बोला । तत्पश्चात् अत्यंत ही विनम्र भाव से उसने विधिपूर्वक गुरु को वन्दन किया और वन्दन करने के बाद वह गुरुचरणों में बैठ गया ।

''सर्व साधुओं को वन्दन करने के बाद गुरु-चरणों में बैठे हुए श्रावक को भी प्रणाम करना चाहिए'' इस विधि का ज्ञान नहीं होने के कारण आर्यरक्षित ने वहाँ बैठे हुए ढड्ढर श्रावक को प्रणाम नहीं किया । आर्यरक्षित की इस अपूर्ण क्रिया को देखकर तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत ने सोचा, ''यह कोई नवीन श्रावक लगता है'', अतः आचार्य भगवंत ने उसे पूछा-''हे महानुभाव ! किससे धर्म की प्राप्ति हुई है ?''

आर्यरक्षित ने पास में ही बैठे ढड्ढर श्रावक की ओर इशारा किया ।

इसी बीच एक मुनिवर ने आकर कहा-''भगवन् ! यह तो श्रमणोपासिका रुद्रसोमा का पुत्र है । कल ही राजा ने इसका नगरप्रवेश करवाया था । चौदह विद्याओं में पारगामी बनकर आया है...परन्तु यहाँ इसके आगमन का क्या कारण है ? यह पता नहीं है ।''

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न होकर आर्यरक्षित ने कहा-''गुरुदेव ! मेरी माता ने मुझे दृष्टिवाद के अध्ययन के लिए आपके पास भेजा है...मैं आपके पास दृष्टिवाद के अध्ययन के लिए आया हूँ ।''

आचार्य भगवन्त सोचने लगे-''धन्य है उस माता को । धन्य है उस श्राविका को, जो इस प्रकार स्नेह के बन्धनों को तोड़कर पुत्र के आत्महित की चिन्ता कर रही है । वास्तव में यह पुत्र बड़भागी है, जिसे मोक्षमार्ग में प्रेरक ऐसी माता मिली है ।''

आर्यरक्षित के मुखपर प्रसन्नता थी...वाणी में मधुरता थी...और हृदय में समर्पण का शुभभाव था । मन-वचन-काया के पवित्र शुभ योगों ने आचार्य भगवन्त के दिल में एक आकर्षण जमा दिया ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त सोचने लगे, ''यह महानुभाव अपने पवित्र आचारों से अत्यन्त कुलीन प्रतीत होता है । **''आकृतिर्गुणान् कथयति''** की उक्ति के अनुसार इसमें अनेकविध योग्यताएँ रही हुई हैं । यह आस्तिक / श्रद्धालु प्रतीत होता है और इसमें अपनी मातृ तुल्य उचित कोमलता दिखाई दे रही है...अतः यह जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा बताए हुए मार्ग के लिए योग्य है ।''

इस विचार के साथ ही गुरुदेव तोसलीपुत्र ने श्रुत का उपयोग दिया और वे श्रुतज्ञान के बल से आर्यरक्षित का भविष्य देखने लगे-**''अहो ! युगप्रधान वज्रस्वामी के पश्चात् ये जिनशासन की यश-पताका को दिग्-दिगंत तक फैलानेवाले महाप्रभावक होने वाले हैं ।''**

आचार्य भगवन्त श्रमणोपासिका रुद्रसोमा के जीवन से सुपरिचित थे...रुद्रसोमा आचार्य भगवन्त की सांसारिक भगिनी थी । रुद्रसोमा के दिल में शासन-उन्नति व रक्षा की जो प्रबल भावना थी...उसे आचार्य भगवन्त अच्छी तरह जानते थे ।

संसार में पुत्र-मोह का एक जबरदस्त बन्धन है । इस कठोर बंधन को तोड़ना सामान्य बात नहीं है...उसके लिए वज्रसी छाती चाहिए । माँ रुद्रसोमा ने पुत्रव्यामोह का वस्त्र उतार दिया था...जगत् के स्वरूप को वह अच्छी तरह जानती थी ।

आचार्य भगवन्त ने आर्यरक्षित में भावी ''प्रभावक'' के दर्शन किए...और वे अत्यन्त सुमधुर स्वर से बोले-**''महानुभाव ! तुम्हारी भावना उत्तम है...परन्तु जैन दीक्षा के बिना दृष्टिवाद का अध्ययन नहीं हो सकता है...यह जैनशासन की विधि मर्यादा है ।''**

''प्रभु ! मर्यादा का पालन अवश्य होना चाहिए । इस कार्य के लिए जो भी मर्यादा हो... उसका पालन अवश्य होना चाहिए, क्योंकि विधि के पालन का सर्वत्र सुन्दर परिणाम होता है ।''

''प्रभु ! आप जो भी आज्ञा करेंगे...उस आज्ञा के पालन के लिए मैं कटिबद्ध हूँ, अतः उस कार्य के लिए आपको जो उचित लगे, मुझे आज्ञा करें । आप मुझे जैन-विधि से प्रव्रज्या प्रदान करने का अनुग्रह करें ।''

''प्रभु ! मेरी एक प्रार्थना है-''मिथ्या मोह के कारण इस नगर की प्रजा मुझ पर अत्यन्त राग करती है । सम्भव है, राजा भी मेरी दीक्षा छुड़वा दे...**अबुधजनों का ममत्व अत्यन्त ही दृढ़ होता है...उसका त्याग कराना, अत्यन्त कठिन कार्य है,** अतः दीक्षा देने के बाद कृपया यहाँ से विहार कर दें...तो अच्छा रहेगा, जिससे जैनशासन की लघुता न हो ।''

आर्यरक्षित की इस भावना को जानकर तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त अत्यन्त प्रसन्न हुए । सोचने लगे, ''अहो ! इसमें कितनी दीर्घदर्शिता है ? शासन की हीलना / निन्दा से बचने / बचाने के लिए यह कितना सावधान है !''

संसारी जीवों के रंग-राग से आचार्य भगवन्त सुपरिचित थे, अतः उन्होंने कहा, ''महानुभाव ! तुम्हारी बात सत्य है...संसारी जीवों के लिए ममत्व का एक मजबूत बंधन होता है और उस बंधन को तोड़ना उनके लिए अत्यन्त कठिन होता है...अतः तुम्हारी भावनानुसार दीक्षा के पश्चात् यहाँ से विहार की भावना रखता हूँ ।''

आचार्य भगवन्त ने दीक्षा के लिए तत्पर बने आर्यरक्षित को महाव्रतों का स्वरूप समझाया । आर्यरक्षित यति-दिनचर्यादि आचारों को ध्यानपूर्वक सुनने लगा । ज्यों-ज्यों साधुजीवन के महाव्रतों का स्वरूप समझने लगा, त्यों-त्यों उसके दिल में उस पवित्र जीवन के प्रति सद्भाव तीव्र होने लगा ।

आचार्य भगवन्त ने आर्यरक्षित को भव और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप समझाया । भव और

मुक्ति के यथार्थ स्वरूप के अवबोध के साथ ही आर्यरक्षित का दिल भवबन्धन से मुक्त बनने के लिए और मुक्ति के परमानन्द को पाने के लिए आतुर हो उठा । ``गुरुदेव ! भव के बन्धन से मुक्त बनने के लिए मुझ पर अनुग्रह कर...मुझे प्रव्रज्या प्रदान करो ।''

गुरुदेव ने उसकी भावना को जानकर दीक्षा-विधि प्रारम्भ की ।

जैन शासन में मुमुक्षुजन को ही दीक्षा दी जाती है । जिसके मन में संसार के प्रति भय़ पैदा हुआ हो...जिसके दिल में मोक्ष के प्रति तीव्र रुचि पैदा हुई हो...जिसके दिल में पाप के प्रति नफरत जगी हो । ऐसी आत्मा चारित्र्य धर्म के लिए योग्य गिनी गई है । जिसके दिल में संसार के सुखों के प्रति तीव्र राग–आसक्ति रही हुई हो...जिसके दिल में पाप के प्रति लेश भी भय न हो...ऐसी आत्मा जैन शासन की प्रव्रज्या के लिए अयोग्य गिनी गई है ।

भवबन्धन से मुक्त बनने के लिए मुमुक्षु आत्मा गुरुदेव से स्वयं ही प्रार्थना करती है कि ``मुझे प्रव्रजित करो...मुझे साधु वेष प्रदान करो ।''

दीक्षाविधि की यह प्रणालिका है । उस विधि से पता चलता है कि जैन दीक्षा के अभिलाषी के जीवन में कितना विनय–समर्पण भाव होना चाहिए ।

जैन प्रव्रज्या कोई वेष परिवर्तन की क्रिया मात्र नहीं है । प्रव्रज्या कोई नाट्यकला का प्रदर्शन नहीं है ।

जैन प्रव्रज्या तो जीवन-समर्पण का एक अद्‌भुत समारोह है । मुमुक्षु आत्मा चारित्र्यधर्म स्वीकार कर...अपने मन-वचन और काया के तीनों योग गुरु-चरणों में समर्पित कर देती है । मुमुक्षु शिष्य का न तो स्वतंत्र विचार होता है...न ही स्वतंत्र वाणी...और न ही स्वतंत्र प्रवृत्ति ।

जिनाज्ञा और गुर्वाज्ञा का प्रतिबिम्ब ही उसका विचार, उसकी वाणी और उसका वर्तन होता है ।

जिन शासन में ''गुरु'' की भी अपनी योग्यताएँ बतलाई गई हैं । हर किसी को ''गुरु'' बनने का अधिकार नहीं है । गुरु पर शिष्य के आत्म-हित की सबसे बड़ी जवाबदारी होती है । शिष्य का योगक्षेम करने की ताकत हो और जिसमें स्व-पर हिताहित को जानने, सोचने व करने की शक्ति हो, वही गुरुपद प्राप्त कर सकता है और वही व्यक्ति गुरुपद के गौरव को बढ़ा सकता है ।

प्रव्रज्या-विधि में गुरुदेव शिष्य के मस्तक पर वासचूर्ण डालते हैं और कहते हैं...**''हे महानुभाव । तुम जल्दी ही भव के निस्तार को प्राप्त करो ।''**

तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत ने प्रव्रज्या विधि कराकर, आर्यरक्षित के मस्तक पर मंत्रित व सुगंधित वास निक्षेप किया । तत्पश्चात् आचार्य भगवन्त ने उसके मस्तक का केशलोच किया ।

केशलोच एक सामान्य विधि नहीं है...उसके पीछे देहाध्यास को तोड़ने का एक महान् विज्ञान रहा हुआ है । देह के प्रति निर्मम बनी आत्मा, स्वेच्छा से अपना केश-लोच करवाती है ।

आचार्य भगवन्त ने क्लेश की भाँति सर्व केशों का भी लुंचन कर दिया ।

उसके बाद ईशान कोने में जाकर आर्यरक्षित ने अपने गृहस्थ-वेष का परित्याग किया और साधु जीवन के श्वेत वस्त्र धारण किए ।

आर्यरक्षित के जीवन में एक नया मोड़ आया ।

वे संसारी मिटकर साधु बन गए ।

वे भोगी मिटकर योगी बन गए ।

वे अगारी मिटकर अणगार बन गए ।

साधु वेष के साथ ही आर्यरक्षित की जीवनचर्या / दिनचर्या बदल गयी ।

मानव मन पर वेष का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । वेष भी शुभाशुभ भावों का जनक है । उद्‌भट वेष कामवासना को उद्दीप्त करता है...तो साधु का पवित्र वेष वासनाओं के जाल को भस्मीभूत कर देता है और जीवन में नयी चेतना लाता है ।

गुरुदेव ने आर्यरक्षित के मस्तक पर हाथ रखा...और उसे हृदय से आशिष प्रदान की ।

प्रव्रज्या विधि की समाप्ति के बाद नूतन मुनिवर आर्यरक्षित को साथ लेकर आचार्य भगवन्त ने वहाँ से विहार कर दिया ।

साधु जीवन अर्थात् यतनामय जीवन । यतना पूर्वक चलना, बोलना, खाना, पीना, सोना, उठना इत्यादि । यतना यह साधु जीवन का अलंकार है ।

आर्यरक्षित मुनिवर के संयमजीवन का शुभारंभ हो चुका था । उनके श्रमण-जीवन में माता की भावना निमित्त बनी । बस ! नूतन मुनिवर साधु-चर्या में मस्त बन गए । **स्वाध्याय साधु जीवन का मुख्य अंग है । शास्त्र में साधु के लिए पाँच प्रहर तक स्वाध्याय करने का विधान है ।**

आर्यरक्षित स्वाध्याय की साधना में आकण्ठ डूब गए । स्वाध्याय के साथ-साथ संयम जीवन की प्रत्येक क्रिया भी वे उपयोग पूर्वक करने लगे ।

योग्य गुरु को योग्य शिष्य की प्राप्ति हो चुकी थी । तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त भी अत्यन्त प्रेम व वात्सल्यपूर्वक नूतन मुनिवर आर्यरक्षित को ज्ञानदान कर रहे थे । नूतन मुनिवर भी अत्यन्त नम्र, विनीत और ज्ञानपिपासु होने के कारण गुरुदेव के ज्ञानदान को भक्तिपूर्वक ग्रहण कर रहे थे । शास्त्र के अध्ययन द्वारा आर्यरक्षित मुनिवर शास्त्र के ज्ञाता बने ।

शास्त्रज्ञ बनने के कारण वे स्व-पर हिताहित के ज्ञाता बने ।

उनकी हर प्रवृत्ति में नम्रता के दर्शन होने लगे ।

शास्त्र तथा गुरु आज्ञानुसार वे जीवन जीने लगे । गुरुदेव तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त ने अपना ज्ञान-खजाना आर्यरक्षित के सामने खाली कर दिया था... और आर्यरक्षित ने उस गुरु-प्रदत्त भेंट को अच्छी तरह से ग्रहण किया था ।

``आर्यरक्षित की ज्ञानपिपासा अपूर्व है...यदि उसे युगप्रधान शासन प्रभावक वज्रस्वामीजी के पास विशेष अध्ययन के लिए भेजा जाए तो आर्यरक्षित को विशेष लाभ हो सकता है और आर्यरक्षित जिनशासन का महान् प्रभावक बन सकता है ।'' ऐसा आचार्य भगवन्त सोचने लगे ।

3. निर्यामणा

''धन्यातिधन्य हैं वे शिष्य, जो गुरुदेव के हृदय में बसे हैं और धन्य हैं वे शिष्य, जिनके हृदय में गुरु का वास है ।''

आर्यरक्षित मुनिवर ने अपने जीवनचरित्र द्वारा शास्त्र की इस उक्ति को जीवन में चरितार्थ किया था ।

उनके जीवन में ऐसा अपूर्व समर्पण था कि वे गुरु के हृदय में बस गए थे ।

उनके हृदय में प्रगाढ़ गुरुभक्ति थी, जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में सतत गुरु का वास था ।

जिस शिष्य के हृदय में गुरु का वास है, उस शिष्य को गुरु का विरह कभी नहीं होता है ।

भौतिक देह से कदाचित् वह विनीत शिष्य गुरु-चरणों से सैकड़ों मील दूर हो सकता है, परन्तु उसके मन-मन्दिर में गुरु का विरह कभी नहीं होता है ।

विनीत शिष्य की योग्यता जानकर एक दिन तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त ने ज्ञानपिपासु मुनिवर आर्यरक्षित को बुलाकर कहा, ''वत्स ! अवशिष्ट पूर्वों के अभ्यास के लिए तुझे उज्जयिनी नगरी में युगप्रधान वज्रस्वामीजी के पास जाना होगा ।''

''गुरुदेव ! तब तो मुझे आपका विरह हो जाएगा ?''

''वत्स ! जिसके दिल में गुरु के प्रति समर्पण रहा हो, उसे गुरु का विरह कभी नहीं होता है । शास्त्राध्ययन से तू जानता है कि गुरु की आज्ञा से सैकड़ों मील दूर गया शिष्य भी गुरु के समीप में है...और गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर गुरु के निकट रहा शिष्य भी गुरु से कोसों दूर है ।''

''वत्स ! तेरे मन में जो गुरु भक्ति का आदर्श जीवन्त है...उससे मुझे पूर्ण सन्तोष है । युगप्रधान आचार्य श्रीवज्रस्वामीजी दशपूर्वधर महर्षि हैं, वे श्रुतज्ञान के महासागर हैं...और अब वृद्धावस्था को भी प्राप्त हैं ।''

''वत्स ! तुम्हारी अन्तरंग योग्यता को देखकर मेरे दिल में विचार आया है कि यदि तुम वज्रस्वामीजी के पास जाकर ज्ञान ग्रहण करोगे तो स्व-पर उपकार द्वारा जिनशासन के महान् प्रभावक बन सकोगे ।''

अपने पूज्य गुरुदेव के मुखकमल से बहती हुई इस अमृतवाणी और आशीर्वृष्टि को सुनकर आर्यरक्षित का मन भर आया और उनकी आँखों में हर्षाश्रु उमड़ पड़े ।

आर्यरक्षित ने कहा, ''भगवन्त ! आप करुणावत्सल हो ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है । आपका आशीर्वाद ही मेरा संबल है । प्रभो ! आपकी कृपा निरन्तर बरसती रहे, यही प्रार्थना है ।''

''वत्स ! तेरी भव्य-भावना से मैं प्रसन्न हूँ...अब शीघ्र ही विहार की तैयारी करनी होगी ।''

''भगवन्त ! आप शुभ दिन फरमाएँ ।''

''रक्षित ! शुक्ला पंचमी का दिन उत्तम है, उस दिन सिद्धियोग भी है । दिन के प्रथम प्रहर में विहार यात्रा आरम्भ करना । अन्य मुनिवर भी तुम्हारे साथ आयेंगे ।''

''भगवन्त ! जैसी आपकी आज्ञा ।''

जिनशासन एक लोकोत्तर शासन है । ''जीवात्मा का आत्महित कैसे हो ?'' इसका सरल व सचोट उपाय जैनशासन में निहित है ।

जैनशासन में गुरुतत्त्व का अपूर्व स्थान है । गुरु-शिष्य की जो आचार व विनय मर्यादा जैनशासन में देखने को मिलती है, इसकी प्राप्ति अन्यत्र असम्भव है ।

गुरु प्रदत्त मुहुर्तानुसार बुद्धिनिधान आर्यरक्षित मुनिवर ने अन्य मुनिवरों के साथ उज्जयिनी नगरी की ओर विहार प्रारम्भ कर दिया । सभी मुनिवर विहार में आने वाले परिषह-उपसर्गों को अत्यन्त समता-समाधिपूर्वक सहन करने लगें ।

धीरे-धीरे विहारयात्रा आगे बढ़ने लगी । इस प्रकार क्रमशः विहार करते हुए आर्यरक्षित मुनिवर उज्जयिनी नगरी के बाहर उद्यान में पहुँच गए ।

इस उद्यान में महान् प्रभावक दशपूर्वधर आचार्य श्री भद्रगुप्तसूरिजी म. बिराजमान थे । भद्रगुप्तसूरिजी की देहलता जर्जरित हो चुकी थी । त्याग, तप और तितिक्षा की साधना द्वारा उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बना दिया था ।

देह जर्जरित था...परन्तु उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज था । **''कष्टों को समतापूर्वक सहन करना'' उनका जीवनमंत्र था, इसी के फलस्वरूप वे देह के प्रति निर्मम होकर संयमित जीवन की साधना कर रहे थे ।**

आर्यरक्षित मुनि ने खण्ड में प्रवेश करते हुए कहा-**''मत्थएण वंदामि ।''**

''मत्थएण वंदामि'' की आवाज सुनकर भद्रगुप्तसूरिजी म. बोले-**''कौन ?''**

''भगवन् ! मैं आर्यरक्षित !'' आर्यरक्षित मुनिवर ने जवाब दिया ।

''ओहो ! आर्यरक्षित । तुम हो !'' कहकर भद्रगुप्तसूरिजी अपने आसन से खड़े हो गए और उन्होंने आर्यरक्षित का स्वागत किया ।

आर्यरक्षित ने भद्रगुप्तसूरिजी म. के पवित्र चरणों में प्रणाम किया और उनकी चरणरज अपने मस्तक पर लगा ली ।

''भगवन् ! आप अपने आसन पर बिराजें, आपकी काया जरावस्था से घिरी हुई है ।''

''आर्य ! क्षीण होना तो शरीर का धर्म है । आखिर तो यह शरीर जड़पुद्गलों से ही बना है न ! आखिर कब तक इसका अस्तित्व रह सकेगा ?''

''भगवन् ! आपने गोचरी वापरी ? आज मुझे सेवा का लाभ दें ।''

आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी म. की सहमति मिलते ही आर्यरक्षित मुनिवर गोचरी के लिए निकल पड़े और थोड़ी देर बाद गोचरी लेकर उपाश्रय में आ गए ।

गोचरी वापरने के बाद भद्रगुप्तसूरिजी ने थोड़ी देर आराम किया ।

आर्यरक्षित मुनिवर ने भद्रगुप्तसूरिजी की सेवा-शुश्रूषा की ।

थोड़ी देर बाद भद्रगुप्तसूरिजी म. अपने आसन पर बैठ गए । उन्होंने आर्यरक्षित को पूछा- ''रक्षित ! तुम्हारे गुरुदेव कुशल हैं न ?''

''भगवन् ! देव-गुरु की असीम कृपा से कुशल हैं ।''

''अभी तुम्हारी विहार-यात्रा किस ओर चल रही है ?'' भद्रगुप्तसूरिजी ने पूछा ।

''भगवन्त ! अभी गुरुदेवश्री की आज्ञा से उज्जयिनी की ओर विहार हो रहा है । पूज्य गुरुदेव ने मुझे पूर्वों के अभ्यास के लिए युगप्रधान वज्रस्वामीजी भगवन्त के पास जाने की आज्ञा फरमाई है ।''

''भगवन्त ! आपश्री के देह में निरामयता है न ? आपश्री का देह अति कृश हो गया है ।''

''आर्य ! इस संसार में जिसका जन्म है...उसका अवश्य मरण है । मानवदेह क्षणिक व विनाशी है...अतः उसका अस्तित्व मर्यादित है...उसको टिकाने के लिए कितने ही प्रयत्न और प्रयास किये जायें...परन्तु यह देह अधिक टिक नहीं सकता है, अतः अब जीवन के साध्य को सिद्ध करने की इच्छा है । मृत्यु द्वारा इस भौतिक जगत् के साथ हुए सम्बन्धों का विसर्जन होता ही है, संयम जीवन को स्वीकार कर कुटुम्ब परिवार व अर्थ-काम का त्याग किया है...और अब समाधि मृत्यु द्वारा निर्मम भाव से इस देह का त्याग करना है ।''

''मुनिवर ! मेरे जीवन का अन्त समय समीप लगता है, अतः तुम्हें अनुकूलता हो तो तुम मेरी समाधि-मत्यु के निर्यामक बनो ।''

आचार्य प्रवर श्री भद्रगुप्तसूरिजी म. दश पूर्वधर ज्ञानी महर्षि थे । वे ज्ञान के महासागर थे । फिर भी उन्होंने आर्यरक्षित मुनिवर को निर्यामक बनने के लिए आग्रह किया...इससे हम मृत्यु की भयंकरता की कल्पना कर सकते हैं ।

जरा सोचें ! एक इंजेक्शन लेने में भी जो ऊँचा नीचा हो जाता है...वह लाखों इंजेक्शनों की पीड़ा से भी भयंकर मृत्यु की पीड़ा में समत्व-भाव कैसे रख सकेगा ? जिस देह के प्रति ममत्व बुद्धि रही हो...और जिसके रक्षण-पालन व पोषण के लिए ही जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत किया हो, वह व्यक्ति मृत्यु के समय देह की ममता का त्याग कैसे कर पाएगा ?

धन, पुत्र व पत्नी के मोह-त्याग से भी देह की ममता का त्याग करना अत्यन्त कठिन कार्य है ।

''समत्वपूर्वक देह के ममत्व भाव का त्याग करना'' एक सामान्य साधना नहीं है । इसी-लिए तो देह के त्याग के लिए जिनशासन में दैनिक तप-आराधना का विधान किया गया है ।

तप-धर्म की साधना देह के ममत्व पर विजय पाने के लिए है । मृत्यु को मंगलमय और महोत्सवरूप बनाने के लिए जीवन के अंत समय में निर्यामणा की जाती है ।

योग्य निर्यामक का योग हो और मृत्यु के समय समाधि की तीव्र इच्छा हो...तो मृत्यु को

महोत्सवरूप बनाया जा सकता है । भद्रगुप्तसूरि म. की बात को सुनकर आर्यरक्षित ने कहा- ``भगवन्त ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है...आपकी आज्ञा है...तो मैं अभी यहीं रहूँगा ।''

बस ! भद्रगुप्तसूरिजी म. की आज्ञा से आर्यरक्षित मुनिवर वहीं रह गए । वे बार-बार आचार्य भगवन्त को परमात्म-भक्ति प्रेरक, वैराग्य प्रेरक काव्य मधुर कण्ठ से सुनाने लगे ।

``मैं देह नहीं हूँ...देह से भिन्न अजर-अमर आत्मा हूँ । अनन्तज्ञान–अनन्तदर्शन आदि आत्मा की सच्ची सम्पत्ति हैं...आत्मा स्वयं अक्षय सुख का भण्डार है...आत्मा में लीन बनने से, आत्मा स्वयं परमानन्द का आस्वाद करती है । बहिर्भाव से मुक्त बनकर जब आत्मा, आत्मा में स्थिर बनती है, तब उसे लोकोत्तर परमानन्द का अनुभव होता है । देह विनाशी है...आत्मा अविनाशी है ।''

इस प्रकार आत्म-स्वरूपदर्शक अनेक बातें आर्यरक्षित मुनिवर पूज्यपाद आचार्य भगवन्तश्री से करने लगे...और बार-बार नमस्कार-महामंत्र के स्मरण व अरिहंतादि की शरणागति का श्रवण कराने लगे ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । आचार्य भगवन्त ने अपने ज्ञान से देखा, `अब इस देह का सम्बन्ध निकट प्रहर में ही छूटने वाला है । उन्होंने आर्यरक्षित को पास बुलाया और एक सूचना करते हुए कहा, **``रक्षित ! तुम विद्या अध्ययन के लिए युगप्रधान वज्रस्वामीजी के पास जा रहे हो, परन्तु तुम वहाँ अलग उपाश्रय में उतरना और भोजन-शयन अलग ही करना; क्योंकि जो भी मांडली में उनके साथ एक बार भी भोजन करता है, उसकी मृत्यु उनके साथ ही होगी...तुम तो जिनशासन के महान् प्रभावक बनने वाले हो...संघ के भावी आधार हो...अतः मेरे आदेश का पालन करोगे न ?''**

आचार्य भगवन्त के चरणों में प्रणाम करते हुए आर्यरक्षित ने कहा, ``भगवन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । मैं आपकी आज्ञा का बराबर पालन करूंगा ।''

आर्यरक्षित मुनिवर अत्यन्त नम्र और विनीत थे...

जिनाज्ञागर्भित ज्येष्ठ की आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करना जैन मुनि का एक जीवन्त आदर्श होता है ।

आचार्य भगवन्त संथारे पर लेट गए...उनका देह लगभग क्षीण हो चुका था...आर्यरक्षित मुनिवर पास में ही बैठे थे । आचार्य भगवन्त ने समस्त जीवों से क्षमापना की...नमस्कार-महामंत्र का जोर से उच्चारण किया...

नमो अरिहंताणं...नमो सिद्धाणं...नमो आयरियाणं...नमो उवज्झायाणं...नमो लोए सव्वसाहूणं...एसो पंच नमुक्कारो...सव्व पावप्पणासणो... मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ।

चत्तारि सरणं....पवज्जामि । अरिहंते सरणं पवज्जामि । सिद्धे सरणं पवज्जामि । साहू सरणं पवज्जामि । केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं... पवज्जामि ।

आर्यरक्षित मुनिवर नमस्कार-महामंत्र का जोर से उच्चारण करने लगे... आचार्य भगवन्त

भी स्वर में स्वर मिलाकर बोलने लगे...बस ! जीवन के अमूल्य क्षण बीतने लगे...आचार्य भगवन्त ने कहा-''नमो...अ...रि...हं...ताणं''... उन्होंने अपना देह सदा के लिए छोड़ दिया। पंखी उड़ गया...पिंजर पड़ा था। देह को त्यागकर आचार्य भगवन्त देवगति को प्राप्त हुए।

आर्यरक्षित पास में ही बैठे थे...आचार्य भगवन्त के स्वर्ग-गमन से आर्यरक्षित की आँखें अश्रुसिक्त हो गईं...उनके मुख पर विषाद छा गया। आसपास से आए हुए अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने आचार्य भगवन्त की देह के अंतिम दर्शन किये। मुनिवरों ने अंतिम विधि की।

स्वर्गस्थ आचार्य भगवन्त के निमित्त सभी मुनिवरों ने मिलकर देववन्दन किया।

आर्यरक्षित मुनिवर ने सभी को जीवन की अनित्यता...क्षणभंगुरता समझाई और जीवन में समाधि प्रेरक उपदेश दिया। आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी के स्वर्गगमन से जैनशासन को जबरदस्त क्षति पहुँची।

अब आर्यरक्षित मुनिवर ने उज्जयिनी नगरी में प्रवेश के लिए विहार प्रारम्भ किया।

उज्जयिनी नगरी में युगप्रधान आचार्य वज्रस्वामी ने एक स्वप्न देखा, ***''मेरे पास दूध से भरा हुआ पात्र था, कोई अतिथि आया...उसके सामने वह पात्र धरा...उसने उस पात्र में थोड़ा सा दूध बाकी रखा...और शेष सब दूध पी लिया।''***

वज्रस्वामीजी ने यह स्वप्न अपने शिष्यों को बताया और उसका अर्थ करते हुए बोले, ''आज कोई आनेवाला है, जो मेरे पास से अधिकांश श्रुत को ग्रहण कर लेगा...थोड़ा ही श्रुत मेरे पास बचेगा, जो वह ग्रहण नहीं कर पाएगा।''

वज्रस्वामीजी अपने शिष्यों से इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मुनि आर्यरक्षित ने आकर उपाश्रय में प्रवेश किया और जोर से बोले-**''मत्थएण वंदामि।''**

अतिथि का आगमन जानकर वज्रस्वामीजी प्रसन्न हो गए और अपने आसन से खड़े हो गए। वास्तव में, सत्पुरुषों का स्वप्न शीघ्र फलदायी होता है।

वज्रस्वामीजी ने भी ''मत्थएण वंदामि'' कहकर आगन्तुक मुनिवर का स्वागत किया और अत्यन्त मधुर स्वर से बोले, ''मुनिवर ! आपका आगमन कहाँ से हुआ है ?''

''भगवन् ! मैं तोसलीपुत्र आचार्य भगवंत के पास से आ रहा हूँ'' आर्यरक्षित ने कहा।

यह सुनकर वज्रस्वामीजी बोले, ''अहो ! तुम ही हो आर्यरक्षित, शेष पूर्वों के अभ्यास के लिए तुम आए हो ?''

''हाँ ! भगवन् !'' आर्यरक्षित ने विनम्र स्वर से कहा।

''तुम्हारी उपधि, पात्र व संस्तर आदि कहाँ हैं ? आओ ! आज तुम अतिथि हो, अतः गोचरी के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है। गोचरी वापरने के बाद यहीं अपना पाठ चालू कर देंगे।'' वज्रस्वामी ने कहा।

वज्रस्वामीजी की बात सुनकर आर्यरक्षित बोले-''भगवन् ! मैं अलग स्थान में उतरा हूँ...वहीं पर गोचरी और शयन करूंगा।''

वज्रस्वामीजी ने पूछा-``पृथक् रहकर किस प्रकार अध्ययन करोगे ?''

वज्रस्वामीजी के इस वचन को सुनकर आर्यरक्षित ने भद्रगुप्तसूरिजी म. की कही बात कह दी। आर्यरक्षित की यह बात सुनकर वज्रस्वामी ने आर्यरक्षित को अलग वसति में ठहरने की सहमति दी।

बस ! शुभ मुहूर्त में आर्यरक्षित का अध्ययन प्रारंभ हो गया। अत्यन्त विनय के साथ वे अध्ययन करने लगे।

वज्रस्वामीजी भी आर्यरक्षित को सुयोग्य जानकर पूर्वों का अभ्यास कराने लगे।

आर्यरक्षित स्वाध्याय सागर में आकण्ठ डूब गए। ज्यों-ज्यों अभ्यास में आगे बढ़ने लगे, त्यों-त्यों उनका उत्साह बढ़ने लगा। जिनशासन के अगम्य रहस्यों को जानकर वे अपने आपको बड़भागी समझने लगे।

``धन्य जिनशासन ! धन्य गुरुदेव !'' की मधुर ध्वनि उनके रोम-रोम में गूंजने लगी।

उनकी ज्ञान की सच्ची साधना व तीव्र लगन को देखकर वज्रस्वामीजी भी प्रसन्न हो गए।

4. अपूर्व ज्ञान साधना

भोगी और रोगी का जीवन-पंथ न्यारा और निराला होता है। एक गान में आसक्त होता है तो दूसरा ज्ञान में। दोनों के पंथ / दोनों की दिशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। फिर भी उन दोनों में एक समानता दिखाई देती है कि वे सदा अतृप्त होते हैं।

भोगी को भोग के साधन कितने ही मिल जायें, वह सदा अतृप्त ही रहता है। इन्द्रियों के विषय-सेवन के बाद भी उसे पूर्ण तृप्ति या आनन्द का अनुभव नहीं होता है...उसकी तृषा...उसकी भूख सदा बनी रहती है। वह सदा नये-नये भोगों और उनके साधनों की प्राप्ति के लिए लालायित बना रहता है। इस प्रकार वह सदा अतृप्त रहता है।

बस, यही अतृप्ति की स्थिति है-एक योगी की। परन्तु हाँ ! उसकी दिशा और उसका पंथ अलग है, उसे आनन्द आता है ज्ञान प्राप्ति में। ज्यों-ज्यों शास्त्र अध्ययन-अध्यापन के बल से उसे नए-नए ज्ञान की प्राप्ति होती जाती है, त्यों-त्यों उसकी ज्ञान पिपासा बढ़ती जाती है।

ठीक ही कहा गया है-

``भोगार्थमेतद् भविनां शरीरम्,
ज्ञानार्थमेतद् किल योगिनां वै।''

``संसारी जीवों का शरीर भोग और भोग के साधनों की प्राप्ति के लिए होता है, जब कि योगियों का शरीर ज्ञानप्राप्ति के लिए होता है।''

सम्यग् ज्ञान की साधना में जो आनन्द है उसे अज्ञानी कैसे जान सकता है। मानसरोवर का आनन्द तो हंस लूटता है। विष्टा में आलोटने वाला सूअर उस आनन्द की कल्पना भी कैसे कर सकता है ?

समग्र विश्व में ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं, अतः ज्ञान भी अनन्त है। ज्यों-ज्यों पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का बोध होता जाता है, त्यों-त्यों योगियों का हृदय आनन्द से भरता जाता है। उनका समग्र जीवन ज्ञान-प्राप्ति के लिए होता है। जिस प्रकार ज्ञान असीम है, उसी प्रकार ज्ञान का आनन्द भी असीम है।

श्रुतज्ञान महासागर सम है। चौदह पूर्वों का समावेश श्रुतज्ञान के अन्तर्गत हो जाता है। चौदह पूर्वधर महर्षि श्रुतकेवली कहलाते हैं। वे एक केवली की भाँति धर्मदेशना दे सकते हैं। श्रोताजन को पता ही नहीं चलता है कि वे केवलज्ञानी हैं या श्रुतज्ञानी।

श्रुतज्ञान के बल से भी वस्तु के अनेक पर्यायों को आसानी से जाना जा सकता है।

आर्यरक्षित मुनिवर एक योगी आत्मा थे...उनके मन में ज्ञानप्राप्ति की अदम्य लालसा थी।

दशपूर्वधर महर्षि वज्रस्वामी के शुभ सान्निध्य में बैठकर वे निरन्तर एकाग्रता पूर्वक पूर्वों का अभ्यास कर रहे थे।

समय के प्रवाह के साथ-साथ वे ज्ञान के शिखर पर आरूढ़ होने लगे। क्रमशः एक के बाद एक पूर्व का अभ्यास करते ही जा रहे थे।

(1) उत्पाद पूर्व (2) आग्रायणीय पूर्व (3) वीर्यप्रवाद (4) अस्तिप्रवाद (5) ज्ञान प्रवाद (6) सत्य प्रवाद (7) आत्म प्रवाद (8) कर्म प्रवाद और (9) प्रत्याख्यान प्रवाद की समग्रता वे प्राप्त कर चुके थे।

ज्ञानसाधना में उन्हें असीम आनन्द का अनुभव हो रहा था। सचमुच ! ऐसा आनन्द दुनिया में अन्यत्र कहाँ मिल सकता है !

अब वज्रस्वामीजी के पास आर्यरक्षित ने 10 वें पूर्व का अभ्यास प्रारंभ किया।

आर्यरक्षित को दीक्षा अंगीकार किये दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

अचानक एक दिन रुद्रसोमा का हृदय मातृवात्सल्य से भर आया। आखिर तो वह माँ थी। उसके दिल में आर्यरक्षित के मुखदर्शन की पिपासा जाग उठी। आर्यरक्षित का सुकोमल चेहरा उसकी आँखों के सामने मंडराने लगा। आर्यरक्षित को दीक्षा लिये वर्षों बीत चुके थे। परन्तु वे अब किधर विचर रहे हैं, इसके कोई समाचार रुद्रसोमा के पास नहीं थे।

वह सोचने लगी, ''आर्यरक्षित अभी कहाँ विहार कर रहे हैं ? उनका मुझे पता नहीं है, अतः उनकी जाँच के लिए छोटे पुत्र फल्गुरक्षित को भेजूँ तो ज्यादा ठीक रहेगा।''

इस प्रकार विचार कर उसने अपने मन की बात अपने पति सोमदेव को कही।

सोमदेव ने कहा-''प्रिये ! आर्यरक्षित को बुलाने के लिए तूने फल्गुरक्षित को भेजने का जो निर्णय लिया है, वह समुचित है।'' अपने पतिदेव की सहमति प्राप्त कर रुद्रसोमा ने अपने पुत्र फल्गुरक्षित को बुलाया।

फल्गुरक्षित भी अत्यन्त विनम्र और माँ का आज्ञाकारी पुत्र था। उसके दिल में माँ के प्रति अपूर्व भक्ति और आर्यरक्षित के प्रति अति आदर व स्नेह का भाव था।

माँ के बुलावे के साथ ही फल्गुरक्षित दौड़कर आया और माँ के चरणों में प्रणाम कर बोला- ''माताजी ! मेरे लिए क्या आज्ञा है ?''

फल्गुरक्षित के जीवन में हमें आर्यसंस्कृति के पवित्र संस्कारों के साक्षात् दर्शन होते हैं । इस पवित्र संस्कृति का पुजारी, माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य ही करता है ।

फल्गुरक्षित विनम्र भाव से माँ के सामने खड़ा रहा ।

माँ ने कहा, ''बेटा ! आज तुझे किसी अनिवार्य कार्य के लिए बुलाया है ।''

''माँ ! जो भी आज्ञा हो, मुझे फरमाएँ ।'' फल्गुरक्षित ने अत्यन्त नम्रता से जवाब दिया ।

''बेटा ! मैं तुझे आर्यरक्षित के पास भेजना चाहती हूँ । तू अपने भाई के पास जा और उसे मेरी बात कहना–

''आर्यरक्षित ! तू ने माता का त्याग कर दिया...भाई का राग तोड़ दिया...मोह के साथ तू संघर्ष कर रहा है...तेरे जीवन की समग्रता अन्तरंग शत्रुओं के सामने लड़ने में व्यतीत हो रही है, यह जानकर मुझे आनन्द है...प्रसन्नता है । परन्तु आर्यरक्षित ! तेरे दिल में राग की भावना न हो, यह उचित है, फिर भी तेरे दिल में वत्सलता बुद्धि तो होनी ही चाहिए न ? याद कर महावीर प्रभु को ! जब वे माँ के गर्भ में थे, तब भी उनके दिल में माँ के प्रति कितना भक्ति का भाव था !

बेटा ! जीवन में स्नेह–राग नहीं चाहिए, परन्तु स्नेह–भाव तो चाहिए न ! किसी जीव के प्रति राग-भाव न होना, समुचित है...परन्तु स्नेह भाव, निःस्वार्थ वात्सल्य भाव तो होना ही चाहिए न ! अतः तू एक बार इधर आ जा ! मैं तेरे मुख-दर्शन के लिए उत्कण्ठित बनी हूँ । तेरा मार्ग प्रशस्य है और उसी मार्ग पर चलने की मेरी भी उत्कण्ठा है । इतना ही नहीं, मैं तो चाहती हूँ कि तेरे पिता, तेरा भाई...तेरी बहिन सभी तेरे मार्ग का अनुसरण करें ।

''हाँ ! स्नेह के बन्धन तूने तोड़ दिए हैं । तू एक कुटुम्ब का मिटकर समग्र विश्व का बन गया है, अतः तेरे दिल में इस छोटे से परिवार की विशेष ममता न हो, यह बन सकता है । फिर भी हृदय में वात्सल्य भाव तो होना ही चाहिए न !

खैर, तेरे दिल में हमारे प्रति लेश भी ममता न हो तो भी हमारे उद्धार के लिए तुम एक बार इधर जरूर आ जाओ ।''

इस प्रकार रुद्रसोमा ने अपने पुत्र आर्यरक्षित के लिए अपने लघु पुत्र फल्गुरक्षित के साथ अपना संदेश भिजवाया ।

माँ का संदेश लेकर फल्गुरक्षित आगे बढ़ने लगा । क्रमशः एक के बाद एक नगर को पार करते हुए वह उज्जयिनी पहुँच गया ।

एक शुभ घड़ी में दोनों भाइयों का परस्पर मिलन हुआ । आर्यरक्षित को मुनिवेष में देखकर प्रथम क्षण तो फल्गुरक्षित को आश्चर्य हुआ...परन्तु दूसरे ही क्षण वह अपने ज्येष्ठ बन्धु के चरणों में गिर पड़ा ।

फल्गुरक्षित भ्रातृ-मिलन के आनन्द को हृदय में समा न सका,. फलस्वरूप वह आनन्द, आँसुओं के द्वारा बाहर निकल पड़ा ।

आर्यरक्षित ने लघु बन्धु को ``धर्मलाभ'' की आशिष दी ।

फल्गुरक्षित का गला रुंधा हुआ था । आर्यरक्षित ने भाई को आश्वासन देते हुए कहा, ``बंधु ! हर्ष के स्थान पर तू शोक क्यों कर रहा है ? इस संसार में जीवन के सम्बन्ध कितने अस्थिर और क्षणभंगुर हैं !''

``फल्गु ! जब तक आत्मा को जैनदर्शन के तत्त्वों का यथार्थ बोध नहीं होता है, तभी तक हमें सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होता है...परन्तु तत्त्व के यथार्थ बोध के साथ ही सांसारिक पदार्थों और सम्बन्धों का आकर्षण क्षीण हो जाता है । पल-पल में जिनकी पर्यायें बदल रही हैं...उन पदार्थों के प्रति क्या राग करना ?''

फल्गुरक्षित अत्यन्त ही ध्यानपूर्वक आर्यरक्षित की तत्त्ववाणी का श्रवण कर रहा था ।

फल्गुरक्षित ने कहा-``पूज्यवर ! आपकी बात यथार्थ है, फिर भी आत्मा में रहा मोह उछल पड़ता है । मैं आपके पास माँ का सन्देश लेकर आया हूँ ।''

``कहो ! माँ का क्या सन्देश है ? माँ कुशल है न ?'' आर्यरक्षित ने पूछा ।

``पूज्यवर ! ऐसे तो माँ कुशल ही है...परन्तु उसके दिल में आपके दर्शन की प्यास जगी है । माँ का कहना है कि आप शीघ्र ही विहार कर दशपुर नगर की ओर पधारें । माताजी आपको बहुत ही याद कर रही हैं ।''

फल्गुरक्षित की बात सुनकर आर्यरक्षित ने कहा-``फल्गु ! संसार के क्षणिक पदार्थों पर क्या मोह करना ? दुनिया के सम्बन्ध तो बदलते रहते हैं...अतः उन पदार्थों पर राग करना निरर्थक है । सांसारिक सम्बन्धों में राग करना, आत्मा के लिए बन्धन रूप है अनादि काल से अपनी आत्मा राग- द्वेष के बन्धनों से जकड़ी हुई है । एक मात्र इसी जीवन में...इसी मानव भव में उन बन्धनों की जंजीरों को तोड़ना शक्य और सम्भव है । इस अमूल्य जीवन में बन्धन-मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं होगा तो फिर उसके लिए पुरुषार्थ कब होगा ?

``फल्गु ! ***महान् पुण्योदय से हमें यह जीवन मिला है, राग के बन्धन, द्वेष के बन्धन तोड़ने में ही इस जीवन की सफलता है । इस संसार में कौन किसका मित्र और कौन किसका शत्रु है ?...एक वटवृक्ष पर संध्या समय इकट्ठे हुए पक्षियों की भाँति हमारा संयोग है...उन सम्बन्धों में मोहित हो जाना एक मात्र अज्ञानता ही है...***और फल्गु ! देख, अभी मेरे ``पूर्वों'' का अभ्यास चल रहा है । नौ पूर्व का अध्ययन पूर्ण हो चुका है, अभी तो मैं ज्ञान के अतल सागर की गहराई में डूबा हुआ हूँ । पुण्योदय से परमाराध्यपाद वज्रस्वामी जी जैसे महान् युगप्रधान महर्षि का मुझे संयोग प्राप्त हुआ है । वे मुझे माता-सा वात्सल्य प्रदान करते हुए अभ्यास करा रहे हैं । उनकी देह-लता भी जर्जरित हो चुकी है...अतः इस ज्ञानसाधना में अन्तराय पैदा करना क्या तुझे उचित लगता है ?''

आर्यरक्षित की अमृतसी मधुर वाणी का श्रवण कर फल्गुरक्षित का दिल आनन्द से भर आया । उसकी आत्मा में रही हुई मोह की मूर्छा दूर हो गई और वह बोला, ``पूज्यवर ! आपकी

बात बिल्कुल ठीक है । संसार के सम्बन्ध मोहजाल से भरे हुए हैं...फिर भी माता ने जो कहलाया है-**''हम पर उपकार करने के लिए भी एक बार तुम अवश्य आना, इस बात की ओर थोड़ा-सा ध्यान देना चाहिए ।''**

आर्यरक्षित ने कहा-''बन्धु ! तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है...परन्तु अभी विद्याध्ययन चल रहा है...इसकी समाप्ति के बाद मैं भी माँ की भावना पूर्ण करने के लिए दशपुर आने की भावना रखता हूँ । माता-पिता आदि को सन्मार्ग प्रदान करके ही सचमुच उनके ऋण से मुक्ति पा सकते हैं । अतः विद्याध्ययन की समाप्ति के बाद उस ओर विहार करने की भावना है । हाँ ! फल्गु, तेरे दिल में मेरे प्रति स्नेह हो तो तू यहीं ठहर जा, हम दोनों साथ में चलेंगे ।''

फल्गुरक्षित ने कहा, ''मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ ।''

''फल्गु ! तुम्हारा यहां गृहस्थ वेष में रहना ठीक नहीं लगता है अतः तुम भी मेरे समान दीक्षित हो जाओ !'' आर्यरक्षित ने कहा ।

तुरन्त ही फल्गुरक्षित ने आर्यरक्षित की बात स्वीकार कर ली ।

शुभमुहूर्त में फल्गुरक्षित ने भी भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली । वह भी अगारी मिटकर अणगार बन गया । भोगी मिटकर योगी बन गया ।

श्रेयस्कार कार्य के लिए देरी किस बात की ? फल्गुरक्षित भी निर्मम भाव से संयम जीवन की साधना करने लगा ।

आर्यरक्षित मुनिवर 10 वें पूर्व का अध्ययन कर रहे थे । इस ''पूर्व'' में अत्यन्त कठिन नय-गम और निक्षेप थे । चौबीस अध्ययन हो चुके थे...परन्तु अब आर्यरक्षित को अध्ययन में कठिनाई महसूस हो रही थी ।

एक बार आर्यरक्षित ने सहजता से वज्रस्वामीजी से पूछा-''भगवन्त ! अब मेरा अध्ययन कितना बाकी है ?''

वज्रस्वामी ने कहा, ''आर्य ! अभी तो तुम्हारा समुद्र में बिन्दु तुल्य ही अध्ययन हो पाया है । मेरु के आगे सरसों का जो माप है, उतना ही अध्ययन तुम्हारा हो पाया है, अतः समाप्ति की उत्सुकता किए बिना, स्थिरता पूर्वक अध्ययन करो । स्थिरतापूर्वक अध्ययन करोगे तो ज्ञान का महासागर तुम पार कर सकोगे ।''

वज्रस्वामी की यह बात सुनकर आर्यरक्षित मुनि पुनः अध्ययन में लीन हो गए...परन्तु कुछ ही दिनों के बाद उन्हें आगे के अध्ययन में प्रमाद होने लगा । घोर श्रम करने पर भी आगे के सूत्र उन्हें याद नहीं हो पा रहे थे ।

कुछ दिन बीतने के बाद फल्गुरक्षित ने पुनः आर्यरक्षित से पूछा-''बन्धुवर ! अब कितने दिन ठहरना है ?''

आर्यरक्षित ने कहा-''मैं आचार्य भगवन्त से पूछकर जवाब देता हूँ ।'' अध्ययन से श्रांत बने आर्यरक्षित ने एक दिन अवसर देखकर पुनः आचार्य भगवन्त से पूछा-''भगवन् ! मेरा मन

सम्बन्धीजन के संग में उत्कण्ठित बना हुआ है...मैं उनसे मिलकर अध्ययन के लिए पुनः आ जाऊंगा।''

आर्यरक्षित की यह बात सुनकर वज्रस्वामीजी ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया। श्रुत के उपयोग से उन्होंने जान लिया कि उनका आयुष्य अल्प है...अतः आर्यरक्षित मुझे पुनः नहीं मिल पाएगा। आर्यरक्षित की इतनी ही योग्यता होने से वह आगे के श्रुत का अध्ययन नहीं कर पाएगा और प्रभु महावीर के शासन में अन्तिम दशपूर्व का ज्ञान मेरे तक सीमित रह जाएगा। जो भावी है, उसे टाला नहीं जा सकता, अतः अब आर्यरक्षित को रोकना उचित नहीं है। इस प्रकार विचार कर वज्रस्वामीजी ने कहा-``वत्स ! मैं तुम्हें जाने की अनुमति देता हूँ। तुम खुशी से अपनी जन्मभूमि की ओर प्रयाण करो। इन सब मुनियों के बीच तुम्हारे जैसा कोई मेधावी नहीं है और इसी कारण मुझे भी तुमको अध्यापन कराने में विशेष आनन्द आ रहा था। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो।''

वज्रस्वामीजी के मुख से इस प्रकार आशीर्वादपूर्ण वचन सुनकर आर्यरक्षित का हृदय आनन्द से भर आया। उन्होंने वज्रस्वामीजी के चरणों में अत्यन्त बहुमानपूर्वक प्रणाम किया। स्थिरता दरम्यान जाने-अनजाने में हुई अपनी भूलों के लिए क्षमायाचना की।

वज्रस्वामी ने भी ``मिच्छा मि दुक्कड़ं'' कहा।

वज्रस्वामीजी के शुभाशीर्वाद प्राप्त कर आर्यरक्षित ने अपनी विहार-यात्रा प्रारंभ कर दी।

भगवान महावीर के शासन में वज्रस्वामीजी अन्तिम दशपूर्वधर महर्षि हुए। आर्यरक्षितजी ने वज्रस्वामीजी से साढ़े नौ पूर्व का अध्ययन किया था।

गुरु के चरणों में समर्पणपूर्वक जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह ज्ञान स्वपर उद्धारक होता है। लोकोत्तर जैनशासन में ज्ञान-प्राप्ति के लिए जो आचार मर्यादाएँ बतलाई गई हैं, वे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती हैं।

आर्यरक्षित मुनिवर्य के जीवन में विनय और नम्रता थी-इसी के फलस्वरूप ज्ञान के अगाध सागर को वे पा सके।

आर्यरक्षित मुनिवर अपने बन्धु मुनि आदि के साथ विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर पधारे।

पाटलीपुत्र में उस समय तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त बिराजमान थे। गुरूदेवश्री के दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा के कारण आर्यरक्षित मुनिवर शीघ्र विहार कर तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त के चरणों में आ पहुँचे।

आर्यरक्षित मुनिवर ने गुरूदेव के चरणों में प्रणाम किया।

काफी समय के बाद गुरूदेवश्री के दर्शन हो रहे थे...अतः गुरू-दर्शन से उनका मन पुलकित हो उठा। उन्होंने गुरूदेव की कुशल-पृच्छा की। गुरूदेव ने आर्यरक्षित को हृदय से आशीर्वाद दिए।

गुरूदेव ने अपने ज्ञान के उपयोग से देखा-**``मेरा आयुष्य अब अल्प है और आर्यरक्षित आचार्यपद के लिए हर तरह से योग्य है, अतः उसे आचार्यपद पर प्रतिष्ठित करना ही चाहिए।''** यही सोचकर गुरूदेव ने आर्यरक्षित को आचार्यपद प्रदान करने का निर्णय किया।

वे स्वयं ज्योतिर्विद् थे । उन्होंने पंचांग देखकर आचार्यपदवी के लिए श्रेष्ठ दिन निकाल लिया और पाटलीपुत्र संघ को इस सम्बन्ध में जानकारी दी ।

आर्यरक्षित मुनिवर की आचार्य पदवी के समाचार से समस्त जैनसंघ में आनन्द की लहर फैल गई । संघ ने बहुत ही भक्तिभाव से आचार्य पदवी का महोत्सव किया और एक शुभ दिन शुभ घड़ी में गुरुदेव ने आर्यरक्षित मुनिवर को विधिपूर्वक अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया ।

जैनशासन में ''आचार्य'' की बहुत बड़ी जवाबदारी है । तीर्थंकर परमात्मा के विरह काल में जैनशासन की धुरा को आचार्य भगवन्त ही वहन करते हैं । इस पद के लिए महान् योग्यता चाहिए । हर किसी को इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाता है ।

ज्योंही गुरुदेव ने आर्यरक्षित मुनिवर के मस्तक पर आचार्य पद का वासक्षेप डाला, त्योंही ''नूतन आचार्य अमर रहो ।'' ''जैनं जयति शासनम् ।'' आदि नारों से आकाश-मंडल गूंज उठा । चारों ओर जिनशासन की अद्‌भुत प्रभावना हुई । गुरुदेव ने नूतन आचार्य को अपने आसन पर बिठाया और समस्त संघ के साथ नूतन आचार्य को वन्दन किया ।

गुरुदेव ने अपनी समस्त संघीय जवाबदारी नूतन आचार्य को सौंप दी । आचार्य पदवी का महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ ।

आर्यरक्षित **''मुनि''** से **''मुनिपति''** बने ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त अतिवृद्ध हो चुके थे । उनकी काया अत्यन्त कृश बन चुकी थी...फिर भी उनके मुखमंडल पर चारित्र का अद्‌भुत तेज था ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

तोसलीपुत्र आचार्य भगवन्त का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा । नूतन आचार्य भगवन्त आदि मुनिवर अपने गुरूदेव की सेवा में तैयार थे । आचार्य भगवन्त अत्यन्त ही सावधान थे । जिनशासन के रहस्यों को उन्होंने मात्र जाना ही नहीं था...उन रहस्यों को जीवन में आत्मसात् भी किया था- इसी के फलस्वरूप उन्हें मृत्यु का लेश भी भय नहीं था...वे मृत्यु के स्वागत के लिए सुसज्ज बने हुए थे । उनके मुख पर न कोई ग्लानि थी...और न ही मृत्यु का भय ।

''मृत्यु तो देह का परिवर्तन मात्र है । मृत्यु द्वारा आत्मा मात्र देह को बदलती है । मैं देह से भिन्न अजर-अमर आत्मा हूँ । मृत्यु तो देह की होती है...मेरी नहीं । मैं तो शाश्वत तत्त्व हूँ । मैं अविनाशी हूँ ।''

''मैं देह से भिन्न हूँ'' ।

इस प्रकार के सनातन सत्यों को उन्होंने जीवन में आत्मसात् किया था...इसी कारण उनके लिए मृत्यु का आगमन भी महोत्सव रूप था ।

''अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि । केवलीपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि'' की अमरवाणी उनके मुखारविंद से प्रस्फुटित हो रही थी ।

उन्होंने समस्त जीवराशि से, अपने शिष्य-परिवार आदि से क्षमायाचना की । सभी शिष्यों

ने भी अपने अपराधों के लिए उनसे क्षमायाचना की...और थोड़े ही पलों में उन्होंने सदा के लिए अपनी आँखें मूंद ली । भौतिक देह का त्यागकर वे अनन्त की यात्रा में विलीन हो गए ।

``उड़ गया पंखी, पड़ रहा माला'' बस, समस्त शिष्य परिवार शोकमग्न हो गया । शिष्यों का शिरःछत्र दूर हो गया । उनके स्वर्ग-गमन से जैन संघ को भी एक भारी क्षति पहुँची ।

वे एक महान् युगप्रभावक महर्षि थे ।

आर्यरक्षित सूरिजी आदि की आँखें अश्रुसिक्त हो गईं ।

गुरुदेव की चिर-विदाई से संघ व समुदाय की समस्त जवाबदारी उनके सिर पर आ पड़ी । वे इस जवाबदारी को विवेकपूर्वक वहन करने लगे ।

5. परिवार का उद्धार

कुवासनाओं के पाश का उच्छेद करने वाले जिनशासन को कोटि कोटि वंदना हो ।

आत्मा को परमात्मा बनाने वाला है यह शासन । पापात्मा को पुण्यात्मा बनाने वाला है यह शासन ।

आत्मा में घर कर गए दुर्व्यवहारों को जड़-मूल से हटाने की ताकत जिनशासन में है ।

इस जिनशासन के स्थापक हैं तीर्थंकर परमात्मा और उनके विरहकाल में इस तीर्थ रथ की धुरा को वहन करने वाले हैं-गीतार्थ आचार्य भगवन्त ।

आचार्य भगवन्त जिनशासन के प्रति समर्पित होते हैं । उनका पूरा जीवन...उनका प्रत्येक श्वास...उनकी प्रत्येक वृत्ति-प्रवृत्ति जिनशासन के हित के लिए होती है ।

आचार्य पद से अलंकृत आर्यरक्षित सूरिवर भी जिनशासन के ऐसे ही अनोखे प्रभावक पुरुष थे ।

गुरूदेव के वियोग के बाद समस्त शासन और संघ की जवाबदारी उन पर थी । वे शास्त्र के पारगामी थे...दक्ष थे...कुशल थे...गीतार्थ थे...प्रभावक थे...प्रवचनकार थे...सर्वजीव हितचिन्तक थे ।

जिनशासन की अजोड़ प्रभावना करते हुए वे मालवा की भूमि पर विहार कर रहे थे । जिन-जिन गाँवों में उनका पदार्पण होता...लोग अत्यन्त आदर-बहुमान से उनका स्वागत-सत्कार करते थे । उनकी अमृत–सी वाणी का पानकर अनेक पुण्यात्माएँ जिनशासन रसिक बन रही थीं ।

अनेक पुण्यशाली आत्माओं को उन्होंने सर्वविरति का दान किया था । अनेक पुण्यात्माओं को जिनशासन रसिक श्रद्धालु श्रावक बनाया था । इस प्रकार अनेक क्षेत्रों में जिनशासन की ध्वजा फहराते हुए वे अपनी जन्म-भूमि की ओर विहार कर रहे थे । विहार-यात्रा आगे बढ़ रही थी ।

इधर माँ रुद्रसोमा अपने पुत्र मुनिवर आर्यरक्षित के दर्शन के लिए अत्यन्त उतावली बनी हुई थी । एक शुभ दिन आर्यरक्षितसूरिजी म. अपनी जन्म-भूमि के बाहर पहुँच गए, फल्गुरक्षित मुनि ने नगर में प्रवेश किया, वे तुरन्त ही अपने घर पहुँच गए और माँ को शुभ संदेश देते हुए बोले-``माँ ! माँ ! तुम्हारा पुत्र आर्यरक्षित, गुरू बनकर आ गया है ।''

रुद्रसोमा ने फल्गुरक्षित को जैन श्रमण वेष में देखा । वह आनन्दित हुई और बोली, ``क्या मैं इतनी पुण्यशाली हूँ कि उसका मुख देख पाऊँगी ?''

रुद्रसोमा इस प्रकार बोल ही रही थी कि तत्क्षण आर्यरक्षित सूरि म. वहाँ उप स्थित हो गए ।

माता रुद्रसोमा ने आर्यरक्षित को जैन साधु के रूप में देखा...उसका हृदय आनन्द से भर आया...वह रोमांचित हो उठी...उसकी आँखों में हर्ष के अश्रु अवतरित हुए ।

उसी समय आर्यरक्षित सूरिवर के पिता सोमदेव पुरोहित भी वहाँ आ गये । उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को देखा ।

उसने कहा-``बेटा ! प्रवेश-महोत्सव के बिना तुमने नगर में शीघ्र ही प्रवेश कैसे कर लिया ? हाँ ! मैं इसका कारण जान गया हूँ...तुम माता की विरह वेदना को समझ गए हो...अतः इसकी वेदना को दूर करने के लिए ही शीघ्र आ गए हो ।''

``खैर ! अब तुम पुनः नगर के बाहर जाओ । मैं राजा को विज्ञप्ति करूंगा और वह तुम्हारा भव्य प्रवेश महोत्सव करेगा...फिर तुम इस श्रमण वेष का त्याग कर देना...और गृहस्थाश्रम को स्वीकार करना ।

``तुम्हारे गुण और रूप के अनुरूप मैंने तुम्हारे लिए कन्या खोज ली है । वेद-विहित विधि के अनुसार तुम्हारा विवाह किया जाएगा...जिससे तुम्हारी माता को भी पूरा संतोष होगा ।''

``बेटा ! तुझे धन-अर्जन करने की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सात पीढ़ी तक खूटे नहीं, उतना धन अपने पास है । तुम्हारे द्वारा गृहस्थ जीवन को स्वीकार करने के बाद ही मैं वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करूंगा ।''

अपने पिता सोमदेव पुरोहित की यह बात सुनकर आर्यरक्षित ने कहा-``तात ! आप मोहाधीन होकर इस प्रकार की बातें कर रहे हो ! इस संसार में कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र है ? सभी अपने कर्म के अनुसार नये-नये जन्म धारण करते हैं । राजा की कृपा से प्राप्त धन की क्या कीमत है ?''

``बाह्य वैभव और सम्पत्ति कोई वास्तविक सम्पत्ति नहीं है । बाह्य धन सम्पत्ति तो जल-तरंग की भाँति अत्यन्त चपल है । वायु की तरह जीवन अस्थिर है । यौवन तृण के अग्रभाग पर रहे जलबिन्दु के समान है । दुनिया के सम्बन्ध स्वप्नतुल्य हैं । इन अस्थिर सम्बन्धों में क्या राग करना ? क्या द्वेष करना ?

अनादिकाल से परिभ्रमण करती हुई आत्मा को इस संसार में मनुष्यजन्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । यह जीवन तो संसार में अमूल्य-रत्न की प्राप्ति तुल्य है...इस कीमती जीवन को प्राप्त करके जो मनुष्य सांसारिक सुखों के लिए अपना जीवन बिता देता है, वह कांच के टुकड़े के लिए रत्न देने की तैयारी कर रहा है ।

मनुष्य जीवन की सफलता विषय-सुखों का त्याग कर मोक्षसुख के लिए प्रयत्न करने में है । इन्द्रियजन्य सुख तो क्षणिक, नश्वर व तुच्छ है । उसमें आसक्त बनना बुद्धिमत्ता नहीं है ।

हे तात ! संसार के उन तुच्छ भोगों से आत्मा कब तृप्त बनी है ? आत्म-तृप्ति तो त्याग से ही सम्भव है, भोग से नहीं ।''

मैंने संसार के इस नश्वर स्वरूप को अच्छी तरह से जान लिया है...अतः इस महान् आर्हती प्रव्रज्या को स्वीकार कर पुनः इसके त्याग की मूर्खता क्यों करूँ ? यह तो मुझे महान् पुण्योदय से प्राप्त हुई है । इसके त्याग की इच्छा मूर्खता ही है ।

अगन्धन कुल में उत्पन्न हुआ सर्प, वमन किये हुए जहर को पुनः नहीं पीता है...वह अग्नि में भस्मसात् हो जाएगा परन्तु वमन की हुई वस्तु का पुनः आस्वाद नहीं करेगा...मैंने भी संसार के तुच्छ भोग-सुखों का स्वेच्छा से त्याग किया है, अतः अब पुनः ग्रहण करने की बालिश चेष्टा क्यों करूँ ?

``यदि आपके दिल में मेरे प्रति स्नेह है...तो आप सब प्रव्रज्या ग्रहण करें ।''

आर्यरक्षित की वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना सुनकर पिता ने कहा-``मैं तुम्हारी तरह कठोर जैन-व्रत स्वीकार करने में समर्थ नहीं हूँ ।''

आर्यरक्षित ने सोचा, ``पिता का मिथ्यात्व अभी मन्द नहीं हो पाया है, अतः पहले अपनी माँ को प्रतिबोध करूँ । ये बाद में प्रतिबोध पाएंगे । माता दृढ़ सम्यक्त्व व्रतधारी है और उसी ने मुझे चारित्र की प्रेरणा की है ।'' इतना विचार कर उन्होंने अपनी माता से कहा-``माँ ! तुम तो ज्ञान की महानिधि हो । तुम्हारी आज्ञा से ही दृष्टिवाद को पढ़ते हुए मुझे इस संसार से पार उतरने की इच्छा जगी थी ।

इस कलियुग में सुनन्दा धन्य है जिसने वज्रस्वामी जैसे पुत्ररत्न को जन्म दिया है, परन्तु मैं तो सुनन्दा से भी तुझे अधिक धन्य मानता हूँ । उसने तो रुदन से खिन्न होकर अपने पति मुनि को पुत्र सौंपा था...और उसके बाद पुनः पुत्रप्राप्ति के लिए विवाद भी किया था, परन्तु तुमने तो संसार-सागर से पार उतारने की बुद्धि से ही मुझे तोसलीपुत्र आचार्य को सौंप दिया था । महान् पुण्योदय से वज्रस्वामी के पास पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर अब तुम्हारे पास आया हूँ, अतः तुम भी परिवार सहित दीक्षा स्वीकार कर भवसागर से पार उतरो ।''

माता ने कहा, ``आर्यरक्षित ! मैं दीक्षा स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ, यदि परिवार में मेरे प्रति स्नेहवाले होंगे तो वे भी मेरे पीछे अवश्य दीक्षा स्वीकार करेंगे ।'' बस, आर्यरक्षित सूरिवर के उपदेश-अमृत का पान कर सोमदेव सिवाय सभी दीक्षा के लिए तैयार हो गए ।

आर्यरक्षित ने अपनी माता आदि सभी को शुभ-मुहूर्त में दीक्षा प्रदान की । सभी की दीक्षा हो जाने पर सोमदेव ने कहा,

``मैं भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हूँ, परन्तु मुझे कुछ वस्तुओं की छूट दो ।''

आर्यरक्षित ने पूछा, ``कौनसी छूट चाहते हो ?''

सोमदेव ने कहा, ``मैं धोती पहनूंगा, पैरों में जूते, छत्री और जनेऊ धारण करूंगा इत्यादि ।''

आर्यरक्षित सूरीश्वर महान् ज्ञानी और गीतार्थ थे ।

उन्होंने सोचा, ''भविष्य में ये स्वयं इन वस्तुओं का त्याग कर देंगे'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने पिता की शर्त में निषेध और अनुमति दिए बिना उन्हें भागवती दीक्षा प्रदान कर दी ।

एक बार आर्यरक्षित सूरीश्वर विहार कर किसी नगर में गए । वहाँ के श्रावकों ने सभी मुनिवर्यों का वन्दन किया, किन्तु छत्रधारी सोमदेव मुनि को वन्दन नहीं किया ।

उपाश्रय में आकर सोमदेव मुनि ने आर्यरक्षितसूरिजी से पूछा, ''क्या मैं वन्दनीय नहीं हूँ ?''

आर्यरक्षित ने कहा, ''तात ! छत्र धारण के साथ वन्दनीय कैसे बनोगे ? अतः छत्र छोड़ दो...जब गर्मी पड़े तब सिर पर वस्त्र रख लेना ।''

आर्यरक्षित की यह बात सोमदेव मुनि ने तुरन्त स्वीकार कर ली और उन्होंने हमेशा के लिए छत्र का त्याग कर दिया ।

इस प्रकार धीरे-धीरे आर्यरक्षितसूरिजी ने अपने पिता मुनि के पास से छत्र, जूते तथा जनेऊ आदि गृहस्थ वेष युक्तिपूर्वक छुड़वा दिया...परन्तु उन्होंने धोती का त्याग नहीं किया ।

एक बार आर्यरक्षितसूरिजी म. के समुदाय में किसी मुनि का स्वर्गवास हो गया । उस समय ऐसी प्रथा थी कि स्वर्गस्थ मुनि के देह को एक मुनि उठाकर जंगल में ले जाते और उस देह को पारिष्ठापनिका समिति के अनुसार वोसिरा देते थे ।

मुनि के स्वर्ग-गमन के बाद उनके मृत देह को परठने की क्रिया के लिए अनेक गीतार्थ मुनि तैयार हो गए, तभी कल्पित कोप करते हुए सूरिवर बोले, ''क्या सभी पुण्य के कार्य तुम्ही करोगे ? क्या मेरे स्वजन में से किसी को करने नहीं दोंगे ?''

आर्यरक्षित सूरिवर की यह बात सुनकर पिता मुनि बोले, ''यदि इस कार्य में महान् पुण्य होता हो तो मैं यह कार्य करूंगा ।''

आर्यरक्षित ने कहा, ''मृत देह को वहन करते समय अनेक उपसर्ग भी हो सकते हैं और यदि आप उपसर्ग से चलित हो जाओंगे तो हम पर भयंकर आपत्ति आ सकती है...अतः जो उचित लगे वैसा करो ।''

यह सुनकर सोमदेव मुनि ने कहा, ''क्या मैं इतना सत्त्वहीन और निर्बल हूँ ? मैं इस कार्य को अवश्य करूंगा । पहले भी मैंने वेदमंत्रों के द्वारा राजा और राष्ट्र की आपत्ति दूर की है...अतः इस कार्य में मुझे कोई घबराहट नहीं है ।'' इस प्रकार दृढ़ बनकर सोमदेव मुनि स्वयं उस मृत देह को उठाकर जंगल की तरफ चल पड़े, तभी पूर्वशिक्षित बच्चों ने उनकी धोती खींच ली । बच्चों के इस उपसर्ग से वे मन में अत्यन्त दुःखी हुए, ''यदि इस शव को नीचे रख दिया तो मेरे पुत्र पर आपत्ति आ जाएगी'' इस भय से उन्होंने शव को नीचे नहीं उतारा और जंगल में जाकर मृत देह को परठ दिया । लौटने पर आर्यरक्षित ने उन्हें वस्त्र दिया और उन्होंने उसे शीघ्र ही चोलपट्टे की तरह पहन लिया ।

सोमदेव मुनि का जीवन हर तरह से बदल चुका था । उनकी प्रत्येक आचार क्रिया जैन साधु

के समान ही थी...परन्तु उन्हें गोचरी के लिए जाने में शर्म आती थी । अनेक प्रयत्न करने पर भी वे भिक्षा-गमन के लिए तैयार नहीं हुए ।

आर्यरक्षित ने सोचा, ''कदाचित् मेरा आयुष्य पहले क्षीण हो जाय तो इन्हें वृद्धावस्था में तकलीफ पड़ सकती है, अतः इन्हें किसी भी प्रकार से भिक्षाविधि सिखानी चाहिए ।''

एक बार अपने शिष्यों को इकट्ठा कर आर्यरक्षित ने कहा-''मैं विहार कर पास के गाँव में जाऊंगा...तुम लोग यहीं ठहरना...रोज भिक्षा लाना, किन्तु सोमदेव मुनि को भोजन के लिए आमंत्रण मत देना ।''

आर्यरक्षित की बात शिष्य समझ न सके...फिर भी उन्होंने गुरु आज्ञा को ''तहत्ति'' कह स्वीकार कर लिया । दूसरे दिन आर्यरक्षितसूरिवर विहार कर पास के गाँव में चले गये ।

सोमदेव मुनि वहीं ठहरे हुए थे । सभी शिष्य गोचरी लाकर वापरने लगे, किन्तु उन्होंने सोमदेव मुनि को आमंत्रण नहीं दिया । दो दिन तक वे भूखे रहे और तीसरे ही दिन आर्यरक्षित सूरिवर लौट आए ।

आर्यरक्षित सूरिवर के आने के साथ ही सोमदेव मुनि ने कहा, ''यदि आप थोड़े दिन अधिक बाहर रहते तो अकाल में ही मेरी मृत्यु हो जाती...आपकी आज्ञा होने पर भी किसी मुनि ने मुझे भोजन के लिए आमंत्रण नहीं दिया ।''

तुरन्त ही झूठा कोप करते हुए आर्यरक्षित सूरिवर बोले, ''तुमने पिता मुनि को भोजन के लिए आमंत्रण क्यों नहीं दिया ?''

तभी पूर्व शिक्षित एक मुनि ने कहा, ''भगवन्त ! आपके विरह की व्यथा से हम शून्यमनस्क हो गए थे, अतः हमारे इस अपराध को आप क्षमा करें ।''

तभी आर्यरक्षित सूरिवर ने पिता मुनि को कहा, ***''पराभव में कारणभूत ऐसी दूसरे की आशा कभी नहीं करनी चाहिए । पर की आशा अन्त में निराशा पैदा करती है ।''***

इतना कहकर आर्यरक्षित सूरिवर स्वयं खड़े हो गए और बोले, ''आपके उचित आहार के लिए मैं स्वयं जाता हूँ ।''

तभी सहसा सोमदेव मुनि बोले, ''वत्स ! मेरे होते हुए तुम भिक्षा के लिए कहाँ जाओगे ? तुम तो गच्छ के अधिपति हो...अतः तुम्हें जाना उचित नहीं है ।'' इतना कहकर निषेध करते हुए भी पात्र ग्रहण कर भिक्षा के लिए निकल पड़े ।

किसी श्रेष्ठी के पिछले द्वार से उन्होंने हवेली में प्रवेश किया और जोर से ''धर्मलाभ'' बोले । मकान के पिछले द्वार से गोचरी के लिए आए मुनिवर को देखकर श्रावक ने पूछा, ''हे मुनिवर ! आप मुख्यद्वार से क्यों नहीं आए ?''

सोमदेव मुनि ने कहा, ''हे महानुभाव ! क्या लक्ष्मी पिछले द्वार से नहीं आती है ?'' (लक्ष्मी तो कहीं से भी आए उसका स्वागत ही करते हैं ।)

उस श्रावक ने खुश होकर अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक सोमदेव मुनि को 32 लड्डू बहोराए ।

सोमदेव मुनि गोचरी बहोरकर उपाश्रय में आए । प्रथम भिक्षा में सोमदेव मुनि के पात्र में 32 लड्डू देखकर निमित्त शास्त्र में उपयोग लगाकर आर्यरक्षित सूरिवर ने सोचा, पहली भिक्षा में 32 लड्डू मिले हैं, अतः मेरे पीछे 32 शिष्य होंगे ।''

आर्यरक्षित सूरिवर ने पूछा, ``तात ! पहले राजकुल से जो धन मिलता था..उसका स्व-उपभोग करने के बाद किसे देते थे ?''

सोमदेव ने कहा, ``गुणवान पुरोहित को देते थे ।''

आर्यरक्षित ने कहा, ``योग्य पात्र में लक्ष्मी का दान करने से वह नवीन सुकृत को जन्म देनेवाली बनती है, अतः हे तात ! ये अपने साधु गुणों की निधि हैं...योग्य पात्र हैं, इनकी भक्ति करने से महान् पुण्य का बंध होता है ।'' आर्यरक्षित सूरिवर की यह बात सुनकर उत्साही बने सोमदेव मुनि ने कहा, ``बाल, ग्लान आदि साधुओं के लिए उपकारी आहार लाकर मैंने क्या नहीं पाया ? अर्थात् मैंने बहुत कुछ पाया है ।''

इस प्रकार आर्यरक्षित सूरिवर ने अपने पिता सोमदेव मुनि के मन में भिक्षा-वृत्ति के प्रति आदर भाव पैदा करा दिया ।

अब सोमदेव मुनि सुन्दर रीति से संयमधर्म की आराधना करने लगे ।

6. पुष्यमित्र

महान् प्रभावक आर्यरक्षित सूरि महाराज के गच्छ में अनेक विद्वान् और प्रभावक मुनिवर थे ।

आर्यरक्षित सूरि म. विविध क्षेत्रों में विहार करते हुए जिनशासन की अजोड़ प्रभावना कर रहे थे ।

उनके शिष्य परिवार में चार मुख्य प्रकांड विद्वान् शिष्य थे (1) दुर्बलिका पुष्यमित्र (2) विंध्य (3) फल्गुरक्षित और (4) गोष्ठामाहिल ।

दुर्बलिका पुष्यमित्र अर्थात् स्वाध्याय की साक्षात् मूर्ति !

वे ज्ञान के अत्यन्त व्यसनी थे । विशुद्ध चारित्र-पालन के साथ-साथ उन्हें ज्ञान में तीव्र रस था । वे सतत स्वाध्याय में लीन रहते थे...और इस कारण घी का पान करने पर भी उनकी देहलता अत्यन्त दुर्बल थी । भोजन में उन्हें कोई रस या आसक्ति नहीं थी । अतः स्वाध्याय के अति श्रम के कारण घी का भोजन भी पच जाता था और मानसिक श्रम के कारण उनका शरीर दुर्बल रहता था । उन्होंने अपने गुरुदेव आर्यरक्षित सूरिजी म. के पास नौ पूर्व का अभ्यास किया था । ग्रहण किया गया श्रुत भूला न जाय, इस हेतु वे रात व दिन स्वाध्याय में लीन रहते थे ।

ग्रहण किये गए श्रुत को स्थिर करने के लिए उसका बार-बार पुनरावर्तन अनिवार्य है...यदि सतत पुनरावर्तन जारी न रखा जाय तो ग्रहण किया गया सभी श्रुत विस्मृत हो जाता है ।

रोटी सेकने के लिए उसे बार-बार अग्नि पर घुमाना पड़ता है, यदि ऐसे ही रख दी जाय तो वह जलकर भस्मीभूत (राख) हो जाती है ।

बस, इसी प्रकार ज्ञान को स्थिर करने के लिए उसका पुनरावर्तन अत्यन्त जरूरी है ।

उनका मुख्य नाम तो पुष्यमित्र था...परन्तु स्वाध्याय के कारण दुर्बल काया होने से लोग उन्हें दुर्बलिका पुष्यमित्र कहते थे ।

पुष्यमित्र के स्वजन सम्बन्धी बौद्धधर्मी थे ।

एक बार आर्यरक्षित सूरिजी म. दशपुर नगर में बिराजमान थे, तभी पुष्यमित्र के सम्बन्धी उनको वन्दन करने के लिए आए ।

वन्दन करने के बाद पुष्यमित्र के सम्बन्धीजनों ने पूछा, ''क्या आपके धर्म में ध्यान नहीं है ?''

सूरिवर ने कहा, ''हमारे धर्म में तो श्रेष्ठ ध्यान है...ऐसा ध्यान-योग अन्य कहीं नहीं है । तुम्हारे सम्बन्धी पुष्यमित्र मुनि, ध्यान के कारण ही अत्यन्त दुर्बल हैं ।''

उन्होंने कहा, ''ऐसा नहीं होना चाहिए, हमारे ख्याल से तो तप करने और मधुर आहार के अभाव के कारण ही वे अत्यन्त दुर्बल हुए हैं ।''

सूरिवर ने कहा, ''पूज्यों की कृपा से यह तो घी का भोजन करता है, परन्तु सतत स्वाध्याय और ध्यान के कारण अत्यन्त कृश दिखाई देता है ।''

सम्बन्धीजनों ने कहा, ''नहीं, आपके पास स्नेह की सम्पत्ति कहाँ है कि आप इसे घी पिलाओ ?''

आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा, ''यह स्वयं घी पीता है...फिर भी तुम्हें विश्वास न हो तो इसे अपने घर ले जाओ और इसे घी का स्निग्ध आहार खिलाओ, फिर तुम स्वयं जान लोगे कि इसकी दुर्बलता का कारण क्या है ?''

सम्बन्धीजनों ने पुष्यमित्र को अपने घर पधारने के लिए आमंत्रण दिया । गुरुदेव की आज्ञा से पुष्यमित्र अपने कुटुम्बीजनों के घर गए और संयम-जीवन के लिए योग्य बस्ती में ठहरे ।

वहाँ रहने पर सम्बन्धीजनों ने स्निग्ध भोजन व घी आदि से पुष्यमित्र की खूब-खूब भक्ति की...परन्तु स्वाध्याय में लीन बने पुष्यमित्र को स्निग्ध भोजन में लेश भी आसक्ति नहीं थी, स्वाध्याय की लीनता के कारण उनकी काया कृश ही बनी रही ।

कुटुम्बीजनों ने सोचा-पुष्यमित्र द्वारा किया गया भोजन राख में घी (होम) डालने की तरह निरर्थक ही जा रहा है, बहुत सा और गरिष्ठ भोजन करने पर भी इसे कुछ भी फायदा नहीं हुआ ?''

कुटुम्बीजन सोच में पड़ गए । उन्होंने पुष्यमित्र को स्वाध्याय के लिए मना किया और फिर आहार ग्रहण करने के लिए आग्रह किया ।

गुरुदेव की आज्ञा से पुष्यमित्र ने थोड़े समय के लिए स्वाध्याय बन्द कर दिया...अब उनका शरीर धीरे-धीरे पुष्ट होने लगा । **अंत-प्रांत** भोजन से भी उनका शरीर पुष्ट हो रहा था ।

कुछ ही दिनों में कुटुम्बीजनों को प्रतीति हो गई कि वे न तो रोगी थे और न ही तुच्छ भोजन करते थे...परन्तु स्वाध्याय-ध्यान आदि के कारण ही उनकी काया कृश थी ।

पुष्यमित्र ने अपने सम्बन्धीजनों को प्रतिबोध दिया । स्वाध्याय की महिमा और उसका स्वरूप समझाया ।

पुष्यमित्र के धर्मोपदेश का श्रवण कर सभी कुटुम्बीजन जैनधर्म के उपासक बन गए ।

पुष्यमित्र मुनि पुनः अपने गुरुदेव के चरणों में आ गए ।

आर्यरक्षित सूरिवर प्रतिदिन अपने शिष्यों को श्रुत की वाचना प्रदान करते । सूरिवर का एक शिष्य **''विंध्य''** भी अत्यन्त मेधावी था । परन्तु जिस गति से आर्यरक्षित सूरिवर स्वाध्याय-मांडली में वाचना दे रहे थे, उसे विंध्यमुनि अच्छी तरह से ग्रहण नहीं कर पा रहे थे, अतः उन्होंने गुरुदेव से विज्ञप्ति की, **''भगवन्त !** श्रुत-मांडली में मेरा पाठ स्खलित हो रहा है, अतः मुझे अलग से कहो !''

गुरुदेव ने कहा, ''अच्छा ! मैं तुम्हारे स्वाध्याय की अलग व्यवस्था कर देता हूँ ।''

सूरिवर ने पुष्यमित्र मुनि को बुलाकर कहा, ''इस विंध्यमुनि को तुम रोज वाचना प्रदान करो ।''

विंध्य मुनि ने गुरुदेव की आज्ञा ''तहत्ति'' कहकर स्वीकार की ।

पुष्यमित्र मुनि विंध्यमुनि को वाचना देने लगे, इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए ।

एक दिन पुष्यमित्र ने आकर गुरुदेव से विज्ञप्ति की-**''भगवन् ! मेरी प्रार्थना है, वाचना की व्यग्रता के कारण मैं अपना ग्रहण किया हुआ ''श्रुत'' भूल रहा हूँ...समयाभाव के कारण पूरा स्वाध्याय नहीं हो पा रहा है...पहले आपकी आज्ञा से अपने घर गया था और वहाँ स्वाध्याय बन्द कर देने से अब मुझे स्वाध्याय में भूलें आ रही हैं...यदि अब मैं वाचना दूंगा तो निश्चय ही नौवाँ पूर्व भूल जाऊंगा ।''**

आर्यरक्षित सूरिवर ने सोचा, **''ओहो । इतना मेधावी होकर भी यदि यह आगम श्रुत को भूल जाएगा तो फिर दूसरा कौन इस श्रुत को धारण कर सकेगा ?''** सचमुच दिन-प्रतिदिन जीवों की श्रुतग्रहण–धारण शक्ति घटती जा रही है, अतः मुझे समस्त आगमों का सरलतापूर्वक अभ्यास हो सके, इसके लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए !'' इस प्रकार विचार कर आर्यरक्षित सूरिवर ने आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया । अंग, उपांग, मूलसूत्र और छेदसूत्रों का **चरण करणानुयोग** में समावेश किया ।

उत्तराध्ययन आदि का **धर्मकथानुयोग** में समावेश किया ।

सूर्यप्रज्ञप्ति आदि आगमों को **गणितानुयोग** में और दृष्टिवाद का **द्रव्यानुयोग** में समावेश किया । इस प्रकार भगवान महावीर की पाट-परम्परा में आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त करने का सर्वप्रथम भगीरथ कार्य **आर्यरक्षितसूरिजी म.** ने किया ।

आर्यरक्षितसूरिजी म. ने विंध्यमुनि के लिए यही कार्य किया था । इसके पूर्व हर एक-एक सूत्र में चारों अनुयोगों की बातें आती थीं ।

7. इन्द्र का आगमन

इस जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में सीमन्धर स्वामी भगवन्त पृथ्वीतल को पावन करते हुए विचर रहे हैं । उनका कुल आयुष्य 84 लाख पूर्व वर्ष का है, उनकी काया 500 धनुष की है ।

भरत क्षेत्र में श्री कुन्थुनाथ भगवान के शासन काल में वैशाख (गुज.चैत्र) वद 10 के पवित्र दिन तारक परमात्मा सीमन्धर स्वामी भगवन्त का जन्म पुष्कलावती विजय की पुंडरीकिणी नगरी में हुआ था । उनकी माता का नाम सत्यकी और पिता का नाम श्रेयांस राजा था । 83 लाख पूर्व वर्ष काल गृहस्थ जीवन में व्यतीत कर, बीसवें मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थंकर भगवन्त के निर्वाण के बाद, फाल्गुन सुद 3 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने संसार का त्याग कर चारित्र स्वीकार किया था । 1000 वर्ष के छद्मस्थ पर्याय की पूर्णाहुति के बाद चैत्र सुद 13 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । महाविदेह क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में आठवें उदय तीर्थंकर के निर्वाण के बाद उनके शासनकाल दरम्यान श्रावण सुद 3 के दिन सीमन्धर स्वामी भगवन्त का निर्वाण होगा ।

एक बार इन्द्र महाराजा सीमन्धर स्वामी भगवन्त के समवसरण में पधारे । उसे सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने संसार के यथार्थ स्वरूप को समझानेवाली धर्मदेशना दी ।

अनादिकाल से अनन्त संसारी जीव निगोद में रहे हुए हैं । एक श्वासोच्छ्वास में उनके सत्रह बार जन्म और सत्रह बार मरण और अठारहवीं बार पुनः जन्म हो जाता है । निगोद में रहा जीव सतत जन्म-मरण की पीड़ा भोग रहा है ।

जब किसी एक आत्मा का मोक्ष-गमन होता है, तब अपनी भवितव्यता के योग से अव्यवहार राशि (निगोद) में रही हुई आत्मा बाहर निकलती है और व्यवहार राशि में आती है ।

सीमन्धर स्वामी तारक परमात्मा ने अत्यन्त ही सूक्ष्मता से निगोद में रहे हुए जीव के स्वरूप का वर्णन किया, जिसे इन्द्र महाराजा ने अत्यन्त ही ध्यानपूर्वक सुना । इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक निगोद के स्वरूप का वर्णन उन्होंने पहली बार सुना था । उनके आश्चर्य का पार न रहा । ओहो ! निगोद का जीव सतत इतनी भयंकर वेदना भोग रहा है ।

देशना-समाप्ति के बाद इन्द्र महाराजा ने विज्ञप्ति करते हुए भगवन्त से पूछा, **''भगवन्त ! निगोद के इस प्रकार के सूक्ष्म स्वरूप को समझानेवाला कोई व्यक्ति भरत क्षेत्र में है ?''**

सीमन्धर स्वामी भगवन्त ने कहा, **''शक्रेन्द्र ! हाँ ! भरतक्षेत्र में मथुरा नगरी में आर्यरक्षितसूरि बिराजमान हैं, वे इसी प्रकार से निगोद का वर्णन करने में समर्थ हैं ।''**

सीमन्धर स्वामी भगवान् के मुख से यह बात सुनकर इन्द्र महाराजा के दिल में उत्सुकता पैदा हुई और वे सीधे महाविदेह क्षेत्र से भरतक्षेत्र की मथुरा नगरी में आ गए ।

इन्द्र महाराजा ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया । ब्राह्मण की देहलता अत्यन्त

जर्जरित थी...आँखें निस्तेज बनी हुई थीं...मस्तक पर सफेद बाल थे...शरीर काँप रहा था...हाथ में लकड़ी लिये धीरे-धीरे चल रहे थे...दीर्घ श्वास चल रहा था...हाथ व पैर काँप रहे थे...दाँत गिर चुके थे...मुख पर उदासीनता थी...आँखों में पानी भरा हुआ था...इस प्रकार कृश काया का रूप धारण कर इन्द्र महाराजा आर्यरक्षित सूरि म. के पास आए और वन्दन आदि कर गुरुचरणों में बैठे...तत्पश्चात् उन्होंने सूरिवर से निगोद का स्वरूप जानने के लिए प्रश्न किया ।

निगोद का स्वरूप जानने की इच्छा जानकर सूरिवर प्रसन्न हुए और अत्यन्त प्रेमपूर्वक वे निगोद के स्वरूप का वर्णन करने लगे ।

वृद्ध वेष में रहे इन्द्र महाराजा अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनने लगे और बीच बीच में प्रश्न भी करने लगे ।

सूरिवर ने ब्राह्मण के वेष में रहे इन्द्र की सभी शंकाओं का प्रेम से समाधान किया...जिसे सुनकर इन्द्र महाराजा के आश्चर्य का पार न रहा ।

ब्राह्मण वेष में रहे इन्द्र ने पूछा, ``भगवन् ! मेरा आयुष्य कितना है ?''

अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगा कर आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा- ***''तुम्हारा आयुष्य दिन, मास, वर्ष, हजार वर्ष और लाख वर्ष से भी मापा नहीं जा सकता है । अरे ! तुम्हारे आयुष्य को तो लाखों-करोड़ों वर्षों से भी मापा नहीं जा सकता है...तुम्हारा आयुष्य दो सागरोपम का है । तुम सौधर्म देवलोक के इन्द्र हो...और मेरी परीक्षा के लिए आए हो ।''***

बस, तत्क्षण इन्द्र महाराजा ने ब्राह्मण वेष का त्याग कर दिया और वे अपने मूल स्वरूप में प्रकट हुए ।

आर्यरक्षित सूरिवर ने कहा, ``अन्य मुनियों के समागम के लिए तुम कुछ समय यहाँ ठहर जाओ ।''

इन्द्र महाराजा ने कहा, ***''मेरी ऋद्धि और समृद्धि को देखकर कोई साधु भूल से निदान न कर बैठे, इसके लिए मेरा यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं है ।''***

आर्यरक्षित ने कहा, ``तुम्हारे आगमन का कोई चिह्न करते जाओ ।''

तब तत्क्षण इन्द्र महाराजा ने उपाश्रय के दरवाजे की दिशा उल्टी कर दी । जो उपाश्रय पूर्व सन्मुख था, उसे पश्चिम सन्मुख कर दिया । इतना करके इन्द्र महाराजा देवलोक में चले गए ।

थोड़ी देर बाद जब शिष्य आए, तब उन्होंने उपाश्रय के मुख्य द्वार के स्थान पर दीवाल देखी । सभी को आश्चर्य हुआ ।

आर्यरक्षित ने कहा, ``द्वार इधर है ।''

सभी शिष्य अवाक् रह गए...द्वार कैसे बदल गया ?

तब आर्यरक्षित ने इन्द्र के आगमन की सब बात कही...सभी शिष्यों को आश्चर्य हुआ ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

जिनशासन की प्रभावना करते हुए आर्यरक्षित सूरिवर वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे । सूरिवर विहार करते हुए मथुरा पधारे । उस समय मथुरा में किसी नास्तिक ने वाद के लिए

ललकारा । **गोष्ठामाहिल** ने उसके साथ वाद किया और उसे पराजित कर दिया ।

आर्यरक्षित सूरिजी ने सोचा, ``अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ, अतः गच्छ का भार योग्य शिष्य को सौंप दूँ ।''

विचार करते हुए उन्होंने निर्णय लिया कि इस पद के लिए पुष्यमित्र सुयोग्य है, शिष्यों में से किसी ने फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल का नाम सूचित किया । उसी समय आचार्य भगवन्त ने तीन घड़े मँगवाए और उन्हें क्रमशः वाल, तैल और घी से भरवा दिये-फिर उन तीनों को खाली करवाया ।

(1) वाल का घड़ा संपूर्ण खाली हो गया ।

(2) तैल के घड़े में थोड़ा सा तेल चिपका रहा ।

(3) घी के घड़े में तैल से अधिक घी चिपका रहा ।

आर्यरक्षित सूरिवर ने अपने शिष्यों को कहा-

1. पुष्यमित्र के प्रति मैं वाल के घट समान हूँ अर्थात् उसके प्रति निर्लिप्त हूँ । उसने मेरे पास से अधिक ज्ञान प्राप्त किया है ।

2. फल्गुरक्षित के प्रति तैल के घट समान हूँ-अर्थात् उसके प्रति अल्प राग / लेप वाला हूँ । उसने मेरे पास से थोड़ा कम ज्ञान प्राप्त किया है ।

3. गोष्ठामाहिल के प्रति मैं घी के घट समान हूँ-उसके प्रति मैं अधिक लेप वाला हूँ । उसने मेरे पास से पुष्यमित्र व फल्गुरक्षित से कम ज्ञान प्राप्त किया है । अतः मेरे पद के लिए हर तरफ से पुष्यमित्र सुयोग्य है । ...और एक शुभ दिन उन्होंने शुभ मुहूर्त में पुष्यमित्र को अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया । वे गच्छ के भार से मुक्त हो गए ।

8. समाधिमरणम् !

नदी के नीर की भाँति जीवन का प्रवाह बह रहा है । वर्तमान काल प्रति क्षण भूतकाल बनता जा रहा है ।

जो जन्म लेता है, उसका अवश्य मरण होता है । जीवन के साथ मृत्यु की कड़ी जुड़ी हुई है ।

जन्म के साथ मृत्यु अनिवार्य है- परन्तु मृत्यु के बाद जन्म वैकल्पिक है । संयम की उत्कृष्ट साधना पूर्वक, पवित्र जीवन जीया जाय तो आत्मा भव-बन्धन से मुक्त बनकर सदा काल के लिए अजर-अमर बन सकती है ।

आर्यरक्षित सूरिवर का जीवन भव-बन्धन से मुक्ति पाने के लिए ही था । उनके साधक जीवन का प्रत्येक पल, कर्म के जाल को तोड़ने के लिए था । तप-त्याग-संयम-तितिक्षा-ज्ञान-ध्यान और स्वाध्याय आदि की साधना द्वारा उनकी आत्मा फूल की भाँति हल्की बन चुकी थी । उनके मुख पर ब्रह्मचर्य का अपूर्व तेज था । वृद्धावस्था से देह जर्जरित होने पर भी उनके मुख पर दीनता का नामोनिशान नहीं था । वे शान्त और गम्भीर थे । शासन के हित के लिए वे सतत चिन्तातुर थे ।

देह के क्षणिक सौन्दर्य को पाने के बजाय उन्हें आत्मा के अक्षय, अखण्ड सौन्दर्य को पाने की अधिक उत्कण्ठा थी ।

उन्होंने देखा, ''देह क्षीण हो चुका है...इस देह का अब कोई भरोसा नहीं है ।'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर अनशन स्वीकार लिया । उनकी आत्मा परमात्म-ध्यान में मग्न थी ।

शुभ ध्यान के बल से वे अनन्त-अनन्त कर्मों की निर्जरा कर रहे थे ।

उनके होठों पर आत्मानन्द का स्मित था...उनके मुख में परमेष्ठी भगवन्तों का सतत स्मरण था ।

और एक घड़ी...एक क्षण ऐसी आ गई...उन्होंने इस जर्जरित देह का त्याग कर सदा के लिए विदाई ले ली । उनका आतम–पंखी अनन्त गगन में उड़ गया ।

औदारिक देह का त्याग कर वे वैक्रिय देहधारी देव बन गए ।

उनके अवसान से जैन संघ को बड़ी भारी क्षति हुई...सभी की आँखों में आँसू थे...सभी के दिल में वेदना थी...सभी के मुख पर शब्द थे...ऐसे गुरुदेव अब कहाँ मिलेंगे ?

हजारों के तारक गुरुदेव आर्यरक्षित सूरिवर को चतुर्विध संघ ने अपनी भावभरी श्रद्धांजलि समर्पित की । आर्यरक्षितसूरिजी 19 वें युगप्रधान थे । वल्लभी युगप्रधान पट्टावली के आधार पर उनका आयुष्य 75 वर्ष का था । आर्यरक्षितसूरिजी का जन्म वि.सं. 52 में, दीक्षा वि.सं. 77 में, युगप्रधानपद वि.सं. 114 में और कालधर्म वि.सं. 127 में अर्थात् वीर संवत् 597 में हुआ था ।



जन्म–विक्रम संवत् 22
दीक्षा–वि.सं. 31

दीक्षा पर्याय–119 वर्ष
उम्र–128 वर्ष
स्वर्गवास–वि. संवत् 141

आ.श्री वज्रसेनसूरिजी

स्तुति

दुष्काल बारह वर्ष का, जाना श्री वज्रस्वामी से,
लख मूल्य का हांडी भरा, चावल मिले जिस दिन से,
होगा सुकाल जिनदत्त को कहे, वज्रसेनसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।18।।

वीर संवत् 492, विक्रम सं. 22 में वज्रसेनसूरिजी म. का जन्म हुआ था। वि.सं. 31 में मात्र 9 वर्ष की लघुवय में उनकी भागवती दीक्षा हुई थी। उनके दीक्षा गुरु प्रायः **सिंहगिरिसूरिजी** थे। वे दीक्षा में वज्रस्वामीजी से भी बड़े थे फिर भी वे वज्रस्वामी के पट्टधर बने थे। 36 वर्ष गच्छनायक रहे।

उनकी कुल उम्र 128 वर्ष की थी और उनका दीक्षा-पर्याय 119 वर्ष का था।

उनके संयम जीवन में बारह-बारह वर्ष के दो बार भयंकर दुष्काल पड़े थे।

बारह वर्ष के दुष्काल समय आर्य वज्रस्वामीजी ने दक्षिण में रथावर्तगिरि पर्वत पर जाकर अनशन किया था, उस समय आचार्य वज्रसेनसूरि भी साथ में थे, उस समय वज्रस्वामी ने उन्हें कहा, `बारह वर्ष के दुष्काल की समाप्ति के बाद तुमसे ही गणधर व वाचक वंश की परंपरा सजीवन होगी, अतः तुम्हें अनशन करने की आवश्यकता नहीं है।

वज्रसेनसूरिजी ने वज्रस्वामी की आज्ञा स्वीकार की, और उन्होंने अनशन नहीं किया।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

सोपारक नगर में जिनदत्त श्रेष्ठी रहता था, उसकी पत्नी का नाम ईश्वरी था। उनके चार पुत्र थे नागेन्द्र, चंद्र, निवृत्ति तथा विद्याधर।

उस समय भारत भर में 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा । करोड़ों की संपत्ति होने से जिनदत्त शेठ के 5-7 वर्ष तो आराम से निकल गए, परंतु उसके बाद स्थिति बिगड़ने लगी । अनाज के भाव खूब बढ गए । लोग दाने-दाने के लिए तरसने लगे ।

एक मुट्ठी धान्य के लिए भी लड़ाई हो जाती । धीरे धीरे दुष्काल के 12 वर्ष पूर्ण होने आए । जिनदत्त सेठने 1 लाख सोना मुहर देकर एक हांड़ी चावल खरीदे ।

सेठ ने सोचा, `धन देने पर भी धान्य नहीं मिल रहा है और पेट की भूख तो रोज अनाज की मांग करती है । लोग बूरी तरह से तड़प तड़प कर मर रहे है । ऐसी परिस्थिति में लंबा जीकर अति परेशान होना, इसके बजाय तो क्यों न समाधिपूर्वक मौत को ही भेंट ले । उन्होंने अपने विचार अपने परिवार के सामने रखें ।

सभी भूख से खूब खूब परेशान थे, अतः सभी को यह प्रस्ताव पसंद आ गया ।'

सेठ ने पके हुए चावल की हांड़ी में जहर मिला दिया, सेठ खाने की तैयारी कर रहे थे, इसी बीच द्वार पर `धर्मलाभ' की ध्वनि सुनाई दी ।

सेठ ने द्वार खोला तो उसे सामने ही प्रौढ उम्र के जैनाचार्य वज्रसेनसूरिजी के दर्शन हुए ।

सेठ के आश्चर्य का पार न रहा । आचार्य भगवंत ने `धर्मलाभ' की आशीष दी !

सेठ ने आंखों में आंसू लाते हुए कहा, `दुष्काल से हम परेशान हो गए है, और अब तो एक लाख सोना मोहर देने पर एक हांड़ी धान्य नहीं मिल रहा हैं, अतः इस दुःख से मुक्ति पाने के लिए हम विषमय अन्न खाकर आत्महत्या करना चाहते है ।'

सेठ की इस बात को सुनकर पूज्य आचार्य भगवंत ने कहा, `भाग्यशाली ! तुम्हें आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि आर्य वज्रस्वामी ने मुझे कहा था, जिस दिन एक लाख सोना मोहर से एक हांड़ी धान्य मिलेगा, उसके दूसरे दिन ही अनाज का सुकाल हो जाएगा, अतः तुम्हें आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं है ।' तुम गुरुदेव के वचन पर पूर्ण विश्वास रखों ।

शेठ ने कहा, `गुरुदेव के वचन पर शंका को कोई स्थान ही नहीं है । कल यदि सुकाल हो गया तो हम आपके पास दीक्षा ले लेंगे ।

गुरुदेव के वचन से सेठ ने एक दिन ऐसे ही प्रसार किया...और दूसरे दिन तो समुद्र तट पर अनाज से भरे अनेक जहाज आकर खड़े हो गए ।

सोपारक नगर में अनाज के भंडार भर गए । फिर कुछ ही दिनों के बाद सेठ ने अपने चारों पुत्रों के साथ आर्य वज्रसेनसूरिजी म. के पास भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

बारह वर्ष के इस दुष्काल में अनेक मुनियों का कालधर्म हो गया था । कई गण, कुल और वाचक वंश समाप्त हो चूके थें ।

अब सुकाल के साथ ही श्रमण संघ ने आगम रक्षा का प्रश्न हाथ में लिया ।

तीसरी आगम वाचना

दशपुरनगर (मंदसोर) में प्रभुवीर के शासन की यह तीसरी आगम वाचना निश्चित हुई। समस्त श्रमण संघ मंदसोर में इकट्ठा हुआ। इस वाचना में गणाचार्य वज्रसेनसूरिजी म. थे। वाचनाचार्य आर्य नंदिलसूरि थे। 9½ पूर्व के धारक आर्यरक्षितसूरिजी भी इस वाचना में पधारे थे। उन्होंने वज्रस्वामी के पास ही 9½ पूर्वों का अभ्यास किया था।

आर्य रक्षितसूरिजी ने मनोमन जिनागमों को चार अनुयोगों में विभक्त करने का निश्चय किया, इस हेतु श्रमण संघ की सम्मति के लिए उन्होंने अपना अभिप्राय बताते हुए कहा, `वीर प्रभु की वाणी स्वरूप ये आगम अनंत अर्थों से भरे हुए हैं। उन सूत्रों में चारों अनुयोग रहे हुए है। परंतु काल के प्रभाव से अब एक सूत्र में एक ही अनुयोग रखना चाहता हूँ।

दुर्बलिका पुष्यमित्र जैसे पूर्वधर मुनि भी दुबले पतले है और वे भी आगमों को एक-एक अनुयोग रखने की विनंति करते है।

एक ही सूत्र में चारों अनुयोग का आग्रह रखेंगे तो सूत्रों की रक्षा कठिन हो जाएगी।

सभी पूर्वधर भी वयोवृद्ध हो चूके हैं। वज्रसेनसूरि की उम्र 100 वर्ष की हैं। आर्यनंदिल भी वृद्ध हैं। मेरी भी उम्र 80 वर्ष की है। 12 वर्ष के दुष्काल में नई दीक्षाएं नहीं हुई है। नागेन्द्र, चंद्र आदि भी छोटी उम्र के है। अतः सभी अनुयोग का आग्रह रखेंगे तो उतना अभ्यास नहीं हो सकेगा।'

पू. आर्यरक्षितसूरि की बात सबको पसंद पड़ी। उसके बाद सभी सूत्रों के मुख्य अर्थ को प्रधान कर गौण अर्थों को गौणकर सभी आगमों को चार अनुयोगों में बांट दिया गया।

(1) द्रव्यानुयोग में दृष्टिवाद।

(2) चरण करणानुयोग में 11 अंग, छेद सूत्र, उपांग, मूलसूत्र आदि।

(3) गणितानुयोग में सूर्य प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति आदि।

(4) धर्म कथानुयोग में उत्तराध्ययन, ऋषिभाषित ज्ञाता धर्म कथा, उपासक दशांग आदि।

आज भी इसी अनुयोगों के आधार पर आगमों का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है।

सातवां निह्नव-गोष्ठामाहिल-12

भगवान महावीर के निर्वाण से 584 वर्ष बाद गोष्ठामाहिल निह्नव हुआ । देवेंन्द्र से वंदनीय ऐसे **आर्यरक्षितसूरिजी** के मुख्य चार शिष्य थे–

1) दुर्बलिका पुष्यमित्र 2) फल्गुरक्षित और 3) गोष्ठामाहिल 4) विंध्य ।

एक बार मथुर नगरी में कोई नास्तिक आया । **''आत्मा नाम का कोई पदार्थ ही नहीं है ।''** इस प्रकार वह अपने उपदेश द्वारा लोगों को भ्रमित करने लगा ।

यद्यपि मथुरा में अन्य साधु समुदाय तो था, परंतु उस नास्तिक से वाद करने में कोई समर्थ नहीं था, अतः मथुरा के संघ ने कुछ साधुओं को **पू. आर्यरक्षितसूरिजी** के पास भेजा ।

उन साधुओं ने **आर्यरक्षितसूरिजी** को विज्ञप्ति करते हुए कहा–''भगवन् ! एक नास्तिक मथुरा में आकर लोगों को सन्मार्ग से भ्रष्ट कर रहा है, अतः उसे वाद में कोई जीत सके, ऐसे अपने शिष्य को वहाँ भेजें ।''

अपनी वृद्धावस्था के कारण **आर्यरक्षितसूरिजी** मथुरा जाने में असमर्थ थे । अतः उन्होंने वादलब्धि के धारक गोष्ठामाहिल को मथुरा भेजा ।

मथुरा आकर गोष्ठामाहिल ने अपनी ज्ञान और वाद प्रतिभा के द्वारा उस नास्तिक को पराजित कर दिया । गोष्ठामाहिल अपने गुरुदेव के पास आना चाहते थे, परंतु मथुरा संघ के आग्रह से वे वहीं पर चातुर्मास के लिए रुक गए ।

इधर अपने आयुष्य के अंतकाल को नजदीक जानकर **आर्यरक्षितसूरिजी** ने सोचा, **'योग्य शिष्य को मुझे आचार्य पद देना चाहिए । अयोग्य को आचार्य पद देने में दाता को भी बड़ा दोष लगता है । मेरे शिष्यों में दुर्बलिका पुष्यमित्र अधिक योग्य है ।'**

पर स्वजन होने के कारण फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल ही मान्य है ।

स्वजन संबंधी होने के कारण वे फल्गुरक्षित अथवा गोष्ठामाहिल की आचार्य पदवी की इच्छा करते हैं, परंतु वे इन तीनों में रहे भेद की योग्यता को पहिचानते नहीं हैं ।

उन्होंने अपने सभी साधुओं को इकट्ठा किया और वाल, घी और तेल का दृष्टांत सुनाते हुए बोले, **'वाल से भरे हुए घड़े को उल्टा किया जाय तो शीघ्र ही उसमें रहे सभी वाल नीचे गिर जाएंगे ।'** दुर्बलिका पुष्यमित्र को सूत्रदान के विषय में मैं वाल के घड़े के समान हूँ अर्थात् उसने मेरा सब ज्ञान प्राप्त किया है ।

फिर बोले, तेल से भरे घड़े को उल्टा किया जाय तो अधिकांश तेल खाली हो जाएगा, परंतु थोड़ा तेल घड़े में रह जाएगा । फल्गुरक्षित को सूत्र देने में मैं तेल के घड़े के समान रहा हूँ ।

परंतु घी के घड़े को उल्टा किया जाय तो बहुतसा घी घड़े में रह जाता है । उसी प्रकार गोष्ठामाहिल को श्रुत देने में मैं घी के घड़े के समान हूँ ।

अतः श्रुत पारगामी दुर्बलिका पुष्यमित्र को मैं आचार्य पद पर स्थापित करता हूँ ।

इतने समय तक मेरे आदेश को तुम सब ने मान्य किया । अब इसके वचन को मान्य करना ।

आज तक तुमने कभी मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तो भी मैंने कभी गुस्सा नहीं किया । परन्तु यह अपनी अवज्ञा को सहन नहीं कर पाएगा अतः सभी इसकी आज्ञा का अवश्य पालन करना ।'

सभी शिष्यों ने गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की ।

गुरुदेव ने पुष्यमित्र को कहा, `गच्छ का भार तुम्हारे कंधों पर स्थापित करता हूँ, तुम इसे बराबर वहन करना ।'

फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल के साथ जैसा मैंने व्यवहार किया, तुम भी उनके साथ अच्छा व्यवहार करना । इतना कहकर अपने पद पर पुष्यमित्र को स्थापित कर अनशन कर स्वर्ग में चले गए ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

श्री आर्यरक्षितसूरिजी के स्वर्गवास के समाचार सुनकर गोष्ठामाहिल शीघ्र ही दशपुर आ गया ।

आते ही उसने साधुओं को पूछा–``आचार्य पद पर किसे प्रतिष्ठित किया ?''

शिष्यों ने गुरुदेव के कहे गए वाल आदि के कुंभ के दृष्टांत देकर कहा, ``गुरुदेव ने अपने पट्ट पर पुष्यमित्र को स्थापित किया है ।''

इस बात को सुनकर ईर्ष्याग्रस्त बना गोष्ठामाहिल, शिष्यों के आग्रह करने पर भी उपाश्रय से बाहर निकल गया और पास ही के उपाश्रय में जाकर ठहरा ।

अन्य उपाश्रय में रहकर वह पुष्यमित्र के विरुद्ध शिष्यों को भ्रमित करने की कोशिश करने लगा । परंतु जब कोई शिष्य भ्रमित नहीं हुआ । तब वह पुष्यमित्र के छिद्र देखने लगा ।

एक बार पुष्यमित्र आचार्य अपने शिष्यों को अर्थ पोरिसी में वाचना दे रहे थे । किसी ने गोष्ठामाहिल को भी वाचना में पधारने के लिए आमंत्रण दिया तो अभिमान से बोले, **'तुम ही उनके पास सीखो ।'**

एक बार पुष्यमित्र के विंध्य नाम के शिष्य मुनि ने तीन प्रकार के कर्म बंध की इस प्रकार व्याख्या की कि जीव तीन प्रकार से कर्मबंध करता है–

1) बद्ध 2) स्पृष्ट 3) निकाचित

1. धागे से जुड़ी हुई सुइयों के समान बद्ध कर्म है ।

2. जंग लगी सुइयों के समान स्पृष्ट कर्म है ।

3. ताप में कूटकर एक की गई सुइयों के समान निकाचित कर्म है ।

रागादि परिणाम से आत्मा अपने समस्त प्रदेशों द्वारा कर्म का बंध करती है ।

परिणाम की वृद्धि से उसी कर्म को स्पृष्टबंध करती है और संक्लिष्ट परिणाम से उसी को निकाचित करती है ।

1) आत्मनिंदा से बद्ध कर्म का नाश होता है ।

2) प्रायश्चित्त आदि से स्पृष्ट कर्म का नाश होता है ।

3) निकाचित कर्म तो उसकी सजा को भोगने से ही नष्ट होते हैं ।

विंध्यमुनि की इन बातों को सुनकर गोष्ठामाहिल ने कहा, **''तुम ऐसा मत बोलो, अपने गुरूदेव ने ऐसा नहीं कहा है ।''**

''यदि आत्मा के साथ इस प्रकार का बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित बंध होता हो तो आत्मा कर्म से कभी मुक्त नहीं हो सकती ।''

विंध्य ने पूछा, ''तो फिर जीव और कर्म का संबंध किस प्रकार का होता है ।''

गोष्ठामाहिल ने कहा, ''साँप का केंचुली के साथ जैसा संबंध होता है, वैसा ही आत्मा और कर्म का सम्बन्ध होता है, लोह-अग्नि की भाँति आत्मा और कर्म का तादात्म्य भाव संबंध नहीं होता है । विंध्य ने जाकर अपने गुरूदेव को सारी बात कही ।

तब उन्होंने कहा, **''मैंने जो पहले कहा, वह सत्य है । गोष्ठामाहिल की बात सत्य नहीं है ।''**

जीव अपनी अवगाहना के आकाश प्रदेशों में रहे कर्मदलिकों को ही ग्रहण करता है । अन्य क्षेत्र में रहे कर्मों को नहीं । इस कारण लोह-अग्नि न्याय की भाँति जीव और कर्म का बंध होता है ।

यदि आत्मा अन्य प्रदेश में रहे कर्मों को ही ग्रहण करती तो सर्प और केंचुली की तरह आत्मा और कर्म का बंध होता, परंतु वैसा तो होता नहीं है ।

स्वर्ण-मिट्टी का एकमेक संबंध होने पर भी वे दोनों अलग हो सकते हैं । इसी प्रकार आत्मा और कर्म का तादात्म्य संबंध होने पर भी वह संबंध अलग हो सकता है ।

गुरूदेव के इन वचनों को सुनकर विंध्य की शंकाओं का समाधान हो गया । उसने जाकर गोष्ठामाहिल से बात की, परंतु उसने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा ।

◆ एक बार विंध्य मुनि नौवें प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व में आए प्रत्याख्यान के बारे में बोले, **''मुनियों को यावज्जीव सर्व सावद्य पापों का त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण होता है ।''** इसे सुनकर गोष्ठामाहिल ने कहा, सभी पच्चक्खाण यावज्जीव आदि अवधि बिना ही करने चाहिए । अवधि सहित करने से **'आगे हिंसा करुंगा'** इस प्रकार आशंसा दोष प्राप्त होता है । अतः पच्चक्खाण करते समय कालमर्यादा नहीं होनी चाहिए ।''

गोष्ठामाहिल की यह बात सुनकर विंध्यमुनि ने प्रश्न किया, ``आशंसा का दोष कालमर्यादा से आता है या वांछा करने से ?

यदि कालमर्यादा के कारण वांछादोष लगता हो तब तो पोरिसी आदि में भी यह दोष आ जाएगा ।

पोरिसी आदि में कालमान नहीं करने की बात करोगे, तब तो दीक्षा के दिन से ही अनशन कर लेना पड़ेगा ।

तीर्थंकर परमात्मा ने ही दश प्रकार के कालमान आदि अद्धा पच्चक्खाण बताए हैं ।

काल-मर्यादा बिना पच्चक्खाण करने से तो सभी भविष्यकाल का पच्चक्खाण हो जाएगा, परिणाम स्वरूप आयुष्य क्षय के बाद देवगति में जाने पर वहाँ सावद्य कर्म का सेवन होने से व्रतभंग का प्रसंग आ जाएगा ।''

अतः काल पच्चक्खाण में कालमर्यादा रखने में कोई दोष नहीं है ।

विंध्य मुनि के समझाने पर भी गोष्ठामाहिल ने उनकी बात स्वीकार नहीं की, तब अन्य गच्छ के स्थविरों ने भी गोष्ठामाहिल को समझाने की कोशिश की, फिर भी उसने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा ।

'क्षय रोग की भाँति कदाग्रह का रोग भी असाध्य ही होता है ।'

गोष्ठामाहिल ने कहा, **'तीर्थंकरों ने भी मेरी तरह ही प्ररूपणा की है ।'**

समाधान के लिए श्री संघ ने शासनदेवी को बुलाने के लिए कायोत्सर्ग किया । तभी शासनदेवी वहाँ हाजिर हो गई ।

संघ ने देवी को कहा, ``तुम महाविदेह में जाकर तीर्थंकर परमात्मा को पूछकर आओ कि संघ की बात सत्य है या गोष्ठामाहिल की ?''

देवी ने कहा, **``बीच मार्ग में विघ्न न आए, इसके लिए मेरे आगमन तक संघ कायोत्सर्ग ध्यान में रहे ।''**

संघ कायोत्सर्ग ध्यान में रहा । देवी महाविदेह में जाकर सीमंधर स्वामी को पूछकर वापस आई और बोली, **``संघ की बात सत्य है । गोष्ठामाहिल की बात झूठी है, यह सातवाँ निह्नव है ।''**

देवी की बात सुनकर भी गोष्ठामाहिल ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा ।

उसने कहा, ``यह देवी तो अल्पऋद्धिवाली है । महाविदेह में जाने की इसमें शक्ति नहीं है । अतः देवी ने जो कहा वह जिनभाषित नहीं है ।''

पुष्यमित्र ने गोष्ठामाहिल को कहा, ``प्रभु के वचन पर तुम श्रद्धा करो अन्यथा तुम्हें संघ से बाहर किया जाएगा ।''

गोष्ठामाहिल ने पुष्यमित्र की बात नहीं मानी, आखिर उन्हें संघ से बाहर किया गया ।



दीक्षा–वि.सं. 106
दीक्षा–उम्र 16 वर्ष
संयम पर्याय–58 वर्ष

उम्र–74 वर्ष
स्वर्गवास–वि.सं. 180

आ.श्री चन्द्रसूरिजी

स्तुति

परिवार पुत्रचार संग, संयम धरे जिनदत्तभी,
नौ से अधिक पूर्व पढ़े, लघुपुत्र श्री चन्द्रसूरि,
करे संघ की सम्मेलना और चान्द्रकुल की स्थापना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।19।।

कोंकण देश में सोपारक नगर में जितशत्रु राजा की महारानी धारिणी का साम्राज्य था। उसी नगर में जिनदत्त नाम का श्रेष्ठी रहता था, उसकी पत्नी का नाम ईश्वरी था। ईश्वरी ने क्रमशः नागेन्द्र, चंद्र, निवृत्ति और विद्याधर नाम के चार पुत्रों को जन्म दिया।

चंद्र जब चार वर्ष का था, तब भारत में बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पडा। इस दुष्काल से सभी की हालत खराब हो गई थी। दुःख-दर्दभरी भयंकर जिंदगी जीने के बजाय सभी मौत को भेंटना चाह रहे थे, तभी **आचार्य वज्रसेनसूरि** से प्रतिबोध पाकर चारों भाइयों ने अपने माता-पिता सह दीक्षा स्वीकार की। वि.सं. 122 में दीक्षा के समय चन्द्र की उम्र 16 वर्ष की थी।

दीक्षा के बाद चारों भाइयों ने आगमों का गहन अध्ययन किया, जिसके फल स्वरूप वि.सं. 136 में चारों भाइयों के नाम से श्रमणों की चार शाखाएं निकली, जिनके नाम निवृत्ति कुल, नागेन्द्र कुल, विद्याधर कुल और चांद्रकुल रखा गया।

आ. वज्रसेनसूरिजी ने चंद्रमुनि को योग्य जानकर अपना पट्टधर घोषित किया। वि.सं. 150 में **वज्रसेनसूरि** के कालधर्म के बाद में विद्यागुरु **यक्षदेवसूरि ने चंद्रमुनि** को आचार्य पद प्रदान किया। 12 वर्ष के भयंकर दुष्काल से श्रमण संघ बिखर चूका था। अतः जिनशासन के उज्ज्वल भविष्य के लिए श्रमण संम्मेलन की आवश्यकता थी।

4 आचार्य, 7 उपाध्याय, 12 वाचनाचार्य, 2 प्रवर्तक, 2 महत्तर, 12 प्रवर्तिनी, 500 साधु व 700 साध्वियों का एक संमेलन हुआ ।

उस संमेलन में उपकेश गच्छ के यक्षदेवसूरिजी ने घोषित किया कि मैं अपने शिष्य परिवार के साथ चांद्रकुल में प्रवेश करता हूँ । उनकी घोषणा के बाद आचार्य कक्कसूरि, उदयवर्धनसूरि ने भी चांद्रकुल में प्रवेश किया । अन्य मुनियों ने नागेन्द्र, निवृत्ति व विद्याधर कुल में प्रवेश कर श्रमण संगठन को मजबूत किया ।

नागेन्द्रकुल की परंपरा में अनेक प्रभावक आचार्य हुए । वल्लभीपुर के वाचनाचार्य नागार्जुन, पउमरियं के रचयिता आ. विमलसूरि, वनराज चावडा के गुरु शीलगुणसूरि, वस्तुपाल, तेजपाल के गुरु विजयसेनसूरि आदि हुए ।

चांद्रकुल में वादिवेताल शांतिसूरि, नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि आदि हुए । वर्तमान में भी जो साधु-साध्वी हैं वे सभी चांद्रकुल के है, इसलिए दीक्षा, बडी दीक्षा आदि के समय आज भी कोटि गण, वयरी शाखा, चांद्रकुल आदि बोला जाता है ।

निवृत्ति कुल में आ. गर्गर्षि, सूराचार्य, सिद्धर्षि गणी आदि पैदा हुए ।

विद्याधर कुल में पादलिप्तसूरि, आ. नागहस्ती, कालकाचार्य, सिद्धसेनदिवाकर, हरिभद्रसूरि आदि हुए ।

आचार्य चंद्रसूरि का जन्म वि.सं. 106 में हुआ, उनकी भागवती दीक्षा वि.सं. 122 में, आचार्य पदवी वि.सं. 136 में, युगप्रधान पद वि.सं. 150 में तथा कालधर्म वि.सं. 180 में हुआ था ।

दिगंबर-मत उत्पत्ति आठवाँ निह्नव-शिवभूति-13

शिवभूति के पराक्रम से रथवीर के राजा खूब प्रसन्न थे । खुश होकर राजा ने उसे वर मांगने के लिए कहा ।

वरदान मांगते हुए उसने कहा, **''नगर में मैं इच्छा पूर्वक प्रवृत्ति कर सकूँ, ऐसी मुक्त स्वतंत्रता चाहिए ।''**

राजा ने 'हाँ' भर दी ।

बस, शिवभूति को पूरी स्वतंत्रता मिल गई । वह स्वच्छंदी होकर नगर में जहाँ-तहाँ घूमने लगा । रात-दिन जुआरियों के साथ जुआँ खेलने लगा । वेश्याओं के साथ वेश्यागमन करने लगा । रात को भी वह खूब देरी से घर लौटने लगा । उसकी पत्नी भी परेशान होने लगी । वह जब तक घर नहीं लौटता, तब तक उसकी पत्नी रात्रि में भोजन भी नहीं करती ।

रोज भूखी और रात्रि में पूरी निद्रा नहीं लेने वाली एक बार उसने अपनी सास को कहा, ''आपका पुत्र रोज देरी से घर लौटता है, अतः मैं खूब परेशान हूँ ।''

सास ने कहा-''बेटी ! आज तू जल्दी सो जाना, रात्रि में मैं सब संभाल लूंगी ।'' घर के द्वार को बंद कर माँ द्वार पर ही बैठी रही । देर रात में जब शिवभूति अपने घर लौटा, तब माँ ने कहा, ''अभी यह दरवाजा नहीं खुलेगा, जहाँ दरवाजा खुला हो, वहाँ चला जा ।''

माँ की यह बात सुनकर अभिमानी ऐसे शिवभूति ने सोचा, ''माँ ने मेरा अपमान किया है तो मैं अन्यत्र चला जाता हूँ ।'' इस प्रकार विचार कर वहाँ से निकल पड़ा ।

नगर में घूमते हुए उसने भाग्ययोग से उपाश्रय का द्वार खुला देखा । उसने उपाश्रय में प्रवेश किया । वहाँ कृष्ण आचार्य बिराजमान थे ।

आचार्य भगवंत को नमस्कार कर बोला, **'मुझे दीक्षा दो ।'**

परीक्षा किए बिना दीक्षा कैसे दी जाय ? इस प्रकार विचारकर आचार्य भगवंत ने उसे रात में दीक्षा नहीं दी तो अभिमान से उसने स्वयं ही केशलोच कर लिया ।

आखिर सुबह होने पर गुरूदेव ने उसे रजोहरण आदि साधु-वेष प्रदान कर दिया ।

नगर में इस बात का पता चलने पर नगर का राजा वहाँ आया और बोला-''मुझे पूछे बिना दीक्षा क्यों ली ?''

उसने कहा, **'कुछ भी करने के लिए मैंने पहले ही आपसे अनुमति ले ली है ।'**

अभिमानी होने से उसने राजा को भी चुप कर दिया । राजा चला गया ।

कई दिनों तक अन्यत्र विहार कर अपने गुरूदेव के साथ शिवभूति वापस अपने नगर में आया ।

स्नेह से राजा, शिवभूति को अपने महल में ले गया और अति आग्रह कर राजा ने शिवभूति मुनि को मूल्यवान रत्नकंबल भेंट दिया ।

आचार्य भगवंत को रत्नकंबल का पता चला तो उन्होंने कहा, **''इतना मूल्यवान वस्त्र हमें ग्रहण नहीं करना चाहिए ।''**

आचार्य भगवंत के समझाने पर भी उसने वह रत्नकंबल नहीं लौटाया । रत्नकंबल को छिपाकर वह अपने पास रखने लगा । आचार्य भगवंत ने सोचा, **'रत्नकंबल पर शिवभूति की मूर्च्छा ठीक नहीं है ।'** एक बार जब शिवभूति बाहर गया हुआ था, तब गुरुदेव ने उस रत्नकंबल को फाड़ दिया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर सब साधुओं में बाँट दिये । शिवभूति को इस बात का पता चला तो वह अपनी भूल को सुधारने के बजाय वह गुरुदेव के छिद्र देखने लगा ।'

एक बार आचार्य भगवंत कृष्णर्षि अपनी वाचना में **'जिनकल्प'** का वर्णन कर रहे थे । उन्होंने कहा, ''जिनकल्पी साधु भी दो प्रकार के होते हैं, कुछ हाथ में भोजन करते हैं और कुछ पात्र में । वे दोनों भी दो प्रकार के होते हैं, कुछ वस्त्रधारी और कुछ नग्न !''

शिवभूति ने कहा, ''अभी साधु जिनकल्प का स्वीकार क्यों नहीं करते हैं ?''

गुरूदेव ने कहा, **'भरत क्षेत्र में भगवान महावीर के शासन में जंबूस्वामी के निर्वाण के बाद जिनकल्प का विच्छेद हो गया है, अतः उसका स्वीकार संभव नहीं है ।'**

अभिमान में आकर शिवभूति ने कहा, **'अल्प सत्त्वशाली प्राणियों के लिए उसका निषेध हो सकता है, मैं तो महासत्त्वशाली हूँ और मैं अब भी करना चाहता हूँ ! मोक्ष के अर्थी को तो सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग करना चाहिए, अतः मैं वस्त्र-पात्र का भी त्याग करता हूँ ।'**

आचार्य भगवंत ने उसे समझाते हुए कहा, **'वस्त्र-पात्र तो धर्म के उपकरण-साधन हैं'** अतः वे परिग्रह नहीं कहलाते हैं । उनके रक्षण में कोई दोष नहीं है । लोभ से या मूर्च्छा से वस्त्रादि रखे तो नुकसान है, संयमपालन के लिए रखे तो कोई नुकसान नहीं है ।

वस्त्र-पात्र आदि तो धर्म में सहायक है, बैठने-उठने में प्रमार्जन के लिए रजोहरण की आवश्यकता रहती है । संपातिम तथा वायुकाय आदि जीवों के रक्षण के लिए मुखवस्त्रिका कंबल भी जरूरी है ।

ठंडी-गर्मी आदि के उपद्रव में होने वाले दुर्ध्यान से बचने के लिए वस्त्र भी धर्म के उपकरण रूप है ।

निर्दोष भिक्षा आदि के ग्रहण के लिए पात्र की भी अपेक्षा रहती है, अतः वस्त्र-पात्र में दोष नहीं है ।

जिनकल्प के स्वीकार के लिए पहला संघयण और नौ पूर्वों का ज्ञान, करपात्र लब्धि, छह मास तक भूख प्यास सहन करने की शक्ति भी चाहिए, जो अभी नहीं है, अतः उसके स्वीकार का आग्रह मत करो।

इस प्रकार गुरूदेव के समझाने पर भी अभिमान के कारण मन में उठने वाले क्रोध से उसने वस्त्र-पात्रादि का सर्वथा त्याग कर दिया और संपूर्ण नग्न हो गया।

शिवभूति ने अपना बोटिक पंथ चलाया। दिगंबर आचार्य देवसेन के अनुसार वीर संवत् 606 में तथा श्वेतांबरीय उल्लेख के अनुसार यह घटना वीर संवत् 609 में बनी है।

शिवभूति के साथ उसकी बहन साध्वी भी निर्वस्त्र हो गई, परंतु निर्वस्त्र स्त्री जुगुप्सनीय लगती है और उसका शील भी सुरक्षित नहीं रह सकता, अतः उसने बहन को वस्त्र धारण की छूट दी, परंतु उसने पहले ही सिद्धांत स्थापित कर दिया था कि शरीर पर एक भी वस्त्र हो तब तक केवल ज्ञान तो दूर रहो साधुता भी नहीं आ सकती, अतः उसने स्त्री के लिए स्त्री मुक्ति और स्त्री-साध्वी का निषेध कर दिया।

केवली तथा केवली तीर्थंकर किसी के घर भिक्षा के लिए जाए या खड़े खड़े आहार ले, यह संभव नहीं है और कोई आहार लाकर भोजन कराए तो पात्र की जरूरत पड़े अतः उसने केवली के कवलाहार का भी निषेध किया।

स्त्रीमुक्ति और केवली भुक्ति (केवली आहार) ये दो मुख्य मतभेद हुए।

फिर अनेक भेद खड़े हुए।

इस अवसर्पिणी में मरुदेवी माता सर्व प्रथम मोक्ष में गई, जो वस्त्रधारी थी, अतः यह बात माने तो स्त्री मुक्ति व वस्त्र का भी स्वीकार करना पड़े, अतः उसने मरुदेवा के मोक्ष का भी निषेध किया।

मल्लिनाथ प्रभु स्त्री के रूप में पैदा हुए थे, अतः इस बात के स्वीकार में सिद्धांत भंग होने से उसने मल्लिनाथ को (मल्लनाथ) पुरुष के रूप में स्वीकार किया।

आजीवक, त्रैराशिक, अबद्धिक और बोटिक मुनियों ने स्वतंत्र मत की रचनाकर वीर संवत् 609 में दिगंबर मत चालू किया, उसके बाद जैन संघ श्वेतांबर और दिगंबर दो भागों में विभक्त हो गया।

दिगंबर मत में आजीवक आदि चारों मान्यताओं का मिश्रण है।

आजीवक मत को मान्य (1) शीतोदक ग्रहण, (2) सचित्त स्पर्शवाला भोजन ग्रहण (3) नग्नता और (4) स्त्री का स्पर्श (मस्तक पर मोरपींछी से आशीर्वाद रूप) आज भी दिगंबर मुनियों में देखा जाता है।

–अबद्धिक मत के अनुसार दिगंबर मत में छह आवश्यक में पच्चक्खाण के बदले स्वाध्याय तथा कृतिकर्म है।

–पुण्याश्रावक कथा कोष के कर्ता पद्मनंदि भी स्वयं को त्रैराशिक मानते हैं ।

–दिगंबर मत प्रवर्तक शिवभूति के शिवगुप्त, शिवदत्त, भूतपति और भूतबलि ऐसे चार नाम भी प्रसिद्ध है । दिगंबर ग्रंथों में ये विविध नाम मिलते है ।

–भूतबलि ने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन षट्खंड आगम की रचना की । जीव स्थान, क्षुल्लक बंध, बंध स्वामित्व, भावखंड, वेदनाखंड और महाबंध ये छह षट्खंड कहलाते है ।

–अधिकांशतः गिरनार में रहनेवाले आचार्य धरसेनसूरि आग्रायणीय नाम के दूसरे पूर्व की पांचवी वस्तु के चौथे महाप्राभृत के ज्ञाता थे–उनके पास भूतबलि ने ज्ञान प्राप्तकर वे दक्षिण भारत की मथुरा (आज का मदुराई) में आकर षट् खंडागम की रचना ज्येष्ठ सुदी पंचमी को की थी ।

–भूतबलि (शिवभूति) के मुख्य कोडिन्न और कोट्टवीर नाम के दो समर्थ शिष्य थे ।

कोडिन्न की जन्मभूमि कुंडपुर थी । उनका संस्कृत नाम कौंड कौंडिन्य और कौंडकन्य भी था, जो कालांतर में 'कुंदकुंद' के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन्ही के दूसरे नाम पद्मनंदि, एलाचार्य, वक्रग्रीव और गृद्धपिच्छ थे ।

दिगंबरों में कुंदकुंद नाम ज्यादा प्रसिद्ध है । उन्होंने समयसार, षट् प्राभृत आदि ग्रंथ रचे है । विक्रम की दसवीं सदी में उस पर टीकाएं रची गई है ।

–कोट्टवीर के दूसरे नाम कोटि और शिवकोटि भी है । उन्होंने 'भगवती-आराधना' रची है, उसमें आचारांग सूत्र, जीत कल्प, बृहत्कल्प भाष्य, व्यवहार व निर्युक्ति के साक्षीपाठ दिए है ।

मत भेद

श्वेतांबर और दिगंबर के मतभेद के मूल में अंबर अर्थात् वस्त्र है ।

वस्त्र को परिग्रह मानकर दिगंबरों ने वस्त्र का त्याग किया । फिर 'स्त्री नग्न नहीं रह सकती हैं और वस्त्र धारण करे तो साध्वी नहीं, अतः स्त्री के चारित्र व मोक्ष का निषेध किया ।'

– वस्त्र बिना पात्र नहीं रख सकते और पात्र बिना आहार ला नहीं सकते, आहार लाए बिना तीर्थंकर आहार नहीं कर सकते अतः दिगंबरों ने केवली के आहार का ही सर्वथा निषेध कर दिया ।

प्रारंभ में स्त्री मुक्ति और केवली भुक्ति के मतभेद के बाद कई मतभेद खड़े हुए ।

–दिगंबरों ने नग्नता की रक्षा के लिए वस्त्र, पात्र, उपकरण, उपधि, केवली आहार, तीर्थंकरों के द्रव्य शरीर, द्रव्य वचन, द्रव्य मन, साक्षरी वाणी, क्षुद्र मुक्ति, गृहस्थ मुक्ति, अन्यलिंग मुक्ति, स्त्री मुक्ति, स्त्री-दीक्षा मल्लीनाथ के स्त्री तीर्थंकर, तीर्थंकरों की पुत्री आदि अनेक बातों का निषेध किया ।

–पू. महोपाध्याय यशोविजयजी म. ने 84 दिक्पटबोल की गुजराती भाषा में रचनाकर श्वेतांबर दिगंबर के बीच 84 मतभेदों का वर्णनकर अपने अनेक ग्रंथों में अनेक तर्क-युक्ति व आगम प्रमाण देकर दिगंबर मत की गलत मान्यताओं का खंड़न भी किया है ।

–जैन आगमों में स्पष्ट उल्लेख है कि सभी तीर्थंकर वस्त्रधारी अर्थात् देवदूष्यधारी थे। मात्र पहले व अंतिम तीर्थंकर बाद में वस्त्र रहित हुए थे। प्राचीनकाल में जिन प्रतिमाएं दोनों प्रकार की बनती थीं। नग्नता-अनग्नता की कोई निशानी नहीं थी। उनकी अष्ट प्रकारी व सत्रह प्रकारी पूजा होती थी। इसके सिवाय चरण, चरण चिह्न तथा असद्भूत स्थापनाओं की भी पूजा होती थी। दिगंबर भी प्राचीन-प्रतिमाओं के दर्शन पूजन करते थे।

समय बीतने पर दिगंबरों ने दक्षिण में नए–नए तीर्थ स्थापित किए।

वि.सं. 890 में गिरनार तीर्थ पर दोनों संघों के बीच संघर्ष हुआ, उसके बाद आ.श्री बप्पभट्टीसूरिजी की अध्यक्षता में ऐसा निर्णय लिया गया कि श्वेतांबर की प्रतिमा में आंचलिक (लंगोट) रहेगा और दिगंबरों की प्रतिमा में स्पष्ट लिंग रहेगा। उसके बाद श्वेताम्बर–दिगंबर प्रतिमा में भेद हुआ।

मथुरा, धुलेवा, भांडकजी, कुलपाकजी, डभोई, महुडी, मक्षी, मोहनजोदड़ो आदि में प्राचीन कालीन प्रतिमाए हैं।

प्रतिमा में भेद होने पर भी पहले पूजा विधि में भेद नहीं था, यह अभेदभाव विक्रम की 17 वीं सदी तक रहा।

वि.सं. 1680 में खरतरगच्छीय पं. बनारसीदास ने दिगंबर तेरापंथ का मत चलाया, उसमें उसने दिगंबर की 7 बातें मानने से इन्कार किया और पूजा विधि में भी परिवर्तन किया, उसके बाद मतभेद खड़ा हुआ। बीसपंथी और तेरहपंथी दिगंबरों में भी मतभेद रहा। बीसपंथी दिगंबर व श्वेतांबर की पूजा विधि में भेद नहीं था, परंतु तेरहपंथी दिगंबरों के कारण भेद हुआ।

दिगंबरों में भी परस्पर अनेक शाखाएं निकली, जिनमें मान्यता भेद भी था।

–यापनीय संघ स्त्री मुक्ति, केवली भुक्ति, शुद्र मुक्ति व अन्यलिंग सिद्ध भी मानता है।

श्वेतांबर–दिगंबर मान्यता भेद

–जैनागमों में वस्त्र, पात्र तथा उपकरण आदि का प्रतिपादन होने से दिगंबरों ने जिन–आगमों को ही अमान्य कर दिया।

केवली, चौदह पूर्वधर और दस पूर्वधर आदि के वचन भी आगम ही कहलाते है।

एक नग्नत्व के स्वीकार के साथ उन्होंने कई आगम सम्मत पदार्थों का भी निषेध कर दिया हैं, उनमें कुछ नमुने इस प्रकार हैं–

प्रभु शासन की मान्यता	दिगंबर मान्यता
1) स्त्री, पुरुष और कृत्रिम नपुंसक कोई भी पंच महाव्रतधारी का मोक्ष हो सकता है ।	1) सिर्फ भव्य पुरुष का ही मोक्ष हो सकता है । स्त्री या नपुंसक का नहीं ।
2) केवलज्ञान होने के बाद भी कवलाहार चालू रहता है ।	2) केवली को कवलाहार नहीं होता है ।
3) वस्त्रधारी या निर्वस्त्र महाव्रतधारी स्त्री, पुरुष व नपुंसक का मोक्ष हो सकता है ।	3) वस्त्रधारी का मोक्ष नहीं होता है ।
4) केवलज्ञान के बाद भी सामान्य केवली को परिषह–उपसर्ग हो सकते है ।	4) केवली को परिषह–उपसर्ग नहीं होते है ।
5) तीर्थंकर के पुत्र–पुत्री दोनों हो सकते है ।	5) तीर्थंकर को पुत्री नहीं होती है ।
6) गृहस्थ वेष, अन्य लिंग में भी मोक्ष हो सकता है ।	6) गृहस्थ या अन्य वेषधारी का मोक्ष नहीं होता है ।
7) निरतिचार चारित्र पालन में वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि उपकरण उपयोगी है ।	7) दिगंबर मुनि मोरपींछी व कमंडल रखते है, अन्य उपकरण नहीं रख सकते है ।
8) साधु–साध्वी के लिए आधाकर्मी भिक्षा का निषेध है ।	8) दिगंबर साधु आधाकर्मी आदि सदोष आहार को ग्रहण करते है ।
9) तीर्थंकर अपने मुख से साक्षरी वाणी से उपदेश देते है और श्रोताओं की शंकाओं का समाधान करते है ।	9) तीर्थंकर अपने मुंह से उपदेश नहीं देते है । उनके मस्तक में से निरक्षरी ध्वनि निकलती है जिसे श्रोता अपनी भाषा में समझते है ।
10) तीर्थंकर स्वर्ण कमलों पर पांव रखकर विहार करते है, अन्य केवली भूमि का स्पर्श कर विहार करते है ।	10) तीर्थंकर आकाश में अधर विहार करते है, पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते है ।
11) तीर्थंकर समवसरण में स्वर्ण–सिंहासन पर बैठकर उपदेश देते है ।	11) समवसरण में सिंहासन होने पर भी तीर्थंकर अधर आकाश में रहते है । उनके मस्तक से निकलती निरक्षरी वाणी से श्रोताओं को बोध होता है ।
12) महाव्रतधारी–साधु-साध्वी तथा देशविरतिधारी श्रावक–श्राविकाओं का चतुर्विध संघ होता है ।	12) आर्यिका का समावेश देशविरतिधर श्राविका में होने से चतुर्विध संघ नहीं है । साधु, श्राविक–श्राविका का त्रिविध संघ हैं ।

13) मल्लिनाश स्त्री तीर्थंकर के रूप में पैदा हुए थे ।	13) मल्लनाथ पुरुष तीर्थंकर थे ।
14) साधु–साध्वी को अनेक घरों से शुद्ध भिक्षा लाकर आहार करने की विधि है ।	14) दिगंबर मुनि एक ही घर पर आहार ग्रहण करते हैं, अतः भिक्षाचर्या–गौचरी पद्धति नहीं है ।
15) साधु स्त्री का स्पर्श नहीं करते है । ब्रह्मचर्य की नौ बाड का पालन करते है ।	15) साधु को स्त्री भी हाथ में भिक्षा देती है और शरीर पर गिरे आहार को स्त्री भी स्पर्श कर साफ करती है ।
16) मल्लिनाथ व नेमिनाथ ने विवाह नहीं किया था ।	16) वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी ने विवाह नहीं किया था ।
17) मरुदेवी–चंदनबाला आदि अनेक स्त्रियों ने मोक्ष प्राप्त किया ।	17) स्त्री साध्वी नहीं बन सकती, स्त्री का मोक्ष नहीं है ।
18) महावीर प्रभु का विवाह हुआ था, उनको एक पुत्री भी थी ।	18) महावीर प्रभु अविवाहित थे, अतः संतान नहीं थी ।
19) महावीर प्रभु के गर्भ का परिवर्तन हुआ था ।	19) प्रभुका च्यवन व जन्म त्रिशला की कुक्षि में हुआ था ।
20) ऋषभदेव ने चार मुष्टि लोंच किया था ।	20) ऋषभदेव ने पंच मुष्टि लोंच किया था ।
21) चक्रवर्ती के 64000 स्त्रियाँ होती है ।	21) चक्रवर्ती के 96000 स्त्रियाँ होती है ।
22) इन्द्रों की संख्या 64 है ।	22) इन्द्रों की संख्या 100 है ।
23) तीर्थंकर–चक्रवर्ती की माता 14 महास्वप्न देखती है ।	23) तीर्थंकर–चक्रवर्ती की माता 16 स्वप्न देखती है ।
24) तीर्थंकर दीक्षा के पूर्व वार्षिक दान देते है ।	24) तीर्थंकर वार्षिक दान नहीं देते है ।
25) तीर्थंकर के आहार–निहार को चर्म चक्षुवाले नहीं देख सकते है ।	25) केवलज्ञान तीर्थंकरों को आहार–विहार नहीं है ।
26) कल्पोपपन्न देवों के 12 विमान है ।	26) कल्पोपपन्न देवों के 16 विमान है ।
27) जन्म कल्याणक समय इन्द्र अपने पांच रुप करता है।	27) जन्म कल्याणक समय इन्द्र एक ही रुप में रहते है ।



गच्छनाम परिवर्तन–
वीर संवत् 650

स्वर्गवास–
वीर संवत् 653

वनवासी गच्छ आ.श्री समंतभद्रसूरिजी

स्तुति

वन में ही करते वास तब वनवासी की शाखा चली,
प्रवचन प्रभावक, परम साधक, काव्य रचना शिरोमणि,
हुए सोलवें पट्टधार श्री, समंतभद्रसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।20।।

भगवान महावीर प्रभु की पाटपरंपरा में 16 वीं पाट परंपरा में आचार्य समंतभद्रसूरिजी हुए, उनसे इस गच्छ का नाम **'वनवासी गच्छ'** कहलाया । 15 वीं पाट परंपरा में **'कोटिकगण'** का नाम 'चंद्रकुल या चांद्र-गच्छ' पड़ा । अधिकांश समय आचार्य समंतभद्रसूरिजी म. वनवास में रहने के कारण उनके गच्छ का नाम **'वनवासी गच्छ'** पड़ गया ।

उनके जन्म के पूर्व दिगंबर मत की उत्पत्ति हो चूकी थी । उन्होंने भी सर्व प्रथम दिगंबर दीक्षा स्वीकार की थी, फिर बौद्ध व परिव्राजक मत स्वीकार के बाद सत्य मार्ग की शोध करते हुए उन्होंने श्वेतांबर जैन दीक्षा अंगीकार की थी ।

गुरु निश्रा में रहते हुए उन्होंने जिनागमों का गहन अध्ययन किया, जिसके फल स्वरूप उन्होंने कई ग्रंथों का सर्जन भी किया ।

उनकी योग्यता-पात्रता देख उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया और वे **आचार्य समंतभद्रसूरिजी** के नाम से प्रख्यात हुए ।

उन्होंने पाटलीपुत्र, वाराणसी, उज्जैन, धार, पंजाब, सिंध, कांचीवर आदि क्षेत्रों में विचरण कर अपने अकाट्य तर्कों से मिथ्यामतों का खंडन कर जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना की थी ।

महावीर प्रभु के निर्ग्रंथ गच्छ का ही वीर सं. 650 में चौथा नाम **'वनवासी गच्छ'** पड़ा है ।

वन में रहने से दिगंबर आचार्य भी उन्हें पूज्य दृष्टि से देखते थे, उन्होंने श्वेतांबर-दिगंबर मत को एक करने के लिए प्रयत्न भी किए, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली । उन्होंने अनेक ग्रंथ भी रचे है ।

(1) आप्त मीमांसा :– यह न्याय का प्रौढ ग्रंथ है । आप्त मीमांसा की अष्ट सहस्री टीका पर महोपाध्याय यशोविजयजी म. ने 8000 श्लोक प्रमाण टिप्पणी भी की है । इस ग्रंथ में आप्त पुरुषों के आप्तत्त्व की सम्यक् मीमांसा की है । इस ग्रंथ का दूसरा नाम **'देवागम स्तोत्र** भी है । दिगंबर आचार्य अकलंक ने भी इस ग्रंथ पर अपनी टीका रची है ।

(2) स्वयंभू स्तोत्र (चतुर्विंशति जिन स्तुति) :– इस स्तोत्र में 143 पद्य है । इसमें 24 तीर्थंकरों की स्तुति की गई है । इस स्तोत्र के 4, 74, 97 व 104 नंबर के श्लोक से प्रभु की साक्षरी वाणी, श्लोक नं. 29, 108 व 118 से भूमि विहार एवं श्लोक नं. 83 से प्रभु की तपश्चर्या का ख्याल आता हैं, जो श्वेतांबर मान्यता को पुष्ट करते है ।

(3) युक्त्यनुशासन :– इसमें 64 पद्य हैं, इसमें स्व-पर मत के गुण-दोषों का युक्ति संगत निरूपण हैं ।

'जिन ! त्वदीयं मतमद्वितीयम्' हे प्रभु ! आपका ही मत अद्वितीय है ! इससे जिन मत के प्रति रही अगाढ श्रद्धा का खयाल आता है ।

(4) स्तुति विद्या :– इसमें 116 श्लोकों के माध्यम से परमात्मा के गुणों का कीर्तन किया गया है । इसके श्लोक खूब विद्वत्तापूर्ण है ।

उदा. एक श्लोक में एक ही अक्षर का प्रयोग किया है ।

ततोतिता तु तेतीतः, तोतृतोतीति तोतृतः ।
ततोऽतातितोतोते, ततता ते ततो ततः ॥

एक श्लोक में चार अक्षरों का प्रयोग हैं–

येयाययाययययेयाय, नानाननाननानन ।
ममाममाममामामि, तातताततीतितीततः ॥

कई पद्य अनुलोम-प्रतिलोम शैली में रचे गए है एक श्लोक को उल्टाकर नया श्लोक बना है–

रक्षमाक्षरवामेश, शमीचारुरुचानुतः ।
भो विभोनशनजोरुनघ्नेन, विजरामय ॥ (अनुलोम)
यमराज विनघ्नेन रुजोनाशन भो विभो ॥
तनुचारु-रुचामीश, शमेवारक्ष माक्षर ॥ (प्रतिलोम)

इनमें सिर्फ शब्द रचना ही नहीं है, बल्कि एक-एक श्लोक के अनेक गंभीर अर्थ भी है ।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी तथा मलयगिरिजी म. ने उनको **'महान् स्तुतिकार'** कहा है ।

विहार करते हुए वे कोरटा पधारे और वहां उपाध्याय देवचंद्र को संयम में स्थिरकर आचार्य पद दिया, फिर शत्रुंजय तीर्थ पर अनशन कर स्वर्ग सिधारे ।



स्वर्गवास–वीर संवत्-673
विक्रम संवत्-203

आ.श्री वृद्धदेवसूरिजी

स्तुति

रहे कोरटा में चैत्यवासी, देवचन्द्र के नाम से,
प्रतिबोधकर आचार्य पदवी, समंतभद्रसूरि करे,
वयवृद्धि के कारण कहाए, वृद्धदेवसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।21।।

महावीर प्रभु के शासन की स्थापना के बाद गौतम स्वामी और केशी गणधर के परस्पर मिलन के बाद केशी गणधर की परंपरा महावीर स्वामी की परंपरा में शामिल हो गई थी । वह परंपरा 'उपकेश गच्छ' के नाम से पहिचानी जाती थी ।

उपकेश गच्छ के रत्नप्रभसूरि ने हजारों क्षत्रियों को मांसाहार छुड़वाकर जैन बनाए थे और श्रावकों में ओसवालवंश की स्थापना की थी ।

उपकेश गच्छ की अनेक शाखाएं थी उनमें कोरटा गच्छ में देवचंद्र नाम के उपाध्याय थे । काल के प्रभाव से वे संयम पालन में शिथिल बन गए थे । जिन मंदिर की व्यवस्था में रुचि लेने लगे...ओर धीरे धीरे चैत्यवासी बन गए ।

एक बार उत्कृष्ट संयमी **पू.आ.श्री समंतभद्रसूरिजी** वाराणसी से विहार करते हुए शत्रुंजय की ओर जा रहे थे । विहार करते हुए वे कोरटा पधारे । संघ ने उनका भव्य स्वागत किया ।

उपाध्याय देवचन्द्रजी भी आचार्य भगवंत के संपर्क में आए । उन्होंने मठधारी बने देवचन्द्रजी को संयम जीवन की महत्ता समझाई । मधुर व हितकारी उपदेश को सुनकर देवचन्द्रजी का हृदय परिवर्तन हो गया । उन्होंने चैत्यवास का त्याग कर समंतभद्रसूरिजी की आज्ञा शिरोधार्य की । धीरे धीरे देवचन्द्रजी विशुद्ध संयम मार्ग में स्थिर हो गए । उनकी योग्यता-पात्रता जानकर गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया । वे **देवसूरिजी** हो गए । वय से वृद्ध होने से वे वृद्धदेवसूरिजी के नाम से प्रख्यात हुए ।

नाडोल के राजा का नाहड मंत्री उनका परम भक्त बन गया था । पूज्यश्री के उपदेश से

कोरटा में उसने सुविशाल जिन मंदिर का निर्माण कराया और उनकी निश्रा में अंजन शलाका-प्रतिष्ठा महोत्सव कराया ।

वीर निर्वाण 670 में सांचोर में भी अनेक प्रतिमाओं की अंजन शलाका प्रतिष्ठा कराई । वीर सं. 673 में उनका कालधर्म हुआ ।

कोरटंकनगर में नाहड मंत्री रहता था । वृद्धदेवसूरिजी के उपदेश से उसने जैन धर्म स्वीकार किया । आसो सुदी-9 के दिन चंडिका देवी पाड़े का बलिदान मांगती थी ।

नाहड मंत्री ने आचार्य वृद्धदेवसूरिजी को पूछा, 'मैं बलिदान दूँ या नहीं ?'

वृद्धदेवसूरि उच्चकोटि के साधक थे । उन्होंने रात्रि में देवी चामुंडा को बुलाकर कहा, 'हे देवी ! तू अपने पूर्वभव को याद कर । हिंसा की प्रवृत्ति तुम्हारे लिए योग्य नहीं है । पूर्वभव में तू धनसार श्रेष्ठी की पत्नी और परम श्राविका थी पंचमी को उपवास के कारण नए वस्त्र धारण किए थे । तुम अपने पुत्र को घर में छोड़ मंदिर जा रही थी । चंचलतावश तुम्हारा पुत्र भी 'माँ-माँ' कहकर पीछे आने लगा ।

उसी समय एक पाड़ा भडक गया और पीछे आ रहे तुम्हारे पुत्र को मार डाला । पुत्र की अंतिम चीख सुनकर तुम्हारा भी हृदय बंद हो गया । मृत्यु पाकर तुम चामुंडा देवी बनी हो । अपने पुत्र की मृत्यु आसो सुदी-9 को होने से वह तुम आसो सुदी-9 को पाड़े की बलि लेती हो ।' उसके बाद आचार्यश्री ने उसे अहिंसा धर्म का उपदेश दिया । अपने पूर्व भव को सुनकर वह सद्धर्म प्रेमी-अहिंसा प्रेमी बनी ।

नाहड मंत्री भी हिंसा से बच गया ।

शासन प्रभावक आचार्य जज्जिगसूरिजी-14

एक बार आचार्य जज्जिगसूरिजी विहार करते हुए जीरावला के पास वरमाण गांव पधारे । वहां वृक्ष के नीचे झोली में सोते हुए बालक को देखकर वे बोले, **'यह राजवंशी बालक भविष्य में महान राजा बनेगा ।'**

पास में रही उसकी माँ ने ये शब्द सुने और उसकी प्रसन्नता का कोई पार न रहा ।

वह स्त्री पहले राजरानी ही थी । उसका पति नाडोल देश का राजा था । मंडोवर में उसकी गद्दी थी । उसी के परिवार में से किसी ने राजा को मरवा दिया । अपने प्राण व शील बचाने के लिए रानी भाग गई । उस समय वह गर्भवती थी । वरमाण में उसने बालक को जन्म दिया ।

आचार्य भगवंत ने उसे कहा, **'समय जाने पर सब ठीक होगा ।'**

रानी ने बालक का नाम नाहड (नागभट्ट) रखा । धीरे–धीरे वह बड़ा होने लगा । युवावस्था में उसने शत्रुओं को हराकर नाडोल देश के राज्य को अपने अधीन किया ।

जज्जिगसूरिजी के उपदेश से वह जैन धर्म का उपासक बना ।

एक बार राजा ने आचार्यश्री को विनती करते हुए कहा, `आपकी कृपा से मैं राजा बना हूँ तो अब मेरे योग्य आज्ञा फरमाए ।'

इसी बीच एक आश्चर्यकारी घटना बनी । साचोर में एक लाक्षणिक गाय का दूध किसी अज्ञात प्रदेश में अचानक झर जाता था । गाय के मालिक ने पूज्य आचार्य भगवंत को यह बात कही ।

आचार्य भगवंत ने कहा, `इस भूमि में कोई जिनप्रतिमा होनी चाहिए ।'

संघ ने उस स्थान पर खुदाई की और उसमें से पित्तल की बडी महावीर स्वामी की प्रतिमा प्राप्त हुई ।

अवसर देख पू. आचार्य भगवंत ने प्रतिमा की शोभा के अनुरूप जिन मंदिर निर्माण की प्रेरणा दी । `समझदार को ईशारा ही काफी होता है ।' राजा ने अल्प समय में भव्य जिनालय तैयार करवाया और पू. आचार्य भगवंत को प्रतिष्ठा हेतु विनंती की ।

वि.सं. 200 में तीन शुभ कार्यों के लिए तीन मुहूर्त पू. आचार्य भगवंत ने देख रखे थे ।

(1) नाहड के पूर्वज विध्यराज की प्रतिष्ठा ।

(2) दूसरे मुहूर्त में राजकुमार शंख द्वारा कोमल भूमि में लकड़ी गाड़ना, वहां जो कुँआ खोदा गया, वह `शंखकुँआ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो वैशाख सुदी-15 को हमेशा जल से भरा रहता था ।

(3) सांचोर में प्रभुजी की प्रतिष्ठा ।

पू. आचार्य भगवंत सांचोर पधारे और उनके वरद हस्तों से महावीर प्रभु की प्रतिष्ठा विधि संपन्न हुई ।

पू. आचार्य भगवंत ने दुग्गासुअ और वयणय में भी साधुओं को भेजकर प्रतिष्ठा कराई ।

उसके बाद सांचोर तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ । वहां के अधिष्ठायक ब्रह्म शांति यक्ष थे ।

इस जिनालय में राजा प्रतिदिन प्रभु पूजा करता था ।

वि.सं. 1081 के आसपास मोहम्मद गजनवी ने आक्रमण कर सोमनाथ आदि को लूंटा । वह सांचोर भी आया था और महावीर प्रभु की मूर्ति को तोड़ने के लिए प्रयत्न भी किया, परंतु उसे सफलता नहीं मिली । प्रभु भक्तों का मानना था कि यह मूर्ति दैवी कवच से सुरक्षित है ।

इस प्रसंग का वर्णन धनपाल आदि कवियों ने भी किया है । धनपाल कवि ने भी अपनी शेष जिंदगी सांचोर में व्यतीत की थी । धनपाल कवि ने `उत्साह प्रबंध' में यह वर्णन किया है ।

लगभग 400 वर्षों के बाद वह दैवी कवच टूटा और वि.सं. 1367 में अल्लाउद्दीन खिलजी ने वह प्रतिमा खंडित की ।

इसी बीच जालोर के पास पहाड़ी पर विशाल किल्ले में नाहड राजा ने `यक्षवसति' नाम का विशाल जिनालय बनवाकर उस जिनालय में महावीर प्रभु की प्रतिष्ठा कराई थी ।

यह स्थान स्वर्णगिरि-कनकाचल के नाम से प्रसिद्ध है ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 228

आ.श्री प्रद्योतनसूरिजी

स्तुति

अजमेर में श्री ऋषभस्वामी, स्वर्णगिरि जालोर में,
प्रभु वीर के जिनबिम्ब की, हर्षभर प्रतिष्ठा करे,
पट्टधार अठारहवें, हुए प्रद्योतनसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।22।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 18 वीं पाट पर पू. आचार्य श्री प्रद्योतनसूरिजी हुए । वे सूर्य की भांति अत्यंत ही तेजस्वी थे, अपने नाम के अनुरूप ही योग्य गुणों के धारक थे ।

उनके वरद हस्तों से अजमेर में ऋषभदेव स्वामीजी की प्रतिष्ठा हुई थी । वि.सं. 210 में स्वर्णगिरि जालोर में यक्ष वसही मंदिर में भगवान महावीर की प्रतिष्ठा संपन्न हुई थी ।

अपने सुयोग्य शिष्य मानदेवसूरि को अपनी पाट प्रदान कर वि.सं. 228 (वीर संवत् 698) में स्वर्ग सिधार गए थे ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 261

आ.श्री मानदेवसूरिजी

स्तुति

करे मंत्र गर्भित स्तोत्र रचना, से अशांति उपशमन,
शांति-तिजय पहुत्त से, करे मानदेवसूरि स्तवन,
छह विगई त्यागी, ब्रह्मचारी, सेवा करती देवियाँ,
प्रभु वीर पाट परंपरा को, भाव से करूं वंदना ।।23।।

नाडोल नगर !

एक शुभ दिन अत्यंत ही समृद्ध जिनदत्त सेठ की धर्मपत्नी **'धारिणी'** ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । बालक का नामकरण किया गया **मानदेव !**

दूज के चांद की भांति वह बालक देह, रूप व वय के साथ-साथ गुण समृद्धि से भी बढ़ने लगा ।

एक दिन जिनशासन के महान् प्रभावक **प्रद्योतनसूरिजी म.** का विशाल परिवार के साथ नाडोल में आगमन हुआ । आचार्य भगवंत की धर्म-देशना का प्रारंभ हुआ । बालक मानदेव भी आचार्य भगवंत की धर्मदेशना का अमीपान करने लगा । एक दिन आचार्य भगवंत ने संसार की भयंकरता का ऐसा हृदयंगम विवेचन किया कि जिसे सुनकर बालक मानदेव के हृदय में इस संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हो गया । बालक ने आचार्य भगवंत को दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ।

आचार्य भगवंत ने कहा, 'तुम अपने माता-पिता की सम्मति ले आओ, मैं तुम्हें अवश्य दीक्षा प्रदान करूंगा ।'

बालक मानदेव अपने घर आया और अपने माता-पिता को दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान करने के लिए आग्रह करने लगा । प्रारंभ में तो पुत्रमोह के कारण वे मानदेव को दीक्षा की अनुमति प्रदान करने के लिए हिचकिचाहट करने लगे...परन्तु आखिर पुत्र की दृढ़ भावना को जानकर उन्होंने दीक्षा के लिए सहर्ष अनुमति दे दी...और एक दिन शुभ वेला में बालक मानदेव संसारी मिटकर साधु बन गए ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद मानदेव मुनि रत्नत्रयी की आराधना-साधना में तल्लीन बन गए । समय बीतने लगा और मानदेव मुनि बहुश्रुत-शास्त्र-पारगामी बने ।

मानदेव मुनि की गुण-गरिमा को देखकर एक दिन गुरु भगवंत ने उन्हें आचार्य-पद प्रदान कर उन्हें अपना पट्टधर घोषित किया । अपनी वाक्लब्धि आदि के द्वारा नूतन आचार्य भगवंत जैन शासन की सुंदर आराधना-प्रभावना करने लगे ।

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

500 जिन-चैत्यों से विभूषित तक्षशिला नगरी में अचानक महामारी का उपद्रव फैल गया । महामारी के भयंकर उपद्रव के कारण लोग तेजी से मरने लगे । देखते ही देखते मृतकों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी । नगर में रोगियों की संख्या खूब बढ़ गई और जो भी सेवा के लिए आते, वे भी रोग-ग्रस्त बन जाते । श्मशान घाट में मुर्दों की लाइनें लगने लगीं । एक मृतदेह पूरा जला भी न हो तभी वहां दूसरा मृतदेह आ जाता ! लाशों के कारण नगर में चारों ओर भयंकर दुर्गंध फैलने लगी ।

महामारी के उपद्रव से त्रस्त लोग नगरी छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे ।

एक दिन संघ के लोग इकट्ठे हुए और विचार करने लगे । यदि इसी प्रकार नगर खाली हो गया तो जिन मंदिरों में रही जिनप्रतिमाओं की पूजा कौन करेगा ? क्या पंचम काल अभी समाप्त हो जाएगा और छठा आरा बैठ जाएगा ? अरे ! वह कपर्दी यक्ष, अंबिका और ब्रह्मशांति आदि सभी यक्ष-यक्षिणी कहाँ चले गए ?

संघ को इस प्रकार एकदम हताश देखकर शासनदेवी प्रगट हुई और बोली, ``आप लोग संताप क्यों करते हो ? इस महामारी को फैलानेवाले म्लेच्छों के व्यंतर इतने अधिक शक्तिशाली हैं कि उनके आगे हम सब का बल कम पड़ रहा है । इतना ही नहीं, आज से तीन वर्ष बाद तुर्कियों के आक्रमण से यह नगर भी नष्ट हो जाएगा । परन्तु तात्कालिक रक्षण के लिए एक उपाय है । नाडोल नगर में मानदेव सूरिजी म. हैं, उन्हें यहाँ बुलाएँ । उनके पाद-प्रक्षालन के जल का घर घर में छंटकाव करने से महामारी का सारा उपद्रव शांत हो जाएगा । उपद्रव शांत होने के साथ ही तुम्हें अन्यत्र चले जाना होगा ।'' इतना कहकर शासनदेवी अदृश्य हो गई ।

संघने आचार्य भगवंत के नाम पर एक विनंति पत्र लिखा और वह पत्र देकर वीरदत्त श्रावक को नाडोल जाने के लिए रवाना किया । कुछ ही दिनों में वीरदत्त श्रावक नाडोल पहुँच गया ।

जिनमंदिरों के दर्शन करने के बाद जैसे ही वीरदत्त श्रावक ने निसीहि कहकर उपाश्रय के मूलद्वार में प्रवेश किया, उस समय उसने उपाश्रय के अंदर के भाग में नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थापित कर ध्यान मग्न बने आचार्य भगवंत को देखा और उनके साथ ही देवांगना जैसी दो स्त्रियों को आचार्य भगवंत के पास बैठी देखा ।

आचार्य भगवंत के पास उन स्त्रियों को देखने के साथ ही वह वीरदत्त सोचने लगा, ``अहो ! शासनदेवी ने भी मेरे साथ ठगी की । मुझे इतना दूर भेजकर सिर्फ कायकष्ट ही दिया । क्या ये आचार्य हैं ? ये तो देवांगना जैसी स्त्रियों के साथ रहे हुए हैं । लगता है मेरे आगमन को जानकर ध्यान में बैठने का इन्होंने ढोंग कर लिया है ।'' इस प्रकार विचार कर वह थोड़ी देर तक उपाश्रय के बाहर ही बैठा । कुछ देर बाद आचार्य भगवंत ने अपना ध्यान पूर्ण किया । उस समय उस वीरदत्त ने उपाश्रय में प्रवेश किया और बिना हाथ जोड़े ही अनादर से मस्तक झुकाया ।

वीरदत्त की इन चेष्टाओं को आचार्य भगवंत के दर्शनार्थ आई हुई जया-विजया देवियों ने जान लिया । तुरंत ही वीरदत्त को शिक्षा देने के लिए उसे तत्काल भूमि पर पछाड़ दिया और उसे बंधनग्रस्त कर दिया । वह वीरदत्त करुण विलाप करने लगा, तब दया के सागर आचार्य भगवंत ने उसे छुड़ाया । उसी समय आक्रोश में आकर जयादेवी बोली, **``अरे महापापी ! तू तो महाशाप के योग्य है ! चारित्र की साक्षात् प्रतिमा समान आचार्य भगवंत के बारे में तू ऐसी झूठी कल्पनाएँ करता है ?**

``तू श्रावक नहीं किंतु ठग श्रावक है ? क्या तुझे हमारी दिव्यता के लक्षण नजर नहीं आ रहे हैं ? अनिमेष नेत्र, अम्लान पुष्पमाला व भूमि से अस्पृष्ट चरणों को देखकर क्या तू हमारे स्वरूप का अनुमान नहीं कर सकता है ? हम मानुषी नहीं किंतु देवियाँ है ! इनके पवित्र चारित्र से आकृष्ट होकर हम इनके वंदन के लिए आई हुई हैं। एक ही मुष्टि के प्रहार से मैं तुझे यमसदन पहुँचा देती परन्तु गुरुदेव के वचन के खातिर मैं तुझे जिंदा छोड़ रही हूँ।

ओ पापी ! तू यहाँ आया क्यों ? मुट्ठी बंद कर जैसे तू आया है, वैसे ही तू यहाँ से चला जा।''

देवी की इस बात को सुनकर वीरदत्त ने क्षमा मांगते हुए कहा, ``तक्षशिला नगरी में हुए महामारी के उपद्रव के निवारण के लिए शासनदेवी की सूचनानुसार संघ की आज्ञा से मैं आया हूँ। पूज्य आचार्य भगवंत को बुलाने के लिए संघ ने मुझे यहाँ भेजा है, परन्तु मेरी मूर्खता के कारण अशिव दूर करने के बजाय मुझ पर ही उपद्रव हो गया।''

वीरदत्त की इस बात को सुनकर विजयादेवी ने कहा, ``जहाँ तुम्हारे जैसे छिद्रान्वेषी रहते हो वहाँ उपद्रव क्यों नहीं होगा ?''

``तू इन गुरुदेव के प्रभाव को जानता नहीं है। इनके प्रभाव से ही मेघ की वृष्टि और धान्य की उत्पत्ति हो रही है। शांतिनाथ प्रभु की सेवा करनेवाली शांतिदेवी हमारे बहाने दो रूप करके इनको वंदन करती है। तुम्हारे जैसे हृदयहीन के साथ इन्हें कैसे भेजूँ ?''

देवी की बात सुनकर वीरदत्त श्रावक सोच में पड़ गया।

आचार्य भगवंत ने कहा, ``संघ का आदेश मुझे मान्य करना ही चाहिए। इसके लिए मैं यहाँ रहकर ही संघ का कार्य पूर्ण कर दूंगा।''

``यहाँ के संघ की आज्ञा बिना मैं वहां आ भी नहीं सकता और इन देवियों की भी अनुमति नहीं है।'' ``पूर्व में कमठ द्वारा प्रकाशित और इन दोनों देवियों द्वारा प्रदर्शित `मंत्राधिराज' नाम का पार्श्वनाथ प्रभु का मंत्र है। समस्त उपद्रवों को शांत करने में समर्थ तथा शांतिनाथ व पार्श्वनाथ की स्मृति से पवित्र बने हुए श्री शांतिस्तवन को लेकर तुम जाओ, इसके पाठ मात्र से समस्त उपद्रव शांत हो जाएगा।''

आचार्य भगवंत ने यहां **शांति स्तवन** वीरदत्त श्रावक को दिया और वह श्रावक शांति स्तवन को लेकर तक्षशिला पहुँचा। आचार्य भगवंत की आज्ञानुसार नगर के सभी प्रजाजन उस **'शांति स्तवन'** का पाठ करने लगे। इसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों में महामारी का उपद्रव शांत हो गया। क्षुद्र उपद्रवों को शांत करनेवाला यह शांति स्तवन (लघुशांति) आज भी विद्यमान है। इसके प्रभाव से क्षुद्र-उपद्रव शांत हो जाते हैं। आज भी प्रतिक्रमण में अंतिम कायोत्सर्ग कर लघु-शांति (शांति-स्तवन) पढ़ा जाता है।

तिजय पहुत्त रचना

शाकंभरी नगरी में शाकिनी व्यंतरी के उपद्रव को शांत करने के लिए उन्होंने 'तिजय पहुत्त' स्तोत्र की रचना की हैं। इस स्तोत्र में 170 जिन की स्तुति है। इसमें कुल 14 गाथाएं है। इस स्तोत्र के आधार पर **'सर्वतोभद्रयंत्र'** की रचना हुई है।

मानदेवसूरिजी ने पंजाब, सिंध, तक्षशिला, उच्च गाजीखान देराउल आदि क्षेत्रों में विचरणकर अनेक को समकित का दान किया था तथा सोढा राजपुतों को प्रतिबोध कर जैन बनाया था।

अंत में जिनशासन की महान प्रभावना कर अपनी पाट पर मानतुंगसूरिजी को स्थापित कर गिरनार तीर्थ पर उन्होंने अनशन स्वीकार कर वि.सं. 261 (वीर निर्वाण 731) में स्वर्ग सिधारे थे !



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 228

आ.श्री मानतुंगसूरिजी

स्तुति

श्री मानतुंगसूरि हुए पट्टधार प्रभु के बीसवें,
उसकाल में वाचक महाचार्य उमास्वाति हुए,
तत्त्वार्थ आदि पांचसौ, ग्रंथो के थे सर्जनकरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।24।।

भगवान महावीर प्रभु की 20 वीं पाटपरंपरा में महान् प्रभावक आचार्य श्री मानतुंगसूरिजी हुए । 27 वर्ष तक गच्छनायक के पद को वहन करते हुए उन्होंने जिनशासन की महान प्रभावना की थी । वि.सं. 288 में उनका कालधर्म हुआ था ।

वाराणसी नगर ! वीर निर्वाण 12 वीं शताब्दी का काल !

ब्रह्मक्षत्रीय हर्षदेव राजा का एक छत्री शासन ।

उस नगर में **धनदेव** नाम का धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था, जिसकी पत्नी का नाम शीलवती था । एक दिन **शीलवती** ने तेजस्वी पुत्र रत्न को जन्म दिया । जिसका नाम रखा गया **'मानतुंग ।'** समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा...और मानतुंग ने यौवन की दहलीज पर अपना कदम उठाया ।

एक दिन मानतुंग ने चैत्य में प्रवेश किया और वहां दिगंबराचार्य चारुकीर्ति से उसकी भेंट हुई । दिगंबराचार्य ने उसे संसार की असारता समझाई । आचार्यश्री के उपदेश से मानतुंग का हृदय वैराग्य रंग से रंजित हो गया । उसने घर आकर अपने माता-पिता के पास दीक्षा के लिए अनुमति मांगी । मोहाधीन माता-पिता दीक्षा के लिए अनुमति देने के लिए राजी नहीं थे...परंतु मानतुंग भी संसार के मोहजाल में फंसना नहीं चाहता था...आखिर उसके प्रबल वैराग्य को देखकर माता-पिता ने उसे दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान की । मानतुंग ने दीक्षा अंगीकार की और उसका नाम **महाकीर्ति** रखा गया ।

महाकीर्ति ने दिगंबर आचार संहिता का शिक्षण प्राप्त किया ।

उसी बनारस में **लक्ष्मीधर** नाम का सेठ रहता था, मानतुंग की बहन का विवाह लक्ष्मीधर के साथ हुआ था । वे दोनों श्वेतांबर परंपरा को मानने वाले थे ।

एक दिन महाकीर्ति मुनि भिक्षा के लिए अपनी बहन के घर पधारें । उस समय बहन ने भाई मुनि समझकर भोजन के लिए आमंत्रण दिया । चारुकीर्ति मुनि अपने साथ में रहे कमंडल में से

मुख शुद्धि करने लगे तब उनकी बहन को उस पानी में त्रस जीव दिखाई दिए । कमंडल में प्रकाश का अभाव, प्रतिलेखना का प्रमाद और कई दिनों से पानी का पड़ा रहना इस कारण उसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति होना स्वाभाविक था ।

उस समय बहन ने भाई मुनि को समझाते हुए कहा, `सभी व्रतों में दया तो मुख्य व्रत है, उसके बिना व्रत पालन कैसे ?' संयम के पालन के लिए अति उपयोगी वस्त्र-पात्र को तुम परिग्रह कहते हो तो फिर यह कमंडल व मोर पीछी रखते हो, क्या उसमें परिग्रह नहीं है ?

बहन के इस सत्य व तथ्यपूर्ण बात का महाकीर्ति मुनि पर अत्यंत प्रभाव पड़ा । उसने कहा, `बहन ! तुम्हारी बात सत्य है, किंतु श्वेतांबर साधु इधर आते ही नहीं है, फिर मैं क्या करूँ ?

बहन ने कहा, `बंधुवर्य ! चिंता न करे' अभी पार्श्वनाथ प्रभु के कल्याणक भूमियों की स्पर्शना करते हुए श्वेतांबर आचार्य पधारने वाले हैं, उनके आने पर मैं तुम्हें अवश्य सूचना दूंगी ।' तत्पश्चात् बहन ने मुनि को भिक्षा प्रदान की और वे मुनि अपने स्थान पर चले गए ।

कुछ समय बाद पार्श्वनाथ प्रभु के कल्याणक भूमियों की स्पर्शना करते हुए **श्री जिनसिंहसूरिजी म.** अपने विशाल परिवार के साथ वाराणसी नगरी के बाह्य उद्यान में पधारें । बहन के निर्देश से महाकीर्ति मुनि आचार्य भगवंत के पास पधारे ।

पू. आचार्य भगवंत ने उन्हें जैन धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाया । परिणाम स्वरूप उन्होंने दिगंबर दीक्षा छोड़कर श्वेतांबर दीक्षा अंगीकार की । उनका नाम **मानतुंग मुनि** रखा गया । आचार्य भगवंत ने उन्हें जैन आगमों का शिक्षण दिया । सूक्ष्म बुद्धि व तीक्ष्ण प्रज्ञा के फलस्वरूप अल्प काल में ही वे जिनागमों के रहस्यार्थ को पा गए । गुरुदेव ने उन्हें योग्य जानकर आचार्य पद प्रदान किया...तब से वे **'मानतुंगाचार्य'** के नाम से जाने–पहिचाने लगे ।

सरस्वती देवी की उन पर कृपा थी, इसके फलस्वरूप वे अनेक काव्य बनाने लगे ।

उसी बनारस में वेद-वेदांग में निपूण **मयूर** नाम का पंडित रहता था । राज दरबार में उसका अत्यधिक मान-सम्मान था । रूप, शील व गुणों से युक्त उसे एक पुत्री थी, जो यौवन के प्रांगण में प्रवेश कर चुकी थी । मयूर को पुत्री के अनुरूप योग्य `वर' की चिंता सता रही थी । उसी नगर में तर्क, लक्षण व साहित्य में अत्यंत ही निपूण **बाण** नाम का पंडित था । मयूर को बाण की योग्यता का ख्याल आया । अपनी पुत्री के लिए योग्य वर जानकर मयूर ने अपनी पुत्री का विवाह बाण के साथ करा दिया ।

राजा **हर्ष की** सभा में पंडित **मयूर** और **बाण** का अत्यधिक मान था ।

धीरे धीरे दिन बीतने लगे । एक दिन बाण ने हंसी मजाक में अपनी पत्नी का अपमान कर दिया । इससे नाराज होकर वह अपने पतिगृह का त्याग कर अपने पिता के घर चली गई ।

बाण ने अपनी पत्नी को समझाने की खूब कोशिश की...परंतु वह मानी नहीं । उसकी सखियों ने भी उसे समझाने की कोशिश की, परंतु उसका कोप शांत नहीं हुआ । अपनी पत्नी को समझाते हुए जब पूरी रात व्यतीत हो गई, तब बाण ने अपनी पत्नी को कहा, `हे सुभ्रु ! लगता है तेरा हृदय भी कठोर हो गया है !'

इसी बीच दिवाल के पास में खड़े मयूर ने बाण के ये शब्द सुने, तब गुस्से में आकर उसने अपनी पुत्री के पति बाण को कहा, **'तुम शुभ्रु के बजाय चंडी शब्द का प्रयोग करो, क्योंकि इतना समझाने पर भी वह अपना कोप नहीं छोड़ रही है ।'**

पिता के मुख से इन वचनों को सुनकर बाण की पत्नी को गुस्सा आ गया...और उसने श्राप देकर अपने पिता को कोढरोग से ग्रस्त कर दिया ।

मयूर के पूरे शरीर में कोढ रोग फैल गया । मयूर की पुत्री बाण कवि के साथ अपने ससुराल चली गई । कोढ रोग के कारण मयूर कुछ दिनों तक राज सभा में नहीं गया । राजा को जब इस बात का पता चला तो उसे अत्यंत दुःख हुआ ।

दूसरे दिन राजा ने मयूर को अपनी राज सभा में आने के लिए आमंत्रण भेजा ।

मयूर को राजसभा में आने में संकोच का अनुभव हुआ, आखिर कपड़े से अपने पूरे शरीर को लपेट कर राजसभा में आया । मयूर के ढंके हुए शरीर को देख बाण ने मजाक करते हुए कह दिया **'सर्दी बहुत लग रही है, इसलिए इन्होंने अपने पूरे शरीर को ढंक दिया है ।'**

बाण के ये शब्द मयूर को कांटे की तरह चूभने लगे । राजसभा से लौटकर उसने सोचा, **'अपमानभरी जिंदगी जीने के बजाय तो मर जाना बेहतर है ।'** इस प्रकार विचार कर उसने अपने कोढ रोग के निवारण के लिए उसने सूर्य देव की उपासना प्रारंभ की । सूर्य की उपासना के फलस्वरूप मयूर का कोढ रोग नष्ट हो गया और उसकी काया कंचन समान निर्मल हो गई । दूसरे दिन मयूर राजसभा में गया । उसकी कंचनवर्णी काया देखकर राजा अत्यंत ही प्रभावित हुआ । राजा ने उसका रहस्य पूछा । मयूर ने सूर्य की उपासना से हुए चमत्कार की बात की ।'

बाण के पक्षधर मयूर की प्रशंसा सहन नहीं कर पाए ।

इस परिस्थिति को देख राजा ने कहा, `बाण में यदि कोई शक्ति हो तो वह भी ऐसा ही कोई चमत्कार दिखलाए ।'

बाण ने कहा `आप मेरे हाथ पैर कटवाकर चंडी मंदिर के पीछे रखवा दे ।'

`अपनी पुत्री दुःखी न हो' इसके लिए मयूर ने राजा को ऐसा न करने की विनति की । परंतु राजा ने उसकी एक न सुनी ।

राजा ने बाण के हाथ-पैर कटवा दिए । और उन्हें चंडी मंदिर के पीछे रखवा दिए ।

इधर बाण ने चंडी की स्तवना प्रारंभ की । उसकी स्तवना के फलस्वरूप उसके हाथ-पैर पुनः जुड़ गए । राजा ने उसकी खूब प्रशंसा की ।

मयूर और बाण के इन चमत्कारों को देख लोग उन दोनों की प्रशंसा करने लगे, परंतु उन दोनों में परस्पर ईर्ष्या भाव बढ़ता गया !

आखिर राजा ने कहा, `तुम दोनों कश्मीर जाकर अपने जय-पराजय का निर्णय कर लो ।

वे दोनों पंडित कश्मीर गए और वहां तप कर सरस्वती की साधना करने लगें ।

देवी ने उन दोनों को **'शतचन्द्रं नभस्तलम्'** पद देकर कहा, `तुम दोनों में से जो सर्वप्रथम इस पाद की पूर्ति करेगा, उसका 'विजय' माना जाएगा ।

`बाण' कवि ने सर्व प्रथम उस पादमूर्ति का श्लोक बना दिया, अतः वह विजयी बना । फिर वे दोनों काशी आए ! राजा ने उन दोनों का सत्कार किया ।

एक बार राजा ने अपनी राजसभा में कहा, `इस समय ब्राह्मणों का जो प्रभाव दिखाई देता हैं, वैसा प्रभाव अन्य किसी धर्मियों में देखने को नहीं मिलता है ।'

राजा की इस बात को सुनकर एक जैन मंत्री ने कहा, `राजन् ! **बहुरत्ना वसुन्धरा** ब्राह्मण लोग जैसा चमत्कार दिखला सकते है, वैसे चमत्कार दिखलाने वाले अन्य धर्मियों में भी विद्यमान है । दूर की बात छोड़े, अपने ही नगर में जैनों के **मानतुंगाचार्य** बिराजमान हैं, जो महान् विद्वान् और अतिशय चमत्कारों से युक्त है ।

राजा ने कहा, `यदि ऐसा है तो वे अपना चमत्कार दिखलाएँ ।'

मंत्री ने कहा, `राजन् ! आप उन्हें आमंत्रण देंगे तो वे जरूर पधारेंगे ।'

राजा ने कहा, `मंत्री ! तुम्हारी बात ठीक हैं, तुम मेरी ओर से उन्हें राज सभा में पधारने के लिए आमंत्रण देना ।'

वह मंत्री आचार्य भगवंत के पास गया । उसने राजसभा में पधारने के लिए आचार्य भगवंत को राजा की ओर से आमंत्रण दिया ।

आचार्य भगवंत ने कहा, `हम निःस्पृहियों से राजा को क्या लेना देना हैं ?'

मंत्री ने कहा, `हे भगवंत ! आप निर्ग्रंथ हो, आपसे राजा को कुछ भी लेना नहीं हैं, किंतु आप राज सभा में पधारकर राजा को धर्म बोध देंगे तो इससे जैन शासन की अपूर्व प्रभावना होगी । आप कृपा कर अवश्य पधारे ।'

राजा की ओर से मंत्री की आग्रह पूर्वक विनति को स्वीकार कर दूसरे दिन आचार्य भगवंत राज सभा में पधारे । राज दरबार में आचार्य भगवंत के आगमन के साथ ही राजा अपने सिंहासन से खड़ा हो गया । राजा ने उन्हें बैठने के लिए योग्य आसन प्रदान किया । पूज्य आचार्य भगवंत ने अपना आसन ग्रहण किया । तत्पश्चात् आचार्य भगवंत ने `धर्मलाभ' की आशिष दी ।

उसके बाद राजा ने कहा, `इस पृथ्वी पर ब्राह्मण लोगों ने कैसे कैसे चमत्कार दिखलाए है । एक ने सूर्य की उपासना द्वारा अपना कोढ रोग मिटा दिया...तो दूसरे ने चंडी की उपासना कर अपने कटे हुए हाथ-पैरों को वापस जोड़ लिया । यदि आप में भी ऐसी शक्ति हो तो अवश्य कोई चमत्कार दिखलाए ।'

इस बात को सुनकर आचार्य भगवंत ने कहा, `राजन् ! हम न तो गृहस्थ हैं और न ही गृहस्थ के उचित प्रवृत्ति करते है । धन-धान्य या पुत्र-स्त्री की प्राप्ति के लिए हमारी कोई साधना नहीं होती है, हमारी साधना तो सिर्फ आत्म कल्याण के उद्देश्य से होती है ।'

आचार्य भगवंत के इन वचनों को सुनकर तत्काल ही राजा ने अनुचरों को आदेश देते हुए कहा, `इन्हें तत्काल लोहे की मजबूत जंजीरों से बांध दो और उन्हें अंधेरी कोटड़ी में डाल दो । उस कोटड़ी पर मजबूत ताला लगा दो और उसके द्वार पर द्वारपालों को नियुक्त कर दो ।'

बस, राजा की आज्ञा होते ही पूज्य **मानतुंगसूरिजी म.** को मजबूत लोहे की 44 बेडियों से बांध दिया गया और उन्हें अंधेरी कोटड़ी में डाल दिया गया । द्वार पर मजबूत ताला लगा दिया गया । द्वार पर चोकीदार नियुक्त कर दिया गया । उस समय ध्यान मग्न बने पूज्य आचार्य भगवंत ने युगादिदेव आदिनाथ प्रभु की स्तवना प्रारंभ की ।

आदिनाथ प्रभु की स्तवना रूप **`भक्तामर स्तोत्र'** की ज्यों ज्यों रचना होती गई, त्यों त्यों लोहे की वे बेडियाँ भी टूटती गई । देखते ही देखते आचार्य भगवंत बंधन में से सर्वथा मुक्त हो गए ।

कोटड़ी के द्वार स्वतः खुल गए । तत्पश्चात् पूज्य आचार्य भगवंत राज सभा में पधारे और वहां आकर उन्होंने राजा को **'धर्मलाभ'** की आशिष दी ।

सर्वथा बंधन मुक्त बने पू. आचार्य भगवंत को देखकर राजा के आश्चर्य का पार न रहा !

राजा ने सोचा, 'अहो ! ये कोई अलौकिक महात्मा है, ब्राह्मणों की तरह इन्हें किसी देव की उपासना की आवश्यकता नहीं पड़ी । चमत्कार बतलाकर वे ब्राह्मण तो अपना अभिमान पुष्ट करते है और ईर्ष्या व द्वेष के कारण परस्पर झगड़ते हैं, जब कि इन्हें न लोभ है न ईर्ष्या !

आचार्य भगवंत से संतुष्ट हुए राजा ने कहा, 'प्रभु ! आपके अलौकिक प्रभाव से मैं अत्यंत प्रभावित हूँ, आज्ञा फरमाइएँ, मैं आपके चरणों में क्या भेंट धरुं ?'

पूज्य आचार्य भगवंत ने कहा, 'हमें न धन चाहिए और न ही जमीन चाहिए । बस, सद्धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझकर आप उसका स्वीकार कर अपनी आत्मा का कल्याण करे, यही एक अभिलाषा है ।' उसके बाद राजा ने आचार्य भगवंत के मुख से अहिंसा व स्याद्वादमय जैनधर्म के यथार्थ स्वरूप को समझने का प्रयास किया ।

राजा ने जैन धर्म स्वीकार लिया । इसके फलस्वरूप जैन शासन की अपूर्व प्रभावना हुई ।

नमिऊण संथवं

एक बार पूर्व कर्म के उदय से आचार्य भगवंत को 'उन्माद' का रोग हुआ । उन्होंने धरणेन्द्र को प्रकट किया और 'अनशनव्रत स्वीकार' की भावना प्रकट की ।

धरणेन्द्र ने कहा, 'अभी आपका आयुष्य लंबा है । अभी आप अनशन न करें ।'

'मैं आपको अठारह अक्षर का मंत्र प्रदान करता हूँ । उस मंत्र के प्रभाव से आपका रोग नष्ट हो जाएगा । आचार्य भगवंत ने **नमिऊण संथव** (गाथा-21) की रचना की, उसमें 18 अक्षरों के मंत्र को संकलित किया, उस स्तोत्र के प्रभाव से आचार्य भगवंत का रोग नष्ट हो गया और उनकी काया कंचनवर्णी हो गयी । यह स्तोत्र आज भी विद्यमान है और उसकी अवचूरि भी मिलती है ।

◆ मानतुंगसूरिजी विरचरित **'भक्तामर-स्तोत्र'** आज भी विद्यमान है, जिसमें 44 श्लोक है । प्रभावक चरित्र, प्रबंध-चिंतामणि तथा भक्तामर की प्राचीन टीका में भी 44 श्लोक ही बताए है । इनमें प्रभु के चार प्रातिहार्यो का वर्णन है ।

किसी दिगंबर आचार्य ने चार प्रातिहार्य के नए चार श्लोक जोड़ दिए हैं फिर किसी अन्य दिगंबर आचार्य ने शेष चार प्रातिहार्य के चार श्लोक जोड़ दिए, जिससे दिगंबर लोग भक्तामर के 48 व 52 श्लोक भी मानते है ।

◆ भक्तामर स्तोत्र की अनेक पाद पूर्तियाँ भी मिलती है–

(1) खरतरगच्छीय श्री धर्मवर्धन गणी ने सं. 1736 में **वीर भक्तामर** रचा है ।

(2) पूनमिया आचार्य भावप्रभ ने **नेमि भक्तामर** रचा है ।

(3) मुनि लक्ष्मीविमल ने **शांति भक्तामर** रचा है ।

(4) विजय लाभ गणी ने **पार्श्व भक्तामर** रचा है ।

ऐसी 10 रचनाएं है । भक्तामर स्तोत्र पर अनेक टीकाएं भी उपलब्ध है ।

वाचकवर्य उमास्वातिजी-15

न्यग्रोधिका गांव में कौभीषणि गोत्रीय **स्वाति** नाम का ब्राह्मण रहता था, उस ब्राह्मण के **उमा** नाम की पत्नी थी । अनेक वर्षों के मनोरथ के बाद उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । बालक का नाम **'उमास्वाति'** रखा गया ।

उमास्वाति के पिता ब्राह्मण थे और नित्य वेदपाठी थे । उमास्वाति भी वेदों का अध्ययन करने लगे और धीरे धीरे वेदों में पारगामी हो गए ।

उमास्वाति के दिल में जैन धर्म के प्रति कुछ भी आदर-भाव या आकर्षण नहीं था, परंतु एक बार उन्होंने जैन मंदिर में प्रवेश किया । वहां प्रशमरस में निमग्न वीतराग भाव के द्योतक जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन कर भावविभोर हो गए । उनके अन्तर्मन में जैन धर्म के प्रति रही द्वेष की आग शांत हो गई और उन्हें जैन धर्म के प्रति आदर भाव पैदा हुआ ।

प्रभु की प्रतिमा इतनी सुंदर है तो वे प्रभु कितने सुंदर होंगे ! प्रभु के वचन कितने मधुर होंगे ?

अब वे जिनमत के जिज्ञासु बन गए । वे जिन वचनों को पाने के लिए तरसने लगे ।

आखिर एक दिन उन्हें जैन मुनि **घोषनंदी** का परिचय हुआ ।

सुधर्मास्वामी के 10 वें पट्टधर दिन्नसूरिजी के एक शिष्य थे, जिनका नाम **आर्य शांति श्रेणिक** था । उनसे उच्चा नागरी नाम की शाखा निकली थी । उसी उच्चा नागरी में पूर्वों के ज्ञाता वाचनाचार्य शिवजी हुए उनके ही शिष्य ग्यारह अंगों के धारक घोषनंदी थे । मुनि घोषनंदी के सत्संग-समागम से उमास्वाति के दिल में वैराग्य की ज्योत प्रकट हुई ।

मोहवश माता-पिता अपनी इकलौती संतान उमास्वाति को भागवती दीक्षा देने के लिए राजी नहीं थे ।

परंतु उमास्वाति के तीव्र वैराग्य भाव के आगे माता-पिता को झुकना पड़ा और आखिर वे दीक्षा दिलाने के लिए सहमत हो गए ।

एक शुभ दिन मंगल वेला में उनकी भागवती दीक्षा संपन्न हुई और वे **मुनि उमास्वाति** बने ।

तीक्ष्ण बुद्धि और ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्र क्षयोपशम के फल स्वरूप अल्प समय में ही उमास्वाति ग्यारह अंगों के ज्ञाता हो गए ।

उपकारी गुरुदेव ने अपने पास जो ज्ञान था, वह सारा ज्ञान उमास्वाति को प्रदान किया ।

गुरुदेव ने उनकी योग्यता-पात्रता जानकर पूर्वों के अभ्यास के लिए उन्हें क्षमाश्रमण मुंडपाद के शिष्य वाचनाचार्य **श्री मूल** के पास भेजा । पूर्वधर श्रीमूल के पास रहकर उमास्वातिजी ने पूर्वों का ज्ञान हासिल किया और पूर्वधर बने ।

–अनेक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि वे **पूर्वधर** महर्षि थे ।

(1) पूर्वधर की पहिचान के लिए वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर तथा वाचक शब्द का प्रयोग होता था, घोषनंदी पूर्वधर नहीं थे, परंतु वाचक **उमास्वाति पूर्वधर** थे ।

(2) अपने गुरुदेव के पास 11 अंगों का अभ्यास कर वाचनाचार्य श्रीमूल के पास उन्होंने पूर्वों का अभ्यास किया था और वे पूर्वधर बने थे ।

(3) नगरतालु के दिगंबरीय शिलालेख में मुनीश्वर उमास्वाति को **'श्रुतकेवलि देशीय'** कहा हैं, इससे भी वे पूर्वधर सिद्ध होते हैं ।

(4) उमास्वातिजी का समय वीर निर्वाण 770 हैं, जो पूर्वधरों का युग है । वे स्वयं अपने आपको उच्च नागर वाचक के रूप में परिचय देते है, इससे भी वे पूर्वधर सिद्ध होते है ।

वाचक उमास्वातिजी ने अपने जीवन काल दरमियान 500 धर्मग्रंथों का सर्जन किया था ।

आ. वादिदेवसूरिजी ने **प्रमाणनय-तत्त्वालोकालंकार** की स्वोपज्ञ टीका **'स्याद्वाद रत्नाकर'** तथा जिनदत्तसूरि ने `गणधर सार्धशतक की 50 वीं गाथा में उमास्वाति को 500 ग्रंथों के रचयिता के रूप में बताया है ।

अपने दुर्भाग्य से उन महापुरुष के द्वारा विरचित अधिकांश ग्रंथ लुप्त हो चूके है, उनमें से सिर्फ 7 ग्रंथ ही विद्यमान है ।

(1) तत्त्वार्थ सूत्र (2) तत्त्वार्थ भाष्य (3) प्रशमरति प्रकरण (4) जंबूद्वीप समास (5) क्षेत्र समास (6) श्रावक प्रज्ञप्ति और (7) पूजा प्रकरण ।

उनके द्वारा विरचित अनेक अनुपलब्ध ग्रंथों के अवतरण पाठ ठाणांग सूत्र की टीका, पंचाशक की टीका, उत्तराध्ययन की टीका आदि में मिलते है ।

'क्षये पूर्वा तिथिः कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा' उमास्वातिजी का प्रसिद्ध प्रघोष उन्हीं के किसी ग्रंथ में उपलब्ध था, जो तिथि की हानि-वृद्धि के संदर्भ में कर्तव्य की याद दिलाता है । उनके समय में जैन पंचांग लुप्त हो चूका था, इसलिए उन्होंने तिथि की क्षयवृद्धि के संदर्भ में अंगुली निर्देश किया है । पूर्व काल में जैन पंचांग में प्रतिवर्ष 6 तिथियों की हानि होती थी, वृद्धि नहीं । उमास्वातिजी महान् ग्रंथकार तो थे ही, इसके साथ ही वे महान् संग्राहक भी थे । कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने अपने व्याकरण में 2-2-39 सूत्र में उमास्वातिजी को **'उपोमास्वातिं संग्रहीतारः'** कहकर सर्व श्रेष्ठ संग्राहक की उपमा दी है ।

वर्तमान में जैनों के चार संप्रदायों में अन्य अन्य विषयों में कई मतभेद है ।

श्वेतांबर जिनागमों को प्रभु की वाणी के रूप में प्रमाणभूत मानते है, जबकि दिगंबर उन्हें प्रमाणभूत नहीं मानते है ।

श्वेतांबर मूर्तिपूजक 45 आगमों को प्रमाणभूत मानते है, जबकि स्थानकवासी 32 आगमों को ही मानते है । जबकि उमास्वातिजी विरचित **'तत्त्वार्थ सूत्र'** चारों संप्रदाय में मान्य है ।

इस लघुकाय तत्त्वार्थ सूत्र में जैन दर्शन के द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग और चरण करणानुयोग के समस्त पदार्थों का संक्षेप में समावेश किया गया है ।

इस तत्त्वार्थ सूत्र पर आ. सिद्धसेनगणि, हरिभद्रसूरि, यशोभद्रसूरि, मलयगिरिजी, उपा. यशोविजयजी आदि अनेक श्वेतांबरीय महापुरुषों ने टीकाएँ रची है तो कुछ सूत्रों में परिवर्तनकर दिगंबर आचार्यो ने भी सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, श्रुत सागरी आदि संस्कृत टीकाएं रची हैं ।

वि.सं. 1252 में **रत्नसूरिजी ने** अमम चरित्र में बहुत ही सुंदर बात कही है ।

'उमास्वाति–वाचकस्य, वाचः कस्य न चेतसि ।
ध्वनन्त्यद्यापि घण्टावत्, तारटङ्कारसुन्दरा ।।'

घंट के मधुरध्वनि की भांति आज भी उमास्वातिजी की वाणी किसके चित्त में नहीं गुंजती है ? जैन साहित्य में सूत्र ग्रंथों में यह प्रथम सूत्र ग्रंथ हैं । इसकी रचनाशैली अत्यंत ही गंभीर है ।

इसमें 10 अध्याय हैं, कुल 357 सूत्र है । पहले अध्याय में 33 सूत्र हैं, जिसमें ज्ञान के 5 भेदों का सुंदर वर्णन है । दूसरे अध्याय में पांच भावों और जीव तत्त्व का, तीसरे अध्याय में नरक तथा चौथे अध्याय में चारों निकाय के देवताओं का वर्णन है ।

पांचवे अध्याय में धर्मास्तिकाय आदि अजीव द्रव्य का वर्णन है । छट्ठे अध्याय में आश्रव तत्त्व, सातवें अध्याय में संवर तत्त्व, आठवें अध्याय में बंध तत्त्व, नौवें अध्याय में निर्जरा तत्त्व व दसवें अध्याय मे मोक्ष तत्त्व का सुंदर निरूपण है ।

चूर्णिकार श्री जिनदास गणि महत्तर-16

आगमों के रहस्य को जानना हो तो आगम पंचांगी का अभ्यास खूब जरूरी है ।

वर्तमान में यद्यपि सभी मूल आगमों पर **'आगम–पंचांगी'** उपलब्ध नहीं है ।

–मूल आगम के रचयिता गणधर भगवंत एवं 10 से 14 पूर्वधर महर्षि है ।

–मूल आगमों पर निर्युक्तियों के कर्ता अंतिम चौदह पूर्वधर **महर्षि भद्रबाहुस्वामी** है ।

–मूल व निर्युक्ति के गंभीर रहस्यों को जानने के लिए **जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण** ने चूर्णियों की रचना की हैं ।

–निर्युक्ति व भाष्य के पदार्थों के स्पष्टीकरण के कारण चूर्णियों की रचना हुई है ।

–चूर्णिकार के रूप में जिनदास गणी महत्तर की प्रसिद्धि है । चूर्णियाँ गद्यमय है और उनकी भाषा संस्कृत–प्राकृत मिश्र है । वर्तमान में 19 चूर्णियाँ उपलब्ध हैं–

1) नंदी 2) अनुयोग 3) आवश्यक 4) दशवैकालिक 5) उत्तराध्ययन 6) आचारांग 7) सूत्रकृतांग 8) निशीथ 9) व्यवहार 10) दशाश्रुतस्कंध 11) भगवती 12) जीवाभिगम 13) प्रज्ञापना सूत्र–शरीर पद 14) जंबूद्वीप प्रकरण 15) कल्प 16) कल्प विशेष 17) पंच कल्प 18) जीत कल्प 19) पाक्षिक ।

इनमें से आठ चूर्णियों के कर्ता–श्री जिनदास गणी महत्तर है ।

–चूर्णि साहित्य के अनुसार जिनदास गणी महत्तर के पिता का नाम नाग और माता का नाम गोया था । वे सात भाई थे–तीन भाई उनसे बडे और तीन छोटे थे ।

उनके गुरू का नाम गोपाल गणी था । जो प्रकांड विद्वान् थे । जिनदास महत्तर के विद्या गुरू का नाम प्रद्युम्न क्षमाश्रमण था । अपने गुरूदेव से उन्हें गणी पद प्राप्त हुआ था ।

निशीथ चूर्णि के अंत में उन्होंने रहस्यमय शैली में अपने नाम का परिचय दिया है ।

ति चउपण अट्ठम वग्गे ति तिग अक्खरा व तेसिं । पढम ततिए ही निदुसरजुए ही णामं कयं जस्स ।।

अर्थ :– अकार आदि स्वर प्रधान वर्णमाला का एक वर्ग मानने से अवर्ग से श वर्ग तक कुल आठ वर्ग होते है ।

इस प्रकार तीसरे च वर्ग का तीसरा अक्षर 'ज'

चौथे ट वर्ग का पांचवा अक्षर 'ण'

पांचवे त वर्ग का तीसरा अक्षर `द'

आठवें वर्ग का तीसरा अक्षर `स' ।

फिर प्रथम अ वर्ग की तीसरी मात्रा `इ'

दूसरी मात्रा `आ' को ज और द के साथ जोडने से जो नाम बनता है, उस नाम के धारक `जिनदास' ने इस चूर्णि का निर्माण किया है ।

साहित्य क्षेत्र में इस प्रकार की रहस्यमय शैली बहुत कम देखने को मिलती है ।

जिनदास गणी कृत चूर्णियाँ :–

1) नंदीचूर्णि :– ऐतिहासिक दृष्टि से इस चूर्णि का खूब महत्त्व है । इस चूर्णि में माथूरी आगम वाचना का इतिहास है ।

2) अनुयोग चूर्णि :– इस चूर्णि की रचना मूल सूत्रों के आधार पर हुई है ।

इसमें आराम, उद्यान, शिबिका आदि शब्दों की व्याख्याएं हैं । इसमें सात स्वर व नौ रसों का वर्णन है । जैन शास्त्र मान्य आत्मांगुल, उत्सेध अंगुल व प्रमाण अंगुल का विशेष वर्णन है ।

3) आवश्यक चूर्णि :– इसकी रचना में निर्युक्ति की गाथाओं का अनुसरण है भाष्य की गाथाओं का भी खूब उपयोग हुआ है ।

ऋषभदेव प्रभु का संपूर्ण जीवन वृत्तांत, वज्रस्वामी आर्यरक्षित, वज्रसेनसूरि आदि प्रभावक आचार्यों के विविध प्रसंग, चेटक व कोणिक के महासंग्राम का वर्णन है ।

4) दशवैकालिक चूर्णि :– इसमें निर्युक्ति के पदों का अनुसरण है । शय्यंभवसूरि का जीवन वृत्तांत मिलता है । इसमें कई प्रभावक कथाएं भी है ।

5) उत्तराध्ययन चूर्णि :– निर्युक्ति के पदों के आधार पर इसकी रचना है । इसमें कई प्रेरणादायी कथा प्रसंग है ।

6) आचारांग चूर्णि :– आचारांग निर्युक्ति के आाधार पर इसकी रचना हुई है । गद्यात्मक होने पर भी कई जगह संस्कृत के श्लोक है । इसमें उपयोगी रोचक कथाएं भी है ।

7) सूत्रकृतांग चूर्णि :– इस चूर्णि में वैनयिकवाद, नास्तिक मत, सांख्य मत, ईश्वर कर्तृत्व, नियतिवाद आदि दार्शनिक विषयों की भी खूब चर्चा की है ।

8) निशीथ चूर्णि :– जिनदास गणी की यह प्रौढ रचना है ।

इसकी रचना मूल सूत्र, निर्युक्ति व भाष्य के आधार पर है ।

इस ग्रंथ में 20 उद्देशक है । जैन श्रमण आचार संबंधी विधि-निषेध, उत्सर्ग–अपवाद मार्ग की विस्तृत जानकारी इस ग्रंथ से प्राप्त होती है ।

–नंदीचूर्णि के अनुसार ग्रंथकार का सत्ता समय विक्रम की आठवी शताब्दी है ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 323

आ.श्री वीरसूरिजी

स्तुति

प्रभु वीर के इक्कीसवें, पट्टधार वीरसूरि हुए,
मरूभूमि में विचरण करे, सांचोर और नागौर में,
मन में तथा मंदिर में, करते प्रभु की स्थापना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।25।।

भगवान महावीर की 21 वीं पाट परंपरा में शासन प्रभावक आचार्य श्री वीरसूरिजी हुए । वि.सं. 300 में उनके वरद हस्तों से नागोर में नमिनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा कराई थी । सांचोर में भी महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा कराई ।

वि.सं. 323, वीर सं. 793 में उनका अत्यंत समाधिपूर्वक कालधर्म हुआ था ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 833

आ.श्री जयदेवसूरिजी

स्तुति

विचरण किया ज्यादा समय, मरूभूमि के शुभ क्षेत्र में,
बाइसवें जयदेवसूरि, जिनधर्म की जय जय करे,
करे रणथंभोर पहाड़ में, पद्मप्रभ प्रतिष्ठापना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।26।।

महावीर प्रभु की 22 वीं पाट परंपरा में महान प्रभावक आचार्य श्री जयदेवसूरिजी हुए । 'वीर वंशावली' के अनुसार पू. जयदेवसूरिजी ने रणथंभोर के पहाड़ पर पद्मप्रभस्वामी के जिनालय की भव्य प्रतिष्ठा कराई थी ।

उनका अधिकांश विचरण मारवाड़ (राज.) में रहा । उस क्षेत्र में विचरण कर उन्होंने अपने उपदेश द्वारा अनेक राजपूतों को जैन बनाया था । जिनशासन की महान प्रभावना कर वि.सं. 363 वीर सं. 833 तथा ई.सं. 307 में वे स्वर्गवासी हुए थे ।



आ.श्री देवानंदसूरिजी

स्तुति

शास्त्रार्थ करके शैव धर्मी को बनाते जैन जो,
तेइसवें पट्टधार देवानंदसूरि जयकरो,
हुई माथुरी और वल्लभी, जिनागमों की वाचना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।27।।

महावीर प्रभु की 23 वीं पाट परंपरा में आचार्य श्री देवानंदसूरिजी हुए । उनका जीवन चरित्र कहीं मिलता नहीं है ।

वीर वंशावली के अनुसार उन्होंने सुथरी (कच्छ) में शास्त्रार्थ कर शैवों को परास्त किया था ।

प्रभास पाटण में उन्होंने पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा करवाई थी ।

उन्हीं के काल में चौथी आगम वाचना और वल्लभी भंग की ऐतिहासिक घटनाएं बनी थी ।

माथुरी और वल्लभी–चौथी आगम वाचना

महावीर प्रभु के निर्वाण की नौवीं सदी के प्रथम चरण में चारों ओर अशांति का वातावरण था । सौराष्ट्र में बौद्धाचार्य नंद ने वितंडावाद फैलाया था ।

उत्तर भारत में हूण और गुप्त के बीच भयंकर युद्ध हुआ । जिसके फल स्वरूप प्रजा की कठिनाइयों का कोई पार नहीं था ।

इसी बीच 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा । जिसके फल स्वरूप चारों ओर अन्न-जल की तंगी आ गई । लोग भूखे मरने लगें ।

इन विकट संयोगों में जैन श्रमणों की विहारचर्या भी खूब कठिन हो गई । गोचरी में आहार-पानी की दुर्लभता के कारण अध्ययन–अध्यापन की प्रवृत्ति रुक गई ।

ऐसी परिस्थिति में जिनागमों का अस्तित्व नष्ट होने के कगार पर आ खड़ा हुआ ।

श्रुतधरों की संख्या कम हो रही थी, अतः किसी भी संयोग में जिनागमों को टिकाने का प्रश्न उपस्थित हुआ ।

विहार की दुष्करता के कारण भारत भर के सभी श्रमणों का एक ही जगह इकट्ठा होना संभव

नहीं था । अतः 12 वर्ष के बाद जब सुकाल का वातावरण बना, तब वीर सं. 827 से 840 के बीच स्कंदिलाचार्य की निश्रा में मथुरा नगरी में श्रमण संघ इकट्ठा हुआ । जिसे जितना याद था, उसे संकलित कर सभी कालिक श्रुत को व्यवस्थित किया गया । इस उद्धार को माथुरी वाचना नाम दिया गया । इस आगम वाचना में सर्वानुमति से तैयार किए पाठों को पुस्तकारूढ किया गया ।

इस विराट् कार्य में गुरुबंधु मधुमित्राचार्य एवं उनके शिष्य गंधहस्तिसूरिजी आदि 125 स्थविरों का सहयोग मिलने से 11 अंगों को व्यवस्थित किया गया ।

आ. गंधहस्ति ने 11 अंगों पर निर्युक्ति के अनुसार विवरण भी तैयार किए । वे तीन पूर्वों के ज्ञाता थे । उन्होंने तत्त्वार्थ पर 80000 श्लोक प्रमाण महाभाष्य भी रचा था ।

माथुरी वाचना के अग्रणी आ. स्कंदिलसूरिजी वि.सं. 200 में जन्मभूमि मथुरा में अनशनपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए ।

इधर दक्षिणापथ में नागार्जुनसूरिजी की निश्रा में वल्लभीपुर नगर में आगम वाचना वि.सं. 830 से 840 के बीच हुई और सर्व सम्मति से आगम पाठों को पुस्तकारूढ किया गया । इस वाचना में पू.आ.श्री गोविंदसूरि व मल्लवादीसूरि का पूर्ण सहयोग रहा ।

इन दोनों वाचनाओं के आगम पाठों को परस्पर मिलाकर किसी एक पाठ का निर्णय करना था, परंतु कुछ विषम संयोगों के कारण यह कार्य संपन्न न हो सका । इस कारण आ. स्कंदिलसूरि व आ. नागार्जुन की वाचना के दोनों पाठ कायम रहे ।

द्वादशांगी के रचयिता तीर्थंकर परमात्मा के मुख्य शिष्य बीजबुद्धि के निधान गणधर भगवंत होते हैं ।

वल्लभीपुर आगम वाचना में जिन 84 आगमों का संकलन हुआ, उनका संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है–

1. आचारांग सूत्र : द्वादशांगी में सर्वप्रथम आचारांग सूत्र है-इसमें श्रमणों के ज्ञानाचार आदि आचारों का विस्तार से वर्णन है । दशवैकालिक की रचना के पूर्व दीक्षा के बाद आचारांग सूत्र के योगोद्वहन होते थे और उसके बाद ही बडी दीक्षा होती थी ।

आचारांग सूत्र से भावित मुनि संयम धर्म की साधना में उत्तरोत्तर आगे बढ़ सकता है ।

2. सूत्रकृतांग सूत्र : इस आगम में स्वदर्शन और परदर्शन को मान्य सभी पदार्थों का वर्णन है । इस अंग के अध्ययन से स्व-पर-दर्शन के पदार्थों का सूक्ष्म व स्पष्ट बोध होता है ।

3. स्थानांग सूत्र : इस आगम में एक से लेकर दश तक की संख्यावाले पदार्थों का सुंदर संकलन है ।

4. समवायांग सूत्र : इस आगम से जीव आदि पदार्थों का संख्या के माध्यम से सूक्ष्म बोध होता है ।

5. विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र : इस आगम का दूसरा नाम भगवती सूत्र भी है । इस आगम में गौतम स्वामीजी आदि द्वारा पूछे गए और प्रभु महावीर द्वारा दिए गए 36 हजार प्रश्नों के उत्तर हैं ।

उत्कृष्ट भाव से विधिपूर्वक भगवती सूत्र की आराधना करे...तो साधु तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

6. ज्ञाताधर्मकथा : इस आगम में धर्म के मर्म को बतानेवाले दृष्टांत हैं । इस आगम में 3½ करोड कथाएं थी । पूर्व के महापुरुषों के चरित्र का स्वाध्याय करने से संयम में वीर्योल्लास बढ़ता है ।

7. उपासकदशांग : भगवान महावीर के मुख्य दश महाश्रावकों की सत्त्वयुक्त साधना का वर्णन है । इस आगम से साधु को यह प्रेरणा मिलती है कि **'श्रावक की भूमिका में रहे हुए भी जब उपसर्गों को समतापूर्वक सहन कर सकते हैं तो साधुओं को तो विशेष प्रकार से सहन करना चाहिए ।'**

8. अंतकृद्दशांग सूत्र : अंत मुहूर्त में सर्व कर्म का अंत करनेवाले चरमशरीरी जीवों की अंतिम साधना का सुंदर वर्णन है । इस आगम के स्वाध्याय से संसार का अंत लाने के लिए सुंदर प्रेरणा मिलती है ।

9. अनुत्तरोपपातिक दशांग : संयम की श्रेष्ठ साधना के फलस्वरूप जिन्होंने कर्म का संपूर्ण क्षय नहीं किया हो परंतु संसार को खूब मर्यादित कर दिया हो, वे महात्मा अपने देह का त्याग कर सर्वार्थसिद्ध विमान आदि पाँच अनुत्तर में पैदा होते हैं । वे देवता वीतराग तुल्य मनोवृत्ति के धारक होते हैं । तत्त्वचिंतन में ही उनका समय व्यतीत होता है । उन देवताओं संबंधी विस्तृत विवेचन इस आगम में है ।

10. प्रश्नव्याकरण : इस आगम में पाँच संवर और पाँच असंवर भावों (आश्रवों) का वर्णन है, इसके स्वाध्याय से असंयम से बचने की सुंदर प्रेरणा मिलती है । इसमें पूर्वकाल में विविध मंत्र व विद्याएँ थीं ।

11. विपाकसूत्र : शुभ-अशुभ कर्म के फल को विपाक कहते हैं । शुभ कर्मों का कितना सुंदर फल है और अशुभ कर्म का कितना भयंकर परिणाम होता है उसका विस्तार से वर्णन इस आगम में है । इस आगम के स्वाध्याय से अशुभ कर्मबंध के कारणभूत प्रमाद से बचा जा सकता है और निर्जरा के उपायों के सेवन का बल मिलता है । हिंसादि के विविध नाम बताए है ।

12. आवश्यक सूत्र : इसमें 1. सामायिक 2. चतुर्विंशति स्तव 3. गुरु वंदन 4. प्रतिक्रमण 5. कायोत्सर्ग और 6. प्रत्याख्यान ये छह अंग है । इसकी रचना गणधर व पूर्वधरों ने की है । पक्खीसूत्र व श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र भी इसी के साथ जुड़े है ।

13) दशवैकालिक सूत्र : भगवान महावीर के तीसरे पट्टधर प्रभवस्वामी के शिष्य शय्यंभवसूरिजी म. ने अपने शिष्य व सांसारिक पुत्र मनक मुनि (जिनका छह मास का ही आयुष्य बाकी था) के आत्महित के लिए 14 पूर्वों में से उद्धृत करके इस सूत्र की रचना की है । मध्याह्न के बाद और सूर्यास्त के पूर्व विकाल समय में इसकी रचना होने से इसे वैकालिक कहते हैं । इसके दश अध्ययन होने से यह सूत्र दशवैकालिक कहलाता है । इसमें साधुजीवन के उत्तम आचारों का वर्णन है ।

मनक मुनि की मृत्यु के बाद आचार्य भगवंत इस ग्रंथ का उपसंहार करनेवाले थे, परंतु संघ की विनंति को ध्यान में रखकर संघ के उपकार के लिए इस ग्रंथ को जीवंत रखा गया ।

वर्तमान में दीक्षा लेने के बाद, आवश्यक सूत्रों के बाद इसी सूत्र के योगोद्वहन कराए जाते हैं । उसके बाद बड़ी दीक्षा होती है ।

सीमंधर स्वामी भगवंत के पास से यक्षा साध्वी को प्राप्त दो चूलिकाएँ भी इसी ग्रंथ के अंत में जुड़ी हुई हैं ।

14. कल्पिक-अकल्पिक सूत्र : साधु के लिए कौन से पदार्थ कल्प्य हैं और कौन से पदार्थ अकल्प्य हैं ? इसका विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में है । इस सूत्र को आत्मसात् करने से अकल्प्य के त्याग व कल्प्य के सेवन में उद्यमशील बन सकते हैं ।

15. चुल्ल (लघु) कल्प सूत्र : इस सूत्र में स्थविरकल्प-जिनकल्प आदि का प्रतिपादन है । इस सूत्र के अभ्यास से जिनकल्प व स्थविरकल्प के आचारों का बोध होता है ।

16. महाकल्प सूत्र : चुल्लकल्प सूत्र में जिनकल्प-स्थविरकल्प का संक्षेप में वर्णन है, इस सूत्र में इनका विस्तार से वर्णन है ।

17. औपपातिक सूत्र : आचारांग सूत्र का यह उपांग है । इसमें देव और नारक के उपपातजन्म और मोक्षगमन का वर्णन है । इस सूत्र के अध्ययन से संसार व मोक्ष के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है ।

18. राजप्रश्नीय : सूत्रकृतांग अंग का यह उपांग है । इस उपांग में प्रदेशी राजा और केशी गणधर तथा सूर्याभदेव और वीर प्रभु की प्रश्नोत्तरी का वर्णन है ।

19. जीवाजीवाभिगम सूत्र : यह ठाणांग सूत्र का उपांग है, इसमें जीव और अजीव के स्वरूप का विस्तार से वर्णन है । इस सूत्र के अभ्यास से जीवों की रक्षा की प्रेरणा मिलती है और अजीव से अपनी आत्मा के भेद का बोध प्राप्त होता है ।

20. प्रज्ञापना सूत्र : समवायांग सूत्र का यह उपांग है । इसमें जीव पदार्थ के 36 अध्ययन हैं । जीव पदार्थ का सूक्ष्म बोध प्राप्त होता है ।

21. महाप्रज्ञापना सूत्र : यह प्रज्ञापना सूत्र का ही विस्तार है ।

22. प्रमाद–अप्रमाद सूत्र : इसमें प्रमाद व अप्रमाद के परिणाम का वर्णन है ।

23. नंदी सूत्र : इस सूत्र में मतिज्ञान आदि पाँच ज्ञान के स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है । दीक्षा, बड़ी दीक्षा, गणि-पंन्यास पदवी, उपधान प्रवेश-मोक्षमाला, व्रत आरोपण आदि प्रसंगों में मंगल के लिए संक्षेप में नंदीसूत्र सुनाया जाता है और आचार्य पदवी के प्रसंग पर 700 गाथा प्रमाण संपूर्ण नंदी सूत्र का पाठ होता है ।

24. अनुयोगद्वार : अनुयोग अर्थात् व्याख्यान ! उसके उपक्रम आदि चार द्वार हैं । आगम ग्रंथों के अभ्यास में सुखपूर्वक प्रवेश के लिए यह ग्रंथ चाबी के समान है ।

25. देवेन्द्रस्तव सूत्र : चमरेन्द्र-बलीन्द्र आदि इन्द्रों के भवन, स्वरूप तथा स्थिति आदि

का सुंदर वर्णन है। उत्तम धर्म की विशुद्ध आराधना के फल-स्वरूप यदि उसी भव में मोक्ष की प्राप्ति न हो तो आत्मा अवश्य ही देव बनती है। देवों के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं।

26. तंदुलवैचारिक सूत्र : 100 वर्ष के आयुष्यवाले पुरुष से प्रतिदिन भोग्य ऐसे तंदुल की संख्या को बतानेवाला ग्रंथ तंदुलवैचारिक सूत्र है। गर्भावस्था आदि दश अवस्थाओं का वर्णन है।

27. चंद्रावेध्यक सूत्र : चन्द्र अर्थात् राधा नाम की यांत्रिक पुतली की आंख की कनीनिका, उसको सावधानीपूर्वक बींधना उसे राधावेध कहते हैं। राधावेध की साधना अत्यंत कठिन है। मृत्युसमय समाधिभाव रखना, राधावेध के समान कठिन है। उसे समझानेवाला यह ग्रंथ है।

28. प्रमादाप्रमाद : श्रमणजीवन की प्राप्ति के बाद भी प्रमाद के वशीभूत होकर जीव सब कुछ हार जाता है, अतः संयम धर्म की साधना खूब अप्रमत्त भाव से करनी चाहिए। अप्रमाद से लाभ और प्रमाद से होनेवाले नुकसानों को बतानेवाला यह ग्रंथ है।

29. पौरुषीमंडल सूत्र : पोरिसी अर्थात् पुरुष प्रमाण छाया जिस समय होती है, उसे पोरिसी (दिन का चौथा भाग अर्थात् एक प्रहर) कहते हैं। श्रमणजीवन की सभी क्रियाएँ उचित समय में कर सके, इस हेतु पोरिसी के काल को समझने के लिए यह ग्रंथ उपयोगी है।

30. मंडलप्रवेश सूत्र : इस ग्रंथ में सूर्य और चंद्र के उत्तर व दक्षिण मंडल में प्रवेश की व्यवस्था बताई गई है।

31. गणिविद्या सूत्र : गण के नायक गणी अर्थात् आचार्य। आचार्य भगवंत को दीक्षा आदि कार्यों में ज्योतिष व निमित्त का ज्ञान जरूरी है। उसके विषय में सारी जानकारी इस ग्रंथ में विद्यमान है।

32. विद्याचरण विनिश्चय सूत्र : विद्या अर्थात् ज्ञान और चरण अर्थात् चारित्र। सम्यग्दर्शन से युक्त सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना के श्रेष्ठ फल आदि का वर्णन इस ग्रंथ में विद्यमान है।

33. ध्यानविभक्ति सूत्र : आर्तध्यान-रौद्रध्यान तथा धर्मध्यान-शुक्लध्यान के विस्तृत स्वरूप का वर्णन इस ग्रंथ में है। इसके बोध से साधु दुर्ध्यान से बच सकता है और शुभ ध्यान में उद्यमशील बन सकता है।

34. मरणविभक्ति सूत्र : शास्त्र में मरण के 17 प्रकार बताए हैं-उन सभी प्रकार के मरणों को जानने-समझने के लिए यह एक अद्भुत ग्रंथ है।

35. आत्मविशोधि सूत्र : जाने-अनजाने में हुए पापों की शुद्धि के लिए जैनदर्शन में प्रायश्चित्त का विधान है। भूल हो जाने के बाद सच्चे हृदय से भूल का स्वीकार कर उसका प्रायश्चित्त करने से आत्मा शुद्ध हो जाती है। प्रायश्चित्त संबंधी इस ग्रंथ के स्वाध्याय से शुद्ध संयम की आराधना के लिए प्रेरणा मिलती है।

36. संलेखना सूत्र : विगई आदि के त्याग द्वारा जो अनशन करते हैं, उसे द्रव्य संलेखना कहते हैं और क्रोध आदि कषायों की प्रतिपक्षी भावना द्वारा आत्मा को भावित करने को भावसंलेखना कहते हैं। संलेखना संबंधी विस्तृत जानकारी इस सूत्र में है।

37. वीतराग सूत्र : इस ग्रंथ में वीतराग परमात्मा के स्वरूप का सुंदर वर्णन है । संसार के सभी दु:खों का मूल राग-द्वेष की परिणति है तथा वास्तविक सुख का मार्ग राग-द्वेष का त्याग है ।

38. विहारकल्प सूत्र : इस ग्रंथ में स्थविर कल्प और जिनकल्प आदि का विस्तार से वर्णन है । इसके बोध से अपनी-अपनी भूमिकानुसार संयम की साधना में आगे बढ़ सकते हैं ।

39. चरणविधि सूत्र : इस ग्रंथ में साधुजीवन के आचारों का सुंदर वर्णन है । इसके स्वाध्याय से चारित्र में सूक्ष्म यतना के पालन का बल मिलता है ।

40. आतुरप्रत्याख्यान सूत्र : आतुर अर्थात् बीमार–रोगी हो, उसे गुरुदेव धीरे-धीरे आहार के त्याग रूप प्रत्याख्यान कराकर अंत में सभी द्रव्यों के त्याग हेतु प्रेरणा देकर अंत में भवचरिम पच्चक्खाण कराते हैं ।

ग्लान अवस्था में आत्महित के लिए किस प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए, इसका स्पष्ट बोध इस ग्रंथ के स्वाध्याय से प्राप्त होता है ।

41. महाप्रत्याख्यान सूत्र : इस ग्रंथ में स्थविरकल्पी अथवा जिन- कल्पी साधुभाव से साधुता का पालन कर अंत में संलेखनापूर्वक भवचरिम पच्चक्खाण करता है-उसका विस्तार से वर्णन है ।

स्थविर कल्प में जीवन के अंत में 12 वर्ष की संलेखना बताई है, उसके बाद अपने सामर्थ्य के अनुसार साधु अनशन स्वीकार करता है, उसे महाप्रत्याख्यान कहते हैं ।

42. उत्तराध्ययन सूत्र : प्राचीन काल में आचारांग सूत्र के अध्ययन के बाद में इस ग्रंथ का अध्ययन होने से इसे उत्तराध्ययन सूत्र कहते हैं । वर्तमान में दशवैकालिक के बाद में इसका अध्ययन होता है । इस ग्रंथ में विनय आदि 36 अध्ययन हैं । भगवान महावीर की अंतिम देशना का सार है ।

43. दशाश्रुतस्कंध : इस ग्रंथ में दश अध्ययन हैं ।

44. कल्पसूत्र : साधु के आचारों का प्रतिपादन होने से इसे कल्पसूत्र कहते हैं ।

45. व्यवहार सूत्र : इसमें आगम आदि पाँच व्यवहारों का तथा प्रायश्चित्त का वर्णन है ।

46. ऋषिभाषित सूत्र : नेमिनाथ प्रभु के शासन में नारद आदि 20, पार्श्वनाथ प्रभु के शासन में 15 तथा महावीर प्रभु के शासन में 10 प्रत्येक बुद्ध महर्षि हुए हैं । उनके द्वारा कहे गए 45 अध्ययन का संग्रह इस ग्रंथ में है ।

केवली, 14 पूर्वधर व 10 पूर्वधर की भाँति प्रत्येकबुद्ध का भी वचन साक्षात् प्रमाण रूप माना जाता है ।

47. निशीथ सूत्र : निशीथ अर्थात् रात्रि ! रात्रि के अंधकार में कुछ दिखाई नहीं देता है, इस सूत्र के गंभीर अर्थ सामान्य साधु को नहीं बताए जाते हैं । विशेष योग्यतावाले साधु को ही इस

ग्रंथ का अध्ययन रात्रि में कराया जाता है । उसी कारण इसे निशीथ सूत्र कहते हैं । वर्तमान में विद्यमान 45 आगमों में इसका समावेश छेदसूत्रों में किया गया है ।

48. महानिशीथ सूत्र : निशीथ सूत्र की भाँति महान् अर्थों से भरा होने से इसे महानिशीथ कहते हैं । यह ग्रंथ भी विशिष्ट योग्यतावाले मुनियों को ही पढ़ाया जाता है । इसमें भी प्रायश्चित्त और उत्सर्ग–अपवाद का वर्णन है ।

49. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति : इसमें जंबूद्वीप आदि द्वीपों का सुंदर वर्णन है ।

50. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र : सूर्य के मंडल-परिभ्रमण तथा गति आदि का वर्णन है ।

51. चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र : इस ग्रंथ में चंद्र के परिभ्रमण आदि का वर्णन है ।

52. द्वीप–सागर प्रज्ञप्ति : जंबूद्वीप आदि द्वीप और लवण समुद्र आदि सागरों का वर्णन है ।

53. क्षुद्रिका–विमान प्रविभक्ति : इसमें छोटे छोटे देव विमानों की पंक्तियों का वर्णन है ।

54. महती विमान प्रविभक्ति : इसमें बडे बडे देव विमानों की पंक्तियों का वर्णन है ।

55. अंगचूलिका : आचारांग आदि अंग सूत्रों पर रची गई चूलिकाओं को अंगचूलिका कहते हैं ।

56. वर्गचूलिका : वर्ग अर्थात् अध्ययन आदि का समूह । उदा. अंतकृत् दशांग में आठ वर्ग-आठ अध्ययन हैं । उन अध्ययनों के समूह रूप वर्ग पर जो चूलिका है उसे वर्गचूलिका कहते हैं ।

57. व्याख्या–चूलिका : भगवती सूत्र पर रची गई चूलिका को विवाह चूलिका कहते हैं ।

58. अरुणोपपात सूत्र : अरुण नाम का देव है, उसके संकेत से निबद्ध ग्रंथ है । उपयोगपूर्वक इसका अध्ययन करने से अरुणदेव का आगमन होता है । वह देव आकर महात्मा को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है और वरदान मांगने के लिए प्रार्थना करता है, परंतु इस लोक की इच्छा से रहित निःस्पृही महात्मा किसी भी प्रकार की भौतिक कामना नहीं करते हैं, तब वह देव संवेग से भावित होकर महात्मा को वंदन कर पुनः अपने स्थान में चला जाता है ।

59 से 63. वरुणोपपात सूत्र, गरुडोपपात सूत्र, वैश्रमणोपपात सूत्र, वेलंधरोपपात सूत्र तथा देवेन्द्रोपपात सूत्र : कोई साधु जब उपयोगपूर्वक वरुणोपपात आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करता है, तब क्रमशः वरुणदेव, धरणदेव, गरुडदेव, वैश्रमणदेव, वेलंधरदेव और देवेन्द्र का आगमन होता है । वे भी मुनि को वरदान की प्रार्थना करते हैं, परंतु निःस्पृही महात्मा के विरक्त भाव को देखकर संवेग से भावित होकर पुनः अपने स्थान में चले जाते हैं ।

64. उत्थान सूत्र : संघ आदि के कार्य के लिए किसी एक कुल, ग्राम या राजधानी को लक्ष्य में रखकर कोई साधु संकल्प कर अप्रसन्न लेश्यावाले इस सूत्र का उपयोगपूर्वक पाठ करते हैं, उसके साथ ही वह कुल, ग्राम आदि आकुल-व्याकुल हो जाता है, उस ग्राम आदि में रहनेवाले लोग भागने लगते हैं ।

65. समुत्थान सूत्र : उत्थान सूत्र के द्वारा गाँव-नगर आदि में कोलाहल हो जाता है, उसके बाद वहाँ के राजा आदि अपनी भूल का स्वीकार कर क्षमा माँगते हैं, तब वे महात्मा समुत्थान सूत्र का उपयोगपूर्वक स्वाध्याय कर उस वातावरण को शांत कर देते हैं ।

66. नागपरियावलिका सूत्र : इस सूत्र के स्वाध्याय से नागकुमार देवता अपने स्थान में रहकर महात्मा को वंदन-नमस्कार करते हैं और संघ आदि के कार्य में महात्मा को वरदान देते हैं।

67. निरयावलिका सूत्र : नरक में जानेवाले मनुष्य व तिर्यंचों का वर्णन इस ग्रंथ में है।

68. कल्पिका सूत्र : इस सूत्र में सौधर्म आदि देवलोक में रहे देवताओं के आचारों का वर्णन है।

69. कल्पावतंसिका सूत्र : सौधर्म और ईशान देवलोक में जो कल्प- प्रधान विमान हैं वे कल्पावतंसिका कहलाते हैं। तप विशेष के प्रभाव से उनमें उत्पन्न होनेवाली देवियों के स्वरूप एवं ऋद्धि आदि का वर्णन इस ग्रंथ में है।

70. पुष्पिका सूत्र : संयम धर्म की निर्मल आराधना से जीव वर्तमान में किस प्रकार सुखी होता है और भविष्य में भी सुख की परंपरा को प्राप्त करता है। संयम से भ्रष्ट जीव किस प्रकार दुःखी होता हैं और पुनः उपदेश को प्राप्तकर संयम में स्थिर होकर किस प्रकार सुख प्राप्त करता हैं, उसका विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में है। इस ग्रंथ के स्वाध्याय से संयमपालन में उल्लास बढ़ता है और प्रमाद दूर होता है।

71. पुष्पचूलिका सूत्र : पुष्पिका ग्रंथ के ही पदार्थों को और अधिक विस्तार से इस सूत्र में बतलाया है, इस सूत्र के स्वाध्याय से संयम में उत्साह बढ़ता है।

72-73. वृष्णिका सूत्र-वृष्णि दशा सूत्र : वृष्णिका सूत्र में अंधक वृष्णि राजा के जीवनचरित्र का विस्तार से वर्णन है तथा वृष्णिदशा में समुद्रविजय, वसुदेव आदि दश पुत्रों के जीवन का वर्णन है। इनके स्वाध्याय से उत्तम पुरुषों की विशिष्ट प्रकृति का बोध होता है।

74. आशीविष भावना सूत्र : आशीविष अर्थात् साँप आदि का जहर। यह जहर दो प्रकार का होता है-जन्म से और कर्म से। बिच्छु, मेंढ़क, साँप व मनुष्य का जहर क्रमशः अधिक शक्तिशाली होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य व सहस्रार देवलोक के देवता कर्म से आशीविष होते हैं। अर्थात् शाप आदि देकर दूसरों का नाश करते हैं।

देवता अपर्याप्त अवस्था में ही कर्म से आशीविष होते हैं।

पूर्व के मनुष्य भव में आशीविष लब्धि प्राप्त कर जो सहस्रार तक के देवलोक में पैदा होते हैं, वे अपर्याप्त अवस्था तक आशीविष लब्धिवाले होते हैं। देवता को पर्याप्त अवस्था में आशीविष लब्धि नहीं होती है क्योंकि वे अपनी दिव्य शक्ति द्वारा ही किसी का विनाश करने में समर्थ होते हैं।

75. दृष्टिविष भावना सूत्र : जिसकी नजर में जहर हो उसे दृष्टिविष कहते हैं। उसे प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ दृष्टिविष भावना सूत्र है।

76. चारण–श्रमण भावना सूत्र : आकाश में बहुत दूर तक उड़ने की शक्तिवाले मुनियों को चारण मुनि कहते हैं। वे मुख्यतया दो प्रकार के हैं–

(1) विद्याचारण : किसी आगम विशेष की मुख्यतावाले चारण मुनि को विद्याचारण कहते हैं।

विधिपूर्वक सातिशय सदैव छट्ठ तप करते हुए विद्याचारण लब्धि प्राप्त करते हैं।

इस लब्धिवाले एक कदम से मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर वहाँ के चैत्यों को वंदन करते हैं फिर दूसरे कदम से नंदीश्वर द्वीप जाते हैं फिर तीसरे कदम से पुनः अपने स्थान में आ जाते हैं।

वे ऊर्ध्वगति द्वारा एक उत्पात से मेरुपर्वत के नंदनवन में जाकर चैत्यों को वंदन करते हैं, फिर दूसरे उत्पात से पांडुकवन में जाते हैं और तीसरे उत्पात से अपने स्थान में आ जाते हैं।

(2) जंघाचारण मुनि : सूर्य की किरणों का आलंबन लेकर जंघा द्वारा आकाश में उड़ने वाले जंघाचारण कहलाते हैं।

वे अट्ठम के पारणे अट्ठम करते हैं। वे मुनि एक उत्पात (कदम) से रुचकवर द्वीप व दूसरे उत्पात से नंदीश्वर द्वीप आते हैं और तीसरे उत्पात से अपने स्थान में लौटते हैं।

ऊर्ध्वगति द्वारा वे एक उत्पात से पांडुकवन में और दूसरे उत्पात से नंदनवन में और तीसरे उत्पात से अपने स्थान में आ जाते हैं।

77. महास्वप्न भावना सूत्र : इस आगम में गज, वृषभ आदि महा- स्वप्नों का वर्णन है।

78. तैजस निसर्ग सूत्र : आहार के पाचन का कारण तैजस शरीर है। साधना द्वारा तैजस शरीर को बाहर निकालने की शक्ति पैदा होती है, जिससे तेजोलेश्या शीतलेश्या छोड़ सकते हैं, इन सबका वर्णन इस ग्रंथ में है।

79. दोगिद्धि दशा : इसमें वात-विवात-उववात, सुक्खित्त, कसिण, 42 स्वप्न, 30 महास्वप्न, हरि, राम तथा गुप्त आदि 10 अध्ययन है।

80. दीर्घ दशा : इसमें 10 अध्ययन है। जिसमें आचार्य संभूतिविजय तथा आ. पद्म के दृष्टांत है।

81. बंध दशा : इसमें भी 10 अध्ययन है।

82. संक्षिप्त दशा : इसमें लघुविमान प्रविभक्ति आदि के 10 अध्ययन है।

83. प्रश्न व्याकरण दशा : यह सूत्र प्रश्न व्याकरण का एक विभाग या सार रूप है।

84. पंच कल्प : बृहत् कल्प भाष्य का अंग है।

संसक्त निर्युक्ति : आचार्य भद्रबाहुसूरि कृत निर्युक्तियाँ, आ. संघदास गणि कृत भाष्य का संग्रह ! सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति का विषय है।

इन 84 आगमों में 11 अंग के रचनाकार सुधर्मास्वामीजी हैं। शेष आगम के रचनाकार प्रभुमहावीर के शिष्य प्रत्येक बुद्ध तथा अन्य पूर्वधर है।

वर्तमान में इन 84 आगमों में से 45 आगम उपलब्ध है।

तार्किक शिरोमणि आचार्य मल्लवादीसूरिजी-17

भरूच में जिनानंदसूरि विराजमान थे । उस समय बौद्धानंद नामक बौद्धाचार्य भी वहीं था । एक बार दोनों के बीच राजसभा में वाद हुआ । वितंडावाद के कारण जैनाचार्य की हार हो गई । जिनानंदसूरि वल्लभीपुर में पधारे, वहां राजा शिलादित्य की बहिन दुर्लभादेवी रहती थी । उसके तीन पुत्र थे जिनयश, यक्ष और मल्ल । आचार्य महाराज की देशना से मां सहित तीनों पुत्रों की दीक्षा हुई, तीनों धुरंधर विद्वान् बने । मल्ल की बुद्धि खूब तीक्ष्ण थी ।

पूर्व महर्षियों ने पांचवें ज्ञान प्रवाद पूर्व में से अज्ञाननाशक **'द्वादशारनयचक्र ग्रंथ'** का उद्धार किया था, जो ग्रंथ एकांत में गुप्त रखा था । गुरु आज्ञा के बिना उसे कोई पढ़ नहीं सकता था ।

गुरुदेव ने साध्वी दुर्लभादेवी की हाजरी में कहा, `मल्ल मुनि ! पूर्वाचार्य निषिद्ध उस पुस्तक को मत पढ़ना ।' आचार्य जिनानंदसूरि वहां से विहार कर गए ।

बाल स्वभाव के कारण मल्लमुनि ने माँ साध्वी की अनुपस्थिति में वह पुस्तक उठा ली और पहला श्लोक पढ़ लिया ।

विधि नियम-भङ्ग वृत्ति-व्यतिरिक्तत्वादनर्थकमवोचत् ।
जैनादन्यच्छासन–मनृत्तं भवतीति वैधर्म्यम् ।।

भावार्थ : जैन दर्शन को छोड़ अन्य दर्शन असत्य क्यों हैं ? क्योंकि वहां विधि, नियमभंग और वृत्ति नहीं हैं । इस कारण वे अनर्थ रूप होने से अधर्म रूप हैं ।

मल्लमुनि उस श्लोक का चिंतन कर ही रहे थे कि श्रुतदेवता ने उनके पास से वह पुस्तक छीन ली । इससे मुनि मल्ल को अत्यंत दुःख हुआ और वे रोने लगे । साध्वीजी म. को पता चला । इससे सबको दुःख हुआ ।

मुनि मल्ल ने अनेक उपाय सोचे । अंत में गिरिखंड पर्वत की गुफा में जाकर छट्ठ व पारणे में रुक्ष आहार लेकर सरस्वती की साधना में लीन बनकर चार मास पूर्ण किए । इसके बाद मां ने तथा संघ ने विगई लेने का अत्यंत आग्रह किया, किन्तु मल्ल मुनि ने निषेध किया । अंत में छह मास के बाद श्रुतदेवता ने संतुष्ट होकर परीक्षा के लिए मुनि से अनेक प्रश्न किए ।

देवी ने पूछा, `मीठा भोजन कौनसा ?'

मुनि ने कहा, `वाल ।'

यह बात वहीं समाप्त हो गई । फिर छह मास के बाद देवी ने पूछा, `किसके साथ ?'

मुनि ने कहा, `गुड के साथ ।'

मुनि मल्ल की स्मरणशक्ति को देख देवता ने वरदान दिया । मुनि ने पुस्तक मांगी । देव ने कहा, `पुस्तक तो नहीं मिलेगी, क्योंकि उसके पढ़ने से अनेक उपसर्ग होंगे, किन्तु मैं वरदान देती हूं कि आप एक श्लोक से वह संपूर्ण ग्रंथ बना सकोगे । मल्लमुनि ने **द्वादशार ग्रंथ** की रचना की ।

प्रसन्न होकर राजा और प्रजा ने हाथी की अंबारी पर ग्रंथ रखकर उसका स्वागत किया । सबको आश्चर्य हो गया । गुरु का आगमन हुआ । मल्लिमुनि को आचार्य पद दिया ।

मल्ल आचार्य को बौद्धानंद से स्वगुरुदेव का पराजय सुनकर-दु:ख हुआ । वे भरूच पहुंचे ।

राजसभा में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ ।

सभासदों ने मल्लवादीसूरिजी को पूर्वपक्ष की स्थापना का निर्देश किया । आचार्य भगवंत ने **'द्वादशार नयचक्र'** ग्रंथ के आधार पर संस्कृत भाषा में अस्खलित प्रवाह से पूर्व पक्ष की स्थापना प्रारंभ की । पहला दिन पूरा हो गया परंतु 'पूर्वपक्ष' पूरा नहीं हुआ । दूसरे दिन भी उनकी वाग्धारा अस्खलित रही ! इस प्रकार छ महिने तक वे बोलते रहे । कहीं पर भाषा की लेश भी भूल नहीं थी ।

अब पूर्वपक्ष का खंडन करने के लिए बौद्धानंद को बोलना था, परंतु वह इतने लंबे पूर्वपक्ष को याद भी नहीं रख सका, अत: खंडन तो दूर रहा ।

आखिर निरुत्तर हो जाने से उसकी हार हो गई, यह घटना वीर सं. 884, विक्रम संवत् 414 में हुई थी ।

–आज ऐसा माना जाता है कि आद्य शंकराचार्य ने बौद्धों को भारत से दूर किया था, परंतु बौद्धों के अकाट्य तर्कों को तोडने का प्रारंभ मल्लवादीसूरिजी ने किया था ।

पू. मल्लवादीसूरिजी ने अपनी प्रतिभा से बौद्धों को भी पराजित कर दिया था !

राजा ने बौद्धाचार्य को नगर त्याग का आदेश दिया, परंतु उदारहृदयी **मल्लसूरिजी** ने राजा को निर्देश कर वह आदेश रद्द करवाया ।

राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें वादी का बिरुद दिया, तब से वे **'मल्लवादीसूरि'** के नाम से प्रख्यात हुए ।

मल्लवादीसूरि की प्रेरणा से राजा ने निमंत्रण देकर उनकी माता साध्वी दुर्लभदेवी और उनके गुरुदेव को सम्मान सहित भरुच बुलाया ।

गुरु भगवंत ने साध्वीजी को कहा, 'तू पुत्रवती स्त्रियों में अग्रसर है ।'

आ. मल्लवादीसूरि ने 10000 श्लोक प्रमाण नयचक्र, 24000 श्लोक प्रमाण पद्म चरित्र व सन्मतितर्क की टीका रची । दुर्भाग्य से वे ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है ।

हेमचन्द्रसूरिजी ने सिद्धहैम व्याकरण में **'उत्कृष्टोऽनूपेन'** सूत्र की टीका में **'अनुमल्लवादिनं तार्किका'** कहकर मल्लवादीसूरिजी को **'तार्किक शिरोमणि'** कहा है ।



आ.श्री विक्रमसूरिजी

स्तुति

माँ शारदा वरदान से, वरे वाद में जयश्री सदा,
आचार्य श्री विक्रमसूरि, हुए तपः प्रभाव का,
परमार वंशज क्षत्रियों के, जैन मत में स्थापका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।28।।

महावीर प्रभु की 24वीं पाट परंपरा में महान् प्रभावक **आचार्य श्री विक्रमसूरिजी** हुए । उनकी विहार भूमि गुजरात-सौराष्ट्र और राजस्थान रही ।

गुजरात की सरस्वती नदी के खरसाड़ी गांव में उन्होंने चौविहार दो मास के उपवास किए । उतने उग्र तप के प्रभाव से सरस्वती देवी प्रसन्न हुई और उन्हें वरदान दिया । उन्हें सरस्वती देवी का पूर्ण सहयोग था और सर्वत्र वाद से विजयश्री प्राप्त करते थे ।

उनके तप के प्रभाव से पीपल का शुष्क वृक्ष भी हराभरा हो गया ।

उन्होंने गंधार देश के माला नगर में अनेक परमार क्षत्रियों का प्रतिबोध देकर जैन बनाया था । उन्होंने कई मिथ्यावादियों को परास्त कर जैन धर्म की खूब प्रभावना की थी ।

आचार्य श्री शिवशर्मसूरिजी-18

विक्रम की पांचवी सदी में हुए **आचार्य शिवशर्मसूरिजी** ने बारहवें अंग **दृष्टिवाद** के दूसरे पूर्व की पांचवी **'चवणवत्थु'** के चौथे **'कम्मपयडिप्राभृत'** के आधार पर **'कम्मपयडी'** ग्रंथ की रचना की है । 475 प्राकृत गाथा प्रमाण का यह प्रमाणभूत ग्रंथ है ।

उसके बाद कई आचार्यों ने उस पर भाष्य, चूर्णि और टीकाओं की रचनाएं की है । उन्होंने **'कम्मपयडि प्राभृत'** के आधार पर 100 गाथा प्रमाण शतक नाम के कर्मग्रंथ की भी रचना की है ।

आचार्य चंद्रर्षि महत्तर-19

चंद्रर्षि महत्तर ने पूर्व श्रुत के आधार पर **'पंच संग्रह'** ग्रंथ की रचना की, 'जिसमें शतक,

सप्ततिका, कषाय प्राभृत, सत्कर्म और कर्म प्रकृति इन पांचों का संग्रह है। उसकी 963 गाथाएँ है। भाषा प्राकृत है। उस पर 9000 श्लोक प्रमाण टीका है।

ये आचार्य भगवंत विक्रम की तीसरी से पांचवी सदी में हुए है।

वाचक संघदास गणी-20

श्री संघदास गणी ने प्राकृत भाषा में **वसुदेव हिंडी** नाम का ग्रंथ रचा है। जिसमें कृष्ण वासुदेव के पिता वसुदेव का जीवन चरित्र है। उन्होंने बृहद्कल्प के ऊपर 9000 श्लोक प्रमाण लघु भाष्य व कल्प भाष्य के पंच कल्प पर 2574 गाथा प्रमाण महाभाष्य भी रचा है।

आचार्य विमलसूरिजी-21

आचार्य वज्रसेनसूरि के पट्टधर **नागेन्द्रसूरि** के नागेन्द्रगच्छ में **राहुसूरि** की पाट पर **आ. विजयसूरि** के पट्टधर **आ. विमलचंद्रसूरिजी** हुए। जिन्होंने **'पउम चरियं'** तथा **'हरिवंशचरिय'** नाम के चरित्रग्रंथ प्राकृत भाषा में रचे हैं, जिनमें एक में रामायण व दूसरे में महाभारत की कथा है।

रचना शैली अत्यंत ही सुंदर व भाववाही है वर्तमान में इन दोनों में से **'पउमचरियं'** ही उपलब्ध है। संस्कृत भाषा में काव्य रूप में जैन रामायण और जैन महाभारत के रचयिता कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी हैं, जिन्होंने आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व संस्कृत में रचना की है, जब कि प्राकृत भाषा में आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व सुंदर काव्य शैली के रूप में विमलसूरिजी म. ने प्राकृत भाषा में 'पउम चरियं' की अर्थात् जैन रामायण की रचना की है। प्राकृत भाषा में यह सर्व प्रथम महाकाव्य हैं। इसमें 7 सर्ग तथा 118 पूर्व है। पद्य संख्या 8651 है। जैनेतर साहित्य में जो महत्त्व वाल्मिकी रामायण का हैं, जैन साहित्य में वह महत्त्व 'पउम चरियं' का है।

पउम चरियं की रचना वीर सं. 530 में हुई है। वे पूर्वधर थे।



आ.श्री नरसिंहसूरिजी

स्तुति

पच्चीसवें पट्टधार हुए नरसिंह सूरीश्वरा,
थे मंत्र साधक सर्वभक्षी–यक्ष के प्रतिबोधका,
खुमान कुल के सूर्यवंशी, राजपूत के धर्मदा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।29।।

महावीर प्रभु की 25 वीं पाट परंपरा में महाप्रभावक **आचार्य श्री नरसिंहसूरिजी** हुए । पूज्यश्री ने नरसिंहपुर के सर्वभक्षी यक्ष को प्रतिबोध करके उसे जीव-हिंसा का त्याग कराया था । आसपास के गांवों में नवरात्रि के आठवें दिन भैंसे की बलि दी जाती थी । पूज्यश्री के उपदेश से वह बलिप्रथा बंद हुई थी ! मेवाड़ के खुमाण कुल के सूर्यवंशी राजपुतों को प्रतिबोध देकर उन्हें जैन बनाया था ।

एक बार आचार्य भगवंत विहार करते हुए नरसिंहपुर नगर में पधारें ! उपदेश द्वारा उन्होंने नगरजनों को बोध दिया । नगरजनों ने आचार्य भगवंत को विनंती करते हुए कहा, `इस नगर में यक्ष का मंदिर है । कोई भी व्यक्ति जाने-अनजाने में उस यक्ष मंदिर में रात्रि विश्राम करता है, उस व्यक्ति को यह राक्षस खा जाता है । हे गुरुदेव ! नरभक्षी ऐसे उस यक्ष को आप ही प्रतिबोध कर सकते है । नगरजनों की प्रार्थना सुनकर गुरुदेव ने उन्हें योग्य आश्वासन दिया । एक दिन आचार्य भगवंत ने उस यक्ष मंदिर में रात्रि विश्राम कर मंत्र-जाप प्रारंभ किया । मात्र तीन दिन बाद वह यक्ष गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ा । उसने हमेंशा के लिए हिंसा का त्याग कर दिया । इस प्रसंग से जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना हुई ।

एक बार विहार करते हुए पू. आचार्य भगवंत उमरकोट नगर में पधारें । वहां चैत्र सुदी-8 तथा आसो सुदी-8 के दिन लोग भैंसे की बलि देते थे । पूज्य आचार्य भगवंत ने अपनी मधुर वाणी से उन्हें प्रतिबोध दिया । नगरवासियों ने हमेशा के लिए उस बलि प्रथा का त्याग कर दिया ! एक बार पू. आचार्य भगवंत विहार करते हुए मेवाड़ पधारें । वहां के राजा तथा राजकुमारों ने आचार्य भगवंत की वाणी का श्रवण किया । परिणाम स्वरूप उन्होंने मांसाहार आदि का त्याग किया और कुछ राजकुमारों ने दीक्षा भी स्वीकार की ।



आ.श्री समुद्रसूरिजी

स्तुति

चामुन्डा देवी बोध दाता, श्री समुद्रसूरीश्वरा,
उनके ही शासनकाल में, हुई वल्लभीपुर वाचना,
देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण, करे क्रोड ग्रंथ संयोजना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।30।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 26 वें पट्टधर **आचार्य श्री समुद्रसूरिजी** हुए ।

वे शिलादित्य वंश में राउलजी के पुत्र खुमाण के पुत्र थे ।

खुमाण राजा के वंशज **'सिसोदिया'** के नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।

चित्तोड़ के राणा इनके सांसारिक कुटुंबी थे, अतः उनमें भी वे प्रसिद्ध हुए ।

उनके समय में दिगंबर मत का भी खूब प्रचार हो रहा था । वैराट् नगर में दिगंबरों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित कर श्वेतांबर मान्यता का प्रचार–प्रसार किया था ।

नागह्रद तीर्थ पर दिगंबरों ने कब्जा कर लिया था, वहां भी **पू. समुद्रसूरिजी** ने प्रयत्न कर पुनः श्वेतांबरों के अधिकार में किया था ।

भैंसे व बकरे की बलि लेनेवाली चामुंड़ादेवी को भी प्रतिबोध देकर उसे सम्यग्दृष्टि बनाया था । बाड़मेर, कोटड़ा आदि क्षेत्रों में विचरण कर कई अजैनों को जैन बनाया था ।

देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण एवं 5वीं आगम वाचना-22

राजगृही नगरी में भगवान महावीर का समवसरण रचा गया । समवसरण में बिराजमान होकर तीन लोक के नाथ महावीर प्रभु धर्म देशना दे रहे थे ।

देशना के अंत में सौधर्म इन्द्र ने प्रभु को प्रश्न किया, `हे प्रभु ! आपके शासन में द्वादशांगी का विच्छेद कब होगा ?

महावीर प्रभु ने कहा, `मेरे निर्वाण के 170 वे वर्ष चौदह पूर्वधर महर्षि भद्रबाहुस्वामी होंगे, जो मेरे शासन में सूत्र व अर्थ की अपेक्षा से अंतिम चौदह पूर्वी होंगे । वीर सं. 215 में स्थूलभद्रजी सूत्र की अपेक्षा से अंतिम चौदहपूर्वी होंगे ।

उसके बाद वीर सं. 584 में वज्रस्वामी नाम के आचार्य होंगे, जो अंतिम 10 पूर्वी होंगे, फिर 616 में दुर्बलिका पुष्यमित्र अंतिम 9½ पूर्वी होंगे। मेरे निर्वाण के 1000 वर्ष बीतने पर 14 पूर्वों का विच्छेद हो जाएगा।

इन्द्र ने पुनः पूछा, 'भरत क्षेत्र में पूर्वों का विच्छेद किससे होगा ?'

प्रभु ने कहा, मेरे निर्वाण के 1000 वर्ष बीतने पर देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण होंगे। उनसे भरत क्षेत्र में पूर्व ज्ञान का विच्छेद होगा।

प्रभु ! अभी उनकी आत्मा कौनसी गति में है ? इन्द्र ने पूछा !

प्रभु ने कहा, 'हे शक्रेन्द्र ! जिसने तुम्हारी आज्ञा से देवानंदा की कुक्षि से त्रिशला महारानी में गर्भस्थ अवस्था में रहे मेरा गर्भ परिवर्तन किया था, वही **हरिणैगमेषी** देव अपना आयुष्य पूर्णकर **देवर्द्धिगणी** क्षमाश्रमण बनेगा।

हरिणैगमेषी देव भी उसी समवसरण में हाजिर था। प्रभु के मुख से अपने भावी शुभ वृत्तांत को जानकर खुशी से नाच उठा।

सौधर्म देवलोक में देव का आयुष्य काफी लंबा होता है, परंतु समय को बीतते कहां देर लगती है ? देखते ही देखते 900 वर्ष का समय पूरा हो गया और हरिणैगमेषी देव को च्यवन के चिह्न दिखाई देने लगें।

उसके गले में रही फूलों की माला कुम्हलाने लगी। कल्पवृक्ष कंपित होने लगे। फूलों की शय्या भी कांटों की शय्या की भांति प्रतीत होने लगी। देव विमान भी श्मशान की तरह भासित होने लगा।

हरिणैगमेषी देव सौधर्म इन्द्र के पास गया और बोला, 'मेरे च्यवन का समय नजदीक आ चूका है। मृत्यु का मुझे भय नहीं हैं, परंतु आगामी जन्म में मुझे जिनधर्म नहीं मिला तो मेरी क्या हालत होगी ? अतः आप कृपा करके मेरे स्थान पर उत्पन्न होने वाले देव को इतनी आज्ञा करना कि मैं जहां भी होऊँ वहां मुझे प्रतिबोध देने के लिए जरूर आए।'

हरिणैगमेषी देव की इस बात को सुनकर इन्द्र को बहुत खुशी हुई।

उसने कहा, 'हे देवानुप्रिय ! तू अपने विमान की दीवाल पर अपने मन की भावना लिख देना ताकि नया उत्पन्न हुआ देव तुझे प्रतिबोध देने के लिए अवश्य आएगा।'

उसके बाद हरिणैगमेषी देव ने अपने विमान की दीवाल पर लिख दिया, **'यहां से च्युत हो रहे हरिणैगमेषी देव की इच्छा है कि मेरे स्थान में जो भी यहां देव के रुप में उत्पन्न हो, वह मुझे प्रतिबोध देने के लिए अवश्य आए, जो ऐसा नहीं करेगा उसे इन्द्र की आज्ञा है।'**

समय बीतने पर हरिणैगमेषी देव का आयुष्य पूर्ण हुआ और भरतक्षेत्र के सौराष्ट्र में वेरावल नगर में अरिदमन राजा के राज सेवक कामर्द्धि क्षत्रिय की धर्मपत्नी कलावती की कुक्षि में पुत्र के रूप में उस देव का अवतरण हुआ।

समय बीतने पर कलावती ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया और उस बालक का नाम **देवर्द्धि** रखा गया। माता-पिता के लाड़ प्यार के साथ बालक बड़ा होने लगा। यौवनवय में प्रवेश

के बाद दो कन्याओं के साथ देवर्द्धि का विवाह हुआ । इसी बीच कुमित्रों के संग के कारण देवर्द्धि को पशुओं के शिकार का शौक लग गया । वह प्रतिदिन जंगल में जाकर पशुओं का शिकार करने लगा ।

इधर देवलोक में उत्पन्न हुए नए हरिणैगमेषी देव ने इन्द्र की आज्ञा से देवर्द्धि को प्रतिबोध देने का निश्चय किया । उसने एक पत्र में एक श्लोक लिखकर किसी देव द्वारा देवर्द्धि को पहुँचाया और स्वप्न में भी यह श्लोक सुनाया ।

'स्वभित्तिलिखितं वृत्तं, मित्र ! त्वं सफलीकुरु ।
हरिणैगमेषी वक्ति, संसारं विषमं त्यज ।।'

अर्थ : 'हे मित्र ! तुमने पूर्व भव में देवलोक में देव विमान की दीवाल पर जो लिखा था, उसे तुम सफल करो । तुम्हारे स्थान पर पैदा हुआ हरिणैगमेषी तुम्हें संदेश दे रहा है कि तुम इस विषम संसार का त्याग कर संयम जीवन स्वीकार करो ।'

स्वप्न में देवर्द्धि ने यह श्लोक सुना, परंतु संसार त्याग के लिए वह उत्कंठित नहीं हो पाया । शिकार के शौक में कोई परिवर्तन नहीं आया !

यह स्थिति देख हरिणैगमेषी देव ने एक नया षड्यंत्र रचा । देवर्द्धि जंगल में था, अचानक उस देव ने देवर्द्धि के सामने एक सिंह खड़ा किया, पीछे गहरी खाई, दोनों ओर नुकीले दांतवाले सुअर ! नीचे भूकंप और ऊपर से पत्थर की वर्षा । चारों ओर आपत्ति से घिरे उस देवर्द्धि को देव ने कहा, 'तुझे प्रतिबोध करने के लिए स्वप्न में श्लोक सुनाया, परंतु तू सावधान नहीं हुआ । अब मौत की नंगी तलवार तेरे सिर पर है । बोल क्या करना हैं ?'

अपने सामने मौत को खड़ी देख देवर्द्धि एकदम घबरा गया और बोला, **'मुझे बचाओ ! आप जो कहेंगे, मैं करने के लिए तैयार हूँ !'** और उसी समय उस देव ने उस देवर्द्धि को लोहित्यसूरि के पास रखा ।

देवर्द्धि ने भागवती दीक्षा स्वीकार की । विनय पूर्वक शास्त्रों का गहन अभ्यास किया । गुरुदेव ने गणी पद प्रदान किया । उपकेश गच्छीय **देवगुप्तसूरि** के पास के एक पूर्व का ज्ञान अर्थ सहित और दूसरे पूर्व का ज्ञान मूल से प्राप्त हुआ ।

शत्रुंजय तीर्थ के कपर्दी यक्ष तथा गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी की भी साधना कर उन्हें प्रत्यक्ष किया । शासन के भावी हित के लिए आगम वाचना का निर्णय लिया ।

संघ की आज्ञा से वीर सं. 980 में वल्लभीपुर में देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में 500 आचार्य इकट्ठे हुए और समस्त कंठस्थ श्रुत को ग्रंथस्थ करने का निश्चय किया गया । 13 वर्षो तक ग्रंथ आलेखन का काम चला और प्रायः एक करोड ग्रंथों का संकलन किया गया ।

आगम-साहित्य

इन 84 आगमों में 12 अंगों के रचयिता तो श्री सुधर्मास्वामी भगवंत है ।

उसके बाद के आगमों के रचयिता प्रभु के शिष्य, प्रत्येक बुद्ध तथा पूर्वधर महर्षि हैं ।

निर्युक्तियाँ :– चौदह पूर्वधर भद्रबाहुस्वामीजी ने (1) आचारांग (2) सूत्रकृतांग (3) आवश्यक

(4) उत्तराध्ययन (5) दशाश्रुत (कल्पसूत्र) (6) बृहत्कल्प (7) व्यवहार (8) दशवैकालिक (9) सूर्य प्रज्ञप्ति (10) ऋषिभाषितों की निर्युक्तियाँ (11) पिंडनिर्युक्ति (12) ओघ निर्युक्ति तथा (13) संसक्त निर्युक्ति का सर्जन किया हैं, जो सभी प्राकृत में है ।

भाष्य :– अनेक आचार्यों ने प्राकृत में पद्यमय भाष्यों की रचनाएं की है ।

आ. जिनभद्र गणी क्षमा श्रमण ने आवश्यक भाष्य, जीत कल्प भाष्य तथा निशीथ भाष्य की रचना की हैं । संघदास महत्तर ने बृहत्कल्प भाष्य तथा पंचकल्पभाष्य की रचना की है ।

–आ. जिनदास गणी महत्तर ने बृहत्कल्प भाष्य, निशीथ भाष्य, व्यवहार भाष्य की रचना की है ।

बृहत्कल्प का बड़ा भाष्य बृहत्कल्पचूर्णि व निशीथ चूर्णि के बाद बना है ।

विशेषावश्यक महाभाष्य भी आवश्यक चूर्णि के बाद बना है । इसके सिवाय कम्मपयडि, षडशीति, सयग तथा सड्ढसयग के ऊपर भाष्य बने हैं ।

शांतिसूरि ने चैत्यवंदन भाष्य व देवेन्द्रसूरि ने भाष्यत्रयम् भी रचा है ।

चूर्णि :– चूर्णि की भाषा संस्कृत-प्राकृत मिश्र है । वर्तमान में आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती जीवाजीवाभिगम, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कुछ छेदग्रंथ, जीतकल्प ओघनिर्युक्ति, नंदी, अनुयोगद्वार, कर्मप्रकृति, शतक, सार्धशतक और सप्ततिका आदि चूर्णियां मिलती हैं ।

टीकाएं :– आगमों पर टीकाएं संस्कृत गद्य भाषा में है–1) अंग 2) उपांग 3) अनेक छेद सूत्र, छह आवश्यक, 4) मूल आगम नंदी, अनुयोग द्वार सूत्र, अनेक प्रकीर्णक, निर्युक्ति आदि पर टीकाएं रची गई हैं । ये टीकाएं विस्तृत विवरण के रूप में भी है और कई टीकाएं अवचूरि, पंजिका व छाया रूप में भी है ।

देवर्द्धि गणी ने श्री नंदीसूत्र की रचना की । सर्व प्रथम श्रुतधर गीतार्थों ने सभी श्रमणों के पास अंगोपांग के आलावे तथा आगमों के पाठों को सुनकर उनकी धारणा कर व्यवस्थित क्रम से रखा ।

उस समय उनके सामने दो वाचनाएं प्रमाणभूत थी । नागार्जुनीय वाचना के प्रतिनिधि **कालकाचार्य** (चतुर्थ) तथा स्कंदिली वाचना के प्रतिनिधि **देवर्द्धि गणी** थे ।

स्कंदिलाचार्य व नागार्जुन आचार्यश्री का परस्पर मिलन नहीं होने से दोनों की वाचनाओं में पाठ भेद था । थोड़ी समस्या भी थी, फिर भी स्कंदिली वाचना के पाठ को नियत रखकर नागार्जुनीय वाचना के पाठ को **'वायणंतर'** कहकर उसे भी साथ में जोड़कर देवर्द्धि गणी ने अपनी उदारता का परिचय दिया ।

इस आगम संरक्षण वाचना में कालकाचार्य का पूर्ण सहयोग रहा ।

साक्षी पाठों से ख्याल आता है कि पहले उपांग तैयार कर फिर अंग तैयार किए गए ।

इस प्रकार देव सानिध्य से 13 वर्षों में 1 करोड ग्रंथों का संकलन हुआ । कल्पसूत्र की रचना के दो समय वी.सं. 980 व मतांतर से 993 मिलते है । वास्तव में यह समय आगम वाचना का काल 980 से 993 का निर्देश करता है ।

नंदीसूत्र की रचना में देवर्द्धि गणी ने अपनी वाचक परंपरा व कल्पसूत्र की स्थिरावली में गुरू परंपरा भी दी है। वे स्वयं गणधर परंपरा के नायक थे। और इस आगम वाचना के वाचनाचार्य भी थे। इतिहास में वे **देवर्द्धि गणी** क्षमाश्रमण व **देव वाचक** के नाम से प्रसिद्ध है।

इस वाचना में आगमों के साथ अन्य ग्रंथों का भी आलेखन हुआ। दूसरे पूर्व में से सिद्ध प्राभृत कर्म प्रकृति, पांचवे पूर्व में से नयचक्र, छट्ठे पूर्व में से वाक्य शुद्धि, सातवें पूर्व में से धर्म प्रज्ञप्ति, आठवें पूर्व में से परिग्रह अध्ययन, नौवें पूर्व में से ओघ निर्युक्ति, दश वैकालिक के सात अध्ययन, चार छेद सूत्र, कल्पसूत्र, पंच कल्प, दसवें पूर्व में से प्रतिष्ठाकल्प, अंगविद्या, ज्योतिष करंडक, गच्छाचार पयन्ना, सभाष्य तत्त्वार्थ सूत्र, तरंगवती, वसुदेव चरित्र, वसुदेव हिंडी, उपदेशमाला, सन्मतितर्क, न्यायावतार आदि एक करोड़ ग्रंथ तैयार हुए।

वि.सं. 530, वीर सं. 1000 में गिरिराज पर अनशन करके देवर्द्धिगणी स्वर्ग सिधार गए। उसके बाद सत्यमित्र का भी स्वर्गवास हो गया। उन दोनों के स्वर्गगमन बाद पूर्वों का ज्ञान भी विच्छिन्न हो गया।

वर्तमान में जो भी आगम ग्रंथ उपलब्ध है। वह देवर्द्धिगणी की ही साधना का फल है।

कल्पसूत्र का जाहिर वाचन (प्रवचन)

योगोद्वहन किए हुए साधु भगवंत ही कल्पसूत्र पढने के अधिकारी है। निशीथ चूर्णि में कही विधि के अनुसार साध्वीजी को दिन में साधु के उपाश्रय में आकर सुनने का अधिकार है।

वीरप्रभु के निर्वाण के 983 से 984 वर्ष में कालिकसूरि (चौथे) युगप्रधान थे। वे आनंदपूर में चातुर्मास रहे हुए थे। उस समय ध्रुवसेनराजा वहां के राजा था। दुर्भाग्य से राजा के युवराज पुत्र की मृत्यु हो गई। समस्त राज्य में शोक का वातावरण छा गया। आ. कालिक ने ध्रुवसेन राजा को प्रतिबोध कर उसके शोक निवारण हेतु भादो सुदी चौथ के दिन चतुर्विध संघ की साक्षी में कल्पसूत्र का वाचन किया। राजा-प्रजा का शोक दूर हुआ। तब से पर्युषण में सभा समक्ष कल्पसूत्र पर प्रवचन जारी है।

देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण का वाचक वंश (विद्याधर वंश)

भगवान महावीर की आठवी पट्टधर परंपरा में हुए आर्य सुहस्ति म. से तीन प्रकार की श्रमण–परंपरा रही है।

1) गणधरवंश :– जिसमें क्रमशः पाट परंपरा में हुए आचार्यों का वर्णन है।

2) वाचकवंश :– आ. सुहस्तिसूरि तक गणनायक और वाचनाचार्य दोनों एक ही थे। उनके बाद के आचार्यों में वह सामर्थ्य नहीं होने से चारित्र रक्षा और श्रुतरक्षा का कार्य दो भागों में बंट गया, तब से वाचकवंश व गणधरवंश की परंपरा अलग हो गई।

आठवी परंपरा के बाद वाचकवंश की परंपरा का वर्णन देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण ने स्वरचित नंदीसूत्र में बताया है।

वाचकवंश-23

1) सुधर्मास्वामी 2) जंबूस्वामी 3) प्रभवस्वामी 4) शय्यंभवसूरि 5) यशोभद्रसूरि 6) संभूतिविजय–भद्रबाहुस्वामी 7) स्थूलभद्रस्वामी 8) आर्य महागिरि–आर्यसुहस्ति !

9) आर्य बहुल–बलिस्सह :– ये दोनों आर्य महागिरि के शिष्य थे । प्रारंभ में दोनों जिनकल्प की तुलना करते थे, बाद में बलिस्सहसूरि स्थविर कल्पी बनें ! दोनों का एक ही गण था । बलिस्सहसूरि ने अंगविद्या शास्त्र की रचना की है ।

10) आर्य स्वातिसूरि :– तत्त्वार्थ रचयिता उमास्वाति से भिन्न है । उनका जीवन चरित्र नहीं मिलता है ।

11) आर्य श्यामाचार्य :– ये पहले कालिकाचार्य है । वे युगप्रधान गुणाकरसूरि के शिष्य थे । उनका जन्म वीर सं. 280 में तथा स्वर्गवास वीर सं. 376 हैं । वे द्रव्यानुयोग के प्रकांड ज्ञाता थे ।

इन्द्र के सामने निगोद के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन किया था । उन्होंने पन्नवणा सूत्र की रचना की थी, जिसमें 36 पद है । यह ग्रंथ 7787 श्लोक प्रमाण है । इस सूत्र पर हरिभद्रसूरिजी ने 3728 श्लोक प्रमाण व मलयगिरि ने 16000 श्लोक प्रमाण टीका रची है ।

वे कलिंग की दूसरी आगम वाचना में उपस्थित थे ।

12) आर्य स्कंदिलसूरि (षंडिलसूरि) :– वे वीर सं. 376 से 414 तक युगप्रधान थे । उनका आयुष्य 108 वर्ष का था ।

उन्होंने `जीतमर्यादा' शास्त्र की रचना की थी । उनसे षंडिल गच्छ निकला था । गच्छ व्यवस्था के समय चंद्रगच्छ में सम्मिलित हुए थे ।

13) आर्य समुद्र :– वे गंभीर ज्ञानी और भूगोल विद्या में पारगामी थे ।

14) आर्य मंगुसूरि :– विक्रम की पहली सदी के प्रभावक आचार्य थे । वे प्रभावक वक्ता थे । `आचार्य की भक्ति से विशेष पुण्य होता है ।' उनके उपदेश को सुन मथुरावासी खूब भक्ति करने लगे । रसना की आसक्ति के कारण वे मरकर मथुरा में यक्ष बने । शिष्यों के प्रतिबोध के लिए यक्ष ने अपनी लंबी जीभ बताई । कारण पूछने पर यक्ष ने अपना पूर्व भव बताया, जिसे सुनकर शिष्य रसत्यागी बनें ।

15) आर्य नंदिलसूरि :– आर्य नंदिल का युग प्रधान काल वीर सं. 597 से प्रारंभ होता है । विक्रम की दूसरी सदी के वे प्रभावक आचार्य थे । वे 9½ पूर्वों के ज्ञाता थे ।

सास के कठोर व्यवहार से दु:खी बनी पुत्रवधु वैरोट्या को आर्य नंदिल ने क्षमा धर्म का उपदेश दिया । एक दिन वैराग्य प्राप्त कर साध्वी बनकर धरणेन्द्र नागराज की देवी बनी । वैरोट्या देवी को आर्य नंदिल पर विशेष श्रद्धा थी ।

आर्य नंदिल ने `नमिउण जिणं पासं' मंत्र युक्त वैरोट्या स्तवन की रचना की ।

प्रभावक चरित्र में कहा हैं कि–

'जो व्यक्ति एकाग्र चित्त से त्रिकाल इस स्तवन का पाठ करता हैं, उसे विष आदि का उपद्रव कभी नहीं होगा ।'

नागवंश से प्रख्यात आठ नागकुलों की स्थापना भी उन्होंने की थी !

16) आर्य नागहस्ति :– उनका जन्म वीर सं. 573 में हुआ था, उन्होंने वीर सं. 592 में दीक्षा ली थी । वीर सं. 620 में युग प्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए । वीर सं. 689 में 116 वर्ष में कालधर्म को प्राप्त हुए ।

आ. वज्रसेनसूरिजी ने सोपारक नगर में जिनदत्त सेठ को प्रतिबोध कर उसके चारों पुत्र नाग, चंद्र, निवृत्ति व विद्याधर को दीक्षा दी थी । वे चारों पुत्र आगमों के अभ्यासी थे । वे चारों आचार्य बनें उनके नाम से अलग अलग गण निकलें ।

नागहस्ति, आर्य नागिल, आर्य नागेन्द्र व नागसूरि के नाम से प्रख्यात हुए । नागेन्द्र कुल में अनेक प्रभावक आचार्य हुए ।

नागहस्ति सूत्र समर्थ वाचनाचार्य थे । युगप्रधान पट्टावली में नागहस्तिसूरि का युग प्रधान काल 69 वर्ष का था ।

17) आ. रेवती नक्षत्र :– उनका युग प्रधानकाल वीर सं. 689 से 748 तक था । 109 वर्ष की उम्र में उनका स्वर्गवास हुआ था । उन्होंने भी वाचकवंश का खूब विकास किया था ।

18) आर्य सिंहसूरि :– उनका युगप्रधान काल वीर सं. 748 से 826 तक था । वे ब्रह्मदीपिका शाखा में दीक्षित हुए थे । वे कालिक श्रुत के प्रखर व्याख्याता थे ।

19) आर्य स्कंदिलसूरि :– हिमवंत स्थविरावली के अनुसार आर्य स्कंदिल का जन्म मथुरा के ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उनके पिता का नाम मेघरथ, माता का नाम रूपसेना और उनका नाम सोमरथ था । वे जैन धर्म के उत्कृष्ट आराधक थे ।

आर्य सिंहसूरि के पास आगम व पूर्वों का ज्ञान प्राप्तकर वाचक पद प्राप्त किया था ।

उस समय 12 वर्ष का भयंकर अकाल पडा था ।

कई श्रुतधर मुनियों ने वैभारगिरि व कुमारगिरि पर्वत पर अनशन किया था । इस कारण आगम श्रुत की खूब हानि हुई थी ।

इस कारण श्रुतधरों की संख्या कम हो गई थी ! ऐसी परिस्थिति में वीर सं. 830 से 840 में उत्तरापथ के 150 श्रमण आर्य स्कंदिलसूरि की निश्रा में इकट्ठे हुए थे । मधु मित्र, गंध हस्ति भी पधारें थे ।

गुरुभ्राता आचार्य मधुमित्र, आचार्य गंध हस्ति तथा अन्य अनेक श्रमणों ने आगम श्रुत का पुनः संकलन किया । उसी काल में दक्षिण में आगम श्रुत का पुनः संकलन किया । उसी काल में दक्षिण पथ में वल्लभीपुर में आ. नागार्जुन की निश्रा में श्रमण संघ इकट्ठा हुआ था और वहाँ भी चौथी आगम वाचना हुई थी और जिनागमों को पुस्तकारूढ किया था ।

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने नंदीसूत्र की पट्टावली में वाचनाचार्य स्कंदिल की खूब प्रशंसा की है ।

20) हिमवंत क्षमाश्रमण :– वे भी पूर्वों के ज्ञाता थे ।

21) आचार्य नागार्जुन :– वीर निर्वाण 793 में उनका जन्म हुआ था । वी.संवत् 807 में उनकी दीक्षा हुई थी । वी.सं. 826 में 35 वर्ष की उम्र में वे आचार्य बने थे । वे नागेन्द्रवंश के आ. स्कंदिलसूरि के समकालीन थे ।

उनके सान्निध्य में ही दक्षिण पथ के श्रमण इकट्ठे हुए थे और उनकी निश्रा में वल्लभी में चौथी आगमवाचना हुई थी ।

नंदीसूत्र की पट्टावली में दो प्रक्षिप्त गाथाएं मिलती है, जिसमें आ. गोविंद व आ. भूतदिन्न का नाम आता है ।

आचार्य गोविंद जैन धर्म के कट्टर दुश्मन थे । जैनाचार्य के वाद में वे परास्त हुए थे । जैन शास्त्रों का अध्ययन कर उसके खंडन के लिए ही उन्होंने दीक्षा ली थी, परंतु आचारांग सूत्र का अध्ययन करते करते जिन वचन पर उनकी श्रद्धा दृढ बनी, उनका मिथ्यात्व दूर हो गया और वे सच्चे श्रमण व जैनाचार्य बने । उन्हें वाचक पद पर स्थापित किया गया ।

22) आ. भूतदिन्न :– वे वीर सं. 904 से 983 वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे थे । उनका आयुष्य 119 वर्ष का था । वे आ. नागार्जुन के शिष्य थे । वे अत्यंत ही कांतिमान व तेजस्वी थे ।

23) आ. लोहित्यसूरि :– वे श्रुत संपन्न प्रभावक आचार्य थे ।

24) आ. दुष्यगणि :– वे आगम श्रुत के ज्ञाता थे । समर्थ वाचनाचार्य थे । मधुर भाषी थे । तप–नियम–संयम आदि उत्तम गुणों से युक्त थे । अनुयोगधर युग प्रधान आचार्य थे ।

25) देव वाचक (देवर्द्धिगणि) :– वे वज्रस्वामी की श्रमण परंपरा के गणनायक थे । वाचक वंश के वाचनाचार्य भी थे । स्कंदिलसूरि ने जो चौथी माथुरी वाचना की थी, उसके वे वारिसदार थे । उस समय नागार्जुनसूरि की परंपरा के आ. कालिकसूरि (चौथे) विद्यमान थे, उनके पास नागार्जुन की चौथी वल्लभी वाचना का वारसा था ।

वि.सं. 980 में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में श्रमण संमेलन हुआ था, जिसमें 500 आचार्य इकट्ठे हुए थे ।

देवर्द्धि गणी पूर्वधर थे ।

'धर्मोपदेशमाला' में भी देवर्द्धि गणी को पच्चीस वें वाचनाचार्य बताया गया है ।

वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर और वाचक इन शब्दों का पूर्वधर के अर्थ में उपयोग किया जाता है ।

देवर्द्धिगणी के बाद वाचकवंश आगे नहीं चला है ।



आचार्यपद–विक्रम संवत् 582

आ.श्री मानदेवसूरिजी (दूसरे)

स्तुति

पट्टधार सत्ताइसवें श्री मानदेवसूरीश्वरा,
प्रभु सीमंधर सहाय से, सूरिमंत्र दे मां अंबिका,
जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण, हुए भाष्य के रचनाकरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।31।।

भगवान महावीर की 27 वीं पाट परंपरा में प्रतिभा संपन्न **आचार्य मानदेवसूरिजी** हुए ।

बृहद्गच्छ की सूरिविद्यापाठ की प्रशस्ति 12 गाथा प्रमाण है, उसमें **पू. मानदेवसूरिजी** ने गिरनार तीर्थ में पुनः सूरिमंत्र प्राप्त किया था, उसका इतिहास इस प्रकार मिलता हैं–

आचार्य समुद्रसूरिजी के शिष्य **आ. मानदेवसूरिजी, आ. हरिभद्रसूरिजी** के परम मित्र, गुणनिधान और युगप्रधान थे ।

उनकी योग्यता-पात्रता जानकर उनके गुरुदेव ने वि.सं. 582 में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था । उन्हें अपने गुरुदेव की ओर से चांद्रकुल का तथा **आ. हरिभद्रसूरिजी** की ओर से विद्याधर कुल के वाचना-सिद्ध ऐसे दो सूरिमंत्र प्राप्त हुए थे । समय बीतने लगा ।

दोनों सूरिमंत्र के पद की समानता, भयंकर-दुष्काल, लोक-मृत्यु और रोग आदि के कारण वे अपना सूरिमंत्र भूल गए ।

उन्हें खूब आघात लगा । वे गिरनार पहुँचे और वहां 16 उपवास की तपश्चर्या की । अंबिका देवी प्रसन्न हुई और सीमंधर स्वामी के पास से सूरिमंत्र लाकर उन्हें प्रदान किया ।

सीमंधर स्वामी द्वारा प्रदत्त मंत्र **अंबिका मंत्र** के रूप में प्रख्यात हुआ ।

संतुष्ट हुई पद्मावती देवी भी **मानदेवसूरिजी** को सहायता करती थी ।

आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण-24

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का जन्म वीर संवत् 1011 में हुआ । 14 वर्ष की लघु वय में वीर सं. 1025 में उनकी दीक्षा हुई थी ।

वीर सं. 1065 में युग प्रधान पद पर प्रतिष्ठित हुए और वी.सं. 1115 में 104 वर्ष की उम्र में उनका कालधर्म हुआ ।

उन्होंने अपने जीवन में 4500 गाथा प्रमाण विशेषावश्यक भाष्य की रचना की । उसके सिवाय जीत कल्प, सभाष्य विशेषणवती, बृहद् संग्रहणी, ध्यान शतक और निशीथ भाष्य की भी रचना की है ।

विशेषावश्यक भाष्य यह जैन दर्शन का मुकुट शिरोमणि समान ग्रंथ है । महातार्किक **सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी** ने स्वरचित **'सन्मतितर्क'** ग्रंथ में एक ही समय में एक साथ केवलज्ञान और केवलदर्शन के सह अस्तित्व को सिद्ध करनेवाले अनेक तर्क दिए हैं ।

जबकि जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण तो `श्रुति और युक्ति से केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग एक साथ में नहीं हो सकता है ।' इस आगम वाणी को सिद्ध किया है । इस कारण उनकी पहिचान आगमवादी व सिद्धांतवादी के रूप में हुई है ।

कलिकाल सर्वज्ञ **हेमचंद्रसूरिजी म.** ने सिद्धहेम बृहद्वृत्ति में **'उपजिनभद्र–क्षमाश्रमणं व्याख्यातारः'** कहकर उन्हें **सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता** कहा है ।

–उनके द्वारा विरचित `जीत कल्पभाष्य' पर आ. सिद्धसेनसूरिजी ने चूर्णी भी रची हैं ।

–उन्होंने विशेषावश्यक भाष्य पर स्वोपज्ञ टीका भी रची है, जो अपूर्ण रही थी । उसे कोटि आर्य महत्तर ने पूर्ण की थी ।

उसके आधार पर दूसरे कोट्याचार्य तथा मलधारी हेमचंद्रसूरिजी ने विस्तृत टीका रची है ।

–उनके द्वारा विरचित `ध्यान शतक' पर पू. हरिभद्रसूरिजी ने टीका रची है ।

उनके द्वारा विरचित `जितकल्प भाष्य' के आधार पर सोमप्रभसूरिजी ने `यतिजित कल्प' और धर्मघोषसूरिजी ने `श्राद्धजितकल्प' की रचना की है ।

आ. सिद्धसेनसूरिजी ने `जितकल्प' की चूर्णि में छ गाथाओं के द्वारा उनकी स्तुति करते हुए कहा है कि वे वास्तविक अर्थ के ज्ञाता, युगप्रधान, बहुश्रुतों को माननीय, स्व-पर समयवेदी, समर्थ व्याख्याता, महाज्ञानी, `विशेषावश्यक भाष्य के विधाता आदि विशेषण उनके परिचय के लिए दिए है ।

विक्रम की 7 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वे समर्थ युगप्रधान थे ।



आ.श्री
विबुधप्रभसूरिजी

स्तुति

चक्री भरत निर्मित माणेक, स्वामीजी मन–मोहना,
तेलंगना में तीर्थ जब, कुल्पाक की हुइ स्थापना,
पट्टधार अट्ठाइसवें हुए विबुधप्रभसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।32।।

भगवान महावीर प्रभु 28 वीं पाट परंपरा में महान् प्रभावक **आचार्य श्री विबुधप्रभसूरिजी** हुए । उन्हीं के समय में तेलंगाणा में कुल्पाक तीर्थ की स्थापना हुई थी ।

कुल्पाकजी तीर्थ-25

दक्षिण भारत में श्वेतांबर जैनों का यह सबसे प्राचीन तीर्थ है । यह तीर्थ तैलंगणा प्रांत में हैदराबाद से ईशान कोण में 80 कि.मी. की दूरी पर कोलणुपाक–कुल्पाक गांव में आया हुआ है । यह गांव आलेर स्टेशन से 10 कि.मी. की दूरी पर है ।

विक्रम की 14 वीं सदी (वि.सं. 1318 से 1390) में हुए जैनाचार्य जिनप्रभसूरि विरचित 'कोल्लपाक माणिक्यदेव–तीर्थ कल्प से जो जानकारी प्राप्त होती है, वह निम्नानुसार हैं–

–आदिनाथ प्रभु के निर्वाण के बाद भरत महाराजा ने प्रभु की निर्वाण भूमि अष्टापद पर्वत पर सिंह निषद्या जिनालय का निर्माण कर आदिनाथ प्रभु तथा भविष्य में होनेवाले 23 तीर्थंकरों की स्वदेह व स्ववर्णानुसार चतुर्मुख जिनालय का निर्माण कराया था ।

यह तीर्थ सामान्य जन के लिए अगम्य होगा, यह जानकर भरत महाराजा ने लोगों के अनुग्रह के लिए ऋषभदेव प्रभु की मरकत मणि की प्रतिमा तैयार कर अयोध्या में स्थापित की ।

इस प्रतिमा के स्कंधों पर जटायुगल, चिबुक पर सूर्य, भाल स्थल में चंद्र आदि के चिह्न थे । यह प्रतिमा **माणिक्यदेव** के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

कालांतर में यात्रा के लिए आए विद्याधर इस प्रतिमा के दिव्य प्रभाव को जानकर वैताढ्य पर्वत पर ले गए और उसकी पूजा–भक्ति करने लगे ।

एक बार नारद ऋषि वैताढ्य पर्वत पर आए । प्रतिमा की महिमा को जानकर विद्याधरों को पूछा, `यह प्रतिमा कहां से लाए हो ?'

विद्याधरों ने कहा, `हम अयोध्या से लाए है । इस प्रतिमा के प्रभाव से हमारी समृद्धि चारों ओर से बढी है ।'

एक बार नारदजी ने इस प्रतिमा की महिमा इन्द्र को बतलाई ।

इन्द्र महाराजा इस प्रतिमा को देवलोक में ले गए और वहां इसकी पूजा–भक्ति करने लगे ।

मुनिसुव्रत भगवान के शासन में हुए प्रतिवासुदेव रावण की पट्टरानी मंदोदरी सम्यग्दृष्टि थी ।

एक बार नारदजी के मुख से उस प्रतिमा की महिमा सुनकर मंदोदरी ने उस प्रतिमा की पूजा का अभिग्रह कर लिया ।

रावण ने इन्द्र की आराधना की । संतुष्ट होकर इन्द्र ने वह प्रतिमा रावण–मंदोदरी को अर्पित की ।

मंदोदरी त्रिकाल पूजा करने लगी ।

एक बार रावण ने सीता का अपहरण किया । मंदोदरी ने रावण को समझाया परंतु रावण नहीं माना ।

प्रतिमा के अधिष्ठायक देव ने मंदोदरी को स्वप्न में रावण विनाश का संकेत दिया । मंदोदरी ने वह प्रतिमा समुद्र में पधरा दी । अधोलोक में देवता उसकी पूजा करने लगे ।

एक बार कर्णाटक के कल्याणनगर में शंकर नाम का जिनेन्द्र भक्त राजा हुआ । किसी मिथ्यात्वी देव ने कूपित होकर उसके राज्य में महामारी फैला दी ।

राजा चिंतातुर हुआ । स्वप्न में पद्मावती देवी ने संकेत दिया कि तुम लवण समुद्र के अधिष्ठाता देव की आराधना करो । उस देव के पास से माणिक्य स्वामी की प्रतिमा प्राप्त करो ।

राजा ने समुद्र तट पर लवणाधिपति देव की आराधना का निश्चय किया ।

राजा ने रथ में बैठकर पूर्व दिशा के समुद्र की ओर प्रयाण किया । समुद्र–तट पर जाकर उसने अट्ठम किया । तीसरे दिन देव ने स्वप्न में संकेत दिया, `समुद्र में कुछ कदम आगे बढने पर आदिनाथ प्रभु की हरे रंग के माणिक्य की प्रतिमा प्राप्त होगी । उस प्रतिमा के अभिषेक जल से मरकी का उपद्रव दूर हो जाएगा । समुद्र में से प्रतिमा प्राप्त होने के बाद प्रतिमा को रथ में बिठाकर आगे बढ़ना । यदि शंका से पीछे मुड़कर देखोगे तो वहीं पर रथ स्तंभित हो जाएगा, अतः पूर्ण श्रद्धा से आगे बढ़ना ।

रथ में प्रतिमा को स्थापित कर रथ में बछडों को जोडकर राजा अपने कल्याणी नगर की ओर आगे बढ़ा । जंगल के विकट मार्ग को पारकर राजा का रथ कुल्पाक नगर के पास पहुँचा ।

'विकट मार्ग को पारकर प्रतिमाजी आ तो रही हैं न !' इस प्रकार की शंका से राजा ने पीछे मुड़कर देखा ।

तभी वह रथ कुल्पाकजी में स्थिर हो गया । शंकरगण ने कुल्पाकनगर में माणेक स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की । प्रभुजी की पूजा विधि के लिए 12 गांव भी भेंट किए ।

यह प्रतिमा अत्यंत निर्मल मरकत मणि की थी, परंतु समुद्र के खारे जल के संयोग से कठोर व श्याम वर्ण की हो गई ।

प्रभुजी के अभिषेक से अभिमंत्रित जल के छंटकाव से कल्याणी नगरी में फैला मरकी का उपद्रव दूर हो गया ।

कुल्पाकजी तीर्थ धाम के रूप में प्रसिद्ध हो गया । इस प्रतिमा को आज 11 लाख 80950 वर्ष बीत चूके है । आज भी इस प्रतिमा का अद्‌भुत प्रभाव देखने को मिलता है ।

वि.सं. 640 में इस तीर्थ की स्थापना हुई थी, यहां वि.सं. 680 में राज्य क्रांति व वि.सं. 1243 में धर्म क्रांति हुई थी, तब विधर्मियों ने इस तीर्थ के विनाश के लिए कई आक्रमण किए, फिर भी यह तीर्थ बच गया ।

शिलालेखों से पता चलता है कि तपागच्छ के **आ.सोमसुंदरसूरि** के शिष्य पं. शांतिगणी के उपदेश से वि.सं. 1483 में जीर्णोद्धार हुआ । उसके बाद तपागच्छ के भट्टारक **विजयरत्नसूरि** के आज्ञावर्ती पं. धर्मकुशल के शिष्य पं. केसरकुशल के उपदेश से वि.सं. 1767 में जीर्णोद्धार हुआ । तपागच्छ के **आ. विजयानंदसूरि** के शिष्य मु. शांतिविजय के उपदेश से वि.सं. 1966 मार्गशीर्ष कृष्णा 11 शुक्रवार के शुभ दिन कुल्पाक तीर्थ का जीर्णोद्धार हुआ था । 100 वर्ष बाद **पू.आ.श्री राजयशसूरिजी** के उपदेश से पुनः जीर्णोद्धार हुआ ।

यह तीर्थ हैदराबाद से 80 कि.मी. दूर व आलेर स्टे. से 7 कि.मी. दूरी पर तेलंगणा प्रांत में है ।



आ.श्री जयानंदसूरिजी

स्तुति

पट्टधार श्री जयानंदसूरि–वर हुए उन्तीसवें,
मंत्र प्रभावक मानतुंग–सूरि हुए उस काल में,
बेडी के बंधन तोड़ने, 'भक्तामर' स्तोत्र रचा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।33।।

भगवान महावीर की 29 वीं पाट परंपरा में महान् प्रभावक आचार्य **श्री जयानंदसूरिजी** हुए । उनके सदुपदेश से पोरवाल मंत्री सामंत ने संप्रति महाराजा के द्वारा निर्मित अनेक जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार कराया, जिनमें हमीरगढ, बीजापूर, वरमाण, नांदिया, बामणवाडा आदि प्रमुख है ।

कोट्यार्य महत्तर-26

`विशेषावश्यक महाभाष्य पर युगप्रधान आर्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने टीका की रचना प्रारंभ की थी, परंतु छठे गणधरवाद की `ण्हवइ' गाथा तक 4500 श्लोक प्रमाण टीका रचने के बाद उनका कालधर्म हो गया था । उसके बाद कोट्यार्य गणि महत्तर ने शेष भाग की 5750 श्लोक प्रमाण टीका रचकर ग्रंथ को पूर्ण किया था । उसके बाद 200 वर्ष बाद दूसरे कोट्याचार्य ने उस मूल टीका पर 13700 श्लोक प्रमाण टीका रची थी । ये दोनों टीकाएं वर्तमान में उपलब्ध है ।

आचार्य सिंहसूर क्षमाश्रमण :– आ. सिंहसूर क्षमाश्रमण, आ. दिन्नगणि क्षमाश्रमण के शिष्य थे । इन्होंने मल्लवादीसूरि विरचित `द्वादशार नय चक्र' पर 18000 श्लोक प्रमाण टीका की रचना की थी ।

वि.सं. 1334 के बाद इस ग्रंथ का पठन पाठन नहींवत् रहा । प्रतियों में अशुद्धियाँ बढ़ गई । उसके बाद पू. महोपाध्याय यशोवियजी की विद्वद्मुनिमंडली ने इस ग्रंथ का पुनः उद्धार किया ।

वि.की 21 वीं सदी में **पू.मु.श्री जंबूविजयजी** ने तिब्बत से यह ग्रंथ प्राप्तकर उसका संशोधन कर पुनः प्रकाशन कराया था ।

आ. अकलंकदेव :– जिस प्रकार **आ. मल्लवादीसूरिजी** ने बौद्ध श्रमणों को वाद में पराजित कर उन्हें सौराष्ट्र छोड़ने के लिए मजबूर किया था, उसी प्रकार दिगंबर **आ. अकलंकदेव** ने अपनी प्रचंड प्रतिभा से दक्षिण भारत में बौद्धों को वाद में पराजितकर उन्हें दक्षिण भारत का त्याग कराया था । उन्होंने प्रमाण संग्रह, तत्त्वार्थ वार्तिक आदि ग्रंथ भी रचे थे ।



आ.श्री रविप्रभसूरिजी

स्तुति

तेजस्वी सूर्य समान थे, श्री जैन शासन गगन में,
आचार्य रविप्रभसूरि हुए, पट्ट प्रभावक तीसवें,
जिनदास गणि उस काल में, रचते जिनागम चूर्णियाँ,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।34।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 30 वें पट्टधर के रूप में शासन प्रभावक **आचार्य श्री रविप्रभसूरिजी** हुए ।

वि.सं. 700 तथा वीर सं. 1170 में **पू.रविप्रभसूरिजी** की निश्रा में नाड़ोल (राज.) में नेमिनाथ आदि की अंजन शलाका तथा प्रतिष्ठा शासन-प्रभावना पूर्वक संपन्न हुई थी ।

इनके समय में संस्कृत भाषा का अभ्युदय हो रहा था आगमों की विस्तृत व्याख्या के लिए निर्युक्ति, भाष्य आदि की रचनाएं प्राकृत भाषा में हो रही थी ।

उनके समकालीन जिनदास गणि महत्तर ने नंदीसूत्र, अनुयोग द्वार तथा निशीथ सूत्र पर चूर्णियां रची हैं । निशीथ चूर्णि के 20 उद्देशक है, जिसमें साधु के उत्सर्ग व अपवाद आचार मार्ग का खूब विस्तार से वर्णन किया है ।



आ.श्री यशोदेवसूरिजी

स्तुति

पट्टधार हुए इक्कतीसवें श्री यशोदेवसूरीश्वरा,
शत चार सहस्स ग्रंथ चोव्वालीस के सर्जन करा,
श्री हरिभद्रसूरि हुए, सिद्धांत के दिवाकरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।35।।

भगवान महावीर की 31 वीं पाट परंपरा में **पू.आचार्य श्री रविप्रभसूरिजी म.** के पट्टधर **पू. आचार्य श्री यशोदेवसूरिजी म.** हुए ।

उनका जन्म नागर ब्राह्मण कुल में हुआ था । वे प्रकांड विद्वान् थे । सद्गुरु के समागम से उन्हें इस संसार के प्रति वैराग्यभाव पैदा हुआ । मोहमाया को छोड़कर उन्होंने भागवती दीक्षा अंगीकार की । वे निर्मल चारित्र धर्म का पालन करते थे । उन्हें **'सरस्वती कंठाभरण'** का बिरुद प्राप्त हुआ था ।

उनसे शासन में जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई थी । वे विक्रम की आठवी सदी के महान् प्रभावक आचार्य थे । उनके ही शासन काल में सूरिपुरंदर **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** आदि हुए थे ।

'सूरिपुरन्दर-आचार्य हरिभद्रसूरिजी'-27

विक्रम की आठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हरिभद्र का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था । वे चितौड़ के महाराणा जितारि के प्रमुख राजपुरोहित थे । उनकी माता का नाम गंगा व पिता का नाम शंकरभट्ट था । उनकी स्मरण-शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म थी । प्रकांड विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी । पुरोहित अवस्था में उन्हें जैन धर्म के प्रति कट्टर द्वेष था ।

वे कहते थे :–

'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ।'

अर्थात् राजमार्ग पर चलते समय, संकट आ जाने पर जिनमन्दिर में जाकर शरण लेने के

बजाय हाथी के पैरों तले मर जाना अधिक श्रेष्ठ है । इतना द्वेष था उन्हें जैनधर्म के प्रति ! श्री जिनेश्वरदेव के प्रति भी उनके हृदय में तीव्र घृणा थी, जिसका आभास हमें एक और घटना से प्राप्त होता है ।

एक बार अनजाने में वे किसी जैन मन्दिर में चले गये । मन्दिर में प्रभु की भव्य प्रतिमा बिराजमान थी । प्रभु प्रतिमा को देख कर उनके हृदय में रही हुई ईर्ष्या व द्वेष की आग प्रज्वलित हो उठी । उन्हें उस प्रतिमा में वीतरागता, समता, प्रशान्तता आदि गुणों के दर्शन के बजाय अनेकानेक दोष दिखाई देने लगे और वे प्रभुप्रतिमा का मजाक उड़ाते हुए बोले,

वपुरेव तवाचष्टे, स्पष्टं मिष्टान्नभोजनम् ।
नहि कोटर-संस्थेऽग्नौ, तरुर्भवति शाड्वलः ।।

वाह रे ! तेरी वीतरागता ! तेरा हृष्ट-पुष्ट देह ही सूचित करता है कि तू मिष्टान्न का भोजन करता होगा, क्योंकि तपस्या और पुष्ट देह का कोई मेल नहीं है । तपस्वी और पुष्टता यह असंभव बात है । जिस वृक्ष के कोटर में आग लगी हो, वह वृक्ष हरा-भरा कैसे रह सकता है ?'

उनके हृदय में जैनधर्म के प्रति, मात्र द्वेष ही नहीं था, उन्हें अपने पांडित्य का अभिमान भी था । इस कारण वे अपने पेट पर मजबूत पट्टा बाँधकर घूमते थे । यदि कोई इस संदर्भ में प्रश्न करता तो वे कहते थे, ''मेरा ज्ञान दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, वह पेट को फाड़ कर बाहर न निकल जाय, इसलिए यह पट्टा बाँध रखा है ।'' वे अपने साथ एक सीढ़ी, एक जाल तथा एक कुदाली भी रखते थे, यह बतलाने के लिए कि यदि कोई वादी मुझ से भय खाकर भूमि में घुस जाय, तो उसे इस कुदाली से बाहर निकाल दूँ, यदि कोई जल में घुस जाय, तो उसे इस जाल में फँसा दूँ और कोई आकाश में चढ़ जाय तो उसे इस सीढ़ी से नीचे उतार दूँ ।' उन्हें अपने ज्ञान का अत्यधिक अजीर्ण था । वे अपने आपको **'सर्वज्ञपुत्र'** मानते थे । इसी आधार पर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी **''यदि मैं किसी शास्त्र के रहस्य को न समझ पाऊँ और मुझे कोई रहस्य समझा दे, तो मैं उसका आजीवन शिष्य बन जाऊंगा ।''** उन्हें अपनी विद्वत्ता और पांडित्य पर बड़ा अभिमान था ।

लेकिन एक दिन एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना हुई, जिससे उनका अभिमान चूर-चूर हो गया । उनके जीवन में भारी परिवर्तन आ गया । वे एक जैन उपाश्रय के पास से पसार हो रहे थे । उस उपाश्रय में एक साध्वीजी महाराज स्वाध्याय कर रही थी । एक ही गाथा का पुनरावर्तन चल रहा था । पुरोहित हरिभद्र ने उस गाथा को ध्यानपूर्वक सुना । वह चिन्तन की अतल गहराई में खो गया ।

साध्वीजी महाराज अपने स्वाध्याय में लीन थी और वे बार-बार वही गाथा बोल रही थी । गाथा इस प्रकार थी :–

चक्की दुगं हरि पणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की ।
केसव चक्की केसव दु, चक्की केसी य चक्की य ।।

पं. हरिभद्र इस गाथा के अर्थ के विषय में सोचता रहा परन्तु उसे गाथा का अर्थ समझ में नहीं आया । बार-बार सोचने पर भी उसे निराशा ही हाथ लगी । उसे अपनी प्रतिज्ञा याद आई । वह उस गाथा के रहस्य को जानने के लिए साध्वीजी महाराज के पास चला गया ।

उसने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ कर साध्वीजी महाराज से निवेदन किया ''आप जिस गाथा का बार-बार पुनरावर्तन कर रही हैं, मैं उसका अर्थ जानना चाहता हूँ । कृपया आप उसका अर्थ समझा दें, तो मैं आपका जीवन भर आभारी रहूंगा ।''

हरिभद्र पुरोहित की जिज्ञासा जानकर साध्वीजी म. ने सोचा, ''ये प्रकाण्ड विद्वान हैं, अतः इन्हें आचार्यश्री बराबर समझा सकेंगे ।'' इस प्रकार विचार कर साध्वीजी म. ने कहा, ''हमें तो मात्र इस सूत्र के अभ्यास की अनुमति है, विवेचन की नहीं । अतः यदि आप इसका विस्तृत अर्थ जानना चाहते हो तो हमारे आचार्यदेवश्री के पास पधारे, वे आपको इसका अर्थ समझा सकेंगे ।''

साध्वीजी म. के इस वचन को सुनकर पण्डित **हरिभद्र** अत्यन्त ही प्रभावित हुआ । साध्वीजी म. की आचार संहिता और मर्यादा पालन से **हरिभद्र** पुरोहित खूब प्रभावित हुआ ।

साध्वीजी म. के उपाश्रय से निकल कर वह अपने घर गया । उसने सारी रात आचार्यश्री से मिलने की उत्सुकता में पसार की । कल्पना की आँखों से वह आचार्यश्री की छबि को निहार रहा था । कैसे होंगे वे आचार्यदेव ! इत्यादि विचारों में डूबा हुआ पण्डित हरिभद्र दूसरे दिन प्रातः आचार्यश्री के वन्दनार्थ निकल पड़ा ।

उपाश्रय के पास में भव्य जिनमन्दिर था । उसमें जिनेश्वरदेव की भव्य प्रतिमा थी । प्रभु-दर्शन के साथ ही उसका मनमयूर नाच उठा और वह बोला :–

वपुरेव तवाचष्टे, भगवन् ! वीतरागताम् ।
न हि कोटरसंस्थेऽग्नौ, तरुर्भवति शाड्वलः ।।

'हे प्रभो ! आपकी मूर्ति ही वीतरागता की सूचक है, क्योंकि कोटर में अग्नि हो तो वृक्ष हराभरा कैसे रह सकता है ?'

साध्वीजी के वचन ने पण्डित हरिभद्र के जीव में अचानक मोड़ ला दिया था । पण्डित हरिभद्र का कायाकल्प हो गया था ।

जिस प्रभु-प्रतिमा को देखकर पण्डित हरिभद्र के दिल में घृणा व तिरस्कार की भावना जगी थी, आज उसी प्रतिमा को देख, उसके दिल में आदर व बहुमान भाव जागृत हो गया । पण्डित हरिभद्र के जीवन में Turning Point आ चुका था । अपनी प्रतिज्ञा पालन के नियम ने उसे एक नये क्षितिज पर लाकर खड़ा कर दिया ।

बस ! अत्यंत आनंद व उत्साह के साथ पण्डित हरिभद्र ने उपाश्रय में प्रवेश किया ।

उपाश्रय में प्रवेश के बाद उसे एक नवीन वातावरण की अनुभूति हुई । उपाश्रय के एक खंड में अपने अपने स्थान पर साधु महात्मा बैठे हुए थे । कुछ स्वाध्याय में लीन थे, तो कुछ जाप कर रहे थे । कुछ वैयावच्च में तल्लीन थे ।

महात्माओं की ज्ञान-साधना और ध्यान मग्नता को देखकर पण्डित हरिभद्र अत्यंत प्रभावित हुआ । उसने एक महात्मा से पूछा, ``आचार्य महाराज कहाँ हैं ?'' उत्तर में महात्मा ने आचार्य भगवंत के आसन की ओर संकेत किया ।

पण्डित हरिभद्र ने आचार्य भगवंत की ओर देखा । आचार्य भगवंत का महान् तेजस्वी चेहरा, नयनों से बहती हुई वात्सल्य की अमीधारा, भाल पर ब्रह्मचर्य का दिव्य तेज यह सब देख कर हरिभद्र की आँखे चकाचौंध हो गई ! आचार्य भगवंत के विराट् व्यक्तित्व के सम्मुख उसे अपना व्यक्तित्व वामनसा प्रतीत हुआ । हरिभद्र आगे बढ़ा और वह आचार्य भगवंत के चरणों में गिर पड़ा । आचार्य भगवंत ने अत्यंत मधुर स्वर से 'धर्मलाभ' की आशिष दी ।

'धर्मलाभ' के सुमधुर आशीर्वाद से हरिभभद्र का दिल आनंद से भर गया । आचार्य भगवंत ने हरिभद्र को पहचान लिया । वे सोचने लगे, ``चौदह विद्याओं में पारंगत, अभिमान की साक्षात् मूर्ति, यह राजपुरोहित आज उपाश्रय में कैसे आ गया ? अवश्य ही इसके अभिमान पर चोट लगी होगी ? परन्तु उसने जिस ढंग से वीतराग परमात्मा की भव्य स्तुति की है, उससे लगता है कि अवश्य ही इसकी भवितव्यता का परिपाक हुआ है ।''

कुछ सोचकर सूरीश्वर ने कहा-**``बुद्धिनिधान ! कुशल हो न ? यहां कैसे आगमन हुआ ?''**

आचार्यदेव की वात्सल्यपूर्ण वाणी से हरिभद्र खुश हो गया । उसने सोचा, ``अहो ! कितने महान है ये आचार्यदेव ! वर्षों तक मैंने जैनधर्म का कितना खण्डन किया, अरिहन्तदेव की कितनी निंदा की, फिर भी आचार्य महाराज मुझे **'बुद्धिनिधान'** कह कर सम्बोधित कर रहे है ।

पण्डित हरिभद्र ने अत्यंत नम्रता से कहा, ``गुरुदेव ! मैं **'चक्की दुगं'** गाथा के रहस्य को समझने के लिए आपके पास आया हूँ, कृपया मुझे इसका रहस्य समझाएँ ।''

गुरुदेव ने कहा, ``महानुभाव ! बड़ी खुशी की बात है कि आपके मन में, इस गाथा के रहस्य को समझने की भावना पैदा हुई, किन्तु इस गाथा के वास्तविक रहस्य को समझने के लिए जैनशासन की अपनी अपनी व्यवस्था है । दीक्षा अंगीकार कर तपः साधना द्वारा इस शास्त्र का योगोद्वहन करना पड़ता है । तत्पश्चात् ही इस गाथा के वास्तविक रहस्य को समझ सकोगे ।''

हरिभद्र ने कहा, ``गुरुदेव ! मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि यदि मैं किसी गाथा अथवा शास्त्र के रहस्य को न समझ पाऊँ तो उस व्यक्ति का आजीवन दास बन जाऊँ । तो मुझे उस गाथा का रहस्य समझावे और इस हेतु मुझे अपना शिष्यत्व प्रदान करें ।''

हरिभद्र की इस भावना से आचार्य भगवंत अत्यंत प्रसन्न हुए । उन्होंने हरिभद्र को भागवती-दीक्षा प्रदान करने के पूर्व स्वजनों (कुटुम्ब) की सम्मति लेने के लिए भेजा । **जिनेश्वरदेव ने प्रव्रज्या को मुक्ति का राज-मार्ग बतलाया है । यह भागवती प्रव्रज्या सब का कल्याण करनेवाली है । प्रव्रज्या के द्वारा आत्मा सर्व पापों से मुक्त बनती है । इस प्रव्रज्या का पालक चौदह राजलोक में रहे सभी जीवों को अभय प्रदान करता है और आत्मा को सर्व कर्मों से मुक्त कर अजरामर पद प्राप्त करता है ।**

प्रव्रज्या-ग्रहण के लिए तैयार पण्डित हरिभद्र ने अपने परिवारजनों की अनुमति प्राप्त की। उसके बाद विद्वान् हरिभद्र ने धूमधाम के साथ आचार्यदेव के वरद हस्तों से भागवती प्रव्रज्या अंगीकार की। उन्होंने अपना जीवन आचार्यश्री के चरणों में समर्पित कर दिया।

प्रव्रज्या-ग्रहण के बाद हरिभद्र का कायाकल्प हो गया। उनके जीवन में से मिथ्याभिमान पलायन कर गया, अब वे अत्यंत विनम्र, सुशील और तपस्वी महात्मा बन गये। गुरु शुश्रूषा, शास्त्र अध्ययन और अंतरंग साधना ही उनके जीवन के लक्ष्य बन गया। उन्होंने जैनागमों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। जैनागम की विशालता और विराटता का अनुभव कर वे बोल उठे :–

हा अणाहा कहं हुंता, जइ न हुंतो जिणागमो ?

''हा ! हम अनाथ हो जाते, यदि हमें जिनागम की प्राप्ति नहीं होती ।'' मुनि हरिभद्र अपनी ओजस्वी प्रवचनशक्ति से अनेक भव्यात्माओं को मोक्षमार्ग की देशना देते थे। उनके प्रभावक प्रवचनों को सुनने के लिए जनता उमड़ पड़ती थी। उनकी योग्यता को देखकर गुरुदेवश्री ने उन्हें **'आचार्यपद'** से विभूषित किया और अब मुनि हरिभद्र **'आचार्य हरिभद्रसूरि'** के रूप में बदल गये। आचार्य बनने पर भी वे विनम्रता की साक्षात् मूर्ति थे।

वाद-विवाद

आचार्य हरिभद्रसूरिजी म. के दो विनीत शिष्य थे, हंस और परमहंस। सांसारिक दृष्टि से वे उनके भांजे थे। उनके हृदय में शिष्यों के प्रति अपार वात्सल्य और हितबुद्धि थी। उन्होंने उन्हें जैन दर्शन का सांगोपांग अध्ययन कराया। दोनों शिष्य कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। गुरुदेव की हर शिक्षा को वे आसानी से समझ लेते थें।

एक बार दोनों शिष्यों ने कहा–''गुरुदेव ! जैनदर्शन के अध्ययन के बाद हमें बौद्ध दर्शन के अध्ययन की तीव्र इच्छा है। बौद्धनगर में बौद्ध-धर्म का एक महाविद्यालय है, अतः कृपया हमें वहाँ जाने की अनुमति दीजिए।''

गुरुदेव ने कहा-''वत्स ! मैं तुम्हारी जिज्ञासा से अतीव प्रसन्न हूँ, परन्तु तुम्हारा बौद्ध मठ में जाना हितकर नहीं है।''

शिष्यों ने कहा, ''गुरुदेव ! वहाँ गये बिना बौद्ध-दर्शन की रहस्यपूर्ण बातों का और जैनदर्शन की वास्तविकता का ज्ञान कैसे हो सकेगा ? अतः आप हमें वहाँ जाने की अनुमति प्रदान करें।''

गुरुदेव ने उन दोनों की भावनाओं को पहिचान लिया, लेकिन बौद्ध मठ में विद्याध्ययनार्थ जाने में उन्हें कोई हित दिखाई नहीं दिया, शिष्यों के अत्यंत आग्रह पर **आचार्य हरिभद्रसूरिजी म.** मौन हो गये। उनके मौन को सम्मति मानकर दोनों मुनि छद्मवेश में वहाँ से रवाना हो गये।

हंस और परमहंस दोनों मुनिराज बौद्ध मठ में पहुँच गये। उस विद्यालय में हजारों बौद्ध विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थें, जिन्हें पढ़ाने के लिए बौद्धदर्शन के 1500 प्रकाण्ड विद्वान् थें।

हंस और परमहंस ने उस विद्यालय में प्रवेश लिया और वे उत्साहपूर्वक बौद्धदर्शन का सूक्ष्म

दृष्टि से अध्ययन करन लगे । वे जैनदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान तो थे ही, अतः उन्होंने बौद्धदर्शन के झुठे आरोपों को भी समझने का प्रयत्न किया ।

जैन और बौद्ध दर्शनों को स्पष्टतया समझने के बाद, उन्हें बौद्धमत की कमजोरियों का पता चल गया । अतः बौद्ध मत द्वारा जिन-जिन स्थलों में जैनदर्शन का खण्डन किया गया था, उन-उन स्थलों में दिये गये तर्कों का खण्डन करने के लिए उन्होंने Notes लिखने चालू किये । इस प्रकार वे कागज की पर्चियों पर बौद्धमत की युक्तियों का खण्डन लिखने लगे ।

एक दिन बौद्ध धर्माचार्य बौद्धधर्म का निरूपण कर रहे थे, तब हंस और परमहंस द्वारा लिखे गये दो चार टुकड़े हवा में उड़ते हुए एक बौद्ध भिक्षु के हाथ में आ गये । उन टुकड़ों को पढ़ कर उसके होश-हवास उड़ गए और वह आग-बबूला हो उठा ।

वह सोचने लगा, ``अरे ! जिन अकाट्य तर्कों का निराकरण करने की किसी में ताकत नहीं, उन तर्कों का भी खण्डन कर दिया गया, यह तो बड़ा अनर्थ हो गया । घर में ही गुप्त चोर का प्रवेश हो गया है । हम तो यही समझते थे कि हमारे इन तर्कों का प्रतिकार करने की किसी में ताकत नहीं है और आज इन अकाट्य तर्कों को भी तोड़ दिया है ।'' इस प्रकार विचार करता हुआ वह बौद्ध भिक्षु अपने धर्माचार्य के पास जा पहुँचा ।

बौद्ध धर्माचार्य ने उन कागजों को ध्यान से पढ़ा । अपने अकाट्य तर्कों का खंडन देखा, तो उसे भी पसीना छूट गया । उसने कहा, ``जिस व्यक्ति ने इन तर्कों का खंडन किया है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है, वह जैनदर्शन का प्रकाण्ड विद्वान् होना चाहिए । यदि वह कुछ दिन और यहाँ रह गया तो भयंकर अनर्थ हो जाएगा । उसे शीघ्रातिशीघ्र ढूंढ निकालना चाहिए । ऐसा विचार विमर्श कर बौद्ध धर्मगुरु ने अपने एक शिष्य को शयनगृह से नीचे उतरने वाली सीढ़ी पर अरिहन्त देव का चित्र बनाने का आदेश दिया ।

रात का समय था । सभी विद्यार्थी निद्राधीन थे । तभी उस विश्वस्त बौद्ध शिष्य ने शयनगृह से बाहर की सीढ़ी पर अरिहंतदेव का चित्र बना दिया । अगले दिन प्रातःकाल जब सभी विद्यार्थी शौच आदि के लिए अपने-अपने शयनकक्ष से बाहर निकलने लगे, तो उन्होंने अरिहन्त देव का चित्र देखा । बौद्ध विद्यार्थी अरिहंतदेव के चित्र पर पैर रख कर जाने लगें । परन्तु हंस और परमहंस अरिहन्त प्रभु के चित्र को देखते ही चोंक उठे । उन्होंने सोचा, ``हो न हो, आज हमारा भेद खुल गया है । अब क्या किया जाये ?'' दोनों भाई चिन्तातुर हो गयें । ``अरिहन्त देव के चित्र पर पैर रखना जिनेश्वरदेव की घोर आशातना है । कैसे बचा जाए, इस घोर आशातना से ?'' उन्होंने मन-ही-मन विचार किया, ``अरिहन्तदेव का हमारे ऊपर असीम उपकार है । जान दे देंगे, परन्तु अरिहन्त प्रभु की आशातना तो नहीं करेंगे ।''

सोचते-सोचते उन्हें एक विचार सुझ गया । हंस ने उस चित्र के गले पर तीन रेखाएँ अंकित कर दीं । ऐसा करने से चित्र का रूप बदल गया । अब वह चित्र अरिहन्तदेव के बजाय महात्मा बुद्ध का हो गया । उसके बाद वे नीचे उतर आए । इस घटना की जाँच के लिए दो बौद्ध भिक्षु गुप्तरूप से बैठे हुए थे । उन्होंने यह दृश्य देखा, वे आगबबूला हो उठे, वे तुरन्त अपने धर्माचार्य के पास

गये और उन्होंने सारी घटना सुना दी । उन्होंने कहा, `यदि आपकी आज्ञा हो, तो उन्हें अभी जान से मार दें ।'

बौद्धाचार्य ने कहा, ``इतनी जल्दी न करो, यह तो अधूरी परीक्षा है । अब तुम मध्य रात्रि में उनकी छत पर जोर-जोर से घड़ें फोडना । घड़ें की आवाज से वे भयभीत होंगे और अपने इष्टदेव का स्मरण करेंगे, तब इनके जैन होने का सही पता लग सकेगा ।''

दूसरी रात में यह प्रयोग किया गया । घड़े फूटने पर सभी विद्यार्थी घबराकर उठ गए । किसी भयंकर घटना की आशंका से अपने इष्टदेव का नाम जपने लगे । बौद्ध विद्यार्थी **``बुद्धं शरणं गच्छामि''** का पाठ करने लगे । परन्तु हंस और परमहंस जोर से **`नमो अरिहंताणं'** बोले और नवकार मन्त्र का जाप करने लगे । `नमो अरिहंताणं' की आवाज सुनते ही बौद्ध भिक्षुओं को विश्वास हो गया कि ये दोनों जैन हैं और बौद्धों का खण्डन करने के लिए ही गुप्त रूप से यहाँ विद्याध्ययन कर रहे हैं । उन्होंने तुरन्त ही यह समाचार अपने धर्माचार्य को बताया ।

हंस और परमहंस को इस षड्यंत्र की गंध आ चुकी थी । वे वहाँ से बाहर निकलने का उपाय सोच कर भाग निकले । बौद्ध भिक्षुओं को इस बात का पता चल गया । वे भी उनका पीछा करने लगे ।

हंस ने परमहंस से कहा, ``भद्र ! तू यहाँ से जल्दी भाग जा । बौद्ध संन्यासी अपना तेजी से पीछा कर रहे हैं और वे अपने को अवश्य मार डालेंगे । मैं थक चुका हूँ, तूं मेरी चिंता न कर । तूं गुरुदेव के पास चला जा । उन्हें मेरी वंदना और **``मिच्छा मि दुक्कडम्''** कहना । कदाचित् तू पकड़ा जाये, तो निकटवर्ती शहर के न्यायप्रिय महाराजा सुरपाल की शरण में चले जाना ।''

परमहंस ने कहा, ``प्रेम और वात्सल्य के वशीभूत होकर आप मुझे यहाँ से चले जाने का आदेश दे रहे हैं, परंतु यह मेरे लिए शक्य नहीं है, मैं आपको इस आपत्ति में छोड़ कर नहीं जा सकता ।''

इसी बीच शस्त्रधारी संन्यासी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने हंस और परमहंस पर बाणों की बौछार आरम्भ कर दीं । हंस भी कोई कम नहीं था, वह भी एक प्रसिद्ध योद्धा रह चुका था, अतः उसने भी शत्रुओं के प्रतिकार का भरसर प्रयत्न किया, किन्तु निरन्तर बाण-वृष्टि से घायल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया । भाई की मृत्यु से परमहंस को बड़ा दुःख हुआ । किसी भी प्रकार से अपने आप को शत्रुओं से बचाता हुआ वह महाराजा सुरपाल के पास जा पहुँचा । महाराजा सुरपाल एक न्याय-प्रिय राजा थे ।

परमहंस ने राजा सुरपाल से निवेदन किया, **``शास्त्रार्थ किये बिना ही बौद्धभिक्षुओं ने मेरे ज्येष्ठ बन्धु को मार दिया है, यह बड़ा भारी जुल्म है, मैं आपसे न्याय चाहता हूँ ।''**

राजा ने कहा, ``आपको न्याय मिलेगा, परन्तु आप शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहें ।''

परमहंस ने कहा, ``मैं शास्त्रार्थ के लिए तैयार हूँ ।''

थोड़ी देर के बाद कुछ बौद्ध भिक्षु आ गये । उन्होंने राजा सुरपाल से परमहंस सौपने की मांग की ।

राजा ने कहा, ``शरणागत को इस प्रकार सौंप देना, कायरों का काम हैं, शूरवीरों का नहीं । यदि आप शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं तो हार जाने की अवस्था में यह तुम्हें वापिस कियाजा सकताहै ।''

बौद्ध भिक्षुओं ने कहा, ``इसने बुद्ध भगवान् के मस्तक पर पैर रखा है, हम इसका मुँह भी देखना नहीं चाहते। प्रत्यक्ष में वाद नहीं हो सकता, पर्दे के पीछे रहकर इससे वाद किया जा सकता है। इस वाद में यदि वह जीत गया, तो हम उसे मुक्त कर देंगे और यदि हार गया, तो हम उसका वध कर देंगे।'' परमहंस ने यह शर्त स्वीकार की।

दूसरे दिन वाद प्रारम्भ हो गया। पर्दे के पीछे रहकर वाद करने में बौद्धों की चालबाजी थी। वे जानते थे कि प्रत्यक्ष वाद में जीतना कठिन है, अतः तारादेवी (बौद्धों की अधिष्ठायक देवी) के माध्यम से वाद करना ठीक रहेगा।

परमहंस और पर्दे के पीछे रही देवी के बीच वाद शुरु हुआ। पर्दे के पीछे से जो युक्तियों दी जाती, परमहंस उनका युक्तिपूर्वक खण्डन करता और पुनः परमहंस अपना मत स्थापित करता, इस प्रकार यह वाद आगे बढा। परमहंस ने सोचा, ``जिनमत की जीत क्यों नहीं हो रही है, बात क्या है ?'' अतः उसने रात्रि के समय अम्बिका देवी को याद किया। देवी तुरन्त उपस्थित हुई।

देवी ने कहा, 'पर्दे के पीछे बौद्धों की अधिष्ठायिका तारादेवी वाद कर रही हैं, अतः तुम्हारी जीत नहीं हो रही है। तुम पर्दा हटाने की बात करोगे तो अवश्य तुम्हारी जीत होगी।'

दूसरे दिन परमहंस ने प्रत्यक्ष रूप से वाद करने का आग्रह किया और तभी बौद्ध धर्माचार्य मौन हो गया। परमहंस ने पर्दा हटाया और घड़ा फोड़ दिया। बौद्धों की दाम्भिक वृत्ति का पर्दाफाश हो गया। परमहंस की किसी भी युक्ति का वे जवाब न दे सके और उनकी हार हो गई। राजा सुरपाल के हृदय में परमहंस के प्रति सद्भाव प्रगट हो चुका था, अतः उसने परमहंस को रक्षण दिया।

कुछ समय बाद परमहंस वहाँ से भाग गया। बौद्धों को जब इस बात का पता चला, तो कुछ बौद्ध घुड़सवारों ने उसका पीछा किया। परमहंस सुरक्षित रूप से गुरुचरणों में पहुँच गया। परमहंस ने गुरुचरणों में नमस्कार किया। वह गुरु अवज्ञा के लिए क्षमायाचना करने लगा।

गुरुदेव ने उसे ढाढस बँधाया और कहा, ``वत्स ! हंस कहाँ है ?'' परमहंस ने बौद्धों की क्रूरता और निर्दयता की बात की। उसकी मृत्यु का वर्णन इतना हृदयविदारक था कि वर्णन करते-करते उसके भी प्राण पखेरू उड़ गये।

हंस और परमहंस की मृत्यु से **आचार्यश्री हरिभद्रसूरि** कोपातुर हो गए। उनका दिल दहल गया। वे अपने सुयोग्य शिष्यों की विरह-वेदना को सहन न कर सके। उन्होंने राजा सुरपाल के पास जाकर बौद्ध धर्माचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव रखा। राजा ने दूत भेज कर बौद्ध धर्माचार्य को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया।

आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज और बौद्ध धर्माचार्य के बीच शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। दोनों पक्ष अपने-अपने मत की स्थापना और विरोध पक्ष का खण्डन करने लगे। शास्त्रार्थ करते-करते सात दिन बीत गये, परन्तु हार-जीत का कोई निर्णय नहीं हुआ। तब राजा ने **हरिभद्रसूरिजी** से कहा-``प्रभो ! यह शास्त्रार्थ तब तक चलेगा ?''

आचार्यदेव ने कहा, ``राजन् ! धैर्य रखो, मैं शीघ्र ही इसका निर्णय लाने की कोशिश करूंगा।''

रात्रि के समय आचार्य भगवंत ने अम्बिका देवी का ध्यान किया । थोड़ी देर में देवी उपस्थित हो गई ।

सूरिवर ने कहा, ``हे माता ! मैंने गृहस्थावस्था में भी अनेक बौद्ध पंडितों को हरा दिया था, परन्तु अब जिनागमों का सहारा होने पर भी बौद्ध धर्माचार्य क्यों नहीं हार रहा है ?''

देवी ने अवधिज्ञान द्वारा उत्तर दिया, ``बौद्ध धर्माचार्य को तारादेवी का वरदान प्राप्त है, उसने अपने मुँह में एक मंत्रित गोली रखी है, जब तक वह गोली उसके मुँह में है, तब तक उसे कोई नहीं हरा सकता ।'' **आचार्य हरिभद्रसूरि** को बौद्धों का रहस्य प्राप्त हो गया ।

दूसरे दिन पुनःशास्त्रार्थ चालू हुआ । **आचार्य हरिभद्रसूरिजी** ने कहा, ``हे राजन् ! शास्त्रार्थ इसलिए समाप्त नहीं हो रहा है, क्योंकि वह अशुद्ध मुख से किया जा रहा है । अतः शास्त्रार्थ से पहले सबकी मुख-शुद्धि होनी आवश्यक है ।'' बौद्ध धर्माचार्य ने इस बात को स्वीकार कर लिया । बाद में शर्त रखी गयी कि जो हार जायेगा उसे तेल के उबलते कड़ाह में कूद कर मर जाना होगा । **आचार्य हरिभद्र** ने इस शर्त को मंजूर कर लिया और मुख-शुद्धि के बाद शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ ।

वाद में हार जाने से बौद्धाचार्य को तपे हुए तेल के कुण्ड में कूदना पड़ा । उसके बाद दूसरा बौद्ध पंडित वाद के लिए तैयार हुआ, उसकी भी हार हो गई और पूर्व शर्त के अनुसार उसे भी तपे हुए तेल के कुंड में कूदना पड़ा ।

उसके बाद तीसरा पंडित आया, उसकी भी वही दशा हुई । इस प्रकार एक-के-बाद-एक वाद करने लगे और सबकी हार हुई ।

अपने धर्मगुरुओं की अकालमृत्यु को देखकर शेष बौद्ध शिष्यों में हाहाकार मच गया और वे वहाँ से भाग गये ।

यहाँ कुछ आचार्यों का मत है कि **आचार्य हरिभद्रसूरिजी** अपनी मंत्रशक्ति से बौद्धों को खींचकर लाये और उन्होंने उन्हें कढ़ाई में होम दिया ।

`अपने शिष्यों की मौत के बदले की भावना से **आचार्य हरिभद्र** का क्रोध बढ़ता जा रहा है ।' इस बात का पता उनके गुरुदेव **आचार्य श्री जिनभट्टसूरिजी** को चला, तो उन्होंने सोचा, `एक गीतार्थ शिष्य क्रोध के वशीभूत होकर अपना अनर्थ कर रहा है । हंस और परमहंस तो चले गये, अब उनके लिए इतना क्रोध करना उचित नहीं है ।' उन्होंने **आचार्य हरिभद्र** को तीन गाथायें भेजी, जिनमें क्रोध से होने वाली हानि और क्षमा से होने वाले लाभ का वर्णन किया था । इन गाथाओं में एक ऐसी कथा का वर्णन था । जिनमें क्रोध का अनुबंध करने वाली एक आत्मा नौ भवों तक अपने वैर का बदला लेती है । उनके नौ भवों के नाम और सम्बन्ध इस प्रकार है :–

1. गुणसेन (राजा)	अग्निशर्मा (तापस)
2. सिंह (पिता)	आनंद (पुत्र)
3. शिखि (पुत्र)	जालिनी (माता)
4. धन (पति)	धनश्री (पत्नी)

5. जय (भाई)	विजय (भाई)
6. धरण (पति)	लक्ष्मी (पत्नी)
7. सेन (चाचा)	विसेन (भतीजा)
8. गुणचंद्र	वाणव्यंतर
9. समरादित्य (राजपुत्र)	गिरिसेन

गुणसेण अग्गिसम्मा सीहाणंदा य तह पिया पुत्ता ।
सिहिजालिणी माइसुआ, धण-धणसिरि तह य पइभज्जा ।।1।।
जय विजया य सहोअर, धरणो लच्छी य तह-पइभज्जा ।
सेण विसेणा य पित्तिय, पुत्ता जम्मम्मि सत्तमए ।।2।।
गुणचंद य वाणमंतर, समराइच्च गिरिसेण पाणोय ।
एगस्स तओ मुक्खोऽणंतो अन्नस्स संसारो ।।3।।

गुरु-प्रदत्त तीन गाथाओं को पढ़ते ही **आचार्य हरिभद्रसूरि** का दिल पश्चात्ताप से भर उठा । वे तत्काल अपने गुरुदेव के पास गये और उनसे हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''हे गुरुदेव ! आप कितने महान् हो और मैं कितना अधम ! मैंने शिष्य के मोह में फँस कर क्रोध का आश्रय लिया । परन्तु फिर भी आपने मुझे सन्मार्ग दिखाया ।'' इस प्रकार अपनी भूल स्वीकार करते हुए, उन्होंने अपने गुरुदेव से इस पाप का प्रायश्चित्त मांगा ।

गुरुदेव ने कहा, ''कषाय का त्याग कर स्व-गृह में आ जाना, यही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है । तुम तो 'कम्मे सूरा' के साथ साथ 'धम्मे सूरा' भी हो ।'' इसके बाद गुरुदेव ने उन्हें योग्य प्रायश्चित्त प्रदान किया ।

आचार्य हरिभद्र तीव्र तप करने लगे, उनका आत्म-तेज बढ़ने लगा । फिर भी कभी-कभी उन्हें अपने शिष्यों की विरह वेदना पीड़ित कर उठती थी । उनकी विरह वेदना को जान कर अंबिकादेवी ने कहा, ''सूरिवर ! आप व्यर्थ की चिन्ता छोड़कर महान् ग्रन्थों की रचना करें ताकि आने वाली पीढ़ी अपना कल्याण कर सके ।'' देवी के कहने पर आचार्य भगवंत ने 1444 ग्रन्थों की रचना की ।

गुरुनिर्दिष्ट जिस कथा के संकेत से उन्होंने उपशम की प्राप्ति हुई थी, उसी कथा को भव्यात्माओं के लिए उपयुक्त समझ कर आपने **''समराइच्च कहा''** नामक महान् ग्रन्थ की रचना की, जिसमें पद-पद पर साहित्यिक लालित्य के साथ-साथ, संवेग और वैराग्य का उपदेश दिया गया है । इस ग्रन्थ की अनेक मौलिक विशेषताएँ हैं, जो इस ग्रन्थ के अध्ययन से ही जानी जा सकती हैं ।

श्रुत-भक्ति

सूरिपुरंदर **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** संस्कृत-प्राकृत साहित्य के नवसर्जन में तल्लीन बने हुए थे । अपनी भूल के प्रायश्चित्त के रूप में वे 1444 ग्रंथों का सर्जन अप्रमत्त भाव से कर रहे थे ।

ग्रंथ-निर्माण का कार्य निरंतर आगे बढ़ रहा था, इस कारण हर 'दिन' उन्हें बहुत ही छोटा लगता था। साहित्य-सर्जन में दिन कब और कैसे पूरा हो जाता, उसका पता ही नहीं चलता।

प्रातःकाल से प्रारम्भ हुई साहित्य-सर्जन की वह यात्रा संध्या समय तक चलती रहती थी, फिर भी वे लेश भी थकावट का अनुभव नहीं करते थे।

एक दिन की बात है। सूर्यास्त की वेला तक उनका सर्जन चालू ही था, अचानक सूर्यास्त के कारण अंधेरा छा जाने से इच्छा न होने पर भी उन्हें 'विराम' लेना पड़ा। उस समय उनके चेहरे पर उदासीनता छा गई।

उस समय लल्लिगशेठ वहाँ उपस्थित थे। उपाश्रय में झाड़ू निकालने की नौकरी करनेवाला 'लल्लू' ही आज देव-गुरु की कृपा से लल्लिग शेठ बन गया था।

लल्लिग शेठ ने पूछा, ''हे गुरुदेव ! निराश व हताश बने व्यक्ति के जीवन में आशा का संचार करनेवाले आपके चेहरे पर आज उदासीनता क्यों दिखती है ?''

गुरुदेव ने कहा, ''लल्लिग ! जीवन का आयुष्य प्रतिदिन क्षीण हो रहा है...और अभी तक काफी ग्रंथों का नवसर्जन का काम तो बाकी है। देखते-ही-देखते शाम हो जाती है और चिंतन के प्रवाह को शब्दस्थ करने का काम रुक जाता है।'' लल्लिग शेठ गुरुदेव की समस्या को समझ गए। वे घर गए और अपने खजाने में 1.5 करोड़ की लागत का एक माणिक्य लेकर उपाश्रय में उपस्थित हो गए।

उपाश्रय की दीवाल में उन्होंने वह माणिक्य इस प्रकार लगा दिया कि रात के अंधेरे में भी वहाँ रत्न का प्रकाश फैल जाता था...और रत्न के उस अचित्त प्रकाश में पूज्य आचार्यदेव दीर्घ समय तक खूब आसानी से साहित्य का नवसर्जन कर लेते थे। पूज्य आचार्यदेव की श्रुतभक्ति और लल्लिग शेठ की उदारता निश्चय ही अनुमोदनीय है।

साहित्य-सर्जन

(1) आगम-साहित्य :– आगम पंचांगी में आगमों के ऊपर संस्कृत भाषा में टीका-विस्तृत लिखने का प्रारंभ **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** ने किया था। आज तक मूल आगमों पर निर्युक्ति, भाष्य व चूर्णि की रचनाएं हुई थी, वे सभी प्राकृत भाषा में थी।

1) **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** ने सर्व प्रथम छ आवश्यक **'आवस्सय सूत्र'** आगम के ऊपर संस्कृत में 84600 श्लोक प्रमाण की बृहत्टीका की रचना की, जो आज उपलब्ध नहीं है।

आवश्यक सूत्र पर उन्होंने दूसरी छोटी टीका रची, जिसका प्रमाण 22000 श्लोक प्रमाण हैं, जो आज भी उपलब्ध है।

उनके बाद हुए अनेक महापुरुषों ने अपने ग्रंथों में **'आवश्यक सूत्र'** की इस टीका की साक्षी दी है। इससे भी इस ग्रंथ की महिमा का ख्याल आ जाता है।

इसके बाद उन्होंने अनुयोग द्वार, जीवाभिगम सूत्र, दशवैकालिक, नंदीसूत्र, पिंड निर्युक्ति तथा प्रज्ञापना सूत्र आदि आगमों पर भी टीकाएं रची है।

(2) ललित विस्तरा :– चैत्यवंदन सूत्रों पर **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** की एक अनमोल कृति है ।

उनसे लगभग 150-200 वर्ष बाद हुए **पू. सिद्धर्षिगणि** ने उपमिति भव प्रपंचा ग्रंथ के प्रारंभिक श्लोकों में–

'नमोऽस्तु हरिभद्राय तस्मै प्रवरसूरये ।
मदर्थे निर्मिता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ।।' ऐसा लिखा है ।

यद्यपि **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** ने सहज ही इस टीका की रचना की थी, परंतु इसी टीका को पढकर श्रद्धा से विचलित बने सिद्धर्षि गणी पुनः जैन धर्म में स्थिर बने थे, इसलिए कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के रूप में वे कहते है कि **'पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** ने मेरे लिए ही **'ललितविस्तरा'** की रचना की है ।

इस टीका में प्रभु के एक-एक विशेषणों के रहस्यों का उद्घाटन किया हैं, इसके साथ ही उन्होंने 20-21 तत्कालीन अन्य मतों का खंडन भी किया है । जिन्हें पढ़ने से प्रभु के प्रति अहोभाव बढ़े बिना नहीं रहता है ।

'योग संबंधी चार ग्रंथ :–' पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म. ने जैन योग संबंधी चार अद्भूत ग्रंथों का सर्जन किया हैं, जिनमें **योग विंशिका** और **योगशतक** प्राकृत में तथा **योगबिंदु** और **योगदृष्टि समुच्चय** संस्कृत में है ।

योग के मुख्य 5 भेद-स्थानयोग, वर्णयोग, अर्थयोग, आलंबन योग तथा अनालंबन योग ।

इन पांच के 4-4 भेद-इच्छायोग, प्रवृत्तियोग, स्थिरतायोग और सिद्धियोग (5 x 4 = 20 भेद) इन सभी के प्रीति, भक्ति, वचन और असंग अनुष्ठान के रुप में 20 x 4 = 80 योग भेद बतलाए है ।

इसके सिवाय योग के अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता और वृत्ति संशय के प्रकार भी बतलाए हैं ।

योगदृष्टि में योग के तीन भेद इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग के साथ में योग की आठ दृष्टियों का भी बहुत ही सुंदर निरूपण किया है ।

योगी की पूर्व सेवा के रूप में गुरुदेव पूजन, सदाचार, तप और मुक्ति-अद्वेष का भी सुंदर वर्णन है ।

उपदेश पद, अष्टक, षोडषक, पंचाशक आदि ग्रंथों में उन्होंने मोक्ष मार्ग का बहुत ही सुंदर निरूपण किया है ।

– नवांगी टीकाकार **पू. आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी म.** लिखते हैं कि **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** के ग्रंथों में **'पूर्वगत'** बातों का अंश है ।

– **पू. उपाध्याय श्री यशोविजयजी म.** ने अपने अनेक ग्रंथों में **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** के पदार्थों को प्रकाश में लाया है ।

– **पू. आचार्य श्री जिनेश्वरसूरिजी म., पू. आचार्य श्री मुनिचंद्रसूरिजी म.** तथा **पू. आचार्य श्री यशोभद्रसूरिजी म.** आदि अनेक आचार्यों ने **पू. आचार्य श्री हरिभद्ररिजी म.** के ग्रंथों पर टीकाएं रची है ।

पू. आचार्य श्री हरिभद्ररिजी म. ने धर्म के लिए अर्थार्जन का भी निषेध किया है ।

'धर्मार्थं यस्य वित्तेहा, तस्यानीहा गरीयसी ।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य, दूरादस्पर्शनं वरम् ।।'

कीचड़ में पांव डालकर फिर धोना, उसके बजाय तो कीचड़ से दूर रहना ही श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार धर्म में सद्व्यय करने के लिए अनेक पाप कर धन कमाना, इसके बजाय तो धन की इच्छा का त्याग करना ही श्रेष्ठ है ।

'षोडशक' ग्रंथ में जिनमंदिर निर्माण का अधिकारी कौन ? उसके लिए मार्गदर्शन देते हुए वे लिखते है–

'न्यायार्जित-वित्तेशो, मतिमान् स्फीताशयः सदाचारः ।
गुर्वादिमतो जिन-भवन-कारणस्याधिकारीति ।।'

अर्थ : न्याय से उपार्जित धनवाला, बुद्धिशाली, शुद्ध आशयवाला, सदाचारी, गुरु आदि को मान्य. (राजद्रोह आदि से रहित) व्यक्ति ही जिनमंदिर बनाने का अधिकारी है ।

–**'संबोध प्रकरण'** ग्रंथ में वे समभाव की महिमा बताते हुए लिखते है कि–

'सेयंबरो य आसंबरो, बुद्धो य अहव अण्णो वा ।
समभाव-भाविअप्पा, लहइ मुक्खं न संदेहो ।।'

मंगल कामनाएँ :–

ग्रंथ निर्माण से अर्जित पुण्य के फल स्वरूप उनके मनोरथ भी खूब प्रेरणादायी है–

1. अष्टक-प्रकरण के अंत में लिखते है–

'अष्टकाख्यं प्रकरणं, कृत्वा यत् पुण्यमर्जितं ।
विरहात् तेन पापस्य, भवन्तु सुखिनो जनाः ।।'

अष्टक प्रकरण की रचना से अर्जित पुण्य के फल स्वरूप सभी जीव पाप से मुक्त होकर सुखी बने !

2. **कृत्वा यदर्जितं पुण्यं, मयैनां शुभभावतः ।**
तेनाऽस्तु सर्वसत्त्वानां, मात्सर्य विरहः परः ।।

इस **'ललित विस्तारा'** ग्रंथ के सर्जन से मैंने जो पुण्य अर्जित किया हैं, उससे सभी प्राणी मात्सर्य के दोष से मुक्त बने ।

वाचकवर्य उमास्वातिजी ने 500 ग्रंथों का सर्जन किया था, उनसे भी बढकर 1444 ग्रंथों का सर्जन करनेवाले महान् योगी साधक **पू. आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी म.** को कोटिशः नमन हो ।

अपने दुर्भाग्य से उनके द्वारा विरचित ग्रंथों में से 50 आसपास ग्रंथ उपलब्ध है, शेषकाल कवलित हो चूके है । श्री तत्त्वार्थ सूत्र, पिंड निर्युक्ति, क्षेत्रसमास, श्रावक प्रज्ञप्ति, सर्वज्ञ सिद्धि, न्यायावतार आदि ग्रंथों पर उन्होंने टीकाएँ भी रची है ।

यद्यपि उनके द्वारा विरचित बहुत से ग्रंथ लुप्त हो चूके है । फिर भी विद्यमान ग्रंथों में द्रव्यानुयोग में धर्मसंग्रहणी, गणितानुयोग में क्षेत्र समास वृत्ति, चरण करणानुयोग में धर्मबिंदु,

उपदेश पद तथा धर्मकथानुयोग में धूर्ताख्यान आदि है। अन्य विद्यमान ग्रंथों में षड्दर्शन समुच्चय, अष्टक प्रकरण, पंचाशक, पंच वस्तु, श्रावक प्रज्ञप्ति, लोकतत्त्व निर्णय आदि है।

महानिशीथ उद्धार

वर्तमान में विद्यमान 45 आगमों के अन्तर्गत छह छेद सूत्रों में `महानिशीथ ग्रंथ की खूब महिमा है।

–आचारांग आदि कई आगमों के योगोद्वहन में एकांतर आयंबिल तप किया जाता है, जब कि महानिशीथ सूत्र के योगोद्वहन में बिरंतर 52 दिन के आयंबिल किए जाते है।

महानिशीथ सूत्र के अध्ययन के लिए भी विशिष्ट योग्यता–पात्रता चाहिए। अयोग्य व्यक्ति को इस ग्रंथ की वाचना भी नहीं दी जा सकती।

–महानिशीथ के योगोद्वहन के बाद प्रायश्चित्त देने का अधिकार मिलता है।

–आचार्य पदवी के प्रसंग पर `संपूर्ण नंदी सूत्र सुनाने का अधिकार भी महानिशीथ सूत्र के योगोद्वहन करने वाले को ही मिलता है।

–आचार्य आदि के स्थापनाचार्यजी की प्रतिलेखना का अधिकार भी महानिशीथ के योगोद्वहन करनेवाले को ही मिलता है।

–देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण ने जब आगमों को पुस्तकारूढ किया था, तब `महानिशीथ ग्रंथ' को भी ग्रंथ स्थ किया था, परंतु कालक्रम से उधई लग जाने से अथवा पानी लग जाने से `महानिशीथ सूत्र' के कुछ पन्ने नष्ट हो गए थे।

प्रकांड विद्वाण् हरिभद्रसूरिजी ने खूब श्रम करके अपने क्षयोपशमन के बल से अपूर्व त्रूटक भाग को पूर्ण कर इस महान ग्रंथ के जीर्णोद्धार का भगीरथ कार्य किया है। इस ग्रंथ को पुनः संकलितकर तत्कालीन श्रुतधर महामुनियों की सम्मति प्राप्त कर इस ग्रंथ को उन्होने ज्ञान भंडार में स्थापित किया।

आज हमारे सद्भाग्य से 1700 वर्ष बीतने के बाद भी यह अनमोल ग्रंथ हमें प्राप्त हो रहा है, इसमें इस महापुरुष का ही महान उपकार है।

लगभग वि.सं. 785 में पू. हरिभद्रसूरिजी का कालधर्म हुआ था।



आ.श्री प्रद्युम्नसूरिजी

स्तुति

आक्रमण बादल छाए जब, श्री संघ रूपी गगन में,
तेजस्वी सूर्य बने तभी, प्रद्युम्नसूरि बत्तीसवें,
तब बप्पभट्टीसूरि हुए, श्री आम राजा बोधका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।36।।

भगवान महावीर की पाटपरंपरा में 32 वें पट्टधर **आ. श्री प्रद्युम्नसूरिजी** हुए ।

क्रियारत्न समुच्चय के कर्त्ता **आ. गुणरत्नसूरिजी** ने लिखा है कि **आ. प्रद्युम्नसूरिजी म.** जिनशासन के गगन को प्रकाशित करनेवाले तेजस्वी सूर्य थे । इस उपमा से ही पता चलता है कि वे कितने प्रभावशाली आचार्य होंगे !

उनके शासनकाल में जैनशासन पर भयंकर आक्रमण हो रहे थे ।

उस समय शंकराचार्य के अनुयायियों ने सशस्त्र आक्रमण कर अनेक जैनों को प्रदेश छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया था, जिसके फलस्वरूप हजारों जैन बंगाल छोडकर पश्चिम भारत में आ गए और वे आकर मेवाड़, राजस्थान व गुजरात में बस गए ।

वे अपने साथ अनेक जिन प्रतिमाएँ भी लेकर आए । वे प्रतिमाएं नाणा, दियाणा, नांदिया, भिनमाल, मुंडस्थल आदि स्थानों में स्थापित की गई । भगवान महावीर के जीवित अवस्था में बनी होने से वे प्रतिमाएं **'जीवित-स्वामी'** कहलाते है ।

दबाव के कारण कई जैनों को बंगाल में जैन धर्म छोडना पड़ा जो आज **'सराकजाति'** के रूप में प्रसिद्ध है ।

ऐसी विकट परिस्थिति में **आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरिजी** ने खूब श्रम लेकर भी पूर्व भारत में विहार किया था । उन्होंने समेतशिखरजी की सात बार यात्राएं भी की । उनके उपदेश से पूर्व भारत में 17 जिनमंदिरों का निर्माण एवं अनेक मंदिरों का जीर्णोद्धार भी हुआ ।

उनके उपदेश से 11 ज्ञान भंडारों की भी स्थापना हुई ।

जन्म–विक्रम सं. 800
दीक्षा उम्र–7 वर्ष
आचार्य पदवी–11 वर्ष में

उम्र–95 वर्ष
स्वर्गवास–विक्रम संवत् 895

आ. श्री बप्पभट्टीसूरिजी-28

भारत देश ! अपने चरण कमलों से गुजरात देश की पुण्यधरा को पावन करते हुए **आचार्य श्रीसिद्धसेनसूरिजी म. 'मोढेरा'** नगर में पधारे । मोढेरा में चरम तीर्थपति श्री महावीर प्रभु का भव्य जिनालय था । पूज्य आचार्य भगवंत ने अत्यंत ही भावपूर्वक परमात्मा के दर्शन किए ।

योगनिद्रा को धारण करने वाले पूज्य आचार्यदेव ने रात्रि में एक स्वप्न देखा, **'एक सिंह का बच्चा मंदिर के शिखर पर चढ गया है और लंबी–लंबी छलांगे भर रहा है ।'**

इस स्वप्न को देखने के बाद आचार्यदेव की निद्रा भंग हो गई ।

प्रातः काल होने पर पूज्य आचार्यदेव ने उस स्वप्न की बात अपने शिष्यों को कही ।

एक शिष्य ने कुतूहल से पूछा, **'भगवन् ! इस स्वप्न का क्या अर्थ है ?'**

पूज्य आचार्य भगवंत ने कहा, 'संघ के भाग्य से एक ऐसे महाबुद्धिशाली आत्मा का आगमन होगा, जिसके वरदहस्तों से जैनशासन की अद्‌भुत प्रभावना होगी ।'

स्वप्न के इस फलादेश को सुनकर सभी शिष्य प्रसन्न हो गए ।

थोड़ी देर बाद पूज्य आचार्य भगवंत देवाधिदेव वीतराग परमात्मा की वंदना हेतु जिनालय में पधारें । जिनमंदिर के चारों ओर तीन प्रदक्षिण देकर पूज्य आचार्य भगवंत परमात्मा के आगे चैत्यवंदन कर रहे थे, तभी एक छ वर्ष का बालक वहां आया ।

पूज्य आचार्यदेव ने स्नेहभरी निगाह से उस बालक को देखा । चैत्यवंदन की विधि की समाप्ति के बाद पूज्य आचार्यश्री अपने शिष्य परिवार के साथ उस मंदिर में से बाहर निकले ।

पू. आचार्यदेव ने अत्यंत ही मधुरवाणी से उस बालक को पूछा, 'वत्स ! तुम कौन हो और कहां से आए हो ?'

बालक ने कहा, 'मेरा नाम सुरपाल है, मेरे पिता का नाम बप्प और माता का नाम भट्टी है । मैं पंचालदेश के डुंबाउधी नगर से आ रहा हूँ ।'

'आने का प्रयोजन ?'

'मैं अपने दुश्मनों को मार भगाने के लिए हाथ में शस्त्र लेकर तैयार हो गया था, परंतु मेरे पिता ने मुझे 'बालक' समझ कर रोक लिया । इससे मुझे बहुत बुरा लगा । मैंने सोचा 'अहो ! मेरे पिता में वह स्वाभिमान नहीं है, वे दुश्मनों का मुकाबला करने के बजाय उनके पराधीन होकर जीना चाहते है, 'बस, इस घटना से मुझे अपने पिता पर गुस्सा आ गया । उन्हें पूछे बिना ही घर छोड़कर पैदल चलते हुए यहां आ पहुँचा हूँ ।'

आचार्य भगवंत ने उसके ललाटपट्ट को देखा । जैन शासन के इस तेजस्वी रत्न को देख आचार्य भगवंत प्रसन्न हो गए । उन्होंने उस बालक को उपाश्रय में चलने की प्रेरणा दी । बालक तत्काल तैयार हो गया ।

आचार्य भगवंत ने कहा, 'सुरपाल क्या तुम हमारे साथ रहोगे ?'

सुरपाल ने कहा, 'हाँ ! जी ।'

बालक की इस भावना को देख आचार्य भगवंत के सान्निध्य में बालक के आवास आदि की सभी व्यवस्था संघ के अग्रणी श्रावको ने संभाल ली ।

बालक सुरपाल की प्रज्ञा इतनी सूक्ष्म थी कि वह श्रवण मात्र से ही संस्कृत श्लोक कंठस्थ कर सकता था । उसने एक ही दिन में एक हजार श्लोक कंठस्थ कर लिये । आचार्य भगवंत उसकी प्रतिभा से अत्यंत प्रभावित हुए ।

पूज्य आचार्य भगवंत ने सोचा, 'इसे भागवती दीक्षा प्रदान की जाए तो यह जैन शासन का महान् प्रभावक हो सकता है ।' इस प्रकार विचार कर उस बालक को अपने साथ लेकर पू. आचार्य भगवंत ने 'डुंबाउधी' गांव की ओर अपनी विहार-यात्रा प्रारंभ की । क्रमशः विहार करते हुए पूज्य आचार्य भगवंत उस गांव पहुँचे । सुरपाल के माता-पिता को जब इस बात का पता चला कि आचार्य भगवंत पधारे हैं और उनका पुत्र सुरपाल उन्हीं के साथ हैं, वे भी आचार्य भगवंत को वंदनार्थ आए ।

आचार्य भगवंत ने उन्हें धर्मलाभ की आशिष दी । तत्पश्चात् कहा, **'यह बालक अत्यंत ही भाग्यशाली है, घर में रहेगा तो सिर्फ एक कुटुंब का आधार बनेगा और दीक्षा लेगा तो जैनशासन का आधार स्तंभ बनेगा ।'**

मोहाधीन आत्माओं के लिए 'पुत्र-मोह' एक अत्यंत ही जटिल बंधन है । 'यम को दे देगा, किंतु यति को नहीं' यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है ।

सुरपाल के माता-पिता अपनी इकलौती संतान को जैन शासन के चरणों में समर्पित करने के लिए तैयार नहीं हो पाए...परंतु पूज्य आचार्यदेव द्वारा पुनः पुनः समझाने पर सुरपाल के माता-पिता अपनी इकलौती संतान को दीक्षा दिलाने के लिए तैयार हो गए...उसके फलस्वरूप वैशाख सुदी-3 वि.सं. 807 के शुभ दिन 'मोढेरा' में अत्यंत ही हर्षोल्लास के साथ माता-पिता की अनुमति से सुरपाल ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । माता-पिता के आग्रह से दीक्षा के बाद उस बालक का नामकरण **'बप्पभट्टी मुनि'** किया गया ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद गुरुचरणों में पूर्ण समर्पित बप्पभट्टी मुनि रत्नत्रयी की आराधना साधना में एकदम लीन बन गए ।

सरस्वती साधना

पूज्य आचार्य भगवंत अपने विशाल शिष्य परिवार और नवदीक्षित बप्पभट्टी मुनि के साथ मोढेरा में बिराजमान थे । बालमुनि की विशिष्ट योग्यता जानकर आचार्य भगवंत ने उन्हें **'सारस्वत-मंत्र'** प्रदान किया ।

रात्रि के समय में बालमुनि **'सारस्वत-मंत्र'** का जाप कर रहे थे, तभी उनके जाप के प्रभाव से स्वर्गलोक की गंगा में निर्वस्त्र स्नान करती हुई सरस्वती देवी तत्क्षण वहां उपस्थित हो गई।

बालमुनि ने सरस्वती देवी की ओर नजर की, और तत्क्षण अपना मुंह मोड़ लिया।

अपने नग्न स्वरूप को भूली हुई सरस्वती देवी बोली, `वत्स ! तुमने अपना मुंह क्यो फेर लिया है ? तुम्हारे मंत्र-जाप से संतुष्ट होकर मैं यहां उपस्थित हुई हूँ, तुम्हें जो वरदान मांगना हो, वह मांग लो !'

देवी के इन वचनों को सुनकर बप्पभट्टी ने कहा, `हे माता ! तुम्हारे अनुचित रूप को मैं कैसे देख सकता हूँ, अपने स्वरूप को देखो तुम किस स्थिति में हो ?'

उसी समय सरस्वती देवी ने अपने शरीर का ख्याल किया, तब उसे पता चला कि वह किस स्थिति में हैं ?'

देवी ने सोचा, `अहो ! इनका ब्रह्मचर्य व्रत कितना महान् हैं ?'

देवी ने कहा, `तुम्हारे मंत्र जाप का ही यह प्रभाव हैं कि मुझे अपनी स्थिति का कुछ भान न रहा और जिस स्थिति में थी, उस स्थिति में यहां आकर उपस्थित हो गई हूँ !

आम राजा से मिलन

मोढेरा में रहते हुए एक बार बालमुनि स्थंडिल भूमि के लिए नगर बाहर गए हुए थे, तभी अचानक वृष्टि हो जाने से, अप्काय की विराधना के पाप से बचने के लिए वे किसी देवकुलिका में ठहर गए। उसी समय वहां पर एक नवयुवक आया। वर्षा से भीगा होने के कारण वह परेशान था।

बालमुनि के तेजस्वी चेहरे और प्रतिभा को देखकर उस युवक ने बालमुनि से वार्तालाप चालू किया। अतिक्लिष्ट काव्यों की रसभरी बातों को सुनकर उसका मन प्रसन्नता से भर आया।

थोडी देर बाद वर्षा बंद हुई। बालमुनि ने कहा, `मेरे गुरुदेवश्री के पास चलोगे ?'

`क्यों नहीं।'

और वे दोनों वहां से उपाश्रय में लौट आए। बालमुनि ने निर्दोष भाव से देरी से आने का कारण और उस युवक के साथ हुए वार्तालाप की बात बतला दी।

पूज्य आचार्य भगवंत ने उस युवक को पूछा, `तुम कौन हो और कहां से आ रहे हो ?'

उसने कहा, `कान्यकुब्ज में चंद्रगुप्त मौर्य वंश में मुक्तामणि समान **यशोवर्म** राजा हैं, मैं उनका पुत्र हूँ, मेरी माता का नाम **सुयशा** है।

मेरे विपरीत आचरण के कारण पिता ने मुझे शिक्षा दी, अतः मैं अपने देश छोड़कर निकल पड़ा...क्रमशः आगे बढ़ता हुआ यहां आ पहुँचा हूँ।'

गुरुदेव ने पूछा, `तुम्हारा नाम ?'

उसी समय उस युवक ने खटिका (चोक से) से भूमि पर अपना नाम `आम' लिख दिया।

कान्यकुब्ज नगरी...यशोवर्म राजा और सुयशा रानी इत्यादि नाम सुनकर आचार्य भगवंत भूतकाल के विचारों में खो गए।

`अहो ! इस बालक को तो मैंने एक जंगल में पीलु की डाली में वस्त्र की झोली में सोए हुए देखा था । उस बालक पर वृक्ष की स्थिर छाया थी अर्थात् सूर्य के आगे बढने पर भी वृक्ष की छाया में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था । मैंने उस समय इस बालक के ललाट पट्ट को देखा था...पास ही में एक स्त्री बैठी हुई थी ।

मैंने उस स्त्री को पूछा था, `तुम कौन हो ?'

उसने कहा, `मेरा नाम सुयशा है । मैं कान्यकुब्ज के महाराजा यशोवर्म की महारानी हूँ, यह बालक मेरे गर्भ में आया, तभी से मेरे जीवन में दुःख का प्रारंभ हो चूका था, शौक्य रानी ने मेरे ऊपर झूठा आरोप लगा दिया, फलस्वरूप कोपायमान बने राजा ने मुझे देश निकाल की सजा की । उसके बाद पिता के घर जाने के बजाय मैं जंगल में चली गई । इसी जंगल में मैंने इस बालक को जन्म दिया ।'

रानी की इस बात को सुनकर मेरे दिल में दया आ गई थी मैंने उस रानी को पुत्र सहित नगर में आने को कहा था और वहां पर श्रावकों के द्वारा उसके आवास आदि की उचित व्यवस्था करा दी थी ।

कुछ समय बाद राजा की उस शोक्या रानी की मृत्यु हो गई । राजा को सब सत्य समझ में आया । सुयशा रानी की निर्दोषता सिद्ध हुई । तत्पश्चात् उसी राजा के राजसेवक उस रानी को वापस कान्यकुब्ज लेने के लिए आए ।

रानी अपने पुत्र को लेकर कान्यकुब्ज चली गई । कुछ वर्षो बाद मैं भी विहार करते हुए उस नगर में पहुँचा था । उस समय वहां के राजा व रानी ने हमारा अपूर्व स्वागत किया था ।'

स्मृति पटल पर अंकित भूतकाल की उन स्मृतियों को पुनः ताजा कर आचार्यदेव ने **`आम'** राजकुमार को बप्पभट्टी मुनि के साथ रहने की प्रेरणा की ।

`आम' ने गुरुदेव की बात मान ली । बप्पभट्टीमुनि प्रकांड विद्वान थे, उनकी विद्वत्ता से आम राजकुमार अत्यंत ही प्रभावित था । सद्गुरुदेव के सान्निध्य में आम सर्वथा चिंतामुक्त बन गया । वह अत्यंत ही आनंदपूर्वक विद्या अध्ययन करने लगा । वहां रहते हुए उसने अनेक विद्याएँ और कलाएँ हांसिल की ।

धीरे धीरे समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा । एक दिन यशोवर्म राजा की ओर से एक दूत आया उसने निवेदन किया, `महाराजा यशोवर्म का स्वास्थ्य बराबर नहीं है वृद्धावस्था ने उनकी काया को जर्जरित बना दी हैं, अतः वे राज्य का भार `आम' राजकुमार को सौंपना चाहते है । आम राजकुमार की शोध में ही घूमते-घूमते यहां आया हूँ ।'

बप्पभट्टी मुनि के साथ आम राजा का स्नेह संबंध इतना गाढ़ बन चुका था कि वह उसे छोड़ना नहीं चाहता था, परंतु आचार्य भगवंत का आदेश होने से एक दिन आम राजकुमार ने कान्यकुब्ज की ओर प्रयाण किया ।

कान्यकुब्ज पहुँचने पर राजकुमार ने अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया । पिता ने भी उसे हृदय से आशीर्वाद दिए ।

तत्पश्चात् एक शुभ दिन 'आम' राजकुमार का राज्यभिषेक किया गया ।

राज्याभिषेक के बाद एक दिन नमस्कार महामंत्र का श्रवण करते–करते यशोवर्म राजा ने भौतिक देह का परित्याग कर परलोक की ओर प्रयाण कर दिया ।

पिता के स्वर्गगमन के बाद 'आम' राजा ने राज्य की धुरा अच्छी तरह से संभाल ली । उसके दिल में प्रजा का हित रहा हुआ था । एक प्रजावत्सल राजा की भांति वह भी प्रजा के सुख-दुःख की चिंता करने लगा ।

विशाल साम्राज्य की प्राप्ति के बाद भी आम राजा बप्पभट्टी मुनि को भूला नहीं था, उसे बप्पभट्टी मुनि की याद पुनः पुनः सता रही थी ।

एक दिन उसने अपने प्रतिनिधि मंडल को तैयार किया और बप्पभट्टी को गोपालगिरि (ग्वालियर) पधारने के लिए आमंत्रण भेजा ।

कुछ ही दिनों में राजा का प्रतिनिधि मंडल मोढेरा पहुँचा । उन्होंने आचार्य भगवंत को आम राजा की ओर से भावपूर्वक विनंति की ।

उस समय बप्पभट्टी मुनि की उम्र मात्र 11 वर्ष की थी । बाल्यवय में भी उनकी प्रतिभा कुछ और ही थी । आचार्य भगवंत ने लाभालाभ जानकर अन्य मुनियों के साथ बप्पभट्टी मुनि को गोपालगिरि की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान की । बप्पभट्टी मुनि की विहार यात्रा आगे बढ़ने लगी । एक दिन आम राजा को समाचार मिले कि 'बप्पभट्टी मुनि ने राज्य की सीमा में प्रवेश कर लिया हैं ।' समाचार सुनकर राजा के हर्ष का पार न रहा ।

आम राजा बप्पभट्टी मुनि के स्वागत के लिए अत्यंत ही उत्सुक था । बप्पभट्टी मुनि के स्वागत के लिए उसने गोपालगिरि नगरी को एक नई दुल्हन की भांति सजा दिया । नगर में स्थान स्थान पर ध्वजा-पताकाएँ व तोरण लगाए गए । नगर में चारों ओर बप्पभट्टी मुनि के स्वागत की चर्चा चल रही थी ।

एक शुभ दिन मंगलवेला में बप्पभट्टी मुनि ने अन्य मुनियों के साथ गोपालगिरि में प्रवेश किया । राजा ने उन्हें मोतियों से बधाया ।

गोपालगिरि के समस्त राजमार्गों से आगे बढ़ती हुई यह स्वागत यात्रा राजमहल में पहुँची और वहां विशाल धर्म सभा में रूपांतरित हो गई ।

बप्पभट्टी मुनि की धर्म-वाणी को सुनकर प्रजा भावविभोर हो गई । इतनी अल्प वय में ऐसी विलक्षण प्रतिभा पहले कभी देखने को नहीं मिली थी !

धर्म सभा के समापन के बाद आम राजा गुरुचरणों में बैठ गया । आम राजा ने बप्पभुट्टी मुनि की क्षेम–कुशलता पूछी ।

दूसरे दिन राजा ने बप्पभट्टी मुनि को सिंहासन पर बैठने के लिए विनंति की ।

बप्पभट्टी मुनि ने कहा, 'इस सिंहासन पर तो आचार्य भगवंत ही बैठ सकते है ।'

बप्पभट्टी मुनि की इस बात को सुनकर राजा खिन्न हो गया । उसके दिल में बप्पभट्टी मुनि

को सिंहासन पर बिराजमान करने की भावना थी । कुछ दिनों की स्थिरता कर बप्पभट्टी मुनि का पुनः मोढेरा की ओर विहार प्रारंभ हुआ । इस विहार यात्रा में राजा के प्रतिनिधि भी साथ में थे । क्रमशः विहार करते हुए बप्पभट्टी मुनि मोढेरा पहुँचे ।

आचार्यपद प्रदान

मोढेरा पहुँचने पर राजा के प्रतिनिधियों ने **पू.आ.श्री सिद्धसेनसूरिजी म.** को राजा की ओर से भावपूर्वक विनंति की कि, **'बप्पभट्टी मुनि को आचार्यपद पर आरूढ किया जाय ।'** आचार्य पदारूढ होने के बाद बप्पभट्टी मुनि का गोपालगिरि में आगमन होगा तो जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना हो सकेगी ।'

आम राजा की इस विनंति पर आचार्य भगवंत ने गहराई से विचार किया ।

आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान बल से देखा, `निश्चय ही बप्पभट्टी मुनि के आचार्य पद पर आरूढ होने के बाद जैन शासन की अपूर्व प्रभावना होगी ।'

आचार्य भगवंत ने समस्त संघ को इकट्ठा किया । तत्पश्चात् आचार्य भगवंत ने बप्पभट्टी मुनि को आचार्य पद पर आरूढ करने की अपनी भावना व्यक्त की ।

आचार्य भगवंत की इस भावना को सुनकर श्री संघ में चारों ओर उत्साह-उल्लास का वातावरण छा गया ।

जिनमंदिरों में परमात्म भक्ति का महोत्सव किया गया ।

पूज्य बप्पभट्टीसूरिजी का अपूर्व त्याग

विक्रम संवत् 811 चैत्र कृष्णा अष्टमी का पवित्र दिन !

आचार्य श्री सिद्धसेनसूरिजी ने जिनशासन के अजोड़ प्रभावक, आम राजा प्रतिबोधक बप्पभट्टीमुनि को आचार्य पद प्रदान करने का निर्णय लिया ।

उस समय बप्पभट्टीमुनि की उम्र बहुत ही छोटी थी ।

आचार्य पद प्रदान की मंगलमय क्रिया चल रही थी, इस बीच आचार्य भगवंत के मुख पर उदासीनता छा गई । वे बप्पभट्टी के भविष्य की चिंता में डूब गए ।

तुरंत ही बप्पभट्टीमुनि को इस बात का पता चल गया । वे गुरुदेव के निकट आए और बोले, `गुरुदेव ! आनंद के प्रसंग पर आपके चेहरे पर उदासीनता क्यों ?'

गुरुदेव बोले, `बप्प ! पद-प्रदान की क्रिया के साथ अचानक मुझे तेरे भविष्य की चिंता हो गई ।'

`एक ओर तेरी छोटी उम्र और दूसरी ओर यह राजकीय मान-सम्मान ! ये दोनों चीजें संयम के लिए खतरनाक हैं ।'

``गुरुदेव ! यही बात है न !...मैं आज ही प्रतिज्ञा करता हूँ कि भविष्य में भक्त के घर की गोचरी नहीं लूंगा और जीवनभर के लिए छह विगई का त्याग करता हूँ ।''

सुनते ही गुरुदेव का चेहरा प्रसन्नता से भर आया ।

उन्होंने बप्पभट्टी को हृदय से आशीर्वाद प्रदान किए और बोले, **'तू महान् ब्रह्मचारी और शासन प्रभावक बनेगा ।'**

सचमुच ! गुरुदेव के आशीर्वाद पूज्य आचार्य भगवंत श्री बप्पभट्टीसूरिजी म. के जीवन में फलीभूत हुए । वे श्रेष्ठ ब्रह्मचारी सिद्ध हुए । उन्होंने अपने जीवन में जिनशासन की अजोड़ प्रभावनाएँ कीं ।

मोढेरा संघ की यही भावना थी कि नूतन आचार्य भगवंत का लाभ श्री संघ को प्राप्त हो । परंतु आम राजा की पुनः पुनः विज्ञप्ति और प्रार्थना को ध्यान में रखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने नूतन आचार्य बप्पभट्टिसूरिजी को गोपालगिरि की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान की ।

गांव-गांव और नगर-नगर में जैनशासन की अपूर्व प्रभावना करते हुए **बप्पभट्टिसूरिजी म.** पुनः गोपालगिरि पधारें । आम राजा ने उनका भव्यातिभव्य स्वागत किया । 11 वर्ष की बाल्य-वय में प्रौढ प्रतिभाशाली आचार्य भगवंत के सान्निध्य को पाकर आम राजा के उत्साह का पार न रहा ।

नूतन आचार्य भगवंत प्रतिदिन राजसभा में आकर सिंहासन पर आरूढ होकर राजा और प्रजा को धर्मबोध देते है ।

आचार्य भगवंत के सदुपदेश से आम राजा ने 100 हाथ ऊंचे विशाल जिनालय का निर्माण कराया और उसमें आचार्य भगवंत के वरद हस्तों से महावीरस्वामी की सुंदर प्रतिमा स्थापित कराई ।

पूज्य आचार्य भगवंत के वरद हस्तों से अपूर्व शासन प्रभावना हुई ।

शंका का विष

एक बार आम राजा ने अपने अंतः पुर में एक रानी के म्लान मुख को देखा । तत्पश्चात् वह राजा आचार्य भगवंत के पास आया । अन्य बातचीत के बाद राजा ने आचार्य के सामने पादपूर्ति रखी । राजा ने कहा, **'अज्ज वि सा परितप्पइ, कमलमुही अत्तणो पमाएणं ।'**

(अभी भी वह कमलमुखी अपने प्रमाद से खेद पा रही हैं)

राजा के मुख से इस पद को सुनकर परमज्ञानी आचार्य भगवंत ने पादपूर्ति करते हुए कहा ।

'सुत्तविउद्धेणतरा जीसे पच्छाइयं अंगं ।'

(पहले जागने से तुमने उसके अंग का आच्छादन किया ।)

आचार्य भगवंत के मुख से इस पादपूर्ति को सुनकर राजा सोच में पड़ गया । अहो ! क्या ये मेरे अंतःपुर की घटनाओं को भी जानते है ? क्या बप्पभट्टी का अंतः पुर में आगमन होता होगा ? क्या रानी अपने दिल की सभी बातें इनको कहती होगी ?'

राजा के मन में आचार्यदेव के पवित्र चारित्र के विषय में शंका पैदा हो गई ।

राजा के मुख पर विषाद छा गया । राजा वहां से उठकर अपने महल में आ गया ।

राजा के मुख पर आए परिवर्तन के भावों को जानकर आचार्य भगवंत ने सोचा, 'यदि राजा के दिल में मेरे चारित्र के विषय में संदेह हो तो मुझे यहां क्यों रहना चाहिए ?'

इस प्रकार विचार कर पूज्य आचार्य भगवंत ने दूसरे दिन राजमहल की दीवाल पर एक श्लोक लिखकर वहां से विहार कर दिया ।

यामः स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरेर्मत्तः स्थितिः प्रच्युता,
वर्तिष्यन्त इमे कथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैवं कृथाः ।
श्रीमंस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा,
ते श्रृंगारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति नः ? ।।

अर्थ : `हे रोहणगिरि ! हम जाते हैं, तुम्हारा कल्याण हो, तुम स्वप्न में भी ऐसा मत मानना कि मेरे बिना ये आचार्य कहां जाएंगे ? यदि तुमने हमें मणि माना है तो अन्य शृंगार प्रधान राजा हमें अपने मस्तक पर धारण करेंगे ।'

गोपालगिरि से विहार करते हुए पूज्य आचार्य भगवंत गोड देश में लक्षणावती पहुँच गए ।

लक्षणावती के 'धर्म' राजा की सभा में वाक्पतिराज नाम का पंडित था । वाक्पतिराज को पता चला कि **बप्पभट्टिसूरिजी म.** पधार रहे है । वह आचार्य भगवंत को मिला । आचार्य भगवंत की विद्वत्ता व प्रतिभा से अत्यंत ही प्रभावित हुआ । उसने `धर्म' राजा को बात की । धर्म राजा भी आचार्य भगवंत के आगमन से प्रसन्न हुआ ।

आम राजा, धर्मराजा का प्रतिपक्षी था । धर्मराजा को पता था कि आम राजा व बप्पभट्टिसूरिजी के बीच गाढ मैत्री है ।

राजा ने वाक्पतिराज को कहा, `हम बप्पभट्टिसूरिजी को आमंत्रण दे और वे आम राजा का आमंत्रण मिलने पर यहां से चले जाय तो उसमें मैं अपना अपमान ही समझता हूँ । अतः जब तक आम राजा स्वयं राजसभा में उपस्थित होकर पू. आचार्य भगवंत को आमंत्रण न दे, तब तक पूज्य आचार्य भगवंत की स्थिरता लक्षणावती में ही रहनी चाहिए ।

पू. बप्पभट्टिसूरिजी म. ने धर्मराजा की वह शर्त स्वीकार कर ली । धर्मराजा को विश्वास था कि अभिमानी आम राजा उसकी सभा में आएगा नहीं, अतः उसे पू. आचार्यदेव की विद्वत्ता प्रतिभा का अधिक लाभ मिल सकेगा ।

बस, दूसरे ही दिन अत्यंत ही धूमधाम के साथ धर्मराजा ने पू. आचार्यदेवश्री का भव्यातिभव्य नगर प्रवेश कराया ।

प्रवेश महोत्सव के बाद पू. आचार्यदेव के धर्मोपदेश को सुनकर राजा को लगा, `पूज्य आचार्यदेव की जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती नृत्य कर रही है । आचार्यदेव की प्रतिभा से राजा व प्रजाजन अत्यंत ही प्रभावित हुए ।

धीरे धीरे दिन पर दिन बीतने लगे ।

इधर दूसरे दिन आम राजा को जब यह पता चला कि पूज्य **आचार्य श्री बप्पभट्टिसूरिजी म.** यहां से विहार कर गए हैं, यह जानकर उसे अत्यंत ही खेद हुआ । राजमहल की बाह्य दिवाल पर लगा श्लोक राजा ने पढ़ा और वह दिग्मूढ हो गया ।

एक बार राजा ने प्रजाजनों के समक्ष एक पादपूर्ति रखी **'सुगृहीतं हि कर्तव्यं कृष्णसर्प–मुखं यथा ।'**

(काल सर्प के मुख की तरह उन सब को ग्रहण करना चाहिए)

नगरवासियों ने उस पादपूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न किया । किंतु किसी को भी सफलता नहीं मिल पाई । आखिर, धन के लोभ से एक जुआरी लक्षणावती नगरी पहुँच गया और आचार्य भगवंत के पास से 'पादपूर्ति' कराकर वापस अपने नगर में आ गया ।

उस जुआरी ने वह पादपूर्ति राजा को सुना दी ।

अपने मनोगत भावों को जानकर राजा को अत्यंत ही आश्चर्य हुआ ।

राजा के पूछने पर उस जुआरी ने जब **बप्पभट्टिसूरि** का नाम दिया, तब राजा के दिल में पूज्य आचार्यदेव के प्रति रही शंका तत्क्षण निर्मूल हो गई ।

ओहो ! वे तो परमज्ञानी...अन्तर्यामी आत्मा है । सैकडों मील दूर रहते हुए भी वे मनोगत भावों को पहिचान गए । ओहो ! मैंने उनके लिए कैसी गलत गलत कल्पनाएँ कर दी, आम राजा को अपनी भूल पर अत्यंत ही पश्चात्ताप हुआ ।

उसने अपने प्रतिनिधि मंडल को लक्षणावती भेजकर पू. आचार्यदेव को गोपालगिरि पधारने के लिए आमंत्रण भेजा । पू. आचार्यदेव ने कहलाया कि आम राजा स्वयं आकर धर्मराजा की सभा में मुझे गोपालगिरि पधारने के लिए आमंत्रण दे तो मैं गोपालगिरि आ सकता हूँ, अन्यथा नहीं ।'

आचार्य भगवंत के इस संदेश को पाकर आम राजा ने वेष परिवर्तन किया और वह धर्मराजा की सभा में उपस्थित हो गया । धर्म राजा उसे पहिचान नहीं पाया । आम राजा ने पू. आचार्य भगवंत को गोपालगिरि पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

श्लेषोक्ति द्वारा पू. आचार्यदेव ने भी धर्मराजा को कह दिया 'यह तुम्हारा प्रतिद्वंदी राजा है । परंतु धर्मराजा इस श्लेषोक्ति के भावार्थ को समझ नहीं पाया । आमंत्रण देकर आम राजा ने वहां से विदाई ले ली ।

दूसरे ही दिन पू. आचार्यश्री ने विहार की तैयारी प्रारंभ की । धर्मराजा ने कारण पूछा । आचार्य भगवंत ने कहा, 'अपनी शर्त पूरी हो गई हैं, कल राजसभा में आम राजा स्वयं मुझे आमंत्रण दे गया है ।

राजा को विश्वास नहीं आया । पू. आचार्यदेव ने आम राजा के आगमन के चिह्न बतलाए । प्रतिहारी ने भी आकर आम राजा के नाम से अंकित आभूषण बतलाया ।

धर्मराजा ने सोचा, 'अहो, आम राजा यहां आकर चले गए । मैं उन्हें पहिचान भी नहीं सका...और न ही मैंने उनका योग्य सत्कार भी किया ।'

पूज्य आचार्यदेव ने लक्षणावती से अपनी विहार यात्रा प्रारंभ कर दी । क्रमशः विहार करते हुए वे गोपालगिरि पधारें । आम राजा ने गुरुदेव का भव्य स्वागत किया ।

पूज्य आचार्यश्री बप्पभट्टिसूरिजी म. गोपालगिरि में बिराजमान थे । प्रजाजन उनकी धर्मवाणी का पान कर परम-तृप्ति का आनंद मान रही थी ।

इस बीच मोढेरा से पूज्य गुरुदेव **श्री सिद्धसेनसूरिजी म.** का संदेश लेकर दो महात्मा **पूज्य बप्पभट्टिसूरिजी म.** के सामने उपस्थित हो गए ।

पूज्य आचार्यदेव ने अपने गुरुदेव का संदेश पढ़ा । उनके मुख-मंडल पर उदासीनता छा गई । उन्होंने तत्काल विहार की तैयारी प्रारंभ कर दी ।

आम राजा को जैसे ही इस बात का पता चला, वह पूज्य आचार्यदेव श्री के पावन चरणों में उपस्थित हो गया । उसने पूछा, 'गुरुदेव ! अचानक विहार की तैयारी ?'

बप्पभट्टिसूरिजी म. ने कहा, 'पूज्य गुरुदेवश्री का संदेश आया है, उनका स्वास्थ अब ठीक नहीं है...उन्होंने मुझे याद किया हैं, अतः मुझे उनकी सेवा में उपस्थित होना जरूरी है ।'

राजा ने अपनी सम्मति प्रदान की ।

और दूसरे ही दिन पूज्य आचार्यदेव ने अपनी विहारयात्रा प्रारंभ कर दी । कुछ ही दिनों में वे गुरुचरणों में उपस्थित हो गए । पू. गुरुदेव के दर्शन कर उन्होंने अपने नेत्रों को पावन किया ।

पूज्य गुरुदेवश्री की अंतिम स्थिति देख उन्हें अत्यंत ही खेद हुआ...फिर भी आयुष्य की क्षणभंगुरता को वे जानते थे, अतः उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की भाव चिकित्सा प्रारंभ की । वे अपने गुरुदेव को अंतिम निर्यामणा कराने लगे...और वह अशुभ घड़ी आ गई...जिस समय पूज्य गुरुदेव ने अपने शिष्य परिवार को बिछुड़ते छोड़कर अकेले ही परलोक के लिए प्रयाण कर दिया ।

पूज्य गुरुदेवश्री के परलोक गमन से चतुर्विध संघ को अत्यंत ही आघात लगा । श्रावक वर्ग ने पूज्यश्री के मृतदेह की अंतिम विधि पूर्ण की ।

चतुर्विध संघ की यह भावना थी कि गुरुदेव के स्वर्गगमन के बाद श्री संघ का नेतृत्व **श्री बप्पभट्टिसूरिजी म.** वहन करें ।...परंतु **बप्पभट्टिसूरिजी म.** ने उदारता पूर्वक संघ का नेतृत्व **पू. आचार्य श्री गोविंदसूरिजी** और **नन्नसूरिजी म.** के कंधों पर डाला ।

कुछ दिनों तक मोढेरा में स्थिरता कर आम राजा की उत्कट भावना को जानकर **पू. बप्पभूट्टिसूरिजी म.** ने पुनः मोढेरा से विहार किया...और क्रमशः गोपालगिरि पधारें ।

राजा एवं प्रजा ने उनका भावभीना स्वागत किया ।

अग्निपरीक्षा

एक बार पूज्य आचार्यदेव श्री राजसभा में बिराजमान थे । उस समय रूप और लावण्य की मूर्ति एक नर्तकी ने राजसभा में अपना नृत्य प्रारंभ किया ।...उस समय पूज्य आचार्यदेव श्री पुस्तक पढ़ने में मग्न थे । आंख को आराम देने के लिए उन्होंने एक क्षण के लिए अपनी आंख ऊंची की और अपनी आंखों से सामने नजर करते हुए देखा ।

राजा को लगा कि आचार्य भगवंत नर्तकी के अद्‌भुत रूप, लावण्य और उसके अंगापांग को निहार रहे है ।

उसने सोचा 'अहो ! ऐसे परमयोगियों के दिल में नर्तकी के रूप दर्शन की चाहना हो तो हमारे जैसे के दिल में नर्तकी का आकर्षण हो, इसमें क्या आश्चर्य है ?'

राजा के दिल में पूज्य आचार्यदेव के ब्रह्मचर्य की परीक्षा करने की भावना पैदा हुई ।

राजा ने उस नर्तकी को कहा, 'तुम्हें **बप्पभट्टिसूरिजी** को किसी भी उपाय से विचलित करना हैं, आज रात्रि में पुरुष वेष पहिनकर उनके उपाश्रय में तुम्हें जाना है ।'

नर्तकी ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की । नर्तकी को आत्मविश्वास था कि उसके अद्‌भुत रूप और लावण्य के प्रभाव से वह आचार्यश्री को विचलित किए बिना नहीं रहेगी । **स्त्री आग है और पुरुष मोम है । स्त्री के आगे पुरुष न पिघले, यह कैसे संभव है ?'**

संध्या का समय हुआ ।

सहस्त्ररश्मि अस्ताचल की गोद में सो चूका था । पृथ्वीतल पर धीरे धीरे अंधकार का साम्राज्य बढ़ने लगा ।

रात्रि का एक प्रहर व्यतीत हो चुका था ।

पूज्य आचार्यदेव 'संथारा पोरिसी' के द्वारा अपने आत्मस्वभाव में लीन हो चुके थे । थोड़ी देर बाद वे संथारे में निद्राधीन हो गए ।

उसी समय उनके खंड में पुरुष वेष में रही राजनर्तकी ने प्रवेश किया...और धीरे से नीचे बैठकर उसने पूज्य आचार्यदेव के पैरों की विश्रामणा प्रारंभ की ।

स्त्री के हाथों के कोमल स्पर्श का अनुभव होते ही पूज्य आचार्यदेव की निद्रा भंग हो गई ।

आचार्य भगवंत ने पूछा, 'तुम कौन हो ? कहां से आई हो ? और क्यों आई हो ?

'मैं आपके प्रेम में आसक्त हूँ...आप मेरा स्वीकार करे ।'

हे मुग्धे ! 'तेरा देह तो मल-मूत्र अशुचि से भरा पिंड हैं, कौन मुर्ख होगा जो इस अशुचि में हाथ डालने की चेष्टा करेगा ?'

'क्या आपको मेरे शरीर में सौंदर्य दिखाई नहीं देता हैं ?'

'नहीं ! देह से भी आत्मा का सौंदर्य चिरंजीवी है । देह तो विनाशी है ।'

उस नर्तकी ने **बप्पभट्टिसूरिजी म.** को ललचाने के लिए भरसक प्रयत्न किए । अपने हाव–भाव और कटाक्षों के द्वारा पूज्य आचार्यदेव को विचलित करने के सभी प्रयत्नों में उसे निष्फलता ही मिली ।

आखिर उसे हार खानी पड़ी । हताश होकर उसे वापस लौट जाना पड़ा ।

दूसरे दिन राजा ने राजनर्तकी को बुलाकर रात्रि में बनी घटना के बारे में पूछा तो उस नर्तकी ने कहा, 'आपके गुरुदेव तो मेरु की तरह अचल है । उन्हें विचलित करना किसी के वश की बात नहीं है ।'

आचार्य भगवंत की इस ब्रह्म व्रत निष्ठा से 'आम' राजा अत्यंत ही प्रभावित हुआ ।

वादिकुंजर केसरी

एक बार धर्मराजा की सभा में वर्धनकुंजर नाम का बौद्धधर्मी विद्वान् आया । उसकी वाक्पटुता से धर्मराजा अत्यंत ही प्रभावित हुआ । उसे अपने ज्ञान का अत्यधिक अभिमान था ।

धर्मराजा को वर्धनकुंजर की विद्वत्ता पर विश्वास हो आया । परिणाम स्वरूप धर्मराजा की ओर से वर्धनकुंजर और आम राजा की ओर से **बप्पभट्टिसूरिजी** के बीच वाद हुआ ।

वाद में यह शर्त रखी गई कि वर्धनकुंजर हार जाय तो धर्मराजा अपना राज्य आम राजा को सौंप देगा और **बप्पभट्टिसूरिजी** हार जाय तो आम राजा अपना राज्य धर्मराजा को सौंप देंगे ।

यह वाद छ मास तक चला । अंत में **बप्पभट्टिसूरिजी म.** का विजय हुआ और उन्हें **'वादिकुंजरकेसरी'** का बिरुद प्रदान किया गया ।

वाद की शर्त के अनुसार धर्मराजा अपना राज्य आम राजा को सौंपने के लिए तैयार हो गए, परंतु **बप्पभट्टिसूरिजी म.** के कथन से आम राजा ने लक्षणावती का राज्य पुनः धर्मराजा को सौंप दिया ।

परिणाम स्वरूप उन दोनों के बीच जो परस्पर वैर था, वह मैत्री में रूपांतरित हो गया ।

प्रतिबोध

मथुरा में वाक्पति नाम का संन्यासी था, जो पहले **बप्पभट्टिसूरिजी म.** के परिचय में था । एक बार आम राजा ने पू. आचार्य भगवंत को कहा, 'आपने मुझे प्रतिबोध दिया, किंतु आपके पूर्व मित्र वाक्पति ने तो संन्यासी जीवन स्वीकार कर लिया है । आप उसे प्रतिबोध करे ।

बस, आम राजा की इस भावना को जानकर **पू. बप्पभट्टिसूरिजी म.** ने मथुरा की और विहार किया । कुछ ही दिनों में वे मथुरा पहुँच गए । वहां जाकर उन्होंने 'वाक्पति' को प्रतिबोध दिया । उसे जैन दीक्षा प्रदान की और उसने भी अरिहंतादि की शरणागति स्वीकार कर अपनी आत्मा का कल्याण किया । वाक्पति की जैनी दीक्षा की बात सुनकर आम राजा अत्यंत ही प्रभावित हुआ । उसने भी 12 वें अतिथिसंविभाग व्रत के सिवाय श्रावक योग्य अन्य सभी व्रतों का स्वीकार किया !

आम राजा और गिरनार संघ

आम राजा की उम्र 100 वर्ष की हो चुकी थी । वृद्धावस्था से शरीर प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है । शरीर से वृद्ध होने पर भी आम राजा के दिल में युवकसा उत्साह और उल्लास था ।

एक दिन आम राजा अपने उपकारी गुरुदेव **आचार्य बप्पभट्टीसूरिजी म.सा.** को वंदन हेतु उपाश्रय में आया । पूज्य गुरुदेव ने आम राजा को धर्मलाभ की आशिष दी और गिरनार मंडन नेमिनाथ प्रभु की महिमा का वर्णन किया, जिसे सुनकर आम राजा ने प्रतिज्ञा की कि 'गिरनार तीर्थ के अधिपति नेमिनाथ प्रभु के दर्शन करने के बाद ही मैं भोजन करुंगा ।'

बस, राजा के इस संकल्प के साथ ही गिरनार महातीर्थ के छ'री पालक संघ का आयोजन निश्चित हुआ और एक शुभदिन-शुभमुहूर्त की मंगलवेला में गिरनार तीर्थ का संघ प्रारंभ हो गया ।

उस संघ में सैकड़ों हाथी, हजारों घोड़े व बैलगाड़ियाँ थीं । **पूज्य आचार्य श्री बप्पभट्टीसूरिजी म.सा.** की निश्रा में संघ क्रमशः आगे बढ़ रहा था ।

आम राजा की उम्र 101 वर्ष की थी, उस उम्र में उपवास के साथ पैदल यात्रा करना कितना कठिन कार्य था ।

राजा अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था । राजा की शारीरिक स्थिति को देखते हुए गुरुदेव ने भी राजा को समझाया, परंतु राजा अपने नियम को तोड़ने के लिए राजी नहीं था ।

रात्रि में पूज्य आचार्य भगवंत ध्यानमग्न थे, तभी अंबिका देवी प्रगट हुई ।

देवी ने पूछा, ''कैसे याद किया ?''

गुरुदेव ने कहा, ''आम राजा ने नेमिनाथ दादा के दर्शन किये बिना भोजन नहीं करने की प्रतिज्ञा ली है– गिरनार काफी दूर है- अतः राजा की प्रतिज्ञा का भंग न हो, ऐसा कुछ करो'' देवी ने आचार्य भगवंत को विश्वास दिलाया !

आम राजा भी नेमिनाथ प्रभु के ध्यान में लीन था । देवी ने उसे कहा–''मैं नेमिनाथ प्रभु की अधिष्ठायिका देवी हूँ- रैवतगिरि के शिखर पर से नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा लेकर आई हूँ-तुम इनके दर्शन कर अपने उपवास का पारणा कर सकोगे ।''

राजा ने कहा, ''गुरुदेव की सम्मति से निर्णय लूंगा ।''

देवी ने कहा, ''यह प्रतिमा मैं यहाँ स्थापित करती हूँ- प्रातः गुरुदेव के साथ दर्शन कर पारणा कर सकोगे ।''

प्रातः काल में गुरुदेव ने भी कहा, ''देवी ने मुझे भी कहा है, तुम प्रभु के दर्शन कर पारणा कर सकोगे ।'' आम राजा ने प्रभु दर्शन किये- उसके बाद ही गुरुदेव की आज्ञा से पारणा किया ।

देवी द्वारा प्रदत्त नेमिनाथ प्रभु की स्तंभन तीर्थ में प्रतिष्ठा कर राजा गुरुदेव के साथ आगे बढ़ता हुआ शत्रुंजय तीर्थ में आया । राजा ने उत्साह-उल्लास के साथ आदिनाथ दादा की भावपूर्वक यात्रा की ।

शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा कर पूज्य गुरुदेव की निश्रा में आम राजा ने संघ सहित गिरनार तीर्थ की ओर प्रयाण किया ।

गिरनार तीर्थ में पहुँचने के बाद वहाँ रहे दिगंबर राजाओं ने श्वेतांबरों को गिरनार पर चढ़ने से रोक लिया । वे बोले-इस तीर्थ पर हमारा एकाधिकार है ।

इस बात को जानकर 101 वर्ष की उम्र में भी आम राजा युद्ध करने के लिए तैयार हो गया, परंतु **पू. आचार्य बप्पभट्टीसूरिजी म.** ने आम राजा को समझाया कि ऐसे संयोगों में युद्ध करना उचित नहीं है ।

आम राजा ने कहा, ''क्या हमें गिरनार की यात्रा किए बिना ही वापस लौटना होगा ?''

गुरुदेव ने कहा, ''नहीं ! इस तीर्थ पर श्वेतांबरों का अधिकार अबाधित रहेगा ।''

''कैसे ?''

आचार्य भगवंत ने एक राजपुरुष को तैयार कर उसे दूत बनाकर अपना एक संदेश दिगंबराचार्य और उनके 11 राजाओं पर भेजकर कहलाया कि इस तीर्थ के अधिकार के लिए हमें परस्पर युद्ध करना उचित नहीं है । परंतु तीर्थ की अधिष्ठायिका अंबिका देवी जिसे तीर्थ सौंपे, उसका इस तीर्थ पर अधिकार रहेगा ।

दिगंबरों ने इस शर्त को स्वीकार किया ।

दिगंबर आचार्य ने किसी श्वेतांबर कन्या में अंबिका देवी के अवतरण के लिए तीन दिन तक मंत्र प्रयोग किया गया, परंतु उन्हें निष्फलता ही मिली । वह कन्या मूक ही रही ।

उसके बाद **पू. आचार्य श्री बप्पभट्टीसूरिजी म.** ने किसी दिगंबर कन्या के मस्तक पर (स्पर्श किए बिना) हाथ धरा- उसके साथ ही वह कन्या बोल उठी–

``इक्को वि नमुक्कारो, जिणवर–वसहस्स–वद्धमाणस्स ।
संसार–सागरा ओ, तारेइ नरं व नारिं वा ।।
उज्जिंतसेलसिहरे, दीक्खा-नाणं-निसीहिया जस्स ।
तं धम्म-चक्कवट्टिं, अरिट्ठेनमिं नमंसामि ।।''

इन दो गाथाओं को सुनकर आचार्य भगवंत के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई । दिगंबर लोग इन गाथाओं का अर्थ नहीं समझ पाए-उस समय **पूज्य आचार्य श्री बप्पभट्टीसूरिजी म.** ने इन गाथाओं का रहस्य समझाते हुए कहा, `हमारे पक्ष की मान्यता है कि पुरुष की भांति स्त्री का भी मोक्ष हो सकता है ।'

इस बालकन्या के माध्यम से शासनदेवी ने स्पष्ट कहा हैं कि ***'जिनेश्वरों में वृषभ समान श्री वर्धमान स्वामी को किया गया एक भी नमस्कार पुरुष हो या स्त्री, उसे तार देता है । उज्जयंतगिरि पर जिनके दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक हुए है-उन धर्मचक्रवर्ती नेमिनाथ प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ।'***

इन गाथाओं से हमारे मत की पुष्टि होती है, अतः इस तीर्थ पर श्वेतांबरों का अधिकार रहना चाहिए ।

सभी ने पूज्य आचार्यश्री के निर्णय का सहर्ष स्वीकार किया । दिगंबरों ने वहां से विदाई ली और तब से इस तीर्थ पर श्वेतांबरों का अधिकार स्थापित हो गया ।

फिर गुरुदेव के साथ आम राजा ने संघ के साथ इस तीर्थ की भावपूर्वक यात्रा की ।

आम राजा को तीर्थमाला पहिनाई गई ।

उसके बाद आम राजा पुनः अपने नगर गोपालगिरि आ गया ।

तब से गिरनार तीर्थ पर श्वेतांबरों का अधिकार चला आ रहा है ।

पू. बप्पभट्टीसूरिजी का जन्म वि.सं. 800 भाद्रपद शुक्ला-3, रविवार, हस्त नक्षत्र में हुआ था । 6 वर्ष की उम्र में दीक्षा ली थी । 11 वर्ष की उम्र में आचार्य बने थे और 95 वर्ष के आयुष्य का पूर्णकर अंत में 21 दिन के अनशन के साथ भाद्रपद शुक्ला अष्टमी के दिन अपने आयुष्य को पूर्णकर ईशान (दूसरे) देवलोक में उत्पन्न हुए ।

अद्वैत मत स्थापक-शंकराचार्य की लीला-29

विक्रम की आठवीं सदी का उत्तरार्द्ध !

भारत के केरल प्रांत के मालाबार पर्वतीय प्रदेश में पूर्णा नदी के किनारे `कालटी गांव (कलांदी) बसा हुआ था ।

उस गांव में शिवगुरु नाम का ब्राह्मण रहता था, उसकी पत्नी का नाम कामाक्ष देवी (सुभद्रा) था, शिवगुरु के पास ज्ञानसंपत्ति थी, परंतु एक संतान की कमी थी ।

कठोर तप के बाद शिवगुरु को स्वप्न में संकेत हुआ कि उसे पुत्र प्राप्ति होगी, परंतु वह गृहस्थ धर्म का पालन नहीं करेगा । गर्भकाल बीतने पर सुभद्रा ने वि.सं. 845 वै.सु. 5 के दिन बालक को जन्म दिया, जिसका नाम `शंकर' रखा गया ।

तीन वर्ष की उम्र में उसके पिता का देहांत हो गया । शंकर को लगा कि यह संसार नाशवंत है ।

7 वर्ष कीं उम्र में वह बालक चारों वेद, वेदांत, दर्शन, पुराण व काव्यों में निपूण हो गया ।

एक बार किसी महात्मा ने कहा, 'संसार का सार जानने के लिए बाह्य संसार का त्याग करना होगा ।'

यह सुनकर वह शंकर संसार छोड़ने के लिए तैयार हो गया ।

मोहवश माँ शंकर को छोड़ने के लिए राजी नहीं थी । एक बार शंकर की माँ नदी स्नान के लिए गई थी, परंतु बीच में गर्मी के कारण बेहोश हो गई । शंकर माँ को घर ले आया और बोला, 'तुम्हें नदी पर जाने की जरूरत नहीं है । नदी ही तुम्हारे घर के पास आ जाएगी ।'

सचमुच, अपने घर के पास नदी देख सभी प्रभावित हो गए ।

इस चमत्कार से राजा शंकर को कुछ भेंट देने लगा, तो उसने भेंट लेने से इन्कार कर दिया ।

आखिर 7 वर्ष की उम्र में माँ की सम्मति प्राप्तकर शंकर ने संन्यास जीवन स्वीकार किया । उसने गोविंदपाद का शिष्यत्व स्वीकार किया ।

कुमारिल भट्ट, मंडन मिश्र और गौडपाद आचार्य आदि सनातन धर्म का प्रचार करते हुए बौद्धधर्म का विरोध कर रहे थे ।

शंकराचार्य भी अद्वैत वेदांत का प्रचार–प्रसार करने लगे । अद्वैतवाद पर गौडपादाचार्य ने 215 श्लोक रचें थे । उन्हीं श्लोकों पर शंकराचार्य ने 'भाष्य' की रचना की ।

शंकराचार्य ब्रह्म के दो रूप मानते हैं–एक अविद्या उपाधि सहित जीव है और दूसरा उपाधियों से रहित शुद्ध ब्रह्म है ।

जीव अविद्या रहित बनकर **'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ब्रह्म हूँ इस अवस्था में आने पर जीव का जीवपना नष्ट हो जाता है ।

शंकराचार्य के अनुसार माया को परमेश्वर की शक्ति, त्रिगुणात्मिका, अनादिरूपा तथा अविद्या नाम दिया है ।

आदि शंकराचार्य ने दक्षिण के रामेश्वरम् में शृंगेरी मठ, उडीसा के पुरी में गोवर्धनमठ, गुजरात के द्वारका में शारदामठ तथा उत्तराखंड के बद्रिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की ।

विक्रम की पांचवी सदी में पू.आ.श्री मल्लवादीसूरि से पराजित होकर बौद्धों ने पश्चिम भारत छोड़ा ।

विक्रम की 7 वीं सदी में दिगंबर आचार्य अकलंक से हारकर बौद्धों ने दक्षिण भारत छोड़ा । विक्रम की नौवीं सदी में वि.सं. 788 से 820 तक मायावादी शंकराचार्य से हार खाकर बौद्धों ने भारत छोड़ा और वे विदेश में चले गए ।

'दिग्विजय' ग्रंथ में स्पष्ट लिखा हैं कि शंकराचार्य के अनुयायियों ने बौद्धों को जीतने के बाद अन्य धर्मों के प्रति भी खूब अन्याय किया । कई जैन श्रमणों के मस्तक काट दिए गए और मंदिरों को नुकसान पहुँचाया ।

शंकराचार्य के अनुयायियों ने बद्री पार्श्वनाथ जगन्नाथपुरी, कुमारगिरि, भुवनेश्वर आदि अनेक जैनतीर्थ तथा बौद्धगया आदि बौद्धतीर्थों को अपने अधीन कर लिया, जो आज भी उनके अधीन हैं ।

पूर्व भारत के कई तीर्थ जैनों ने पुनः अपने अधीन किए, जो श्वेतांबर जैन संघ के है ।



आ.श्री मानदेवसूरिजी

स्तुति

पट्टधार हुए तैतीसवें, श्री मानदेवसूरीश्वरा,
जैन संघ के प्रभावका, थे रक्षका आराधका,
श्रावक जीवन उपयोगी जो, उपधान विधि सर्जका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।37।।

विक्रम की 9 वीं सदी के उत्तरार्ध में भगवान् महावीर की 33 वीं पाट परंपरा में महाप्रभावक **आचार्य श्री मानदेवसूरिजी** हुए । वे अल्पायुषी थे ।

उन्होंने श्रावक-श्राविकाओं के लिए अति उपयोगी उपधान-विधि का ग्रंथ बनाया था ।



आ.श्री विमलचन्द्रसूरिजी

स्तुति

शतवर्ष की आयु में जो, गिरिराज पर अनशन करे,
श्री विमलचन्द्रसूरीश्वरा, पट्टधार जो चौतीसवें,
तब हुए वीर–यशोभद्र–वासुदेवादि सूरिवरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।38।।

विक्रम की दसवीं सदी में भगवान महावीर की पाट परंपरा में 34 वें पट्टधर **पू.आचार्य श्री विमलचन्द्रसूरिजी** हुए ।

दैवी सहायता से उन्हें चित्तोड में स्वर्ण सिद्धि प्राप्त हुई थी । ग्वालियर के महाराजा मिहिर भोज की राज सभा में उन्होंने वाद करके वादियों को परास्त किया था, जिसके फलस्वरूप मिहिर भोजराजा भी उनका परम भक्त बना था ।

वे समर्थ वादी थे और उग्र विहारी (विशुद्ध संयमी) थे । उन्होंने पूर्वदेश के मथुरा, समेतशिखरजी आदि की अनेक बार यात्राएं की थी ।

एक बार वे मथुरा से विहार कर सांचोर पधारे । वहां भिनमाल के शिवनाग व्यापारी के पुत्र पौषध धारी वीरनाग को **'यह शासन प्रभावक होगा'** जानकर दीक्षा प्रदान की ।

उसके बाद थराद में वीरमुनि को **अंग विज्जा** की पोथी बताकर विद्या प्राप्ति का आशीर्वाद दिया । तीन दिन वहां रहकर उसका अर्थ भी बताया ।

उसके बाद 100 वर्ष की उम्र में शत्रुंजय गिरिराज पर अनशन कर वि.सं. 980 में स्वर्गवासी हुए ।

आचार्य जीवदेवसूरिजी-30

उत्तर गुजरात में डीसा के पास वायड़ नाम का एक नगर था ! इस गांव के नाम से ही वायड़ गच्छ निकला । इस गच्छ में हर तीसरी पीढ़ी के आचार्य का नाम **जिनदत्तसूरि** था ।

वायड़ नगर के शेठ धर्मदेव की धर्मपत्नी शीलवती ने दो पुत्रों को जन्म दिया । उनके नाम **महीधर** और **महिपाल** थें ।

महिपाल बचपन से खूब उच्छृंखल था । एक बार नाराज होकर पिता ने कठोर शब्दों में ठपका दिया तो वह घर छोड़कर मगध देश में चला गया । वहां राजगृही नगरी में श्रुतकीर्ति नाम के दिगंबर आचार्य के परिचय से उसने दिगंबर दीक्षा ले ली, उनका नाम **सुवर्णकीर्ति** रखा गया । उसने शास्त्रों का अभ्यास किया । गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद और दो विद्याएं भी प्रदान की । **अप्रतिचक्रा** विद्या के अधिष्ठायक नागराज धरणेन्द्र थे तथा दूसरी विद्या **परकाय प्रवेशिनी** थी, जिसके बल से वे दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकते थे ।

सुवर्णकीर्ति दिगंबर आचार्य का प्रभाव बढ़ने लगा । इधर छोटे भाई ने महिपाल के वियोग में **आचार्य जिनदत्तसूरि** के पास दीक्षा अंगीकार की, उनका नाम महीधर मुनि रखा गया । समय बीतने पर उनकी योग्यता देख उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया, उनका नाम **महिधरसूरि** रखा गया, परंतु वे राशिलसूरि के नाम से ज्यादा प्रख्यात हुए ।

दोनों सगे भाई में एक दिगंबराचार्य बना और एक श्वेतांबराचार्य । समय बीतने पर धर्मदेव श्रेष्ठी का स्वर्गवास हो गया । माता शीलवती के दिल में छोटे पुत्र के दर्शन की उत्कंठा पैदा हुई । राजगृही नगरी पहुँच कर उसने अपने पुत्र-मुनि दिगंबर आचार्य सुवर्णकीर्ति के दर्शन किये । अपने गुरुदेव की माता जानकर लोगों ने शीलवती का स्वागत किया ।

माता ने दिगंबराचार्य के आचारों को देखा । उसे श्वेतांबर के आचारों से काफी भिन्नता दिखाई दी । माता ने श्वेतांबर व दिगंबर के आचारों की तुलना की । माता ने देखा, श्वेतांबर साधु शुद्ध निर्दोष व सात्त्विक आहार लेते हैं । वे आधाकर्मी आहार भी नहीं लेते है । जबकि दिगंबर साधु तो अपने निमित्त से बना आहार ही लेते है–माधुकरी भिक्षावृत्ति नहीं है ।

माँ ने अपने पुत्र आचार्य को समझाया, 'तुम दोनों भाई अलग-अलग आचार पालन करते हो, अतः मुझे दुविधा होती है कि मैं कौनसा आचार पालूं ? अतः तुम भी वायड़ पधारों और परस्पर चर्चा कर एक सत्य मत का आचरण करनेवाले बनों ।'

माँ की विनंती को ध्यान में रखकर सुवर्णकीर्ति ने वहां से विहार किया ।

दोनों आचार्यों का परस्पर मिलन हुआ । परस्पर चर्चाएं हुई । **राशिलसूरि** ने अकाट्य तर्क देकर श्वेतांबर की सही मान्यताएं समझाई ।

आखिर सुवर्णकीर्ति ने दिगंबर आम्नाय का त्याग कर श्वेतांबर दीक्षा अंगीकार की । आगे चलकर वे ही सुवर्णकीर्ति श्वेतांबर **आचार्य जीवदेवसूरि** बने । उनके 500 शिष्यों का विशाल परिवार हुआ !

चमत्कार

एक बार **जीवदेवसूरिजी** विराट् धर्म सभा में धर्मोपदेश दे रहे थे । श्रोताजन मंत्रमुग्ध होकर उनकी धर्मवाणी का श्रवण कर रहा था । इसी बीच एक ईर्ष्यालु योगी ने आकर अपनी शक्ति का चमत्कार बताने के लिए अपने मंत्र प्रयोग द्वारा आचार्य भगवंत की जीभ को स्तंभित कर दीया ।

अचानक जीभ स्तंभित होने से आचार्य भगवंत ने सभा की ओर अपनी नजर डाली । उन्हें ख्याल आ गया कि यह सारा कृत्य इस योगी का है ।

उसी समय आचार्य भगवंत ने अपना प्रवचन पूर्ण कर उस योगी को जमीन पर ही स्तंभित कर दिया । सभी लोग खड़े हुए, योगी भी खड़े होने की कोशिश करने लगा, परंतु स्तंभित हो जाने से वह खड़ा न हो सका । उसने अपनी मंत्र शक्ति का प्रयोग किया परंतु निष्फल गया आखिर उसने आचार्यश्री से अपनी भूल की माफी मांगी । गुरुदेव ने उसे माफ किया और उसे स्तंभन में से मुक्त किया !

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जीवदेवसूरि के दिल में उस योगी के प्रति कुछ भी द्वेष नहीं था परंतु उस योगी के दिल में वैर की गांठ बंध गई । वह आचार्यश्री से अपने वैर का बदला लेना चाहता था ।

वह नगर के बाहर उत्तर दिशा में झोंपड़ी बनाकर रहने लगा ।

आचार्यश्री ने अपने समस्त परिवार को उत्तर दिशा की ओर जाने का निषेध कर दिया ।

काफी समय बीत गया । एक बार दो साध्वीजी उत्तर दिशा में बहिर्भूमि में गई । उसी समय एक युवा साध्वी के मस्तक पर उस योगी ने कोई चूर्ण डाल दिया । इसके फल स्वरूप वह साध्वी योगी के पीछे पीछे जाने लगी ।

दूसरी साध्वी ने आकर **जीवदेवसूरि** को बात कही । उस समय **जीवदेवसूरि** ने घास का पूतला बनवाकर कुछ श्रावकों को योगी के पास भेजा ।

वहां जाकर श्रावकों ने पुतले की एक अंगुली काट ली तो उसी समय उस योगी की भी अंगुली कट गई । फिर भी वह योगी साध्वीजी को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुआ तो श्रावकों ने पूतले की दूसरी अंगुली काट ली तो उस योगी की दूसरी अंगुली कट गई ।

श्रावकों ने समझाया इस पुतले का जो अंग कटेगा, वह अंग तुम्हारा कट जाएगा, अतः इस पूतले का मस्तक कटते ही तुम्हारा भी मस्तक कट जाएगा ।

यह बात सुन योगी घबरा गया और बोला, 'उस साध्वी का मस्तक धो देंगे तो वह स्वतः उपाश्रय की ओर चलने लगेगी ।'

श्रावकों ने जैसे ही वह प्रयोग किया, वह साध्वी पूर्ण स्वस्थ हो गई और उपाश्रय की ओर आगे बढ़ी । प्रायश्चित्त लेकर वह साध्वी पूर्ववत् साध्वाचार का पालन करने लगी ।

वह योगी भी घबराकर अन्य देश में चला गया ।

प्रतिबोध

वायड़ के पास महास्थान नगर में वैदिक मान्यता वाला **लल्ल** नाम का शेठ रहता था । एक बार सूर्यग्रहण के प्रसंग पर उसने बहुत बड़ा यज्ञ कराया । उस यज्ञ हेतु अनेक ब्राह्मण और मंत्रोच्चार करने वाले ऋत्विज और आहूति देनेवाले याजकों को निमंत्रण दिया ।

मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ प्रारंभ हुआ । अनेक प्रकार की आहुतियों से धुएं से आकाश भर गया । इसी बीच ईमली के वृक्ष पर रहा एक बड़ा सांप धुएं से आकुल-व्याकुल होकर यज्ञ कुंड में गिरा । उसी समय एक वाचाल ब्राह्मण ने कहा, `अहो ! इस यज्ञ के प्रभाव से नागराज स्वयं अपने देह की आहूति देने के लिए पधारे है । यह कहकर उस सांप को अग्निकुंड में होम दिया ।

लल्ल शेठ ने यह दृश्य देखा और उसका हृदय दया से कांप उठा, उसने कहा, `अरे ! तुम कितने निर्दयी हो । जींदे सांप को आग में होम दिया ?' तुम्हारा यह कैसा धर्म है ?'

ब्राह्मण ने कहा, `यह यज्ञ की अग्नि तो मंत्रों से संस्कारित है । इसमें गिरने का सौभाग्य तो पुण्यशाली को होता है । इस अग्नि से हिंसक प्राणी भी मनुष्य या देव बनता है । यह तो ब्राह्मण ने सांप पर उपकार किया है । तुम यदि सच्चे आस्तिक हो तो इस सांप के वजन से दुगुना सोना ब्राह्मणों को दान दोंगे तो तुम्हारा पाप शुद्ध होगा ।

इस प्रायश्चित्त का स्वीकार कर लल्ल शेठ ने सोने का सांप बनवाकर ब्राह्मणों को दान दिया उसी समय ब्राह्मणों ने सोने के सांप के टुकडे कर परस्पर बांट दिए ।

यह दृश्य देख लल्लशेठ गुस्से में आकर बोले, `एक जींदे सांप की हिंसा के पाप से बचने के लिए सोने का सांप बनाया अब इसे भी काट लिया तो इस पाप की शुद्धि कैसे होगी ?

तुम्हारा धर्म सच्चा धर्म नहीं है । तुम मुझे ठग रहे हो । मैं यह यज्ञ समाप्त करता हूँ । इतना कहकर यज्ञ की आग शांतकर ब्राह्मणों को विदाई दे दी ।

शेठ को सच्चा धर्म जानने की जिज्ञासा हुई । एक बार दो जैन मुनि भिक्षा के लिए पधारें । शेठ ने उसी समय रसोइये को आदेश दिया, `इनके लिए अच्छा भोजन तैयार करे ।'

यह बात सुनकर मुनियों ने कहा, `हमारे लिए बनाया भोजन हमारे लिए अकल्प्य है ।'

यह सुन शेठ के मन में उनके धर्म को समझने की जिज्ञासा हुई ।

महात्माओं ने कहा, `आपको धर्म की जिज्ञासा है तो हमारे गुरुदेव के पास चलो ।' लल्लशेठ **आचार्य जीवदेवसूरिजी** के परिचय में आया । आचार्य भगवंत ने उसे वीतराग स्वरूप देव, निर्ग्रंथ गुरु और दया मय धर्म का सच्चा स्वरूप समझाया, जिसे समझकर लल्लशेठ ने जैन धर्म के श्रावकोचित बारहव्रतों का स्वीकार किया ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक बार लल्लशेठ ने आचार्य भगवंत को कहा, `सूर्यग्रहण के दिन मैंने एक लाख द्रव्य खर्च करने का संकल्प किया था, उनमें से 50000 का व्यय तो यज्ञ में कर दिया था, अब 50000 बाकी हैं तो आप इस द्रव्य का स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें ।

आचार्य भगवंत ने कहा, `पांचवें महाव्रत के अनुसार हमें किसी भी प्रकार का धन नहीं रखने का नियम है । अतः इस धन की मुझे आवश्यकता नहीं है । परंतु कल शाम को तुम्हें कोई भेंट मिले तो उसे लेकर मेरे पास आना, इससे तुम्हें मार्ग मिल जाएगा ।

लल्लशेठ अपने घर गए । दूसरे दिन शाम को राजमहल के योग्य पलंग लेकर एक सुथार शेठ के घर आया । शेठ उस पलंग को लेकर उपाश्रय में आए ।

आचार्य भगवंत ने पलंग से जुड़े दो बैलों पर वासक्षेप डाला उसी समय पलंग से अलग होकर लकड़ी के दो बैल चलने लगे ।

आचार्य भगवंत ने कहा, `ये बैल जहां रुक जाए वहां तुम जिनालय का निर्माण कर अपने धन का सदुपयोग कर सकोगे ।

वे बैल पिप्पलानक नगर के बाहर जाकर रुक गए । शेठ ने गांव के मुखिए के पास जिनालय के लिए भूमि की मांग की । मुखिए ने जिनालय के अनुरूप भूमि प्रदान की ।

कुछ ही समय में मंदिर निर्माण का कार्य प्रारंभ हो गया । देखते ही देखते मंदिर तैयार हो गया । इसी बीच कोई अवधूत योगी वहां आया और उसने कहा, `मंदिर तो सुंदर बना है, परंतु इसकी नीव में स्त्री देह की हड्डिया दबी हुई है ।'

लोगों ने यह बात **जीवदेवसूरि** को कही आचार्य भगवंत ने कहा, `इस मंदिर को उतारकर शल्य दूर कर पुनः मंदिर बनाओं ।'

लल्लशेठ ने कहा, `मेरा धन तो अब समाप्त हो चूका है । पुनः मंदिर बनाएंगे तो धन कहां से मिलेगा ?

आचार्य भगवंत ने कहा, `उसकी चिंता मत करों । अधिष्ठायिका देवी धन की पूर्ति करेगी ।'

शल्य दूर करने के लिए जैसे ही मंदिर की भूमि खोदना चालू किया तभी आवाज आने लगी ! मत खोदो, मत खोदो । इस आवाज की उपेक्षा कर खोदना चालू किया तो पत्थर गिरने लगे ।

आचार्य भगवंत को इसकी जानकारी दी गई । रात्रि में ध्यान में रहे आचार्य भगवंत ने देवी को आह्वान किया तो देवी ने कहा, `छत्तीस लाख गांववाले कन्नोज देश के राजा की मैं पुत्री हूँ । मेरे पिता ने गुजरात देश मुझे भेंट दिया था, परंतु म्लेच्छों ने गुजरात को नष्ट कर दिया । अपने शील के रक्षण के लिए मैं कुएं में गिर कर मरकर इस भूमि की अधिष्ठायिका बनी हूँ । मेरे पास अमाप धन है । इस भूमि में मेरी अस्थियाँ दबी है, उसे मत उखेड़ना । तुम मेरा स्थान बनाओं ।'

सूरि ने देवी को समझाया और उसे अधिष्ठायिका बनाकर धन व भूमि को ग्रहण कर उसकी देवकुलिका बनवाकर **`भवनदेवी'** के रूप में उसकी स्थापना की ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

लल्लश्रेष्ठी द्वारा जैन धर्म का स्वीकार हो जाने से ब्राह्मणों के दिल में जैनों के प्रति ईर्ष्यावृत्ति खूब बढ़ गई । कई ब्राह्मण गोचरी के लिए जाते-आते साधुओं को हैरान-परेशान करने लगे ।

कई साधुओं ने जीवदेवसूरि को यह बात कही तो उन्होंने कहा, **'सहन करना यह साधु का धर्म है । क्षमा भाव से सभी उपसर्ग स्वतः दूर हो जाते है ।'**

एक बार उन ब्राह्मणों ने झूठा षड्यंत्र रचा । एक गाय जो मरने की तैयारी में थी, उसे घसीटकर महावीर स्वामी के जिनालय के बाहर रख दी । उसके बाद थोड़ी देर में वह गाय मर गई ।

प्रातःकाल होने पर जब साधुओं ने मंदिर के बाहर मरी हुई गाय को देखा और आचार्य भगवंत को बात की तो उन्होंने सोचा, 'यह सब उन ब्राह्मणों की ही करामात है ।'

फिर पर्दे में रहकर आचार्य भगवंत ध्यान मग्न बनें । थोड़ी ही देर में वह गाय खड़ी होकर चलने लगी और ब्रह्माजी के मंदिर में घुस गई । मंदिर खोलने वाले को सिंग से दूर कर गर्भ गृह में जाकर ब्रह्माजी के सामने गिर पड़ी और मर गई । ब्राह्मणों को ख्याल आ गया कि यह चमत्कार **जीवदेवसूरि** का ही है ।

ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया, परंतु वे निष्फल गए । आखिर अन्य कोई उपाय नहीं मिलने से वे ब्राह्मण आचार्यश्री के पास आकर क्षमा याचने करने लगे । उस समय लल्लशेठ ने भी उन ब्राह्मणों को ठपका दिया ।

ब्राह्मणों ने कहा, 'अब वे कभी भी जैन मुनि को परेशान नहीं करेंगे, और जैनों के किसी भी प्रसंग में वे विघ्न नहीं डालेंगे ।'

उसके बाद आचार्य भगवंत ने कहा, 'हमें तुम्हारे प्रति किसी प्रकार का द्वेष नहीं है ।' फिर पर्दे में जाकर ध्यान में बैठ गए । थोड़ी ही देर बाद वह गाय खड़ी हो गई और मंदिर से बाहर निकलकर शून्य स्थान में ढल पड़ी और मर गई । उसके बाद कभी भी वायड़ में जैन और ब्राह्मणों के बीच किसी प्रकार का संघर्ष नहीं हुआ ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

अपने कालधर्म के कुछ समय पूर्व **जीवदेवसूरि** ने अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त किया और उसे कहा, 'तुम्हें पता ही होगा कि संघ पर उपद्रव करनेवाले उस कापालिक को मैंने भगा दिया था, इस कापालिक के पास अनेक सिद्धियाँ है । मेरी मृत्यु के बाद मेरी खोपड़ी लेने का वह प्रयत्न करेगा, अतः भविष्य में जैन शासन को हानि न हो, इसलिए मेरी मृत्यु के बाद मेरी खोपड़ी को खंडित कर देना । मेरे मृतदेह पर स्नेह मत रखना । खोपड़ी को खंडित नहीं किया तो वह कापालिक भयंकर नुकसान पहुँचा सकता है ।

अनिच्छा से ही शिष्यों ने आचार्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य की । एक दिन पंच परमेष्ठी के ध्यान में लीन बने आचार्यश्री ने अपने देह का त्याग कर दिया, वे वैमानिक देवलोक में पैदा हुए ।

शिष्यों ने गुरु की उस आज्ञा का पालन किया । अंत में वह योगी कापालिक आचार्यश्री की पालखी के पास आया, परंतु खंडित खोपडी को देख हताश होकर चला गया । उसकी मैली मुराद निष्फल हुई ।

विक्रम की दसवीं सदी में जैन शासन की अपूर्व प्रभावना करनेवाले महा प्रभावक जीवदेवसूरि को कोटि कोटि वंदन हो ।

मंत्र प्रभावक आचार्य वीरसूरिजी-31

राजस्थान प्रांत के भिनमाल नगर में **शिवनाग** नाम का शेठ रहता था, उसकी पत्नी का नाम **पूर्णलता** था । एक दिन पूर्णलता ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया **'वीरकुमार !'**

नागराज धरणेन्द्र की उपासना के फल स्वरूप शिवनाग को धरणेन्द्र की ओर से वरदान मिला था कि वह भयंकर विषैले सर्प के भी जहर को उतार सकेगा ।

शिवनाग फूँक मारकर या अपने हाथ के स्पर्श से सांप का जहर उतार देता था !

शिवनाग ने **धरणोरगेन्द्र स्तोत्र** की रचना की थी । उस स्तोत्र के स्मरण से ही उपद्रव दूर हो जाते थें ।

यौवन वय प्राप्त होने पर सात श्रेष्ठी कन्याओं के साथ वीरकुमार का पाणिग्रहण हुआ ।

शिवनाग ने व्यवसाय की सारी जवाबदारी वीरकुमार के कंधों पर डाल दी और एक दिन समाधि पूर्वक देह का त्याग कर परलोक के पंथ की ओर प्रयाण कर दिया ।

पिता की मृत्यु से वीरकुमार को खूब आघात लगा । उसके अन्तर्मन में वैराग्य भाव का बीजारोपण हुआ । वीरकुमार पर्वदिनों में भीनमाल से सांचोर के वीर प्रभु के दर्शनार्थ जाने लगा ।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

एक बार अपने साले के साथ सांचोर में प्रभु की भक्ति कर वापस लौट रहा था, तभी बीच मार्ग में चोरों के गिरोह ने उन्हें घेर लिया । अवसर देख उसका साला तो भागकर भिनमाल पहुँच गया, परंतु वीरकुमार चोरों के जाल में फंस गया ।

साले को माता ने पूछा, 'वीर कहां हैं ?'

साले ने मजाक में कह दिया, 'चोरों ने उसे पकड़कर मार दिया हैं ।'

पुत्र की अकाल मृत्यु के आघात से माँ ने भी अपने प्राण छोड़ दिए।

वीरकुमार का भाग्य प्रबल था, अतः चोरों ने उसे बंधन मुक्त कर दिया ।

साले की मजाक से माँ की मृत्यु की बात जानकर उसने अपने साले को खूब ठपका दिया ।

माता और पिता की अकाल मृत्यु से वीरकुमार का मन संसार से विरक्त हो गया । सांसारिक सुखों का आकर्षण समाप्त हो गया ।

उसने अपने दिल की बात अपनी 7 पत्नियों को कही । पति के त्याग-मार्ग का अनुसरण करने का मनोबल उनके पास नहीं था, अतः दीक्षा के लिए तो वे तैयार नहीं हो पाई । उसके साथ वे पति के मार्ग में बाधक भी नहीं बनी ।

वीरकुमार ने अपनी पत्नियों के जीवन निर्वाह के लिए 1-1 करोड का धन दे दिया । शेष संपत्ति का भी जिन मंदिर आदि में सद्व्यय कर भिनमाल छोड़कर सांचोर पहुँच गया । वहां जाकर महावीर प्रभु की भक्ति में तल्लीन बन गया । सर्व प्रथम आठ दिन के उपवास कर पारणे में सभी विगइयों का त्याग कर पौषध में रहकर साधुवत् जीवन जीने लगा ।

उसने सचित्त आहार का त्याग कर दिया । रात्रि में वह नगर के बाहर जाकर कायोत्सर्ग की साधना करने लगा । कायोत्सर्ग दरम्यान देव, मनुष्य व तिर्यंचों के परिषह उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करने लगा । इस साधना के फल स्वरूप उसका प्रभाव खूब बढ़ गया ।

अंग-विद्या प्राप्ति

एक दिन वीरकुमार रात्रि में कायोत्सर्ग हेतु जा रहा था, तभी उसने 100 वर्ष के वयोवृद्ध आचार्य विमलगणि को देखा ! वे मथुरा से विहारकर शत्रुंजय की ओर जा रहे थे । वे चारित्र की साक्षात् मूर्ति थे ।

वीरकुमार ने उन्हें भाव से वंदना की !

आचार्यश्री ने पूछा, `तुम कहां जा रहे हो ?'

उसने कहा, `मैं नगर बाहर कायोत्सर्ग हेतु जा रहा हूँ ।'

आचार्यश्री ने कहा, `आज मैं तुम्हारा अतिथि हूँ !' मेरे पास गुरु से प्राप्त अंग विद्या हैं, वह विद्या योग्य पात्र को प्रदान कर अपने जीवन को सफल बनाने के लिए शत्रुंजय जा रहा हूँ ।

उस विद्या के लिए तुम योग्य पात्र हो, मैं अंग विद्या की आम्नाय तुम्हें देना चाहता हूँ । आचार्यश्री को अनायास प्राप्त कर वीरकुमार भाव विभोर हो गया ।

उसने कहा, `आपकी महान् कृपा हैं आप स्वयं मुझे इस विद्या के योग्य मान रहे हो यह मेरा अहोभाग्य है ।'

वीरकुमार आचार्य भगवंत को लेकर उपाश्रय में आया । रात्रि के शांत वातावरण में आचार्यश्री ने कहा, `वत्स ! **तूं अंग विद्या का अभ्यास कर, इस विद्या के बल से तूं महान् शासन प्रभावक होगा । मन में निर्मल बुद्धि रखना ।'**

वीर कुमार ने कहा, `गुरुदेव ! अभी तो मैं गृहस्थ हूँ । यह विद्या मुझे क्यों दे रहे हो ? मेरा क्षयोपशम भी खूब मंद हूँ । मैं क्या करुं ?'

आचार्य भगवंत ने कहा, `वत्स ! चिंता मत कर ! ज्ञान प्राप्ति के लिए तूं दीक्षा स्वीकार कर ! मेरी उम्र हो चूकी है । मैं शत्रुंजय जाकर अपने अंत समय को सफल बनाऊंगा ।

आचार्यश्री के सदुपदेश से वीरकुमार दीक्षा के लिए तैयार हो गया । आचार्यश्री ने उसे दीक्षा दी और वह **वीर मुनि** बन गया । आचार्यश्री ने तीन दिन स्थिरता की और अंग विद्या की आम्नाय सिखा दी । वीर मुनि ने उस आम्नाय को धारण किया ।

आचार्यश्री ने कहा, `वत्स ! अंग विद्या की एक पुस्तक थराद के ऋषभदेव के मंदिर में शुकनासा स्थान में है । उसे पढ़ने से तुम्हारा ज्ञान बढ़ जाएगा ।

इस विद्या के बल से तू महान शासन प्रभावक होगा । आम्नाय प्रदान कर आचार्यश्री ने शत्रुंजय की ओर विहार कर दिया । वहां जाकर अनशन पूर्वक अपने देह का त्याग कर दिया ।

यक्ष-प्रतिबोध

नूतन वीरमुनि थराद गए । वहां जाकर अग्रणी श्रावकों के पास से अंग विद्या पुस्तक प्राप्त की और उसका अभ्यास किया । उस अंग विद्या के प्रभाव से वे उग्र तपस्वी और प्रकांड विद्वान् बने । पुण्य प्रभाव से उनका विशाल शिष्य परिवार भी हुआ ।

उन्होंने अज्ञजनों को प्रतिबोध करने का संकल्प किया ।

थराद से अणहिलपुर पाटण जाते समय बीच में थरा गांव आया, उस गांव में वलहीनाथ व्यंतर का मंदिर था उस व्यंतर का दूसरा नाम विरुपाक्ष था ।

उस मंदिर में रात्रि विश्राम करनेवाले को यक्ष मार देता था ।

वीर गणी रात्रि में उसी मंदिर में रहे । लोगों ने उन्हें रात्रि विश्राम का निषेध किया, परंतु उन्होंने लोगों की बात पर ध्यान नहीं दिया ।

आचार्यश्री ने व्यंतर के मंदिर में 3½ हाथ का कुंड बनाया और उसमें बैठकर ध्यान करने लगे ।

रात्रि में विरुपाक्ष व्यंतर ने भयंकर उपद्रव चालू किए, परंतु आचार्य श्री अडिग रहे । वे व्यंतर के उपसर्ग से लेश भी विचलित नहीं हुए ।

प्रतिकूल उपसर्गों में अविचल रहनेवाले वीरगणी को विचलित करने के लिए उस यक्ष ने अनुकूल उपसर्ग चालू किए, फिर भी वीर गणी चलित नहीं हुए ।

आखिर हारकर यक्ष ने कहा, `आज तक मैंने अनेक देव व मनुष्यों का मान भंग किया हैं, तुम ही एक ऐसे प्रतापी पुरुष हो, जो मेरे से लेश भी डरे नहीं और डिगे नहीं ।

`मेरे नमस्कार से डाकोर के भीमनाथ महादेव का शिव लिंग फट गया । वहां के राजा की विनंति से मैंने उसे पुनः जोड़ दिया था ।

महाबोध नगर में बौद्ध साधुओं को जीतकर उनके 500 मठों को तोड़ दिया था ।

महाकाल तो मेरे भय से कहीं छिप गया था । मैं सोमनाथ को जीतने के लिए निकला था, तब ब्राह्मण वेष में आकर उसने मुझे विनति की और वचनबद्ध कर यहां स्थिर रहने की विनंति की कि सोमनाथ की यात्रा उसी की पूर्ण कही जाएगी जो यहां आकर दर्शन करके जाएगा । मैं तुम्हारे तप-त्याग से प्रसन्न हूँ, तुम्हें जो चाहिए, मांग सकोगे ।'

वीर गणी ने कुछ भी मांगने से इन्कार कर दिया ।

अति आग्रह करने पर बोले, **'तुम सभी जीवों को अभयदान दो ।'**

विरुपाक्ष ने कहा, `आपकी बात सत्य है, परंतु मेरा परिवार नहीं मानेगा, फिर भी आपकी आज्ञा स्वीकार करते हुए इस मंदिर में जीव हिंसा का त्याग करता हूँ ।

वीरगणी ने कहा, `यह बात गुर्जरेश्वर के सामने तय होनी चाहिए ।'

यक्ष ने यह बात स्वीकार की, वीर गणी विहार कर पाटण पधारे । गुजरात के युवराज चामुंडराय ने उनका स्वागत किया ।

यक्ष की आज्ञा से उस मंदिर में जीव हिंसा का निषेध किया ।

आचार्य पदवी

युवराज ने एक बार पुनः वीर गणी का पाटण में स्वागत किया ।

वीरगणी ने पाटण की जनता को उपदेश दिया । उसके बाद राजगच्छ के आचार्य **वर्धमानसूरि** ने वीर गणी को भव्य महोत्सव के साथ आचार्य पदवी प्रदान की ।

वलहीनाथ यक्ष आचार्यश्री का परम भक्त बन गया । वह यक्ष क्रीडा- प्रिय होने से प्रवचन दरम्यान लक्षण युक्त मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर क्रीडा करता था ।

एक बार आचार्यश्रीने समझाया कि तुम्हारी इस क्रीडा को सभी लोग सहन नहीं कर पाते हैं ।

गुरुदेव के वचन को यक्ष ने स्वीकार लिया और अपनी क्रीडा बंद कर दी ।

अष्टापद यात्रा

सेवा-कार्य के लिए यक्ष के अति आग्रह करने पर वीरसूरि ने कहा, `अष्टापद पर्वत पर जाने की तुम्हारी शक्ति हैं ?'

यक्ष ने कहा, ***'वहां जाने की शक्ति है, परंतु वहां स्थिरता करने की शक्ति नहीं हैं वहां के व्यंतरेन्द्र बलवान् हैं, उनका तेज सहन नहीं कर सकता हूँ, फिर भी आपको कुतूहल हैं तो मैं एक प्रहर तक वहां रह सकता हूँ, उससे अधिक समय यदि रहेंगे तो मैं आपको वापस नहीं ला सकूंगा ।' गुरुदेव ने यक्ष की बात स्वीकार की ।***

यक्ष ने श्वेत बैल का रूप किया, आचार्यश्री उस पर बैठे । उन्होंने अपने मस्तक पर वस्त्र बांध दिया । वह वृषभ आकाश मार्ग से उड़ता हुआ अष्टापद पर्वत पर पहुँचा । चैत्य के द्वार के पास आचार्यश्री बैल से नीचे उतर गए !

वहां रहे देवताओं के तेज को सहन न कर सकने के कारण आचार्यश्रीने द्वार के पास रही पुतली के पीछे छिपकर महातीर्थ के दर्शन किए । भरत चक्री द्वारा निर्मित एक योजन विस्तृत और तीन गाऊ ऊंचे चैत्य को देखा । शास्त्र में निर्दिष्ट प्रमाण व वर्ण युक्त जिन-प्रतिमाओं को भावपूर्वक नमन किया । तीर्थ की महिमा करने की इच्छा से निशानी रूप में देवताओं द्वारा अर्पित चावल के 5-6 दाने उन्होंने ले लिये ।

रात्रि के प्रथम प्रहर में वे तीर्थ यात्रा के लिए निकले थे । दूसरे प्रहर की एक घड़ी बीतने पर वापस आ गए ।

सुगंधी अक्षत की सुगंध से पूरा उपाश्रय सुगंधमय बन गया ।

दूसरे दिन संघ सहित राजा भी अष्टापद का स्वरूप जानने के लिए उपाश्रय में आया ।

आचार्य भगवंत ने प्रत्यक्ष देखे गए अष्टापद का वर्णन किया ।

राजा ने कहा, `वहां की कोई निशानी ?'

उसी समय आचार्य भगवंत ने अति सुगंधी अक्षत बतलाए । वे अक्षत 12 अंगुल बड़े और एक अंगुल मोटे थे । यह देख राजा खुश हो गया । तुर्कों ने नगर का नाश किया, तब तक वे अक्षत उपाश्रय में थे और अष्टापद के प्रतिबिंब की तरह संघ उनकी पूजा करता था ।

रोग-मुक्ति

गुर्जरपति चामुंडराय के वीर नाम का मंत्री था । एक बार उसके मंत्री को कहा, `मुझे वचन सिद्ध **वीरसूरि** नाम के गुरु और वीर नाम का मंत्री मिला परंतु मेरी समस्या का अंत नहीं आ रहा है ।

मंत्री ने पूछा, `क्या समस्या हैं ?'

राजा ने कहा, `महारानी को गर्भस्त्राव रोग के कारण पुत्र नहीं हैं ।'

मंत्री ने आचार्यश्री ने बात की । हिताहित का विचार कर आचार्यश्री ने अभिमंत्रित वासक्षेप दिया ।

महारानी के मस्तक पर वासक्षेप डालते ही वह रानी रोग-मुक्त बन गई । कुछ समय बाद महारानी ने वल्लभसेन, दुर्लभसेन और नागराज नाम के तीन पुत्रों को जन्म दिया ।

पट्टधर नियुक्ति

आबु के पास उंबरणी गांव में परमार वंशीय भद्रकुमार नाम का राजकुमार था ।

विहार करते हुए **वीरसूरिजी** उंबरणी गांव में पधारे । एक बार वे शाम को कायोत्सर्ग की साधना के लिए श्मशान भूमि की ओर जा रहे थे ।

उन्हें देख राजकुमार ने कहा, `श्मशान भूमि में भयंकर जंगली जानवर रहते है । अतः वहां रात्रि में रहना ठीक नहीं हैं ।'

आचार्यश्री ने कहा, `मुनि गण निर्जन स्थान में ही ध्यान करते हैं, उन्हें किसी का भय नहीं होता है ।'

यह सुनकर भद्रकुमार खूब प्रभावित हुआ । वह अपने घर चला गया । घर जाते समय मार्ग में किसी ने राजकुमार को जामून भेंट दिए । उन जामून में कीडें पड़े हुए थे ।

उसने सोचा, `रात्रि में खाएंगें तो उन कीडों का नाश होगा, अतः रात्रि भोजन उचित नहीं है ।'

उसने किसी ब्राह्मण पंडित को बुलाकर पूछा, `फल में रहे कीड़े खा जाय तो क्या प्रायश्चित्त आएगा ?'

उसने कहा, `सोने के कीड़ें बनवाकर ब्राह्मणों को दान करे तो उस पाप की शुद्धि हो सकती हैं ।'

कुमार ने सोचा, `सोने के कीड़े बनाकर दान देना, फिर वे ब्राह्मण उनका नाश करेंगें तो उसका दोष किसे लगेगा ? इस प्रकार तो पाप की परंपरा बढ़ती रहेगी, अतः पापशुद्धि का यह उपाय उचित नहीं लगता है ।

राजकुमार दूसरे दिन **वीरसूरिजी** के पास आया । आचार्यश्री ने दयामय धर्म का स्वरूप समझाया । आचार्यश्री ने विस्तार से जीवों का स्वरूप बतलाया । राजकुमार खुश हो गया ।

आगे चलकर संसार का त्याग कर दीक्षा स्वीकार की, उनका नाम **भद्रमुनि** रखा गया । उन्होंने भी शास्त्रों का गहन अभ्यास किया ।

वीरसूरिजी ने उन्हें आचार्य पद प्रदान कर अपना पट्टधर बनाया, उनका नाम **चंद्रसूरि** रखा गया । वे भी अपने गुरुदेव की तरह खूब प्रभावक हुए ।

अंत में **वीरसूरिजी** ने अनशन स्वीकार कर देवगति को प्राप्त की ।

मंत्र प्रभावक आचार्य श्री यशोभद्रसूरिजी-32

पिंडवाड़ा (राज.) के पास पलाई गांव में **पुण्यसार** नाम का व्यापारी रहता था, उसकी पत्नी का नाम **गुणसुंदरी** था। वि. सं. 957 में एक शुभ दिन **गुणसुंदरी** गर्भवती बनी, गर्भ के प्रभाव से उसने स्वप्न में हिमालय पर्वत को देखा। एक दिन गुणसुंदरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। बालक का नाम **सुधर्म** रखा गया।

सुधर्म की उम्र 5 वर्ष की थी, माँ ने उसे शिक्षण के लिए पंडित के पास भेजा।

एक दिन सुधर्म के हाथ से केशव ब्राह्मण का स्याही का दवात टूट गया।

टूटे हुए दवात के बदले सुधर्म दूसरा दवात देने लगा, परंतु केशव ने लेने से इन्कार कर दिया वह तो उसी दवात की जिद करने लगा।

अंत में केशव ने गुस्से में आकर कह दिया, 'तेरी खोपड़ी में करंबा न खाऊं तो ही मैं सच्चा ब्राह्मण, नहीं तो मुझे भट्ट समझना।'

सुधर्म ने भी कह दिया, 'मेरे मरते हुए भी तेरी भावना पूर्ण नहीं होगी।'

धीरे धीरे समय बीतने लगा।

उस समय संडेरक गच्छ में ईश्वरसूरि अत्यंत प्रभावक आचार्य थे, उनके 500 शिष्य थें। उन्होंने 6 वर्ष तक छ विगई का त्याग किया था। उन्होंने मुंडारा में रही बदरीदेवी को सिद्ध किया था।

बदरीदेवी की सूचना से ईश्वरसूरि पलाई पधारे और वहां सुधर्मा के माता-पिता की संमति प्राप्तकर 6 वर्ष के सुधर्म को भागवती दीक्षा प्रदान की।

दीक्षा के बाद नूतन मुनि संयम की आराधना-साधना में लीन बने और मात्र 5 वर्ष के दीक्षा पर्याय में मुंडारा में मात्र 11 वर्ष की उम्र में उन्हें आचार्य पद प्रदान किया गया और वे यशोभद्रसूरिजी के नाम से प्रख्यात हुए।

अपूर्व-त्याग

आचार्य पदारूढ होने के बाद यशोभद्रसूरिजी ने जीवन पर्यंत के लिए छह विगई का त्याग कर दिया था ! इसके साथ ही वे प्रतिदिन आठ कवल का ही आहार लेते थे !

एक बार आचार्य यशोभद्रसूरि नगर के बाहर स्थंडिल गए हुए थे, मार्ग में वर्षा हो जाने से वे सूर्यमंदिर में रुके। उनके तप-त्याग और संयम से सूर्यदेव प्रसन्न हुए और तीनों लोक के दर्शन कर सके, ऐसी अंजनकुपिका प्रदान की।

सूर्यदेव ने आचार्यश्री को सिद्धमंत्रवाली सुवर्णाक्षर की पत प्रदान की, उसमें पाठ मात्र से सिद्ध हो, ऐसे मंत्र थे। इस मंत्रपोथी में आकाश गमन, नगर स्थापना, सुवर्णसिद्धि, दिव्यदर्शन, रौप्यसिद्धि व परकाय प्रवेश आदि के अनेक मंत्र थे।

मंत्रपोथी के स्वाध्याय बाद आचर्यश्री ने यह मंत्रपोथी अपने शिष्य बलभद्रमुनि के साथ सूर्यदेव को भिजवाई थी । साथ में सूचना की थी कि तुम्हे यह प्रत पढ़ना नहीं है ।

बलभद्रमुनि ने गुर्वाज्ञा का भंग कर प्रत में से कुछ पन्ने निकाल दिए । प्रत देने के बाद वे पन्ने ढूंढने लगे तो मिले नहीं ! उन्होंने जाकर सूर्यदेव के पास माफी मांगी और वे पन्ने देने के लिए विनती की ।

आचार्यश्री के शिष्य के नाते सूर्यदेव ने वे पन्ने बलभद्रमुनि को वापस दे दिए ।

लब्धि-प्रयोग

यशोभद्रसूरिजी को मंत्र शक्ति के प्रभाव से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो चूकी थी । निजी-स्वार्थ के लिए उन्होंने इस लब्धि का प्रयोग नहीं किया । वे इस लब्धि के प्रयोग से पादलिप्तसूरि की भांति पांच तीर्थों की यात्रा के बाद ही आहार ग्रहण करते थे ।

एक बार सांडेराव में उनकी निश्रा में जिन मंदिर प्रतिष्ठा का महोत्सव चल रहा था तभी महोत्सव प्रसंग में घी समाप्त हो गया । संघ चिंतातुर हो गया । उस समय आचार्य भगवंत ने अपनी लब्धि का प्रयोग कर पाली के धनराज शेठ के घर से घी मंगा लिया । प्रतिष्ठा के बाद जब संघ धनराज शेठ को घी का मूल्य देने लगा तो शेठ ने रकम लेने से इन्कार कर दिया और प्रतिष्ठा में अनायास लाभ प्राप्ति का आनंद ही व्यक्त किया ।

❑ आहड नगर में अल्लर नाम का राजा था, उसके दरबार में जैन मंत्री था, उसने एक सुंदर जिनालय का निर्माण कराकर आचार्य भगवंत के वरद हस्तों से उसकी प्रतिष्ठा कराई ।

❑ पूज्य आचार्य भगवंत आहड़ में बिराजमान थे, उस समय उज्जैन के महाकाल के मंदिर में चंदरवे में आग लग गई, आचार्य भगवंत ने यहां बैठे–बैठे ही उस आग को बुझा दी !

एक बार 1 आहड, 2 कहोडा, 3 कविलाण, 4 सांभर और 5 भेसर इन पांच गावों में जिन मंदिर का निर्माण हुआ, योगानुयोग पांचों गांवों की प्रतिष्ठा का मुहूर्त भी एक ही दिन आ रहा था । पांचों संघों का आग्रह था कि प्रतिष्ठा तो यशोभद्रसूरिजी के हस्तों से ही करानी है ।

आचार्य ने पांचों संघों की विनंति स्वीकार की और उन्होंने अपनी लब्धि के बल से पांच रूप कर पांचों गांवों के, पांचों जिनालयों में एक ही दिन प्रतिष्ठा कराई ।

यशोभद्रसूरिजी चैत्यवासी परंपरा में आए होने के क़ारण उनके जीवन की ऐसी अनेक घटनाएं इतिहास में पढ़ने को मिलती है ।

प्रतिष्ठा के प्रसंग पर कविलाण गांव के कुएं में पानी समाप्त हो गया । आचार्यश्री के वासक्षेप के प्रभाव से वह कुआँ पानी से भर गया उसके बाद वह कुआँ हमेशा पानी से भरा ही रहा ।

इस प्रकार के चमत्कार की बात आती है कि आचार्य श्री के प्रभाव से 95 कुओं में पानी अखूट रहा था ।

वि.सं. 997 में आहड़ गांव के भद्रशेठ के साथ यशोभद्रसूरिजी शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा के लिए निकले । आगे बढ़ता हुआ संघ पाटण पहुँचा ।

पाटण के महाराजा सामंतसिंह चावड़ा की इच्छा थी कि आचार्यश्री पाटण में ही स्थिरता करे, इसके लिए उसने आचार्यश्री को अपने राजमहल में बुलाया और उसके बाद महल के मजबूत द्वार बंद करा दिए ।

आचार्यश्री ने राजा को कहलाया कि वह मुझे रोकने के लिए ज्यादा दबाव न करे, परंतु राजा ने उस बात की ओर ध्यान नहीं दिया ।

संघ आगे रवाना हो गया । यशोभद्रसूरि म. ने अपनी विद्या के बल से छोटा रूप कर आकाश मार्ग से बाहर निकल गए और संघ के पड़ाव में पहुँच गए ।

आचार्यश्री ने एक व्यक्ति को पाटण भेज राजा को 'धर्मलाभ' कहलाया ।

राजा ने राजमहल की छानबीन की तो आचार्य भगवंत नहीं मिले ।

राजा को आचार्य भगवंत की शक्ति का परिचय हो गया । सामंतसिंह चावड़ा ने जाकर आचार्यश्री से क्षमा याचना की ।

बात ही बात में राजा ने पूछ लिया, 'मेरा कितना आयुष्य बाकी है ।'

आचार्यश्री ने अपनी विद्या के बल से जानकर कहा, 'राजन् ! तुम्हारा छह मास का ही आयुष्य बाकी है । राज्य की खटपट में अपना अमूल्य जीवन बर्बाद करने के बजाय धर्म आराधना द्वारा अपने जीवन को सफल बनाओं ।

राजा ने आचार्यश्री के उपदेश को स्वीकार किया । संघ क्रमशः आगे बढ़ा ! मार्ग में संघ को तृषातुर जान अपनी विद्या के बल से सुखे तालाब को पानी से भर दिया ! सभी प्रसन्न हो गए ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

संघ के साथ यशोभद्रसूरि गिरनार पधारे । किसी चोर ने आकर नेमिनाथ प्रभु के सभी मूल्यवान आभूषण चुरा लिये और वहां से भाग गया ।

संघ ने यशोभद्रसूरिजी को चोरी की बात कही । आचार्य श्री ने अपनी विद्या शक्ति के बल पर जानकर कहा, 'वह चोर माल लेकर आहड़ पहुँच गया है ।'

–आचार्य श्री से चोर का नाम-ठाम जानकर कुछ लोग आहड़ पहुँचे और उस चोर को पकड़ लिया ।

चोर को पकड़कर आचार्यश्री के पास लाया । आचार्य भगवंत ने उपदेश देकर उसे चोरी के अनर्थ समझाए । चोर का हृदय परिवर्तन हो गया । उसने हमेश के लिए चोरी का त्याग कर दिया ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

यशोभद्रसूरिजी विहार करते हुए नाड़लाई पधारे । वहां उन्होंने चातुर्मास भी किया ।

उसी नगर में बचपन का सहपाठी केशव भी बड़ा योगी बन गया था । वह अपने चमत्कार बतलाकर लोगों को खुश करता था ।

यशोभद्रसूरि के प्रति उसके दिल में बचपन से ही आक्रोश था । वह यशोभद्रसूरिजी को हैरान परेशान करने के अवसर की ही ताक में था ।

एक बार आचार्यश्री को डराने के लिए उसने अपनी जटा में से दो भयंकर सांप आचार्य भगवंत के सामने छोड़े । दो सांपों को अपने सामने आते देखकर आचार्यश्री लेश भी भयभीत हुए बिना उन्होने अपनी मुहपत्ति के दो टुकड़े कर सांप के सामने फेंक दिया तत्क्षण उन टुकडों में से दो नेवले बाहर आए ! नेवले को देख वे सांप वहां से भाग गए । यह दृश्य देख वह केशव योगी वहां से रवाना हो गया ।

केशव योगी ने आचार्यश्री से अपने वैर का बदला लेने के लिए एक साध्वीजी को पागल बना दी ।

संघ के सदस्यों ने जाकर केशवयोगी को प्रार्थना की परंतु उसने उस ओर लेश भी ध्यान नहीं दिया ।

आखिर संघ ने आचार्य भगवंत को जानकारी दी । आचार्य भगवंत ने एक मंत्रित पूतला देकर श्रावकों को केशवयोगी के पास पुनः भेजा ।

श्रावकों ने जैसे ही पूतले की अंगुली काटी वैसे ही केशवयोगी की अंगुली कट गई ।

लोगों ने समझाया अभी तो अंगुली ही कटी है, अब नहीं मानोगे तो सिर भी कट जाएगा ।

प्रत्यक्ष चमत्कार को देख केशवयोगी ढीला हो गया–उसने साध्वीजी को पुनः स्वस्थ कर दी ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

एक बार केशव योगी ने अपने सिद्धचूर्ण से जिन मंदिर में रही प्रतिमाओं का मुख दिवाल की ओर कर दिया । ऐसा मंत्र प्रयोग कर वह योगी पाटले पर बैठ गया । उसको शिक्षा करने के लिए आचार्यश्री ने मंत्र प्रयोग कर उसे पाटले पर ही स्तंभित कर दिया वह योगी खड़ा होने में असमर्थ हो गया ।

योगी को अपनी भूल ख्याल में आ गई । उसने वे सभी प्रतिमाएं पूर्ववत् कर दी । उसके बाद आचार्यश्री ने मंत्र प्रयोग कर उसे मुक्त कर दिया ।

चमत्कार

जैनाचार्य यशोभद्रसूरिजी और गोसांई केशवस्वामी के बीच 84 वाद हुए । अंत में यह निर्णय हुआ कि दोनों धर्माचार्य खेड़ ब्रह्म से अपने अपने मंदिर लाकर सूर्योदय के पहले जेखल पहाड़ी पर स्थापित करें, जो पहले आएगा, वह विजयी होगा ।

दोनों आचार्य एक ही रात्रि में अपने अपने मंदिर लाने लगे ।

केशव योगी आगे बढ़कर अपना मंदिर पहाड़ी पर स्थापित करने की तैयारी में था, तभी यशोभद्रसूरि ने मुर्गे की बांग पुकारी । जिसे सुनकर योगी सोचने लगा 'क्या सूर्योदय हो गया हैं ?' इसी बीच यशोभद्रसूरिजी आगे पहुँच गए और उन्होंने अपना मंदिर पहले स्थापित कर दिया । इस प्रकार यशोभद्रसूरिजी का विजय हुआ ।

कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि दोनों मंदिर भूमि पर ही स्थापित किए गए, जो आदीश्वर मंदिर व तपेश्वर महादेव मंदिर के नाम से प्रख्यात है । यह घटना वि.सं. 996 से 1010 के बीच हुई है । तब से नारलाई तीर्थ के रूप में प्रख्यात हुआ ।

कालधर्म

हर तरह से पराजित हुए केशवयोगी ने अपना अंतिम दांव फेंका । आदीश्वर मंदिर में विधि–विधान चल रहा था, तभी केशव साधु के वेष में भिक्षा के लिए आया, संघ ने उसे भिक्षा दी । यशोभद्रसूरिजी को ख्याल आ गया कि मेरा छह मास का आयुष्य बाकी है । उसी समय उन्होंने संघ को सूचना दी । 'आज से छह मास बाद मेरी मृत्यु होगी, मेरे मस्तक में रहा मणि लेने के लिए यह योगी खूब धमाल करेगा, अतः मेरे मस्तक के मणि को अलग करने के बाद ही मेरा अग्नि संस्कार करना ।'

ठीक छह मास बाद अत्यंत समाधिपूर्वक आचार्य भगवंत का कालधर्म हुआ । योगी को दूर रख श्रावकों ने उनके मस्तक में से मणि अलग कर दिया । उसके आवाज से योगी का मस्तक फट गया और उसकी मृत्यु ह गई ! संघ पर आनेवाली एक आपत्ति दूर हो गई ।

आचार्यश्री के अग्नि संस्कार की भूमि 'शिला' के रूप में प्रसिद्ध हैं । आज भी वहां चमत्कारिक घटनाएं बनती है ।

वासुदेवसूरिजी-33

यशोभद्र मुनि की जब आचार्य पदवी हुई, तब उन्होंने जीवन पर्यंत आठ कौर से आयंबिल करने का अभिग्रह लिया था ।

उनके एक शिष्य का नाम था-**बलिभद्र मुनि ।** एक बार वे गुरु-शिष्य स्थंड़िलभूमि से वापस लौट रहे थे, तभी अचानक वर्षा हो जाने से वे पास में रहे सूर्यमंदिर में चले गये ।

उसी समय सूर्यदेवता ने जैनाचार्य के आगमन को देखा-वह प्रसन्न होकर बोला, ``आपको जो चाहिए, वह मांगो ।''

नि:स्पृही आचार्य भगवंत ने कहा, ``हमने तो दुनिया का स्वेच्छा से त्याग किया है, अत: किसी भी प्रकार की भौतिक वस्तु की अपेक्षा नहीं है ।''

आचार्य भगवंत की नि:स्पृहता से प्रभावित होकर सूर्यदेव ने सर्वजीवलोक अंजन और एक दिव्य पुस्तक प्रदान की । पुस्तक में अनेक मंत्र-कल्प आदि थे ।

आचार्य भगवंत ने कुछ विद्याओं की आम्नाय जानकर बलिभद्र मुनि को वह पुस्तक बाँधकर उसी मंदिर में ऊपर रखने के लिए कह दिया ।

आचार्य भगवंत ने कहा, ``यह पुस्तक तुम्हें पढ़ना नहीं है ।''

काफी समय बीत गया ।

एक बार बलिभद्र मुनि स्थंडिलभूमि से आ रहे थे । कुतूहल वश मंदिर में जाकर उन्होंने वह पुस्तक खोलकर एक पन्ना पढ़ लिया । उस पन्ने में बकरी की लींडी में से बकरी पैदा करने का मंत्र लिखा हुआ था ।

पास में ही बकरी की लींडियाँ पड़ी हुई थीं । कुतूहलवश उन्होंने 108 बार मंत्रजाप कर वह प्रयोग किया-देखते-ही-देखते वहाँ सैकड़ों बकरियाँ पैदा हो गईं ।

थोड़ी ही देर में आचार्य भगवंत वहाँ आ गए । चरवाहे के बिना वहाँ सैकड़ों बकरियों को देख आचार्य भगवंत को आश्चर्य हुआ-ये बकरियाँ कहाँ से आ गईं ?

उसी समय शर्मींदा हुए बलिभद्र मुनि ने अपनी भूल स्वीकार की ।

गुरुदेव ने उन्हें ठपका दिया और कहा, ``इस भयंकर जंगल में हिंसक पशुओं से इनका रक्षण कौन करेगा ?''

गुरुदेव ने कहा, ``रजोहरण को गुप्त रखकर इन पशुओं का पालन-रक्षण करते हुए तुम्हें यहीं रहना होगा ।''

बलिभद्र मुनि ने गुर्वाज्ञा स्वीकार की । वे अव्यक्तलिंगी बनकर पशुओं का पालन करने लगे ।

बकरियों की लींडी से होमकर उन्होंने अन्य कई विद्याएँ सिद्ध कर लीं ।

एक समय की बात है ।

गिरनार तीर्थ पर बौद्धों ने कब्जा कर लिया । राजा-रानी भी बौद्ध धर्म के अनुयायी बन गए ।

प्रजाजनों को भी बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए दबाव डाला गया । बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाले को ही गिरनार-यात्रा की अनुमति मिलती ।

जैन संघ इकट्ठा हुआ । राजा का प्रतिकार करने की किसी में हिम्मत नहीं थी ।

अट्ठम तप कर अंबिका देवी को प्रकट किया गया ।

देवी ने कहा, ''इस तीर्थ पर बौद्ध अधिष्ठायक देव ने कब्जा कर लिया है, जिसका प्रतिकार मेरे लिए कठिन है ।''

संघ ने पूछा, ''अन्य कोई उपाय ?'' देवी ने कहा– ''बलिभद्र मुनि मंत्रसिद्ध पुरुष हैं, वे जरूर इसका उपाय कर सकते हैं ।''

संघ के प्रतिनिधि ने जाकर बलिभद्र मुनि के पास जाकर तीर्थ पर आई आपत्ति प्रकट की ।

बलिभद्र मुनि ने कहा, ''तुम जाओ, मैं अभी आकाशमार्ग से वहाँ आता हूँ !''

थोड़ी ही देर में बलिभद्र मुनि वहाँ आ गए । उन्होंने समस्त संघ को इकट्ठा होने का आदेश दिया ।

समस्त संघ उपस्थित हो गया, मुनि ने मंत्रबल से संघ के चारों ओर (थोड़ा रास्ता छोड़कर) खाई खोदकर उसमें आग लगा दी-फिर थोड़ी दूरी पर दूसरी खाई खोदकर उसमें पानी भर दिया ।

फिर बलिभद्र मुनि बौद्ध राजा के दरबार में उपस्थित होकर बोले, ''राजन् ! जैनों का तीर्थ जैनों को सौंप दो-यह अन्याय हम सहन नहीं करेंगे ।''

राजा ने उपहास करते हुए कहा, ''तुम सब बौद्ध धर्म स्वीकार कर लो तो यात्रा कर सकोगे ! दूसरी बार ऐसी धृष्टता मत करना ।''

यद्यपि बलिभद्र मुनि संसार से विरक्त थे, परंतु शासन का राग उनके रोम रोम में बसा हुआ था, अतः उन्होंने मंत्रप्रयोग कर राजा के शरीर में भयंकर दाह पैदा कर दी और वहां से तत्क्षण रवाना हो गए ।

भयंकर वेदना से राजा का कोप बढ़ गया-उसने सेनापति को आदेश दिया-उस मुनि व जैनों को मार डालो ।

थोडासा सैन्य लेकर सेनापति ने पीछे के मार्ग से खाई पार कर संघ के सामने आकर मुनि को कहा– ''राजा के प्रकोप से आपको क्या फायदा होगा ? आप राजा की बात मान लो ।''

मुनि ने कहा, ''तुम अन्याय का पक्ष मत लो, अभी तो मैंने राजा के देह में दाह ही पैदा किया है और आगे चमत्कार देखना हो तो देख लेना ।''

सेनापति ने कहा, ``क्या आपके पास मंत्र-शक्ति है ? यदि हो तो कोई चमत्कार ?''

उसी समय मुनि ने बेंत की लकड़ी हाथ में लेकर एक वृक्ष के सामने नजर कर उसे घुमाया- और उसी समय वृक्ष पर लगे सभी फल नीचे गिर गए ।

यह दृश्य देख सेनापति तो स्तब्ध हो गया ।

फिर भी उसने कहा, ``विसर्जन तो कोई भी कर सकता है, क्या ये फल वापस वृक्ष पर लगा सकते हो ?''

और उसी बलिभद्र मुनि ने सफेद लकड़ी को उठाकर ऊपर घुमाया और उसी समय वे सारे फल पुनः वृक्ष पर लग गए ।

यह चमत्कार देख सेनापति तो पानी-पानी हो गया ।

अहो ! इस सिद्धयोगी से लड़ने में अपना कोई रक्षण नहीं है ।

वह राजा के पास आ गया । राजा का देह दाह से संतप्त था । सेनापति के मुख से सारी बातें सुनकर वह और घबरा गया । उसने सेनापति को कहा-``उन मुनि को सम्मान सहित यहाँ ले आओ ।''

राजा तो दाह से तड़प रहा था । थोड़ी ही देर में मुनि वहाँ आ गए । राजा ने अपनी भूल के बदले माफी मांगी । मुनि ने कहा– ``तुम और तुम्हारी प्रजा जैन धर्म को स्वीकार करते हों तो तुम्हें माफ कर सकता हूँ !''

`राजा ने मुनि की शर्त स्वीकार की' । बलिभद्र मुनि ने मंत्र प्रयोग से राजा का दाह शांत कर दिया ।

गिरनार तीर्थ पुनः जैनों के अधिकार में आ गया !

संघ के साथ बलिभद्रमुनि ने भी गिरनार तीर्थ की यात्रा की ।

गिरनार से वे नाड़ोल (हत्थुंडी) पधारें ! मेवाड़ के राणा अल्लट की विनंति से रानी के रेवती दोष को दूर किया ।

प्रसन्न होकर राजा उन्हें आधा राज्य देने लगा । परंतु बलिभद्रमुनि ने साधु जीवन की मर्यादा समझाते हुए राज्य लेने से इन्कार कर दिया ।

राजा ने उन्हें आचार्य पद दिलाया । आचार्य पद के बाद उनका नाम वासुदेवसूरि रखा गया । उन्होंने हत्थुंडी के राठोड़ राजा विदग्धराज को उपदेश देकर जैन धर्मी बनाया ।

राजा ने हत्थुंडी में विशाल मंदिर का निर्माण कराया और वि.सं. 973 में वासुदेवसूरि के वरद हस्तों से प्रतिष्ठा कराई ।

सिद्धर्षि गणी-34

गुजरात देश !

श्रीमालनगर ! वर्मताल राजा !

वर्मताल राजा के राजदरबार में सुप्रभदेव नाम का वणिक् नौकरी करता था । उस सुप्रभदेव के दो पुत्र थें-शुभंकर और दत्त । वे दोनों कोट्याधिपति थे ।

शुभंकर सेठ की पत्नी का नाम लक्ष्मीदेवी था । उस सेठ के इकलौता पुत्र था-जिसका नाम **सिद्ध** था । काल के प्रवाह के साथ सिद्ध ने यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया । माता-पिता ने **'धन्या'** नाम की रूपवती कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण कराया ।

यौवन वय, अमाप धन–सम्पत्ति और अधिकार-प्राप्ति के कारण सिद्ध के जीवन में परिवर्तन आया । कुमित्रों की संगति के कारण उसे जुएँ का व्यसन लागू पड़ गया । जुएँ की आदत के कारण वह रात में देरी से घर लौटता था । कई बार तो वह मध्यरात्रि में घर आता था ।

देर रात तक पति के आगमन की राह देखने के कारण धन्या की नींद बिगड़ने लगी । धन्या की इस शारीरिक स्थिति को देख लक्ष्मीदेवी को अत्यंत ही खेद हुआ । लक्ष्मीदेवी ने उसकी अस्वस्थता का कारण पूछा ।

आखिर धन्या ने सही बात बता दी । माँ को लगा-''मेरा पुत्र किसी गलत रास्ते पर चढ़ गया है, किसी भी प्रकार से उसकी शान ठिकाने लानी होगी ।'' इस प्रकार सोचकर माँ ने अपनी पुत्रवधू को कह दिया, ''बेटी ! आज तूं जल्दी सो जा, सिद्ध आएगा, तब मैं उसकी शान ठिकाने ला दूंगी ।'' इतना कहकर उसने अपनी पुत्र-वधू को सुला दिया और स्वयं रात के समय दरवाजे को बंदकर पास में बैठ गई ।

जुएँ के व्यसन का गुलाम बना सिद्ध मध्य रात्रि के समय अपने घर लौटा । घर का द्वार बंद था, उसने दरवाजा खटखटाया ।

माँ ने कहा, ''कौन हो ?''

सिद्ध ने अपना नाम बताया ।

लक्ष्मीदेवी ने कहा, ''मेरा पुत्र इतनी देर रात्रि तक बाहर भटकता फिरे, यह संभव नहीं है ।''

''तो अभी मैं कहाँ जाऊँ ?''

''जहाँ दरवाजा खुला हो वहाँ चला जा ।''

माँ के इस जवाब को सुनकर सिद्ध वहाँ से निकल पड़ा । नगर में सभी मकानों के द्वार बंद थे...परंतु जैन साधु के द्वार खुले थे, क्योंकि उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था...और न ही उन्हें किसी वस्तु के खोने का डर था । वह सिद्ध सीधा ही उपाश्रय में पहुँच गया ।

पू. गुरु भगवंत ने पूछा, ''कौन ?''

उसने कहा, ''मैं सिद्ध ।''

''इस समय यहाँ आने का कोई प्रयोजन ?''

''मेरी माँ ने कहा है कि जिसके द्वार खुले हों वहाँ चला जा, यहाँ द्वार खुले थे, अतः मैं यहाँ आ गया, अब आप ही मेरे लिए शरण्य हो, मेरा रक्षण करो ।''

पूज्य गुरु भगवंत गर्गर्षि ने चांदनी के प्रकाश में सिद्ध के ललाट-पट्ट को देखा । तत्पश्चात् उन्होंने अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगाया और देखा कि यह तो जैन शासन का सितारा होनेवाला है, फिर भी इसकी परीक्षा करना अनिवार्य है । इस प्रकार विचार कर गुरुदेव ने कहा, ''हमारे जैसा जीवन जीए, उसी को हम अपने साथ रख सकते हैं ।''

प्रत्युत्तर में सिद्ध ने अपनी सम्मति दे दी । उसके बाद गुरुदेव ने साधु जीवन के कष्टों का वर्णन किया । परंतु सिद्ध ने सब कुछ सहन करने की अपनी तैयारी बताई ।

सिद्ध का हृदय परिवर्तन हो चुका था । उसके दिल में से सांसारिक पदार्थों का आकर्षण समाप्त हो चुका था । उसने पूज्य गुरुदेव से दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की ।

गुरुदेव ने कहा, ''तुम एक दिन ठहर जाओ, तुम्हारे पिता को जानकारी देना जरूरी है ।''

रात्रि व्यतीत हुई ।

दूसरे दिन सिद्ध के पिता को समाचार दिए गए । वे तुरंत ही गुरुदेव के पास उपस्थित हुए । सेठ ने अपने पुत्र को घर चलने के लिए आग्रह किया...परंतु सिद्ध घर आने के लिए तैयार नहीं हुआ । पिता ने धन-संपत्ति का प्रलोभन दिया । पिता ने अपनी वृद्धावस्था व पत्नी की क्या दशा होगी ?' उसका वर्णन किया ।

परंतु विरक्त बना सिद्ध अपने निर्णय से टस से मस नहीं हुआ । धन व स्त्री के लोभ में वह फँसा नहीं । आखिर पिता ने अपनी सम्मति प्रदान की ।

पूज्य गुरुदेव ने सिद्ध को दीक्षा दी । दीक्षा अंगीकार करने के बाद सिद्ध मुनि ज्ञान-ध्यान की साधना में आकंठ डूब गए ।

सिद्धर्षि ने न्याय-आगम व्याकरण आदि का गहन अध्ययन किया । सिद्धर्षि प्रसिद्ध व्याख्याता बने । एक बार सिद्धर्षि के दिल में बौद्ध धर्म के ग्रंथों का अभ्यास करने का मन हुआ । इस हेतु वे गुप्त वेष में बौद्ध मठ में जाने के लिए तैयार हो गए ।

सिद्ध ने अपने गुरुदेव से विनती की ।

गुरुदेव ने अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगाया और उसके बाद कहा, ''अभ्यास के लिए जाने की तेरी भावना उत्तम है, लेकिन वहाँ जाने में कोई सार (लाभ) नहीं है ।''

''नहीं, गुरुदेव ! वहाँ जाऊंगा तो बौद्ध दर्शन का भी गहन अध्ययन करने का अवसर मिलेगा । ज्ञानोपार्जन से तो लाभ ही होता है । कृपया आप इन्कार न करें ।''

गुरुदेव ने कहा, ``बौद्धों के क्षणिकवाद में अनेक हेत्वाभास आते हैं, तू उनके जाल में फँस गया तो ?''

``नहीं गुरुदेव ! आप ऐसी शंका न करें ! ऐसा कभी नहीं होगा ।''

``वत्स ! वहाँ रहने से...उसी का निरंतर अभ्यास करने से श्रद्धा विचलित होने का भय रहता है, अतः तेरा आग्रह हो तो जा, लेकिन कदाचित् तेरा मन भ्रमित हो जाय तो यह रजोहरण मुझे देने के लिए तू वापस जरूर आना ।''

``हाँ, गुरुदेव ! आप बिल्कुल निश्चिंत रहें । ऐसी कोई स्थिति नहीं आने दूंगा ।''

यद्यपि गुरुदेव की इच्छा नहीं थी, पर सिद्धर्षि के अति आग्रह के कारण गुरुदेव को मौन रहना पड़ा ।

सिद्धर्षि महाबोध नाम के बौद्धनगर में चले गए और वहाँ रहकर बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने लगे । कुछ ही समय में वे बौद्ध दर्शन में निष्णात हो गए । उनकी प्रतिभा देखकर बौद्ध धर्मगुरु अत्यंत ही आकर्षित हुए ।

बौद्धों ने उन्हें 'अपना' बनाने के लिए पैंतरा रचना चालू किया ।

आखिर जैनदर्शन की श्रद्धा से विचलित बने सिद्धर्षि ने वहाँ रहने का निश्चय कर लिया...परंतु गुरुदेव ने जो शर्त रखी थी...उस शर्त का पालन करने के लिए वे तैयार हो गए !

उन्होंने बौद्ध धर्मगुरु को कहा कि अपने गुरुदेव को दिए वचन के अनुसार मैं यह रजोहरण गुरुदेव को वापस देना चाहता हूँ । बौद्धाचार्य ने अपनी सम्मति दे दी ।

सिद्धर्षि अपने गुरुदेव के पास आए । गुरुदेव ने अकाट्य तर्कों द्वारा बौद्ध दर्शन का खंडन किया । सिद्धर्षि को लगा कि वास्तव में जैनदर्शन ही सत्य है ।

सिद्धर्षि को बौद्ध भिक्षु ने कहा था, ``वहाँ रहने की इच्छा हो जाय तो एक बार आकर मुझे अवश्य मिलना ।''

अपने वचन-पालन के लिए सिद्धर्षि पुनः बौद्धभिक्षु के पास आए । बौद्धभिक्षु ने पुनः तर्क देकर सिद्धर्षि को समझाया । सिद्धर्षि की श्रद्धा पुनः विचलित हो गई ।

इस प्रकार सिद्धर्षि ने बौद्धाचार्य से जैनाचार्य और जैनाचार्य से बौद्धाचार्य के बीच 21 बार चक्कर लगाए । आखिर 21 वीं बार उन्होंने निश्चय कर लिया कि बौद्ध दर्शन ही सत्य दर्शन है, अतः गुरुदेव को अपना रजोहरण देने के लिए आए । बौद्ध आचार्य ने अपनी सम्मति प्रदान की । सिद्धर्षि क्रमशः आगे बढ़ते हुए अपने धर्मगुरु गर्गर्षि के पास पहुँचे ! गर्गर्षि को बदली हुई परिस्थिति का ख्याल आ गया । यहाँ से जाते समय गुरुदेव के प्रति जो पूज्य भाव था, वह पूज्य भाव सिद्धर्षि का लुप्त हो चुका था । गुरुदेव को ख्याल आ गया कि अब यह यहां रहनेवाला नहीं है । अब उसे समझाने का कोई अर्थ नहीं है, अतः अपने पाट पर पू. हरिभद्रसूरिजी म. द्वारा विरचित **'ललित विस्तरा'** ग्रंथ रखकर स्थंडिल जाने के बहाने बाहर निकलते हुए बोले, ``मैं अभी आता हूँ ।''

गुरुदेव के बाहर जाने के बाद विद्या व्यासंगी **सिद्धर्षि** ने वह **'ललितविस्तरा'** ग्रंथ अपने हाथ में उठाया और वे उसे ध्यान से पढ़ने लगे ।

सिद्धर्षि ज्यों-ज्यों **'नमुत्थु णं'** सूत्र की टीका स्वरूप **'ललित विस्तरा'** ग्रंथ पढ़ने लगे, त्यों-त्यों उनके आंतर चक्षु उघड़ने लगे । उनके भीतर रहा अज्ञान का अंधकार दूर हो गया और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश फैलने लगा । ग्रंथ को पढ़ते-पढ़ते उन्हें वीतराग-परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का सत्यबोध हुआ । पू. हरिभद्रसूरिजी म. ने अकाट्य तर्कों के द्वारा इस ग्रंथ में अन्य दर्शनों की मिथ्या मान्यताओं का स्पष्ट खंडन किया था । इस ग्रंथ का स्वाध्याय करने के साथ ही जैन दर्शन के प्रति सिद्धर्षि की श्रद्धा अत्यंत दृढ़ हो गई ।

उनके मन में जैनधर्म और जिनेश्वर भगवंत के विषय में जो भी शंकाएँ थीं, वे सब निर्मूल हो गईं । उनके हृदय में ग्रंथकर्ता के प्रति अपूर्व आदर–बहुमान भाव पैदा हुआ ।

थोड़ी देर बाद जब गुरुदेव प्रभु दर्शन कर उपाश्रय में **'निसीहि'** कहकर पधारे, तब सिद्धर्षि अपने आसन पर से खड़े हो गए ।

उसके बाद गुरुदेव के चरणों में बैठकर सिद्धर्षि ने कहा, ``भगवंत ! मेरी बुद्धि में जो भ्रम हो गया था, वह इस **'ललित विस्तरा'** ग्रंथ से दूर हो गया है । आपने मुझे वापस आने के लिए कहा, आपकी उस दीर्घदृष्टि के लिए आप धन्यवाद के पात्र हो ।''

``मैंने गंभीर भूल की हैं, अतः आप मुझे प्रायश्चित्त प्रदान करें ।''

पूज्य गुरुदेव ने उन्हें योग्य प्रायश्चित्त प्रदान किया ।

उसके बाद सिद्धर्षि ने जैन शासन की खूब सुंदर प्रभावना की । उन्होंने **'उपदेश-माला'** ग्रंथ पर हेयोपादेया नाम की टीका की रचना की वि.सं. 973 में चंद्रकेवली चरित्र, न्यायावतार वृत्ति आदि की रचना की ।

पूज्य गुरुदेव ने उन्हें अपने पाट पर स्थापित किया ।

वि.सं. 962 जेठ सुदी पंचमी गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र में अपनी जन्मभूमि भिनमाल में **उपमिति भव प्रपंचा ग्रंथ** की रचना की ।

संस्कृत भाषा में यह एक अनमोल ग्रंथ है ।

सिद्धर्षि की अनुपम भेंट 'उपमिति'

भव बंधन से मुक्ति पाने के लिए वैराग्य एक प्रबल शंबल है । उस वैराग्य की प्राप्ति के लिए 'प्रार्थना सूत्र' के माध्यम से प्रभु के आगे 'भव-निर्वेद' की ही पहली प्रार्थना की जाती है ।

जीवन में वैराग्य की पुष्टि के लिए वैराग्य पोषक ग्रंथों का स्वाध्याय खूब जरूरी है ।

वैराग्य पोषण के लिए प्राकृत भाषा में **'समराइच्च कहा'** से बढ़कर कोई ग्रंथ नहीं है ।

'गुणसेन और अग्निशर्मा' के दो पात्रों की नौ-नौ भवों की यह कहानी वक्ता व श्रोता तथा पाठक के दिल में वैराग्य भाव को पैदा किए बिना नहीं रहती है । यह संपूर्ण कहानी 'सत्यकथा' पर आधारित है । क्षमा भाव से गुणसेन राजा का मोक्ष हो गया और क्रोध के कारण अग्निशर्मा के अनंत संसार की वृद्धि हो गई ।

इसी प्रकार संस्कृत भाषा में वैराग्य की पुष्टि के लिए एक अद्‌भुत ग्रंथ है-**'उपमिति भव प्रपंचा कथा ।'**

यह संपूर्ण कथा **'रूपक कथा'** के रूप में है ।

वि.सं. 962 में सिद्धर्षि गणी ने गद्य-पद्य मिश्रित चंपूकाव्य के रूप में 16000 श्लोक प्रमाण 'उपमिति' की रचना की है ।

कृतज्ञता का आदर्श

यद्यपि सिद्धर्षि गणी प्रकांड विद्वान् थे ! अनेक गुणों के भंडार होने पर भी उनमें 'कृतज्ञता' का गुण विशिष्ट कोटि का था ।

उनसे 200 वर्ष पूर्व हो चूके पू. हरिभद्रसरिजी ने 'ललित-विस्तरा' ग्रंथ की रचना की थी ।

अपने अध्ययन काल में सिद्धर्षि ने जब बौद्धदर्शन का गहन अभ्यास किया, तब जैन दर्शन पर से उनकी श्रद्धा भी विचलित हो गई थी, परंतु पू. हरिभद्रसूरिजी विरचित **'ललित विस्तरा'** ग्रंथ पढ़ने के बाद जैन दर्शन पर की उनकी श्रद्धा अत्यंत ही दृढ हो गई थी, उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने 'उपमिति' ग्रंथ के प्रारंभ में ही की है ।

वे लिखते हैं–

'अनागतं परिज्ञाय, चैत्यवंदन-संश्रया ।
मदर्थैव कृता येन, वृत्तिर्ललितविस्तरा ।।

'मैं मार्ग से च्युत होनेवाला हूँ, उन्मार्ग पर चढनेवाला हूँ, इसलिए मुझे सन्मार्ग में स्थिर करने के लिए मेरे लिए ही परमोपकारी पू. हरिभद्रसूरिजी ने मानो **'ललित विस्तरा'** नाम की टीका रची है ।

एक अद्‌भुत आत्म कथा :- भूतकाल में अनेक महापुरुषों ने उपदेशात्मक अनेक महापुरुषों के जीवन-चरित्र रचे हैं, किसी के जीवन की सत्य घटना के आधार पर किसी को उपदेश देना आसान है, परंतु एक रूपक के माध्यम से काल्पनिक उपदेश कथा की रचना करना अत्यंत ही कठिन है ।

सिद्धर्षि ने इस कथा में अव्यवहार राशि से बाहर निकल कर आत्मा किस प्रकार एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंच गति में भ्रमण करती है, उसका बहुत ही विस्तार से चित्रण किया है।

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथून और परिग्रह के मुख्य पांच पाप, क्रोध-मान-माया-लोभ और मोह के वशीभूत होकर स्पर्शनेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियों की लोलुपता से आत्मा इस संसार में भयंकर यातनाओं को भुगतती है, उसका सारा चित्रण बताया है। उन पापों के फलस्वरूप तथा इन्द्रियों की पराधीनता के फल स्वरूप आत्मा नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों में भयंकर विडंबनाओं को प्राप्तकर कभी देव-मनुष्य बनती है, कभी विकास के मार्ग में आगे बढ़ती है तो कभी पुनः पतन के गर्त में डूब जाती है।

उपमिति में कुल 8 प्रस्ताव (Chapters) है। **प्रथम प्रस्ताव** में मंगलाचरण के बाद जीवन के मुख्य कर्तव्यों का निर्देश देते हुए कहा है–

हेयं हानोचितं सर्वं, कर्तव्यं करणोचितम्।
श्लाघ्यं श्लाघ्योचितं सर्वं, श्रोतव्यं श्रवणोचितम्॥

जो त्याग करने योग्य हैं, उसका त्याग करे!
जो करने योग्य हैं, उसका आचरण करे।
जो प्रशंसा करने योग्य है, उसकी प्रशंसा करे और
जो श्रवण करने योग्य हैं, उसका श्रवण करे।

प्रश्न : त्याग करने योग्य क्या हैं ?

उत्तर : जिससे अपना चित्त मलिन बने, ऐसी मन, वचन और काया की सभी प्रवृत्तियाँ त्याग करने योग्य हैं। मोक्ष मार्ग में अंतराय भूत मन, वचन व काया से सभी प्रवृत्तियां छोड़ने योग्य हैं।

प्रश्न : करने योग्य क्या हैं ?

उत्तर : जिससे अपना मन स्वच्छ और पारदर्शी बने, ऐसी सभी प्रवृत्तियाँ करने योग्य है।

प्रश्न : प्रशंसा करने योग्य क्या हैं ?

उत्तर : तीर्थंकर परमात्मा, प्रभु के द्वारा बताया हुआ धर्म और उस धर्म का आचरण करने वाले सभी प्रशंसा के पात्र है।

प्रश्न : श्रवण करने योग्य क्या हैं ?

उत्तर : प्रभु की वाणी ही श्रवण करने योग्य है।

दूसरा प्रस्ताव : दूसरे प्रस्ताव में तिर्यंच गति का विस्तार से वर्णन है।

अव्यवहार राशि में रहे सूक्ष्म निगोद के अनंत जीव! चौदह राजलोक में निगोद के असंख्य गोले है। एक-एक गोले में असंख्य निगोद है और एक-एक निगोद में अनंत अनंत जीव है।

निगोद भी दो प्रकार की हैं, सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म निगोद के जीव भी दो प्रकार के है- व्यवहार राशि और अव्यवहार राशि!

एकेन्द्रिय जीवों के पांच प्रकार है-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

–वनस्पतिकाय के दो भेद–साधारण और प्रत्येक !

–विकलेन्द्रिय के तीन भेद–बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय

तीसरे प्रस्ताव में संसारी जीव का `नंदिवर्धन' के रूप में जन्म होता है। नंदिवर्धन क्रोध और हिंसा के चंगुल में फंस जाता है और वहां स्पर्शन इन्द्रिय की अधीनता के कारण कैसे कैसे कष्ट प्राप्त करता हैं, उसका व्यापक वर्णन है।

चौथे प्रस्ताव में संसारी जीव का `रिपूदारण' के रूप में जन्म होता है और वहां अस्तेय और अभिमान के वशीभूत हो जाता है। उसके साथ ही रसनेन्द्रिय की गुलामी के कारण वह कैसी कैसी यातनाओं को प्राप्त करता हैं, उसका विस्तृत वर्णन है।

इस प्रस्ताव में विमर्श और प्रकर्ष के पात्रों के माध्यम से भवचक्र का सुंदर वर्णन किया है।

मांसभक्षण आदि सात व्यसनों के दुष्परिणामों का भी विस्तार से वर्णन किया है।

पांचवे प्रस्ताव में संसारी जीव `वामदेव' के रूप में जन्म लेता है और वहां माया और चोरी के पाप की परवशता एवं घ्राणेन्द्रिय की अधीनता के कारण उसकी जो दुर्दशा होती हैं, उसका विस्तृत वर्णन है। इस प्रस्ताव में मोहराजा और चारित्रराज के युद्ध का भी अत्यंत ही रोचक वर्णन है।

छठे प्रस्ताव में संसारी जीव का `धनशेखर' के रूप में जन्म होता है। लोभ कषाय, मैथुन महापाप तथा चक्षु इन्द्रिय की आसक्ति की पराधीनता से होनेवाले महा अनर्थों का वर्णन किया है। संसारी आत्माओं के छह प्रकार-निकृष्ट (अधमाधम) अधम, विमध्यम, मध्यम, उत्तम और वरिष्ठ (उत्तमोत्तम) का भी विस्तृत वर्णन है।

सातवें प्रस्ताव में संसारी जीव **`घनवाहन'** के रूप में जन्म लेता है और वहां महामोह दोष, महापरिग्रह का महापाप और कर्णेन्द्रिय की परवशता से होनेवाले अनर्थों का चित्रण प्रस्तुत किया है। अंत में संसारी जीव को चारित्रराज के सेनापति `सम्यग्दर्शन' का परिचय होता है और उसके बाद संसारी जीव प्रगति के पथ पर प्रयाण करता है।

आठवें प्रस्ताव में संपूर्ण ग्रंथ का रहस्य प्रकट किया है। संसारी जीव का नाम `गुणधारण' रखा जाता है। सम्यग्दर्शन के साथ उसका परिचय बढता है।

काल, स्वभाव, भवितव्यता, कर्म और पुरुषार्थ के सहयोग से पुण्योदय व पापोदय का फल बताया है। निवृत्ति के अभिलाषी को क्षमा आदि 10 कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करना चाहिए। उन कन्याओं के स्वरूप का परिचय भी दिया है। चित्तवृत्ति रूप जंगल में मोहराजा और चारित्रराज के भयंकर युद्ध और अंत में चारित्रराज के विजय का वर्णन है।

तीन कुटुंब का परिचय

संसारी जीव के मुख्य तीन कुटुंब है–

(1) स्वाभाविक कुटुंब : इस कुटुंब में क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष, ज्ञान, दर्शन, वीर्य सुख, सत्य, शौच और संतोष आदि कुटुंबीजन है । यह कुटुंब आत्मा के साथ अनादिकाल से रहा हुआ है, यह कुटुंब आत्मा का सतत हित करने में ही तत्पर रहता है । यह कुटुंब कभी अदृश्य हो जाता है और कभी प्रकट हो जाता है । यह कुटुंब ही आत्मा को मोक्ष में पहुँचानेवाला है ।

(2) अस्वाभाविक कुटुंब : क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, शोक, भय और अविरति आदि आत्मा का अस्वाभाविक कुटुंब है । यह कुटुंब आत्मा का एकांत अहित ही करता है । इस कुटुंब का संबंध अनादिकाल से है । अभव्य जीव इसका कभी अंत नहीं ला सकता ।

कुछ भव्य प्राणी इस कुटुंब का अंत भी ला सकते है । यह कुटुंब भी कभी प्रकट होता है और कभी अदृश्य हो जाता है ।

यह कुटुंब आत्मा को सांसारिक भोग सुखों में आसक्त बनाता हैं, परिणाम स्वरूप आत्मा का भव भ्रमण बढ़ाता है ।

(3) बाह्य कुटुंब : संसार में आत्मा को देह धारण करना पड़ता है इस देह को जन्म देनेवाले माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि का शारीरिक संबंध होने से यह जीवात्मा का बाह्य कुटुंब है । यह कुटुंब हर भव में बदलता रहता है ।

जीवात्मा को अंतरंग अस्वाभाविक कुटुंब के प्रति राग होता है, तब इस तीसरे कुटुंब के प्रति भी राग भाव पैदा होता है । जिसके फल स्वरूप यह बाह्य कुटुंब भी आत्मा की संसार वृद्धि का ही कारण बनता है ।

जीवात्मा को आत्मा के स्वाभाविक कुटुंब की ओर राग पैदा होता है, तब उसे बाह्य कुटुंब को भी छोड़ने का मन होता है ।

–अभव्य प्राणी को यह कुटुंब संसार वृद्धि का ही कारण बनता है जबकि भव्य प्राणी को यह कुटुंब संसार और मोक्ष दोनों का कारण बनता है ।

–इस जीवन में तीसरे बाह्य कुटुंब का त्याग तथा दूसरे अंतरंग कुटुंब का घात कर पहले विशुद्ध कुटुंब का पोषण करना चाहिए ।

जीवात्मा को जब तक स्वाभाविक विशुद्ध अंतरंग कुटुंब का बोध नहीं होता हैं, तब तक उसको संसार में भटकने का ही होता है ।

विशाल-बोध

उपमिति भव प्रपंचा ग्रंथ ज्ञान का महासागर है ।

इसी एक ग्रंथ के माध्यम से हमें सैकडों विषयों का बोध हो जाता है ।

– इस ग्रंथ में छह दर्शनों की भिन्न भिन्न मान्यताओं और सिद्धांतों का विशद वर्णन है ।

– इस ग्रंथ में आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, निमित्त शास्त्र तथा स्वप्न शास्त्र आदि का भी स्पष्ट बोध है ।

– इस ग्रंथ में राजनीति, युद्धनीति, नाटक, व्यापार, लग्न व्यवस्था आदि का भी प्रसंगानुसार वर्णन है ।

–पात्रों के नामों का चयन भी खूब कुशलतापूर्वक किया गया है ।

–संसारी जीव को **द्रमक**-भिखारी की उपमा दी है ।

–क्रोध को **वैश्वानर** (आग) की उपमा दी है ।

–मान को **शैलराज** (पर्वत) की उपमा दी है ।

सात दोष :–

जीवात्मा को राजरोग जैसे सात दोष खूब सताते है । उन दोषों को भिन्न-भिन्न रोगों की उपमा दी हैं–

(1) मिथ्यात्व : इसे उन्माद का रोग कहा है । उन्माद का रोग होने पर स्वयं क्या कर रहा हैं ? उसका भान नहीं होता है । मिथ्यात्व के उदय में व्यक्ति अपने आपको अकार्य में जोड़ता है ।

(2) राग : इसे ज्वर की उपमा दी है । ज्वर होने पर बेचैनी व मन में ताप पैदा होता है । राग ग्रस्त जीव को अन्यत्र चैन नहीं पड़ता हैं, वह उसी वस्तु को पाने के लिए तड़फता है ।

(3) द्वेष : इसे शूल की उपमा दी है । पेट में शूल की पीडा पैदा होने पर जीव अशांत बन जाता है ।

(4) काम : इसे खुजली की उपमा दी है । खुजली का दर्दी खुजलाए बिना नहीं रहता । ज्यों ज्यों खुजलाता है, त्यों त्यों खुजलाने की इच्छा बढ़ती है और पीड़ा भी बढ़ती है ।

काम के सेवन में कभी तृप्ति का अनुभव नहीं होता है । ज्यों ज्यों काम का सेवन करता हैं, त्यों त्यों काम वासना की भूख बढ़ती जाती है ।

(5) दीनता : इसे कुष्ठरोग की उपमा दी है । कोढी किसी को अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार दीनता-लाचारी करनेवाले को भी कोई पसंद नहीं करना ।

(6) अज्ञान : इसे आंख के रोग अंधत्व की उपमा दी है। अंधे को दिखता नहीं है, अज्ञानी को भी सत्य-वस्तु का भान नहीं होता है।

(7) प्रमाद : इसे जलोदर की उपमा दी है। प्रमादी आलसी होता है, उसमें कुछ भी करने की हिम्मत नहीं होती है।

संस्कृत भाषा का यह एक अद्‌भुत ग्रंथ है। इस ग्रंथ को पढ़ने के बाद भी यदि हृदय में वैराग्य भाव का बीजारोपण न हो तो समझना चाहिए कि वह आत्मा भारी कर्मी है।

जीवों के भेद

(1) शुद्धि और अशुद्धि की अपेक्षा से जीवों के दो भेद है–

1. भव्यात्मा – जिस आत्मा में मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता है।

2. अभव्यात्मा – जिस आत्मा में मोक्ष गमन की योग्यता नहीं है।

अध्यात्म की दृष्टि से आत्मा के तीन भेद–

1. बहिरात्मा : जो आत्मा अज्ञान के कारण अपने असली स्वरूप को भूलकर देह, इन्द्रिय आदि पर पदार्थों में अपनत्व का आरोपण कर उन भोगों में ही आसक्त रहती है, वह बहिरात्मा है।

2. अंतरात्मा : मिथ्यात्व के अभाव में जब जीव; देह और आत्मा के भेद को समझने लगता है और बाह्य पदार्थों पर से ममत्व बुद्धि दूर कर अपने सही स्वरूप की ओर सन्मुख होता है, उसे अंतरात्मा कहते है।

3. परमात्मा : कर्म मल से रहित, राग-द्वेष की विजेता आत्मा को ही परमात्मा कहते है।



वड गच्छ प्रारंभ–वि.सं. 994

वड-गच्छ का प्रारंभ आ.श्री उद्योतनसूरिजी

स्तुति

वडवृक्ष के नीचे करे, आचार्य पदवीं शिष्य की,
वड गच्छ पंचम नाम से, निर्ग्रंथ गच्छ हुआ तभी,
कुवलयमाला ग्रंथकर्ता, उद्योतनसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।39।।

महावीर प्रभु की 35 वीं पाट परंपरा में महाप्रभावक आचार्य **श्री उद्योतनसूरिजी** हुए ।

वे शासन प्रभावक पू. आ. **श्री विमलचंद्रसूरिजी** के प्रधान शिष्य थे । वे दीर्घायुषी थे । आचार्य पर्याय भी काफी ज्यादा था ।

उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में उनके अभ्यंतर व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कहा है कि–वे **चंद्र के समान शीतल, पर्वत की तरह अचल, अशुभ भावनाओं से मुक्त, क्षमा गुण को आत्मसात् करनेवाले, धर्म के जीवंत स्वरूप, निर्मल गुणवाले** आदि विशेषणों से सुशोभित थे ।

उनका चारित्र अत्यंत ही निर्मल था । वे जिनाज्ञानुसार नवकल्पी विहार करते थे । वे नियमित एकासना करते थे । वि.सं. 937 में उनके द्वारा प्रतिष्ठित जिन प्रतिमाएं आज भी मिलती है । उनका विहार क्षेत्र राजस्थान व गुजरात में रहा ।

वीर सं. 1464 विक्रम संवत् 994 में एक दिन वे विहार करते हुए आबु पर्वत की तलहटी में रहे तेली गांव में पधारे । रात्रि के समय उन्होंने आकाश की ओर नजर की । उन्होंने ग्रहों की स्थिति देखते हुए सोचा, 'अहो ! कल का दिन बहुत ही उत्तम है । शुभ ग्रह उच्चस्थान में आ रहे है । छत्रयोग और संतान वृद्धियोग बनता है । यदि इस समय योग्य आत्मा को आचार्य पदारूढ किया जाएगा तो उनका वंश वट वृक्ष की भांति चारों ओर बढ़ता जाएगा ।'

इस प्रकार विचार कर उन्होंने दूसरे दिन मंगलवेला में अपने शिष्य सर्वदेव, मानदेव, महेश्वर तथा प्रद्योतन आदि आठ मुनियों को वट वृक्ष के नीचे आचार्य पद प्रदान किया । वट वृक्ष के नीचे आचार्य पद प्रदान करने के कारण वह मुनि समुदाय वड गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

निर्ग्रंथ गच्छ का ही यह पांचवा वड गच्छ नाम है । वड वृक्ष की भांति इस गच्छ की परंपरा बढ़ती ही गई, जो आज भी विद्यमान है ।

– पू. उद्योतनसूरिजी की एक अन्य विशेषता थी कि उनके शरीर के दाहिने भाग में स्वस्तिक का लक्षण था । लक्षण शास्त्र की दृष्टि से स्वस्तिक का खूब महत्त्व है । स्वस्तिक मंगलकारी है । आठ मंगलों में स्वस्तिक भी एक मंगल हैं । स्वस्तिक की निशानी वाला व्यक्ति संसार में रहे तो भी प्रभावशाली व्यक्तित्व धारण करता है और धर्म के क्षेत्र में रहे तो शासन का स्तंभभूत बनता है ।

–पू. उद्योतनसूरिजी म. ने पूज्य हरिभद्रसूरिजी के पास न्याय शास्त्र का अभ्यास किया था ।

पू. उद्योतनसूरिजी पर पद्मावतीदेवी प्रसन्न थी, देवी ने एक बार पूज्यश्री को **'कुवलयमाला'** ग्रंथ रचना के लिए प्रेरणा की और कहा, 'ग्रंथ रचना में कहीं भी जरूरत पड़े तो मुझे याद करना ।'

पूज्यश्री ने दैवी प्रार्थना को ध्यान में लेकर 'कुवलयमाला' ग्रंथ की रचना की । इस कथा ग्रंथ में आचार्यश्री की अद्‌भुत प्रतिभा के दर्शन होते है ।



आ.श्री सर्वदेवसूरिजी

स्तुति

लघुवय में दीक्षित, सर्वदेव–सूरि हुए छत्तीसवें,
नवांगी टीकाकार तब, श्री अभयदेवसूरि हुए,
धरणेन्द्र देव सहाय से, करे कुष्ट रोग निवारणा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।40।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 36 वें पट्टधर आचार्यश्री **सर्वदेवसूरिजी** हुए ।

उनकी भागवती-दीक्षा बहुत छोटी उम्र में हुई थी । वि.सं. 994 में जब उनकी आचार्य पदवी हुई, तब इनके साधु समुदाय में देव अंतवाले ऐसे मानदेव, अजितदेव, यशोदेव, आम्रदेव आदि बहुत से मुनि थे । इन सब में आचार्य देवसूरि खूब प्रसिद्ध थे, जो बाद में सर्वदेवसूरि के नाम से प्रख्यात हुए–उनके पट्टधर आचार्य देवसूरि हुए ।

सूरिमंत्र के प्रभाव से वे खूब ऋद्धिवाले थे । वे शुद्ध चारित्र संपन्न और समर्थ प्रतिबोधक थे । गौतम स्वामीजी की तरह शिष्य लब्धिवाले थे ।

–उनके उपदेश से रघुसेन राजा ने रामसेन के प्राचीन जिनालय का जीर्णोद्धार कराया था और वि.सं. 1010 में सर्वदेवसूरि के वरद हस्तों से चंद्रप्रभ आदि अनेक प्रतिमाओं की अंजनशलाका प्रतिष्ठा कराई थी ।

–पूज्यश्री के सदुपदेश से हथुंडी के राव जगमाल ने सपरिवार जैन धर्म स्वीकार किया था ।

–चंद्रावती के महाराजा अरण्यराज परमार के मंत्री कुंकण ने चंद्रावती में विशाल जिनमंदिर का निर्माण कराया था, वि.सं. 1010 में पूज्य सर्वदेवसूरिजी के पास अंजन-प्रतिष्ठा करवाकर उनके पास भागवती-दीक्षा अंगीकार की थी ।

आबू तीर्थ के पास अरावली की पर्वतमालाओं के बीच धर्माण गांव में एक विराट् वटवृक्ष था । इस वटवृक्ष की शाखाएँ इतनी विस्तृत थी कि 500 बैलगाडियाँ उस वृक्ष के नीचे रुक सकती थी ।

पू.आ. सर्वदेवसूरिजी को इसी वट वृक्ष के नीचे आचार्य पदवी प्राप्त हुई थी । उस समय सातग्रहो का शुभ योग होने से, शुभ लग्न में योग्य आत्माओं की आचार्य पदवी हुई थी ।

वटवृक्ष के नीचे आचार्य पदवी होने से सर्वदेवसूरिजी से चंद्रगच्छ का नाम वड गच्छ में बदल गया ।

स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1096

वादिवेताल आ. श्री शांतिसूरिजी

थारापद्र गच्छ में विजयसिंहसूरिजी नाम के आचार्य थे–जो चैत्यवासी थे और शांतू महेता के चैत्य में रहते थे ।

एक बार वे राधनपूर के पास ऊण गांव में प्रभु के दर्शन कर बाहर आ रहे थे, तभी उनकी नजर एक नन्हें से बालक पर गिरी !

उस बालक के उत्तम लक्षणों को देखकर आचार्यश्री प्रसन्न हो गए । वह बालक आजानुबाहु था । अन्य लक्षणों से भी वह तेजस्वी लग रहा था । वह बालक ऊण गांव के श्रीमाली शेठ धनदेव और धनश्री का पुत्र था, बालक का नाम भीम था ।

आचार्यश्री धनदेव श्रेष्ठी के घर गए । उन्होंने शेठ को समझाते हुए कहा, `श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त तुम्हारा यह बालक भविष्य में जिन शासन का महान् प्रभावक बन सकता है, अतः पुत्र–मोह को छोड़कर तुम अपनी संतान जिन शासन के चरणों में समर्पित कर दो !'

अपनी संतान के उज्ज्वल भविष्य को जानकर शेठ ने अपनी संतान गुरु चरणों में समर्पित कर दी । गुरुदेव ने उस बालक को भागवती–दीक्षा प्रदान की और उस बालक का नाम `शांतिभद्र' रखा गया ।

कुछ ही वर्षों में नूतन मुनि ने शास्त्र–सिद्धांतों का गहन अभ्यास कर लिया ।

आचार्य अभयदेवसूरिजी के पास उन्होंने तर्क शास्त्र का तथा आ. सर्वदेवसूरिजी के पास उन्होंने जिन आगमों का अभ्यास किया ।

कुछ ही समय बाद पू. गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया और उनका नाम 'आचार्य श्री शांतिसूरिजी' रखा ।

अपने गच्छ के भार से निवृत्त होकर विजयसिंहसूरिजी ने अनशन व्रत स्वीकार कर समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्तकर वे सद्गतिगामी बने ।

–पाटण के राजा 'भीमदेव' की राजसभा में अपनी प्रतिभा प्रकट हुई और वहां उन्हें **'कवीन्द्र'** और **'वादीचक्रवर्ती'** के बिरुद प्रदान किए गए ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

धारा नगरी में धनपाल पंडित ने 'तिलक मंजरी' ग्रंथ की रचना की थी ।

धनपालन ने पू. महेन्द्रसूरिजी को पूछा, 'इस ग्रंथ में किसी प्रकार की शास्त्रीय क्षति न रह जाय इसलिए इस ग्रंथ का संशोधन कौन करेगा ?'

पू. महेन्द्रसूरिजी ने कहा, 'इस ग्रंथ के संशोधन के लिए वादिवेताल आ. शांतिसूरिजी खूब योग्य है ।'

अपने ग्रंथ के संशोधन के लिए धनपाल कवि पाटण आया । पाटण आने के बाद उसे आ. वादिदेवसूरिजी के एक शिष्य का परिचय हुआ ।

शांतिसूरिजी के शिष्य के साथ हुए वार्तालाप से धनपाल को विश्वास आ गया कि इनके शिष्य इतने विद्वान् है तो उनके गुरुदेव की प्रतिभा कैसी होगी ?'

धनपाल कवि ने पू. आचार्यश्री को धारानगरी में पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

धनपाल कवि की प्रार्थना स्वीकार कर पूज्य आचार्य भगवंत ने धारा नगरी की ओर विहार प्रारंभ किया ।

एक बार रात्रि में सरस्वती देवी ने उन्हें वरदान देते हुए कहा, 'तुम हाथ ऊंचा करके वाद करोगे तो अवश्य ही तुम्हारी जीत होगी ।'

धारा नगरी में प्रवेश के पूर्व भोजराजा ने उन्हें कहा, 'धारा नगरी में अनेक वादी हैं जितने वादियों को आप पराजित करोगे, उतने लाख मालवी द्रम्म आपको दूंगा ।' गुजरात के साधुओं की विद्वत्ता का भी मुझे परिचय होगा ।

आचार्य शांतिसूरिजी म. ने भोजराजा की सभा में 84 वादियों को पराजित किया था ।

आचार्यश्री के नाम में 'शांति' शब्द था, परंतु वे वादियों के आगे 'वेताल' जैसे थे ।

आचार्य श्री ने 'तिलक मंजरी' ग्रंथ का भी संशोधन किया, इसके फल स्वरूप राजा ने उन्हें 'वादिवेताल' का बिरुद प्रदान किया ।

84 वाद जीतने के फलस्वरूप 84 लाख द्रम्म से धारानगरी में जिन मंदिरों का निर्माण कराया गया ।

भीमदेव राजा की विनती को स्वीकार कर शांतिसूरिजी पुनः पाटण पधारे ।

पाटण के शेठ जिनदेव ने सर्पदंश से अपने पुत्र को मृतय समझकर जमीन में गाड़ दिया । शांतिसूरिजी को पता चलते ही उन्होंने उस पुत्र को बाहर निकलवाया । उसके बाद उनके हस्तस्पर्श से ही बालक पद्मदेव का जहर दूर हो गया ।

जिनदेव ने आचार्यदेव का खूब आभार माना और उनका योग्य सत्कार किया ।

पू. शांतिसूरिजी अपने 32 शिष्यों को न्याय का अभ्यास करा रहे थे । उस समय वडगच्छीय पू. मुनिचंद्रसूरिजी म. चैत्य परिपाटी हेतु पाटण पधारे ।

एक दिन जिनमंदिर के दर्शनकर आ. मुनिचंद्रसूरिजी म.; शांतिसूरिजी म. की वाचना में नमस्कार कर बैठ गए ।

उस समय बौद्धदर्शन के प्रमेय का पाठ चल रहा था । 10 दिन के पाठ को मुनिचंद्रसूरिजी म. ने पुस्तक बिना ही याद कर लिया ।

परंतु शांतिसूरिजी के एक भी शिष्य उस पाठ की अवधारणा न कर सके । इससे उन्हें बड़ा खेद हुआ ।

आ. मुनिचंद्रसूरिजी म. ने 10 दिन का पाठ क्रमशः सुना दिया । उनकी स्मरण शक्ति को देख शांतिसूरिजी म. खूब प्रभावित हुए ।

उन्होंने कहा, `तुम तो धूल में पड़े रत्न हो । तुम मेरे पास रहकर अभ्यास करो ।'

आचार्यश्री को पता था कि पाटण में संवेगी साधुओं के लिए योग्य स्थान नहीं है । अतः उन्हें टंकशाल के पीछे के भाग में रखकर छ दर्शन का अभ्यास कराया ।

उसके बाद पाटण में चैत्यवासियों की ओर से सुविहित साधुओं को बस्ती सुलभ हुई । यह घटना वि.सं. 1094 के आसपास हुई होगी ।

कौलमत का पंडित आधर्म पाटण आया । वादिवेताल शांतिसूरिजी ने उसके साथ वादकर उसे भी परास्त किया ।

–आचार्यश्री ने 415 राजकुमारों को भी जैन बनाया था ।

–किल्ले के गिरने की भविष्यवाणी कर उन्होंने 700 श्रीमाली कुटुंबों को बचा लिया था, वे सभी जैन बने थे ।

–पू. शांतिसूरिजी म. ने उत्तराध्ययन सूत्र पर प्राकृत भाषा में टीका रची ।

–जीव विचार प्रकरण, धर्मरत्न प्रकरण, संघाचार, चैत्यवंदन भाष्य, पर्वपंजिका (अर्हद् अभिषेक विधि) जिसके सातवें पर्व में `बृहत् शांति' हैं, का भी सर्जन किया था ।

–आचार्यश्री के प्रवचन में नागिनी देवी आती थी और गुरु के वासक्षेप मंत्रित पाट पर बैठती थी । एक दिन आचार्य भगवंत वासक्षेप डालना भूल गए तुरंत ही देवी ने कहा, `अब आपका आयुष्य सिर्फ छ मास बाकी है । आप अपने गच्छ की व्यवस्था कर परलोक की साधना कर ल ।'

–शेठ यश के पुत्र सोढ़ द्वारा आयोजित गिरनार तीर्थ के छ'री पालक संघ के साथ पू. शांतिसूरिजी म. गिरनार पधारे । वहां 25 दिन का अनशन कर वि.सं. 1096 जेठ सुदी-9 अत्यंत समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर स्वर्गलोक में चले गए ।

स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1090

परमार्हत् धनपाल

कुशल निमित्तज्ञ

विक्रम की ग्यारहवी सदी के प्रारंभ में जैन शासन के महान् प्रभावक आचार्य श्री महेन्द्रसूरिजी म. पृथ्वीतल को पावन करते हुए अवंतीदेश में पधारे । पूज्य आचार्यदेव की धर्मदेशना सुनकर अनेक लोग जैन धर्म के अभिमुख होने लगे । उनकी उपदेश शैली में गजब का आकर्षण था । दूर-सुदूर से श्रोतागण उनका उपदेश सुनने के लिए आते रहते थें ।

जैन दर्शन के पदार्थों को स्याद्वाद शैली में प्ररूपित करनेवाले वे अजोड़ व्याख्याता थे तो इसके साथ ही वे कुशल निमित्तज्ञ भी थे ।

बाह्य निमित्तों के बल पर वे भविष्य में होनेवाली घटनाओं को अच्छी तरह से जान सकते थे, परन्तु उनके रोम-रोम में प्रभुशासन का प्रेम भरा होने से वे कभी निजी स्वार्थ के लिए उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करते थे ।

एक दिन मध्याह्न में पूज्य आचार्य भगवंत अपने आसन पर बैठकर सूरिमंत्र की साधना कर रहे थे । कुछ समय बाद उनकी वह साधना पूर्ण हुई । इसी बीच उसी संकाश्य गाँव का विद्वान् ब्राह्मण पंडित **सर्वदेव** आचार्य भगवंत के चरणों में उपस्थित हुआ, उसने सद्भावपूर्वक आचार्य भगवंत के चरणों में वंदना की ।

पूज्य आचार्य भगवंत ने आगंतुक ब्राह्मण को **'धर्मलाभ'** की आशिष प्रदान की ।

आचार्य भगवंत ने उस ब्राह्मण को गौरपूर्वक देखा । उसके बाद कहा, ``पंडितजी ! कैसे आना हुआ ?''

अपने दिल की व्यथा व्यक्त करते हुए पंडितजी ने कहा, ``महाराज ! आप तो परम दयालु हो । करुणा के महासागर हो । मुझ रंक पर दया करें और मेरी आपत्ति को आप दूर करें ।''

आचार्य भगवंत ने कहा, ``क्या आपत्ति है ? जरा स्पष्टता करो तो ख्याल आए ।''

पंडितजी ने कहा, ``महाराज ! मेरे पिताजी पर सरस्वती और लक्ष्मीदेवी की पूरी कृपा थी । मेरे पिताजी चौदह विद्याओं में पारगामी थे, राज दरबार में उनका पूरा मान-सम्मान था, अतः जहाँ भी जाते उन्हें सभी लोग आदर की दृष्टि से देखते थे । प्रसंग-प्रसंग पर उन्हें बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ मिलती रहती थीं । घर में लक्ष्मीदेवी की कृपा होने से मैं और मेरे दोनों पुत्र भी आनंद और मस्ती से जीवन व्यतीत करते थे ।

कुछ मास पूर्व पिताजी का स्वर्गवास हो गया है, उनके चले जाने के साथ ही मानो हम से रुठकर लक्ष्मी देवी ने भी घर से विदाई ली है ।

ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे हैं, त्यों-त्यों हमारी स्थिति बदतर बनती जा रही है ।

घर में मेरी पत्नी है, धनपाल और शोभन नाम के दो पुत्र भी हैं । उन दोनों का विद्याभ्यास भी अच्छा चल रहा है, परंतु लक्ष्मी का अभाव होने से अब हमारा कहीं भी मान-सम्मान नहीं रहा है ।

पिताजी के पास खूब धन था, परंतु उन्होंने वह धन कहाँ गाड़ दिया, कुछ पता नहीं है । पिताजी का अचानक अवसान हो जाने से न तो उन्होंने हमें उस भूमि का संकेत किया और न ही हमें कुछ पता है, अतः आज की तारीख में हमारी स्थिति धनवान होते हुए भी गरीब जैसी है ।

मैंने अपने घर का कोना-कोना खोद दिया है परंतु कहीं से भी मुझे एक सोना मुहर भी प्राप्त नहीं हो पाई है, अतः मेरा श्रम निरर्थक गया है ।

धन के अभाव में दिन कैसे व्यतीत करना, यह चिंता सताती रहती है । सुबह व्यतीत होती है तो शाम की चिंता सताती है और शाम व्यतीत होती है तो सुबह की चिंता सताती है ।

यह चिंता मुझे अंदर से खोखला बना रही है । चिता तो मुर्दे को जलाती है, जबकि यह चिंता तो मुझे जीते-जी जला रही है ।

अतः हे दयालु महात्मन् ! आप मुझ पर अनुग्रह करें और मेरे घर पधार कर मुझे वह स्थान बताएँ, जहाँ से मुझे अपने पिता द्वारा गाड़ा हुआ धन मिल सके ।

सर्वदेव ब्राह्मण की दर्दभरी अपील सुनने के बाद परम गीतार्थ आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया । यह कार्य करने से प्रभु शासन को क्या लाभ होगा ?

''यद्यपि सर्वसंग के त्यागी ऐसे जैन मुनि के लिए अर्थ और काम संबंधी बात करना सर्वथा निषिद्ध है, परंतु उसके द्वारा आत्म-हित, स्व-परहित या शासन का हित संभव हो तो गीतार्थ ज्ञानी भगवंत वैसी प्रवृत्ति अपवाद मार्ग से कर सकते हैं ।''

आचार्य भगवंत ने सोचा, ''सर्वदेव ब्राह्मण की इच्छापूर्ति होने पर जैन शासन को महान् लाभ हो सकता है ।''

इस प्रकार विचार कर उन्होंने कहा, ''इसके बदले में तुम मुझे क्या दोगे ?''

सर्वदेव ब्राह्मण ने कहा, ''आपको क्या चाहिए ?''

आचार्य भगवंत ने कहा, ''तुम्हारी सम्पत्ति का आधा भाग ।''

सर्वदेव ब्राह्मण ने सोचा, ''ये महाराज मेरी संपत्ति का आधा भाग ले लेंगे, तो भी आधा भाग तो मुझे मिलने वाला है न !'' इस प्रकार विचार कर उस ब्राह्मण ने तत्काल हाँ भर दी ।

बस, आचार्य भगवंत तुरंत ही उसके घर चलने के लिए तैयार हो गए ।

अपने गृहांगण में पूज्य आचार्य भगवंत के आगमन के साथ ही उस ब्राह्मण ने उनका भावभीना स्वागत किया ।

उसके बाद पूज्य आचार्य भगवंत ने अपने निमित्तज्ञान के बल से देखकर वह जगह बतला दी, जहाँ धन गड़ा हुआ था ।

स्थान बताकर पूज्य आचार्य भगवंत अपने स्थान पर लौट आए । सर्वदेव ब्राह्मण ने उस जगह पर खुदाई की । उस खुदाई से उसे 40,000 सुवर्ण मुद्राएँ प्राप्त हुईं । उसके आनंद का पार न रहा । वह खुशी से झूम उठा । जिंदगी भर की उसकी गरीबी दूर हो गई । उसके घर की सारी स्थिति बदल गई ।

संपत्ति के आगमन के साथ ही उसका खान-पान, रहन-सहन और जीवन-व्यवहार बदल गया । लोगों में भी उसका मान-सम्मान बढ़ गया । धन आने पर किसका मान-सम्मान नहीं बढ़ता है ?

और एक शुभ दिन वह सर्वदेव 20,000 सुवर्ण मुद्राओं से भरी थैली लेकर पूज्य आचार्यदेव के चरणों में उपस्थित हो गया ।

धन के इस ढेर को देखकर लेश भी उस धन के प्रति आकर्षित हुए बिना पूज्य आचार्य भगवंत बोले, ``भाग्यशाली ! दीक्षा अंगीकार करने के साथ ही हमने जीवन भर के लिए बाह्य भौतिक संपत्ति का त्याग किया है । यह संपत्ति तो हमारे लिए धूल समान है, अतः इस संपत्ति से हमें कुछ भी लेना-देना नहीं है ।''

``महाराज ! जमीन में गड़े हुए धन के स्थान को बताने के पूर्व आपने जो आधा भाग मांगा था, उसका क्या परमार्थ है ?''

``भाग्यशाली ! मुझे तुम्हारे धन का आधा भाग नहीं चाहिए । परंतु तुम्हारे पास जो दो पुत्रों की संपत्ति है, उसमें से आधा भाग अर्थात् अपना एक पुत्र जिनशासन के चरणों में समर्पित कर दो, यही मेरी अंतरंग इच्छा है ।''

पूज्य आचार्य भगवंत के द्वारा एक पुत्र की मांग सुनकर सर्वदेव सोच में पड़ गया । वह सोचने लगा, ``धन का आधा भाग देना, यह तो मेरे बश की बात है, परंतु पुत्रों का आधा भाग देने में मैं स्वतंत्र नहीं हूँ । उसमें तो पुत्रों की इच्छा ही काम लग सकेगी ।''

सर्वदेव पूज्य आचार्यदेव की मांग ठुकराने के लिए भी तैयार नहीं था, अतः उसने पूज्य आचार्यदेव को विनम्र-भाव से निवेदन करते हुए कहा, ``महाराज ! आपकी इस मांग का निर्णय अपने घर जाकर करता हूँ ।''

सर्वदेव अपने घर आया । उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र धनपाल को अपने पास बुलाया और कहा, ``बेटा धनपाल ! जिनकी असीम कृपा से अपना यह दारिद्र्य दूर हुआ है, उन जैनाचार्य को मैंने अपनी संपत्ति का आधा भाग देने का वचन दिया था । जमीन खोदने पर जो 40,000 सुवर्ण मुद्राएँ निकली हैं, उसका आधा भाग देने के लिए मैं तैयार था । परंतु कंचन-कामिनी के त्यागी उन जैनाचार्य ने वे सुवर्ण मुद्राएँ लेने से तो इन्कार कर दिया है । उन्होंने दो पुत्रों में से एक पुत्र की मांग की है ।''

``बेटा धनपाल ! क्या तू उनके चरणों में अपना जीवन समर्पित कर ऋषि-मुनि के कर्ज के भार से मुझे मुक्त करेगा ?''

धनपाल के दिल में जैनधर्म के प्रति कट्टर द्वेष था, अतः अपने पिता के इस प्रस्ताव से स्पष्ट इन्कार करते हुए उसने कहा, ``नहीं पिताजी ! मैं उनके पास जाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं

हूँ। इस प्रकार की शर्त रखकर तो उन्होंने अपने साथ ठगी की है। जैन साधु बनने के लिए मैं कदापि तैयार नहीं हूँ।''

धनपाल के इस जवाब को सुनकर सर्वदेव का मुख निस्तेज हो गया। उसके चेहरे पर उदासीनता छा गई। वह किसी भी प्रकार से जैनाचार्य के ऋण से मुक्त होना चाहता था। परंतु धनपाल के द्वारा इन्कार कर देने पर उसके दिल को खूब आघात लगा।

धन के आगमन से सर्वदेव के घर में चारों ओर खुशनुमा वातावरण था, परंतु उसके दिल में कहीं शांति नहीं थी।

जैनाचार्य को दिए गए वादे का पालन नहीं हो पाने के कारण सर्वदेव का मन उदासीन था। छोटे पुत्र शोभन ने जब पिता के उदास चेहरे को देखा तो उसने पिता से पूछ लिया, ''पिताजी ! आपके चेहरे पर प्रसन्नता क्यों नहीं ?''

पिता ने कहा, ''शोभन ! मैंने जैनाचार्य को जो वचन दिया था, उस वचन का अभी तक पालन नहीं कर सका हूँ, इसी कारण मेरे मन को शांति नहीं है।''

''पिताजी ! मेरे योग्य कुछ कार्य हो तो मुझे कहिए।''

पिता ने कहा, ''बेटा ! जैनाचार्य ने जो मांग की है, उसकी पूर्ति मैं नहीं कर पाया हूँ, इसी का मुझे दुःख है। उन्होंने दो पुत्रों में से एक पुत्र की मांग की है, मैंने धनपाल से बात की, परंतु धनपाल मेरी बात मानने के लिए राजी नहीं है, क्या तू मेरी बात स्वीकार करेगा ?''

''क्यों नहीं ! पिताजी ! आप मुझे जो आज्ञा करोगे, वह मुझे स्वीकार्य है।''

''बेटा ! मैंने जैनाचार्य को एक पुत्र देने का विश्वास दिया है, धनपाल तो तैयार नहीं है, अतः यदि तू जैनाचार्य के चरणों में अपना जीवन समर्पित करता हो तो मैं अपने ऋण से मुक्त बन सकूंगा।''

पिता की यह बात सुनते ही शोभन जैन भागवती दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हो गया।

सर्वदेव ब्राह्मण अपने छोटे पुत्र शोभन को लेकर जैनाचार्य महेन्द्रसूरिजी म. के पास उपस्थित हो गया।

आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान के बल से शोभन में विशिष्ट योग्यता-पात्रता देखी। उसके बाद उन्होंने शोभन को संसार की भयानकता और भागवती दीक्षा का स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर शोभन का मन दीक्षा के लिए लालायित हो उठा।

शुभ मुहूर्त में, शुभ बेला में पूज्य आचार्य भगवंत ने शोभन को दीक्षा प्रदान की और वे अब शोभन मुनि बन गए।

शोभन ब्राह्मण को दीक्षा देने के बाद पू. आचार्य श्री महेन्द्रसूरिजी म. ने संकाश्य नगर से अपनी विहार यात्रा प्रारंभ कर दी। वे मालवा देश में ही अन्यत्र विहार करने लगे।

स्वाध्याय-मग्नता

धनपाल कवि के छोटे भाई शोभन ने जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की थी । दीक्षा अंगीकार करने के बाद वे ज्ञान-ध्यान की साधना में आकंठ डूब गए ।

स्वाध्याय तो उनका प्राण था । अन्य-अन्य प्रवृत्ति करते हुए भी उनका मन तो स्वाध्याय की साधना में ही लीन बना रहता था ।

एक बार अपने गुरुदेव की आज्ञा से शोभन मुनि गोचरी के लिए गये ।

उस समय वे अपने मन में 24 जिनेश्वर भगवंतों की यमकमय छंद युक्त रचना कर रहे थे । उस रचना में उनका मन उतना अधिक जुड़ा हुआ था कि बाहर से हो रही कायिकी क्रिया का उन्हें स्पष्ट भान ही नहीं था ।

उस समय वे किसी गृहस्थ के घर गोचरी हेतु पधारे । गोचरी के लिए उन्होंने अपने पात्र भूमि पर रखे । गृहस्थ ने उन्हें आहार वहोराया । परंतु आहार वहोरने के बाद उन्होंने पात्र के बदले पास में रहे पात्र आकार के पत्थर को उठाकर झोली में रख लिया ।

गोचरी वहोरकर वे अपने गुरुदेव के पास आए ।

आहार के पात्र में पत्थर को देख गुरुदेव ने पूछा, ''यह क्या ?''

पत्थर को देख उन्हें भान आया कि वे पात्र तो उस गृहस्थ के घर ही छोड़ आए हैं और भूल से उन्होंने पात्र के बदले पत्थर उठा लिया है ।

गुरुदेव ने पूछा, ''तुम्हारा ध्यान कहां था ?''

शोभन मुनि ने कहा, ''भगवंत ! मेरा ध्यान गोचरी बहोरने में नहीं था, मैं अपने मन में 24 जिनेश्वर भगवंतों की यमकबद्ध स्तुतियों की रचना कर रहा था ।''

गुरुदेव ने उन स्तुतियों के बारे में पूछा तो शोभनमुनि यमकबद्ध विविध छंदों में रची हुई 24 भगवंतों की लयबद्ध स्तुतियाँ बोलने लगे ।

अत्यंत अर्थगंभीर, विद्वद् भोग्य इन सुंदर स्तुतियों को सुनकर उनके गुरुदेव भी खुश हो गए ।

गुरुदेव ने सोचा, ''आहार जैसी दैनिक क्रिया में भी शोभनमुनि की अलिप्तता कैसी है ?''

उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हुए गुरुदेव ने उन्हें गोचरी की जवाबदारी से मुक्त कर दिया और उन्हें जैन साहित्य के सर्जन की जवाबदारी सौंप दी ।

द्वेष की आग

धन की प्राप्ति से एक ओर धनपाल को बहुत खुशी थी तो दूसरी ओर अपने छोटे भाई शोभन का वियोग उसके दिल को खूब व्यथित कर रहा था ।

उसके अन्तर्मन में जैनाचार्य और जैन साधु के प्रति द्वेष की आग पैदा हो गई ।

द्वेष की इस आग के कारण उसने मनोमन निश्चय कर लिया कि यदि मेरे हाथ सत्ता आ गई तो अवंती देश में से जैन साधुओं का बहिष्कार किए बिना नहीं रहूंगा ।

दिन पर दिन बीतने लगे । धनपाल को अपने भाई की याद खूब सताने लगी । जैन साधु के प्रति बदले की भावना तीव्र हो गई । इधर पापोदय के फलस्वरूप धनपाल के हाथ में कुछ सत्ता आ गई ।

राजदरबार में धनपाल का मान-सम्मान खूब बढ़ गया । धनपाल की विद्वत्ता, प्रतिभा और वाक्चातुर्य को देख राजा खूब प्रभावित हुआ ।

राज-सत्ता हाथ में आते ही धनपाल के दिल में जैनाचार्य से बदला लेने की भावना तीव्र हो गई । उसने अवसर देखकर अवंती नरेश के कान फुंकने चालू किए ।

अवंतीनरेश के दिल में धनपाल का स्थान था, अतः धनपाल जो भी बात करता या निर्देश देता, अवंतीनरेश उसकी ओर अवश्य ध्यान देते ।

एक बार धनपाल ने अवंतीनरेश को कहा, ''हे राजन् ! पूर्व परंपरा से अपना वैदिकधर्म चला आ रहा है । सारी प्रजा भी इसी धर्म का अनुसरण कर रही है । परंतु कुछ समय से जैन साधुओं का इधर आगमन हो जाने से कुछ लोग अपने परंपरागत धर्म को छोड़कर जैनधर्म का स्वीकार कर रहे हैं । उनके बाह्य त्याग और दांभिक जीवन से लोगों का उनकी ओर आकर्षण बढ़ता जा रहा है । यही क्रम चलता रहा तो अपने परंपरागत धर्म को बहुत बड़ा धक्का लग सकता है ।''

धनपाल ने अपनी पूर्व भूमिका को मजबूत करते हुए कहा, ''अवंतिदेश में से जैन साधुओं का बहिष्कार किया जाय तो ही अपना धर्म सुरक्षित रह सकता है ।''

राजा ने कहा, ''तुम बहुत बुद्धिशाली हो, अपनी प्रजा का जैसे हित हो, वैसा सब कुछ करने की मैं तुम्हें छूट देता हूँ ।''

धनपाल ने देखा कि राजा उसकी हर बात मानने के लिए राजी हो गया है, तो अवसर देखकर उसने कहा, ''राजन् ! पूरे देश में ढिंढोरा पिटवाकर जैन साधुओं के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया जाय तो अपना धर्म सुरक्षित रह सकता है ।''

राजा ने कहा, ''अपने धर्म की सुरक्षा के लिए तुम्हें जो उचित लगे, वह सब कुछ करने की मैं तुम्हें पूर्ण सत्ता देता हूँ ।''

बस, राजा की ओर से सत्ता मिलते ही धनपाल ने राजा की आज्ञा के फरमान के रूप में संपूर्ण अवंती देश में जैन साधुओं के प्रवेश पर पाबंदी लगा दी ।

राजा की आज्ञा होते ही अनेक जैन मुनि अवंती देश छोड़कर अन्यत्र विहार करने लगे । **पू. आचार्य श्री महेन्द्रसूरिजी** तो अवंती देश छोड़ कर कहीं अन्यत्र विहार कर चुके थे । इसके साथ अवंती देश में जहाँ-कहीं जो भी साधु थे, वे भी अवंती छोड़कर जाने लगे । अवंती देश छोड़ते हुए उन्हें कोई रंज नहीं था, क्योंकि उनकी तो यह स्पष्ट मान्यता थी कि जहाँ अप्रीति होती हो, वहाँ नहीं रहना चाहिए ।

जैन साधुओं का संपूर्ण बहिष्कार होने से सबसे अधिक खुशी धनपाल को थी, वह सोचता था कि उसने जैनाचार्य से पूरा-पूरा बदला ले लिया है ।

अवंती देश में जैन साधुओं के बहिष्कार से सबसे अधिक दुःख वहाँ के श्रावकों को

था...अवंतिदेश में उपकारी गुरु भगवंतों का विहार बंद हो गया तो जैन शासन का यह बाग सूख जाएगा, इस प्रकार विचारकर वे किसी भी उपाय से इस फरमान को रद्द कराने के लिए प्रयत्नशील थे।

गहन विचार-विमर्श कर कुछ श्रावकों ने प्रस्ताव रखा कि इस राजकीय आपत्ति से मुक्त बनने के लिए हमें पूज्य आचार्य श्री महेन्द्रसूरिजी म. के पास जाना चाहिए।

इस प्रस्ताव को सभी ने सहर्ष स्वीकार किया।

एक शुभ दिन कुछ श्रावक आचार्य भगवंत की सेवा में उपस्थित हो गए।

''शोभनमुनि की भागवती दीक्षा के बाद रोषायमान हुए धनपाल ने अवंतिदेश में जैन साधुओं के प्रवेश पर सर्वथा प्रतिबंध लगा दिया है। इसके फलस्वरूप अवंतिदेश के श्रावक संघ की बुरी हालत हुई है'', इत्यादि सारी घटना का जिक्र कर दिया।

अवंतिदेश की हुई इस दुर्दशा को सुनकर पू.आ. श्री महेन्द्रसूरिजी म. को अत्यंत खेद हुआ। वर्तमान में हुई परिस्थिति को बदलने के लिए वे कुछ उपाय शोधने लगे।

सोचते-सोचते आखिर उन्हें एक उपाय हाथ लग गया।

उन्होंने सोचा, ''इस कार्य की सिद्धि के लिए शोभन मुनि को भेजना उचित रहेगा।'' इस प्रकार विचार कर आगंतुक श्रावकों को संतोषपूर्ण जवाब देकर आचार्य भगवंत ने शोभन मुनि को अवंती की ओर विहार करने की आज्ञा दी।

शोभन मुनि को दीक्षा अंगीकार किए काफी समय हो चुका था। उन्होंने अच्छी तरह से ग्रहण और आसेवन शिक्षा प्राप्त की थी। वे शास्त्र- पारगामी बने थे।

गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त कर शोभन मुनि ने एक शुभ दिन अवंती की ओर विहार प्रारंभ किया।

निरंतर विहार करते हुए शोभन मुनि ने अवंती में प्रवेश किया।

अवंती में प्रवेश के बाद कुछ लोगों ने जब शोभन मुनि से पूछा, ''क्या आपको अवंती के अधिपति की आज्ञा का पता नहीं है ?''

शोभन मुनि एक ही जवाब देते, ''मैं धनपाल का भाई हूँ, मेरे कारण ही तो उसने यह कदम उठाया है, तो क्या मुझे ही वह अपने नगर में प्रवेश नहीं करने देगा ?''

शोभन मुनि धनपाल के भाई हैं, यह जानकर लोग चुप हो जाते।

शोभन मुनि अपनी विहार यात्रा में निरंतर आगे बढ़ते हुए अवंती के संकाश्यनगर के द्वार तक पहुँच गए।

शोभन मुनि का बाह्य परिवेष बदल चुका था। लंबी-लंबी दाढ़ी-मूंछों के कारण नगरवासी शोभन मुनि को पहिचान नहीं पाए।

योगानुयोग उसी समय धनपाल वहाँ आ गया। जैन मुनि को अपने सामने आते हुए देख धनपाल ने कहा, **'गर्दभदन्त भदन्त नमस्ते।'**

'गधे के समान दांतवाले तुम्हें नमस्कार हो !'

शोभन मुनि धनपाल को पहिचान गए, परंतु उन्होंने धनपाल को अपना वास्तविक परिचय नहीं दिया ।

धनपाल की व्यंग्यात्मक उक्ति का जवाब देते हुए शोभन मुनि ने व्यंग्य कसा, **'कपिवृषणास्य वयस्य सुखं ते ?'** बंदर के समान मुखवाले हे मित्र ! तुम कुशल हो ?

मुनि के मुख से कटाक्ष भरी यह उक्ति सुनकर धनपाल का गर्व उतर गया ।

धनपाल ने कहा, ''हे मुनि ! आप कहाँ ठहरोगे ? शोभन मुनि ने कहा, ''तुम्हारे घर !''

धनपाल शोभन मुनि को अपने घर ले आया । भिक्षा का समय होने पर शोभन मुनि ने धनपाल के द्वार पर आकर 'धर्मलाभ' कहा ।

यद्यपि धनपाल के दिल में जैन मुनि के प्रति द्वेष भाव था, फिर भी साधुता का तो वह प्रेमी था । अपने द्वार पर आए जैन मुनि का तिरस्कार करने के लिए उसका मन तैयार नहीं हुआ ।

तत्काल ही धनपाल अंदर के कमरे में से मोदक का थाल लेकर उपस्थित हो गया ।

धनपाल के हाथ में रहे मोदक के थाल को देख घर की दीवार पर बैठा पंखी जोर से आवाज करने लगा ।

पंखी की आवाज सुनकर शोभन मुनि ने अनुमान किया कि ये मोदक जहरीले हैं ।

तत्काल शोभन मुनि ने कहा, ''ये मोदक अकल्प्य हैं ।''

धनपाल ने कहा, ''क्या इनमें जहर है ?''

मुनि ने कहा, ''हाँ ! इनमें जहर है ।''

मोदक में रहे विष की परीक्षा करने के लिए धनपाल ने लड्डू का कुछ चूरा भूमि के एक ओर डाला, तत्क्षण उसकी सुगंध से पास में रही चींटियाँ मूर्च्छित हो गईं ।

धनपाल के आश्चर्य का पार न रहा । धनपाल ने मुनि से पूछा, ''मोदक में रहे जहर का आपको कैसे पता चला ?''

शोभन मुनि ने कहा, ''जैसे ही तुम मोदक का थाल लेकर बाहर आए, उसी समय दीवाल पर बैठा यह पक्षी जोर से चिल्ला रहा था, उसकी आवाज से मैंने अनुमान किया कि इन लड्डुओं में जहर होना चाहिए ।''

जहर मिश्रित अन्न को देख चकोर पक्षी विराग धारण करता है, नेत्र में विलक्षणता दिखती है ।

हंस आवाज करता है, सारिका वमन करती है । पोपट चिल्लाता हैं ! बंदर विष्टा करता है । कोयल क्षण भर में मृत्यु पाती है । क्रोंच पक्षी नृत्य करता है, नेवला खुश होता है और कौआ प्रीतिवाला होता है । पोपट की आवाज पर से मुझे पता चला कि इन लड्डू में जहर है ।

धनपाल कवि ने थोड़ी छानबीन की, तब पता चला कि धनपाल को मार डालने के लिए ईर्ष्यावश अन्य पंडितों ने लड्डुओं में जहर डाल दिया था ।

धनपाल कवि मौत के मुँह में जाने से बच गया था, अतः उसने मुनि का खूब-खूब आभार माना ।

थोड़ी ही देर बाद धनपाल अपने भीतर के कमरे में से दही की हांडी लेकर आ गया ।

धनपाल मुनि को दही वहोराने के लिए तैयार हुआ ।

मुनि ने पूछा, ''यह दही कितने दिन का है ?''

धनपाल ने कहा, ''तीन दिन का है ।''

मुनि ने कहा, ''यह दही मेरे लिए अकल्प्य है ।''

धनपाल ने कहा, ''क्या इसमें जीव पैदा हो गए हैं ?''

मुनि ने कहा, ''हाँ ! जैन धर्म के सिद्धांत के अनुसार दो रात बीतने के बाद दही में जीवोत्पत्ति हो जाती है । इस दही में दही के रंग जैसे ही जीव पैदा हो गए हैं । यदि इस दही में अलता का रंग डाला जाए तो वे जीव तुरंत ही दिखाई देंगे ।''

धनपाल ने अलता का रंग मंगाया और उस दही में थोड़ा सा रंग डाला । उसी समय दही में पैदा हुए जीव दिखाई देने लगे ।

धनपाल कवि तो जैन दर्शन के इन सूक्ष्म पदार्थों को जानकर खूब-खूब प्रभावित हो गया ।

मध्याह्न की गोचरी से निवृत्त हो जाने के बाद धनपाल कवि शोभन मुनि के चरणों में उपस्थित हो गया ।

धनपाल ने कहा, ''क्या आप महेन्द्रसूरि को पहिचानते हो ? वे मेरे भाई शोभन को ठगकर ले गए हैं ।''

शोभन मुनि ने कहा, ''वे ही तो मेरे गुरुदेव हैं और मैं ही तुम्हारा भाई शोभन मुनि हूँ ।''

जिस भाई के वियोग में धनपाल चौधार आँसू बहा रहा था...जिस भाई के कारण ही धनपाल ने जैन साधुओं के अवंती-प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया था, आज उसी शोभन मुनि को अपनी नजर के सामने खड़ा देख धनपाल के आश्चर्य का पार न रहा ।

शोभन मुनि की विद्वत्ता, जैन दर्शन की गहनता एवं उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान को देख धनपाल कवि के आश्चर्य एवं आनंद का पार न रहा ।

जैन धर्म का कट्टर द्वेषी धनपाल शोभनमुनि के चरणों में गिर पड़ा । उसने सच्चे हृदय से अपने किए हुए पापों की आलोचना की और जैनधर्म को स्वीकार किया ।

धन-पाल कवि की दृढ़ता

एक बार कुछ ब्राह्मणों ने राजा भोज के कान फूंकते हुए कहा, 'धनपाल कवि जिनेश्वर भगवंत को छोड़ अन्य देवताओं को नमस्कार नहीं करता है ।

धनपाल की परीक्षा के लिए राजा ने धनपाल को चंदन-पुष्प आदि की सामग्री देते हुए कहा, 'इस सामग्री से तुम देवताओं की पूजा कर आओ ।'

राजा ने धनपाल की सही प्रवृत्ति को जानने के लिए गुप्तचरों को भेजा ।

राजा की आज्ञा होने से धनपाल कवि किसी देवी के मंदिर में गया परंतु वहां पूजा किए बिना वापस लौट आया । फिर वहां से क्रमशः शिवमंदिर में गया, वहां से विष्णु के मंदिर में गया परंतु पूजा के बजाय बीच में पर्दा कर वापस लौट आया ।

वहां से ऋषभदेव प्रभु के मंदिर में गया । उसने बड़े ही उत्साह-उल्लास के साथ प्रभु की अष्टप्रकारी पूजा की ।

गुप्तचरों ने आकर सारी घटना राजा को बता दी । थोड़ी देर बाद जब धनपाल राजा के सामने उपस्थित हुआ, तब राजा ने पूछा, 'तुम पूजा करके आए हो ?'

धनपाल ने कहा, 'हाँ ! महाराजा !'

राजा ने पूछा, 'भवानी देवी के मंदिर में जाकर पूजा की ?'

धनपाल ने कहा, 'मैं देवी के मंदिर में गया था, परंतु मैंने देखा,' देवी के हाथों में त्रिशूल हैं । भौंह चढे हुए है । वह देवी भैंसे का मर्दन कर रही थी, अतः मैं भयभीत होकर बाहर निकल गया ।

देवी युद्ध में मग्न हैं, अतः यह पूजा के लिए उचित समय नहीं है ।

राजा ने कहा, 'तुम महादेव के मंदिर में गए थे ?'

धनपाल ने कहा, 'मैं महादेव के मंदिर में गया था,

'अकंठस्य कंठे कथं पुष्पमाला ?' बिना नासिकायाः कथं धूपगन्धः ?
अकर्णस्य कर्णे कथं गीतनादः ? अपादस्य पादे कथं मे प्रणाम ?

वहां कंठ ही नहीं था तो मैं किसे माला पहनाऊं ? वहां नासिका ही नहीं थी तो मैं कैसे धूप करुं ? वहां कान ही नहीं थे तो मैं गीतगान किसे सुनाऊं ? और वहां चरण कमल नहीं थे अतः किसके चरणों में प्रणाम करुं ?

अतः शिवमंदिर में गया परंतु वहां मात्र शिवलिंग होने से मैं पूजा किए बिना वापस आ गया ।

राजा ने कहा ! तुम विष्णु के मंदिर में गए थे ?

धनपाल ने कहा, मैं वहां गया था, वहां विष्णु अपनी पत्नी के साथ में थे, अतः मुझे विचार आया-'विष्णु अपनी पत्नी के साथ एकांत में हैं,' अतः यह पूजा का अवसर नहीं है । अतः मैंने पर्दा कर दिया ।

उसके बाद मैं ऋषभदेव प्रभु के मंदिर में गया । वहां मैंने प्रभु को वीतराग अवस्था में देखा–

'प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्यं प्रसन्नं, वदनकमलमंकः कामिनीसंगशून्यः ।
करयुगमपि यत्ते शस्त्रसंबंधवंध्यम्, तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ।।'

जिनकी आंखें समता रस में मग्न हैं,
जिनका मुख कमल सदा प्रसन्न है,
जिनकी गोद स्त्री के संग से रहित है

जिनके हाथों में किसी प्रकार का शस्त्र नहीं है ।

ऐसे वीतराग प्रभु ही सच्चे देव है ।

धनपाल कवि के इन युक्ति संगत वचनों को सुनकर राजा भोज प्रसन्न हो गया ।

भोज राजा ने उसे सिद्धसारस्वत तथा कुर्चाल सरस्वती का बिरुद प्रदान किया ।

तिलक मंजरी

एक समय था धनपाल के हृदय में जैन धर्म के प्रति अत्यंत द्वेष था । समय ने पलटा खाया और वही धनपाल कवि जैन धर्म का परम श्रावक बन गया । उसके रोम-रोम में जिन-भक्ति बस गई । वह जिनेश्वर परमात्मा का अनन्य भक्त बन गया ।

धनपाल कवि नहीं, महाकवि था । उसके काव्यों में सुषुप्त चेतना को जागृत करने की अद्‌भुत शक्ति थी ।

धनपाल कवि ने अपने अद्‌भुत काव्य-कौशल से एक अपूर्व काव्य की रचना की ।

अवंति का महाराजा भोज, संस्कृत और संस्कृति का अत्यंत रसिक था । धनपाल कवि के मुख से उसने 12000 श्लोक प्रमाण वह सारा काव्य मुक्तमन से सुना । उस अद्‌भुत काव्य को सुनकर राजा भोज गद्‌गद हो गए । वे धनपाल कवि की काव्यशक्ति पर फिदा होकर वाह-वाह पुकारने लगे ।

राजा भोज को लगा, `इस काव्य में थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया जाए, तो मेरी यशोगाथा दिग्‌दिगंत तक अमर बन सकती है ।' अपने हृदय के भावों को होंठ पर लाते हुए महाराजा बोले, ***'धनपाल ! इस काव्य में थोड़ा-सा परिवर्तन कर दे । इसमें जहाँ ऋषभदेव का नाम है, वहां महादेव का नाम रख दो, जहां विनीता का नाम है, वहां अवंति का और जहां भरत का नाम है वहां मेरा नाम रख दो । बस, मेरी कीर्ति अजर-अमर बन जाएगी । इसके बदले मुंह मांगा धन दिया जएगा ।'***

राजा भोज के इन शब्दों को सुनते ही धनपाल को गुस्सा आ गया । वह बोला, `राजन् ! ऐसी सस्ती कीर्ति पाने की आप कामना करते हो ? कहां ऋषभदेव और कहां महादेव !

कहां विनीता और कहां अवंति !

कहां भरत और कहां आप !

कहां ये ऐरावण हाथी और कहां गधा !

कहां सूरज और कहां दीपक !

राजन् ! यह मेरे से कदापि संभव नहीं है ।'

धनपाल कवि के इन व्यंग्यात्मक शब्दों को सुनते ही राजा भोज का पारा चढ़ गया और तत्क्षण उसने वह ग्रंथ उठाकर आग में झोंक दिया । देखते-ही-देखते क्षणभर में वह ग्रंथ राख की ढेरी बन गया ।

उदासीन बना धनपाल अपने घर लौटा । एक अमूल्य निधि आग में जलकर इस प्रकार भस्मीभूत हो गई, इसका उसके दिल में अत्यंत रंज था ।

इधर धनपाल की पुत्री ने अपने पिता के उदास चेहरे को देखा । उसे लगा, पिताजी आज चिंतातुर लगते हैं । उनके दुःख में मुझे भी अवश्य सहभागी बनना चाहिए ।

पुत्री ने पूछा, 'पिताजी ! आप इतने उदास क्यों है ? जो भी हो, वह कारण मुझे बतलाइए ।'

पहले तो धनपाल ने उस बात को टालना चाहा । परंतु पुत्री की जिद् के आगे उन्हें हार खानी पड़ी और राजसभा में हुई सारी घटना कह देनी पड़ी ।

...सुनते ही नौ वर्ष की पुत्री ने कहा, 'आप व्यर्थ चिंता क्यों करते हैं ? आप कलम हाथ में लीजिए और मैं आपको लिखवा देती हूँ ।' सुनते ही धनपाल को बड़ा आश्चर्य हुआ, इसे यह ग्रंथ कैसे याद हो गया ?

धनपाल कलम लेकर बैठ गया और पुत्री के बोलने के साथ ही अपनी कलम चलाने लगा । सचमुच कुछ ही दिनों में वह ग्रंथ पूरा तैयार हो गया । धनपाल के आश्चर्य व आनंद का पार न रहा । धनपाल के पूछने पर पुत्री ने कहा, 'पिताजी ! आप जब इस ग्रंथ की रचना करके कागजों को यही छोड़ जाते थे, तब मैं उन्हें एक बार पढ़ लेती थी, अतः वह ग्रंथ मुझे याद हो गया ।'

धनपाल की खुशी का पार न रहा । जो पन्ने पुत्री ने नहीं पढे थे, वे उसे याद नहीं थे । कथा में 3000 श्लोक न्युन थे । आगे–पीछे के संदर्भ को ध्यान में रखकर धनपाल ने वह ग्रंथ पूर्ण किया । प्रसन्न हुए कवि ने उस काव्य का नाम **'तिलकमंजरी'** रखा ।

साहित्य जगत् में बाण की कादंबरी तथा सुबंधु की वासवदत्ता का जो स्थान है ऐसा अनुपम स्थान धनपाल की **'तिलकमंजरी'** का है ।

राजा से नाराज हुए धनपाल ने धारा नगरी छोड़ दी और वह सांचोर आ गया । वहां पर उसने प्राकृत भाषा में **'देवनिम्मल'** प्राकृत भाषा में महावीर प्रभु की स्तुतियां रची ।

राजा को पश्चात्ताप

एक बार ब्राह्मण पुत्र कौलाचार्य धर्म नाम का पंडित धारा नगरी की राज सभा में आया और उसने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा !

धारा की राज सभा में ऐसा कोई प्रकांड़ विद्वान् नहीं था, जो उस पंडित का प्रतिकार कर सके ।

भोजराजा को लगा कि यदि कोई इसका प्रतिकार नहीं कर सका तो मेरी इज्जत धूमिल हो जाएगी ।

उसी समय राजा को कवीश्वर धनपाल की याद आई । परंतु धनपाल तो धारा नगरी छोडकर सांचोर पहुँच गया था । राजा ने धनपाल को बुलाने के लिए दूत भेजा । राजसेवक ने जाकर धनपाल को धारा नगरी पधारने की विनती की, परंतु धनपाल आने के लिए राजी नहीं हुआ ।

राजा ने दूसरी बार पुनः अपने सेवक को भेजा और कहलाया कि कविराज ! आप बडे हो, मैं छोटा हूँ ! छोटे की बात पर बडों को गुस्सा नहीं करना चाहिए । मालवा तुम्हारी जन्मभूमि हैं, अतः मालवा की हार में तुम्हारी हार हैं, अतः तुम्हें आना ही चाहिए ।'

राजा के आग्रह और मातृभूमि के प्रेम के खातिर धनपाल कवि पुनः धारा आए और उन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा उस धर्म पंडित को परास्त कर मालवा की इज्जत बचा दी ।

धर्म पंडित ने अपनी हार स्वीकार की और बोला, 'धनपाल अजोड पंडित है ।'

धनपाल ने कहा, 'यह पृथ्वी तो रत्नों की खान है । पाटण में आ. शांतिसूरिजी हैं, वहां तुम्हें सच्चा पांडित्य जानने को मिलेगा ।'

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

'तिलकमंजरी' की विशेषता है कि उसमें कठिन श्लोक व पद्य का प्राचुर्य नहीं है ।

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने भी तिलकमंजरी के पद्यों को उच्च कोटि के माने है और काव्यानुशासन में 'श्लेष' तथा छंदोनुशासन में 'मात्रा' के रूप में तिलकमंजरी के काव्यों का उदाहरण दिया है ।

लगभग वि.सं. 1084 में धनपाल कवि ने 'तिलकमंजरी' की रचना की थी और वादिवेताल शांतिसूरिजी म. ने उसका संशोधन भी किया था ।

धनपाल कवि ने संस्कृत–प्राकृत में कई ग्रंथों की भी रचना की थी–

(1) पाइयलच्छी नाम माला– वि.सं. 1029 में प्राकृत कोश के रूप में 215 गाथाओं में इसकी रचना की है ।

(2) धनजंयकोश :– 1800 गाथा प्रमाण वह ग्रंथ है, इसी के आधार पर धनंजय नाम माला कोश बना है ।

(3) तिलकमंजरी 12000 श्लोक प्रमाण, नौ रसों से भरपूर अद्‌भुत कथा साहित्य है ।

(4) शोभनकृत चतुर्विंशति पर टीका ।

(5) सावगधम्म पगरण ।

(6) उसभ पंचासिया :– 50 गाथा प्रमाण प्राकृत भाषा में सुललित पद्य ।

(7) वीरथुई :– 30 गाथा प्रमाण–विरोधालंकारमय स्तुति ।

(8) वीर स्तुति :– संस्कृत–प्राकृत चरणवाली 11 स्तुतियाँ ।

(9) सत्यपुरीय महावीरोत्साह :– 15 गाथाएं ।

धनपाल कवि की कवीश्वर, कुर्चाल सरस्वती, सिद्धसारस्वत, आशुकवि तथा परमार्हत् के रूप में प्रसिद्धि थी ।

धर्म पंडितने धारा से गुजरात की ओर विदाई ली ।

दूसरे दिन भोजराजा की सभा में धर्म पंडित नहीं आा तब धनपाल ने राजा को कहा,

'धर्म पंडित ने धर्म जीतता है और अधर्म हारता है,

इस कहावत को झूठी सिद्ध की है, परंतु

'धर्मस्य त्वरिता गतिः' की कहावत को सत्य सिद्ध की है । सुनकर भोजराजा के आनंद का पार न रहा ।

कनीश्वर धनपाल वृद्ध हो चूके थे । भोजराजा की आज्ञा लेकर धनपाल कवि ने महेन्द्रसूरिजी के पास अंतिम संलेखना कर समाधिपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर प्रथम देवलोक में देव बनें ।

महान रचना

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी की निश्रा में कुमारपाल महाराजा छ'री पालक संघ के साथ शत्रुंजय महातीर्थ पर पहुँचे ।

दादा के दरबार में पहुँचने के बाद कुमारपाल ने खूब उत्साह-उल्लास से प्रभुजी की उत्तम द्रव्यों से अष्ट प्रकारी पूजा की ।

द्रव्य पूजा की समाप्ति के बाद हेमचन्द्राचार्यजी के साथ कुमारपाल भी प्रभु की भाव पूजा में जुड़ा । उस समय हेमचंद्राचार्यजी ने धनपाल कवि के द्वारा विरचित **'ऋषभ पंचाशिका'** स्तुति से प्रभ की स्तुति प्रारंभ की ।' प्रकांड विद्वान और आशु कवि होने पर भी हेमचन्द्राचार्यजी के मुख से धनपाल कवि की स्तुतियों को सुनकर कुमारपाल को बड़ा आश्चर्य हुआ ।

चैत्यवंदन के बाद-बाहर आने पर कुमारपाल ने पूछा, गुरुदेव ! आप तो आशु कवि हो, आपने अपनी स्तुतियाँ क्यों नहीं बोली ?

हेमचन्द्राचार्यजी ने कहा, 'आज से लगभग 100 वर्षपूर्व हो चूके परमार्हत् धनपाल कवि की स्तुतियों में जो भाव हैं, वह मेरी कृतियों में नहीं है ।'

धनपाल सिद्ध सारस्वत कवि है । कहाँ सूर्य और कहाँ दीपक ? कहाँ चंदन और कहाँ घास ? कहाँ हाथी और कहाँ चींटी ? उसकी कृति व मेरी कृति में इतना बड़ा अंतर है । अपने गुरुदेव की लघुता व धनपाल की महानता को जान कुमारपाल का मस्तक गुरु चरणों में झुक गया ।

आचार्य पद वय–16 वर्ष

स्वर्गवास–वि.सं. 1135 (लगभग)

नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी

काशी (बनारस) में पं. कृष्णगुप्त नाम का ब्राह्मण पंडित रहता था, उस पंडित के श्रीधर और श्रीपति नाम के दो पुत्र थे। वे दोनों पुत्र खूब बुद्धिशाली थे और वेद-वेदांत के पारगामी थे।

एक बार वे तीर्थ यात्रा के लिए निकले। क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे धारा नगरी में आए।

उस समय धारानगरी में भोजदेव नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में लक्ष्मीपति नाम का समृद्ध श्रावक रहता था। वह श्रीधर व श्रीपति को रोज भिक्षा देता था।

उस शेठ के घर की दिवाल पर 20 लाख टंक के लेनदेन का हिसाब लिखा हुआ था, श्रीधर व श्रीपति उस हिसाब को रोज देखते थे, अतः उन्हें याद हो गया था।

एक दिन शेठ के घर में अचानक आग लग गई। उस आग में दिवाल पर लिखा हिसाब भी नष्ट हो गया। शेठ की चिंता का पार नहीं था। दूसरे दिन श्रीधर व श्रीपति ने आकर शेठ को उदासीनता का कारण पूछा।

शेठ ने उदासीनता का कारण बता दिया - उसी समय श्रीधर व श्रीपति ने कहा, 'आपका हिसाब हमें बराबर याद है-आप लिख दीजिए।'

शेठ ने अपना हिसाब पुनः लिख दिया। शेठ की खुशी का पार नहीं रहा।

शेठ ने सोचा, 'ये दोनों इतने बुद्धिशाली है तो यदि जैन भागवती-दीक्षा स्वीकार कर ले तो जैन शासन के महान प्रभावक बन सकते है।' यह सोचकर आचार्य वर्धमानसूरिजी के साथ उनका परिचय कराया।

आचार्य भगवंत ने उनकी योग्यता-पात्रता जानकर भागवती दीक्षा प्रदान की। शास्त्रों का गहन अभ्यास किया। योग्यता-पात्रता जानकर उन्हें आचार्य पद प्रदान किया।

उनके नाम आचार्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि रखा गया।

एक बार गुर्वाज्ञा का स्वीकार कर उन दोनों आचार्य भगवंतों ने पाटण (गुज.) की ओर विहार किया।

वि.सं. 1080 में पाटण में भीमदेव राजा था और सोमेश्वर नाम का राजपुरोहित था, जो आ. जिनेश्वरसूरिजी व बुद्धिसागरसूरिजी का मामा था।

उस समय पाटण में चैत्यवासी साधुओं का खूब जोर था, उनकी अनुमति के बिना किसी संवेगी साधु का वहां उतरने का अधिकार नहीं था।

दोनों आचार्यों की विद्वत्ता व निर्मल चारित्र से राजपुरोहित खूब प्रभावित हुआ उसने आचार्य भगवंतों को अपने घर में ठहराया ।

चैत्यवासी साधुओं को जैसे ही इस बात का पता चला, उन्होंने अपने भक्तों को भेजकर दोनों आचार्यों को पाटण से विहार करने का निवेदन किया । पुरोहित ने कहा, 'इसका निर्णय राज सभा में होगा ।

दूसरे दिन पुरोहित ने राजा को कहा, 'जैनाचार्य मेरे अतिथि है । जैनों ने उन्हें उतरने के लिए स्थान नहीं दिया, परंतु गुणग्राहक दृष्टि से मैंने अपने भवन मैं उतारा है ।

राजा ने कहा, 'मेरे राज्य में कोई भी गुणवान रह सकता हैं, उसका निषेध क्यों ?'

चैत्यवासियों ने कहा, 'आज तक आपके पूर्वजों का यह फरमान था कि चैत्यवासियों की सम्मति से ही कोई पाटण में रह सकता है, अतः भविष्य में भी इसका पालन होना चाहिए ।'

राजा ने कहा, 'पूर्वजों की आज्ञा का पालन होना चाहिए, परंतु गुणवान के सम्मान में भी बाधा नहीं आनी चाहिए । उत्तम पुरुषों के आशीर्वाद से ही राजाओं का राज्य आबाद रहा है, अतः आप इस कार्य में भी अपनी सम्मति दे ।'

आखिर चैत्यवासियों ने राजा की मांग स्वाकीर की तब से संवेगी साधु भी पाटण में रुकने लगे ।

प्रकांड विद्वान और प्रतिभा संपन्न आ. श्री जिनेश्वरसूरिजी ने अनेक धर्मग्रंथों का सर्जन किया ।

उन्होंने हारिभद्रीय अष्टक वृत्ति, पंचलिंगी प्रकरण, लीलावइ कहा आदि अनेक ग्रंथों का निर्माण किया ।

आ बुद्धिसागरसूरिजी ने सप्त सहस्त्र कल्पम्-व्याकरण का पद्यमय ग्रंथ रचा ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

मालवा की इतिहास प्रसिद्ध धारा नगरी में महीधर श्रेष्ठी की धर्मपत्नी धनदेवी ने वि.सं.1072 में एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । जिसका नाम अभयकुमार रखा गया ।

उस समय धारा नगरी में भोजराजा का शासन तप रहा था । अभयकुमार बचपन से ही तीक्ष्ण व कुशाग्रबुद्धि का स्वामी था ।

एक शुभ दिन आचार्य जिनेश्वरसूरिजी और आ. बुद्धिसागरसूरिजी विहार करते हुए धारा नगरी में पधारें । पिता महीधर के साथ अभयकुमार भी आचार्य भगवंतों का प्रवचन सुनने लगा ।

आचार्यश्री के सदुपदेश से अभयकुमार खूब प्रभावित हुआ । उसके अन्तर्मन में वैराग्य की ज्योत प्रकट हुई ।...और एक शुभदिन अभयकुमार ने मोहमाया के बंधनों को छोड़कर भागवती दीक्षा अंगीकार की और वे अभयदेव मुनि बन गए ।

दीक्षा अंगीकार करके गुरु सान्निध्य में रहकर उन्होंने शास्त्रों का गहन अभ्यास किया ।

उनकी योग्यता देख गुरुदेव ने उन्हें लघुवय में वि.सं. 1088 में आचार्यपद प्रदान किया और वे अभयदेवसूरिजी बने ।

शास्त्र-बोध के साथ ही अभयदेवसूरि की प्रवचन प्रतिभा भी खिलने लगी । उनका स्वर

अत्यंत ही मीठा था । शिष्यों को अध्ययन कराने में वे अत्यंत कुशल थे । साहित्य के नौ रसों का वर्णन करने में उनकी अजोड़ शक्ति थी ।

एक बार अभयदेवसूरि प्रतिक्रमण के बाद शिष्यवर्ग को अजितशांति के अर्थ पढ़ा रहे थे । अजितशांति की 27 वीं गाथा में देव-देवियों के अंग-प्रत्यंगो में श्रृंगार रस का अद्‌भूत वर्णन सुन उपाश्रय के पास के महल में बैठी राजकुमारी बड़े भाव से सुनने लगी ।

श्रृंगार रस के अद्‌भुत वर्णन को सुनकर राजकुमारी ने अभयदेवसूरि के साथ ही विवाह करने का दृढ निश्चय कर दिया । वह उपाश्रय में आकर अभयदेवसूरि से पाणि-ग्रहण हेतु प्रार्थना करने लगी ।

अभयदेवसूरि को लगा । बाजी कुछ बिगड़ गई है-तत्काल ही उन्होंने वैराग्य रस से भरपूर स्त्री के बिभत्स देह का ऐसा वर्णन किया कि उस राजकुमारी के दिल में रहा आकर्षण एकदम समाप्त हो गया ।

वो वहां से तत्क्षण रवाना हो गई ।

आत्महित को ध्यान में रखकर अभयदेवसूरि ने छ विगई का त्याग कर दिया । आ. जिनेश्वरसूरिजी के गुरुदेव आ. वर्धमानसूरिजी का स्वर्गवास हो चूका था ।

किसी नगर में आचार्य अभयदेवसूरिजी म. ध्यान में लीन थे, उसी समय शासनदेवी ने प्रकट होकर आचार्य भगवंत को कहा, 'भूतकाल में शीलांकाचार्य ने ग्यारह अंगों पर संस्कृत में टीकाएं रची थी, परंतु काल के प्रभाव से आचारांग और सूत्रकृतांग को छोड़कर अन्य अंगों पर की टीकाएं काल कवलित हो चूकी हैं, अतः संघ के हित के लिए आप नवीन टीकाओं की रचना करें ।

देवी की इस बात को सुनकर अन्तर्मुख अभयदेवसूरिजी ने कहा, 'देवी ! तुम्हारी भावना अति उत्तम है । परंतु मैं जड़मति हूँ–सुधर्मास्वामी कृत उन आगमों को पूर्णरूप से समझना भी मेरे लिए कठिन है तो उन पर विवेचन करने की मुझ में शक्ति ही कहाँ हैं ? कहीं जाने-अनजाने में कोई उत्सूत्र प्ररूपणा हो जाय तो कर्म निर्जरा के बजाय भयंकर पापबंध की प्रवृत्ति हो जाएगी । एक ओर मैं जडमति हूँ और दूसरी ओर आपकी भावना का उल्लंघन करना भी उचित नहीं समझता हूँ–मेरे लिए असमंजस की स्थिति खड़ी हो गई है । मुझे क्या करना चाहिए ? क्या नहीं करना चाहिए ? मैं किंकर्तव्यमूढ हो गया हूँ ।'

आचार्य भगवंत के हृदय की सरलता और पाप भीरुता को देख योग्य आश्वासन देते हुए देवी ने कहा, 'हे सूरिवर ! आपकी बुद्धिमत्ता और क्षमता देखकर ही मैंने इस दुष्कर कार्य के लिए आपको निवेदन किया हैं-आप ही इस कार्य के लिए पूर्ण योग्य हो । आगम पाठों की व्याख्या में आपको कहीं संदेह पैदा हो जाय तो आप मुझे याद करना, महाविदेह क्षेत्र में रहे सीमंधर स्वामी को पूछकर आपकी शंकाओं का योग्य समाधान करने का प्रयास करूँगी – आप निश्चिंत रहे–आपके सहयोग में मैं सदैव साथ रहूंगी ।'

शासन-देवी के इन वचनों को सुनकर आचार्य भगवंत को पूर्ण समाधान हो गया ।

एक शुभ दिन–शुभ मुहूर्त में आचार्य भगवंत ने मूल आगमों पर टीका रचना प्रारंभ किया ।

इस महान् कार्य के लिए तपोबल की भी आवश्यकता रहती हैं, अतः उन्होंने टीका रचना के साथ आयंबिल का तप भी चालू किया ।

वे पूर्ण निष्ठा के साथ अपने सर्जन कार्य में लगे रहे, परिणाम स्वरूप कुछ ही वर्षों में उन्होंने नौ अंगों पर नवीन टीकाएं तैयार कर दी ।

निरंतर आयंबिल तप और रात्रि जागरण के फल-स्वरूप उनके शरीर में कुष्ट रोग फैल गया ।

उनकी रोगीष्ट काया को देख उनके विरोधी चैत्यवासियों ने ईर्ष्या के वशीभूत होकर यह बात फैलाई कि आचार्य के उत्सूत्र प्ररूपणा के फल स्वरूप देवी ने उन्हें दंडित किया है ।

इस लोकापवाद को सुनकर अभयदेवसूरिजी को खूब दुःख हुआ ।

अपकीर्ति के भय से रात्रि में उन्होंने धरणेन्द्र का ध्यान किया । उसके बाद उन्होंने स्वप्न में अपने शरीर को चाटते हुए नागराज को देखा ।

उन्होंने सोचा, 'काल रूप विकराल नाग ने मेरे शरीर को चाटा हैं, मेरा आयुष्य क्षीण प्रायः लगता है, अतः अब मुझे अनशन करना ही योग्य है ।'

दूसरे दिन स्वप्न में आकर धरणेन्द्र ने कहा, 'मैंने तुम्हारा शरीर चाटा है, अतः अब रोग नष्ट हो गया है, ऐसा समझो ।'

अभयदेवसूरि ने कहा, 'मुझे मृत्यु का डर नहीं है किंतु लोग जो निंदा करते है, वह मुझ से सहन नहीं होता है ।'

धरणेन्द्र ने कहा, 'आप खेद न करे, आपके हाथों से जिनबिंब का उद्धार व शासन प्रभावना होगी । स्तंभन गांव में सेटिका नदी के तट पर वृक्ष के नीचे भूमि में पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा है । उसे प्रकट करो, वहां महातीर्थ बनेगा । पहले नागार्जुन ने भी उस बिंब के प्रभाव से रस सिद्धि हासिल की थी । इस कारण उसने वहां स्तंभन नाम के गांव की स्थापना की थी । वहां तुम्हारी कीर्ति भी बढेगी ।' इतना कहकर धरणेन्द्र अन्तर्धान हो गए ।

प्रातःकाल होने पर आचार्य भगवंत ने स्वप्न की बात संघ को कही । स्वप्न की बात सुन सभी लोग खुश हो गए । 700 बैल गाडियों के साथ संघ सहित आचार्य भगवंत सेटिका नदी के किनारे आए ।

आचार्य भगवंत ने वहां किसी गोवाल को पूछा, 'यहां कोई पूजनीय स्थल है क्या ?

गोवाल ने कहा, 'पास के गांव में रहने वाले महीणल पटेल की काली गाय के आंचल में से सारा दूध झर जाता है, फिर वह गाय घर जाती है तो कुछ भी दूध नहीं देती है । इसका कारण समझ में नहीं आ रहा है ।'

गोवाल ने आचार्य भगवंत को वह स्थल बताया । आचार्य भगवंत ने वहां बैठकर एकाग्रता पूर्वक **'जयतिहुअण** 32 गाथा प्रमाण स्तवन रचा ।' उसके साथ ही धीरे धीरे पार्श्वनाथ प्रभु का बिंब प्रकट हुआ ।

उस बिंब के स्नात्र जल के प्रभाव से आचार्य भगवंत का रोग सर्वथा नष्ट हो गया और उनकी काया कंचनवर्णी हो गई ।

उसके बाद संघ ने उस भूमि पर भव्य जिनालय बनवाया और पूज्य आचार्य भगवंत के वरद हस्तों से प्रतिष्ठा कराई ।

प्रतिष्ठा के दिन रात्रि में धरणेन्द्र ने आकर आचार्य भगवंत को कहा, 'मेरे वचन से उस जय तिहुअण स्तोत्र की अंतिम दो गाथाएँ दूर कर दे अन्यथा कई लोग इसका दुरुपयोग करेंगे ।'

धरणेन्द्र के आदेश से तिहुअण स्तोत्र 30 गाथा का कर दिया गया । आज भी उस स्तोत्र का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को मिलता है ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

अभयदेवसूरिजी ने वि.सं. 1120 के आसपास मूल नौ अंगों पर, वि.सं. 1124 में पंचाशक आदि पर टीकाएं रची है । उन टीकाओं का संशोधन द्रोणाचार्यजी ने किया था । द्रोणाचार्यजी विश्रुत श्रुतधर थे । उन्होंने 1149 में ओघनिर्युक्ति पर टीका की भी रचना की है ।

सुधर्मास्वामी द्वारा विरचित आगमों के गूढ रहस्यों को समझने के लिए अभयदेवसूरिजी की टीकाएं कुंजी के समान है । ये टीकाएं संक्षिप्त एवं शब्दार्थ प्रधान है । कहीं कहीं पर विस्तृत विवेचन व दार्शनिक चर्चाएं तथा पाठांतरों के उल्लेख भी है । स्थानांग-वृत्ति की रचना वि.सं. 1120 में हुई थी । यह टीका 14250 श्लोक प्रमाण है ।

समवायांग वृत्ति की रचना वि.सं. 1120 में पाटण में हुई, इसका प्रमाण 6575 श्लोक प्रमाण है ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति की टीका की रचना 1128 में की गई, यह टीका 18616 श्लोक प्रमाण है ।

ज्ञाता धर्म कथा की टीका वि.सं. 1120 में हुई । इसका 3800 पद्य परिमाण है ।

–उपासक दशांग की टीका 1812 श्लोक प्रमाण हैं ।

–अंतकृद्दशांग की टीका 899 श्लोक प्रमाण है ।

–अनुत्तरोपपातिक की टीका 192 श्लोक प्रमाण है ।

–प्रश्न व्याकरण की टीका 1230 श्लोक प्रमाण है ।

–विपाकसूत्र की टीका 3125 श्लोक प्रमाण है ।

–औपपातिक उपांग की टीका 3125 श्लोक प्रमाण है ।

–स्थानांग, समवायांग व ज्ञाताधर्म कथा की टीकाएं कुल 24625 श्लोक प्रमाण है - इन सबकी रचना वि.सं. 1120 में अर्थात् एक ही वर्ष में हुई है । नौ अंग व एक उपांग सहित सभी टीकाए 50769 श्लोक प्रमाण है । आगमों के सिवा पू. हरिभद्रसूरिजी विरचित षोडशक व पंचाशक उपर भी उन्होंने टीकाएं रची है ।

इसके सिवाय जयतिहुअण स्तोत्र, पंच निर्ग्रंथी और षष्ठ कर्मग्रंथ सप्ततिका-भाष्य की भी रचनाएं की है ।

–अभयदेवसूरिजी की आचार्य पदवी 16 वर्ष की उम्र में हुई थी और 51 वर्ष तक उन्होंने अपने पद का दायित्व वहन किया था – इस प्रकार 67 वर्ष की उम्र में वि.सं. 1135 मतांतर से 1139 में अत्यंत समाधि पूर्वक पाटण में अपना देह त्याग किया था ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1110 या 1125

आ.श्री देवसूरिजी

स्तुति

राजा श्री कर्णदेव के जो बोधदाता गुरूवरा,
पट्टधार थे सैतीसवें आचार्य देव सूरीश्वरा,
तब धर्मघोषसूरि हुए, गिरि आबू तीर्थोद्धारका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।41।।

भगवान महावीर प्रभु की पाट परंपरा में 37 वें पट्टधर आचार्य श्री देवसूरिजी हुए – गुजराती पट्टावली में उनका नाम अजितदेवसूरि भी आता है । उनके जीवन के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती है वे अत्यंत ही रूपवान थे । राजा कर्णदेव ने उन्हें 'रूपश्री' का बिरुद भी दिया था ।

गुजरात के सम्राट् कर्णदेव को प्रतिबोध देकर जैन धर्म का अनुयायी बनाया था और जैन शासन की खूब प्रभावना की थी ।

उनसे प्रतिबोध पाकर गोम नाम के श्रावक ने 9 जिन मंदिरों का निर्माण कराया था और उनके वरदहस्तों से प्रतिष्ठा कराई थी ।

वि.सं. 1088 में आबू में विमलवसहि की प्रतिष्ठा प्रसंग में भी उपस्थित रहे थे ।

अत्यंत ही समाधिपूर्वक उनका कालधर्म वि.सं. 1110 अथवा 1125 में हुआ था ।

विमलशा मंत्री

देलवाडा प्रतिष्ठा वि. सं. 1088

जीरापल्ली (जीरावला) आदि तीर्थों की यात्रा के साथ आबू गिरिराज की पवित्र भूमि की स्पर्शना करते हुए आचार्य धर्मघोषसूरिजी म. अपने विशाल परिवार के साथ पाटण पधारे ।

पाटण संघ ने उनका हार्दिक स्वागत किया । आचार्य भगवंत की धर्मदेशना का प्रवाह आगे बढ़ने लगा । विमल मंत्रीश्वर भी आचार्य भगवंत की अमीदेशना का पान करने लगा ।

आबू गिरिराज की स्पर्शना करते समय आबू का भव्य भूतकाल उनकी आंखों के सामने उपस्थित हो गया । 'अहो ! जैनों का यह प्राचीन तीर्थ ! जहां भरत महाराजा ने भव्य जिन मंदिरों का निर्माण कराया था । निकट भूतकाल में भी जहां जैन मंदिर विद्यमान थे, आज यहां जिन मंदिर

का अवशेष भी दिखाई नहीं दे रहा है । इस पवित्र तीर्थ भूमि का उद्धार कब व कैसे होगा ?' इन विचारों में खोए आचार्य भगवंत को रात्रि में स्वप्न में अंबिका देवी ने संकेत देते हुए कहा, 'गुजरात की धन्यधरा पर एक पुण्यशाली व्यक्ति का पुण्योदय दिन-प्रतिदिन विकसित हो रहा है, आपके उपदेश पान को प्राप्तकर इस प्राचीन तीर्थ का पुनः उद्धार होगा ।'

पाटण आने के बाद पूज्य आचार्य भगवंत धर्मघोषसूरिजी म. ने विमल मंत्री के पुण्य प्रभाव को प्रत्यक्ष देखा । विमलमंत्री के प्रभाव को देख आचार्य भगवंत ने सोचा, 'आबू पर्वत के तीर्थोद्धार की मेरी भावना विमलमंत्री के माध्यम से ही पूर्ण हो सकती है ।' इस प्रकार विचार कर धर्मचर्चा के लिए आए हुए विमलमंत्री को प्रेरणा देते हुए कहा, **'जिस भूमि की स्पर्शना कर हजारों आत्माओं ने भूतकाल में शाश्वत पद प्राप्त किया है, आज वह भूमि जिन मंदिरों से शून्य हो गई हैं, उस भूमि का उद्धार करना खूब जरूरी है ।'**

आचार्य भगवंत के इस उपदेश को सुनकर आबू-तीर्थोद्धार के लिए उत्साही बने विमल मंत्री ने कहा, 'क्या इस तीर्थ की महिमा का गान करनेवाले शास्त्रीय प्रमाण हैं ?'

आचार्य भगवंत ने कहा, 'ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने प्रभु के उपदेश को प्राप्तकर इस भूमि पर भव्य जिन मंदिरों का निर्माण कराया था, उनके द्वारा निर्मित स्वर्ण चैत्य का कब नाश हुआ, इसका तो कोई प्रमाण नहीं मिलता है । यहां पर कई साधकों ने अनशन कर मोक्ष प्राप्त किया है ।

भगवान महावीर की 10 वीं पाट परंपरा में हुए आचार्य सूस्थितसूरि आबू तीर्थ की यात्रा कर अष्टापद गए थे, ऐसे प्रमाण विद्यमान है ।

पादलिप्तसूरिजी भी आकाश गामिनी विद्या से आबू आदि पांच तीर्थों की रोज यात्रा करते थे ।

प्रभुजी 33 वीं पाटपरंपरा में हुए वड गच्छ स्थापक उद्योतनसूरिजी भी आबू पर्वत की वि.सं. 994 में यात्रा की थी भद्रबाहुस्वामी विरचित बृहद् कल्पसूत्र में भी आबू तीर्थ का उल्लेख हैं ।

ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र पूर्ण करते हुए आचार्य भगवंत ने कहा, 'मुझे तुम्हारे में आशा की किरण नजर आ रही हैं, भविष्य में तुम्हारे हाथों से इस का पुनरूद्धार हो सकता है ।'

आचार्य भगवंत के मुख से इस बात को सुनकर आचार्यश्री के चरणों में मस्तक रखकर विमलमंत्री ने कहा, **'आपकी वाणी फलीभूत हो । आपके शुभाशिष से ही यह महान् कार्य सफल हो सकेगा ।'**

आचार्यश्री की शुभाशिष प्राप्त कर विमलमंत्री अपने घर लौटा ।

रात्रि में भी विमलमंत्री आबू तीर्थोद्धार में ही खोए हुए थे ।

वे सोचने लगे, 'एक ओर आबू की ऊंचाई, मार्ग की दुर्गमता, अजैनो का उस पर वर्चस्व और वर्तमान में जैन मंदिर का अभाव इन सारे विपरीत संयोगों के बीच मुझे यह भगीरथ कार्य करना है तो इस हेतु दैविक बल की अपेक्षा है । दैविक बल के सहयोग बिना इस कार्य में सफलता हासिल करना खूब कठिन लगता है ।'

इस प्रकार विचार कर दैविक साधना का निर्णय किया ।

तीर्थोद्धार के पूर्व एक बार इस पवित्र भूमि की स्पर्शना की जाय तो ज्यादा बेहतर रहेगा ।

विमल मंत्री ने अपने दिल की बात आचार्य भगवंत को कही और इस हेतु पाटण से जीरावला तीर्थ के यात्रा संघ में निश्रा प्रदान करने हेतु आचार्य भगवंत को विनंति की ।

आचार्य भगवंत ने विमलमंत्री की भावना को प्रोत्साहित करते हुए कहा, `इस महान् कार्य हेतु तुम्हारी भावना अति उत्तम हैं, तुम अपनी भावना को साकार रूप दे सकोगे ।

और एक शुभ दिन, शुभ बेला में आचार्य भगवंत के शुभ सान्निध्य में विमलमंत्री ने विशाल संघ के साथ पाटण से जीरावला हेतु संघ का प्रस्थान किया । पाटण से जीरावला पहुंचने के पूर्व विमलमंत्री ने जीवन में पहली बार आबू पर्वत की स्पर्शना की ।

उस पवित्र भूमि की स्पर्शना कर विमलमंत्री के आनंद का पार न रहा उन्होंने मनोमन प्रभु से यही प्रार्थना की कि इस तीर्थोद्धार की मेरी मनोकामना शीघ्र ही फलीभूत हो ।

जीरावली तीर्थ में संघ की समाप्ति के बाद पू. आचार्य भगवंत ने अन्य दिशा में विहार किया तथा विमलमंत्री ने दैविक साधना के लिए आरासण (कुंभारियाजी) की ओर प्रस्थान किया ।

आरासण पहुँचने के बाद एक शुभ दिन अट्ठम तप के साथ विमलमंत्री ने अंबिकादेवी की जप साधना प्रारंभ कर दी । निर्मल शील धर्म के साथ विमलमंत्री तप-जप की साधना में लयलीन बन गए ।

ठीक तीसरे दिन रात्रि में अंबिका देवी प्रसन्न हो गई और बोली, `विमल ! तेरी इस कठोरतम साधना से मैं प्रसन्न होकर तुझे वरदान देती हूँ, तुझे जो चाहिए वह मांग ले ।

विमल ने कहा, `मेरी मनोकामना आपसे कहाँ अज्ञात है ! मुझे आबू के तीर्थोद्धार में अपनी सहायता चाहिए ।

देवी ने कहा, `तीर्थोद्धार के इस कार्य में मैं तेरे साथ हूँ–इसके सिवाय और कुछ मांगना हो तो कहो ।

विमल ने कहा, `मेरे लिए तो आबू का तीर्थोद्धार यही सबसे बड़ा कार्य है इसी में आपकी मदद की जरूरत है ।'

अंबिका ने कहा, `दुनिया में याचकों की कमी नहीं है जो नहीं मांगता है उसे दुगुना मिलता हैं मैं तुझे 'सिंहनाद' की शक्ति देती हूँ जिसके प्रभाव से तुमसे सारे शत्रु थर–थर कांपने लगेंगे ।

विमलमंत्री जैसे ही आंख खोलते है तभी पद्मावती देवी उपस्थित होकर कहती है, `विमल ! तेरी भक्ति से में प्रसन्न हूँ, जो चाहिए वह मांग लो ।'

विमल ने कहा, `आबू के तीर्थोद्धार में आपकी मदद की अपेक्षा है ।'

देवी ने कहा, `यह तो मुझे मंजूर है और कुछ मांग लो ।'

विमल ने कहा, `प्रभु भक्ति से बढ़कर और कौनसी वस्तु है ?'

देवी ने कहा, `तेरी निःस्पृहता को देख तुझे वरदान देती हूँ कि तेरी भूजाबल के आगे कोई टिक नहीं पाएगा । तू सर्वत्र विजयी बनेगा ।' इतना कहकर देवी अन्तर्धान हो गई ।

चंद क्षणों में ही विमलमंत्री के आगे चक्रेश्वरीदेवी उपस्थित हो गई और बोली, 'विमल ! तेरी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, तुझे जो चाहिए वह मांग लो ।'

विमल ने कहा, 'आबू के तीर्थोद्धार के सिवाय मुझे कुछ नहीं चाहिए ।'

देवी ने कहा, 'तीर्थोद्धार यह तो मेरा भी कर्तव्य है ।'

विमल ने कहा, चिंतामणि रत्न से बढ़कर प्रभुभक्ति है तो अब अन्य कोई चाह नहीं है । देवी ने कहा, देव दर्शन निष्फल नहीं जाता है मेरा वरदान है कि तेरे धन के भंडार कभी नहीं खूटेंगें ।

वरदान का दान देकर देवी अदृश्य हो गई ।

तीर्थोद्धार के इस महान कार्य में दैविक सहायता के वरदान को पाकर विमलमंत्री के हर्ष का पार नहीं है ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

धीरे धीरे समय बीतने लगा । एक बार गुजरात के सम्राट् भीमदेव ने विमलमंत्री को आज्ञा की, **'तुम्हें चंद्रावती नगरी पर आक्रमण करके विजय हासिल करनी है ।'**

विमलमंत्री के दिल में वर्षों से आबू तीर्थ के जीर्णोद्धार का स्वप्न था, और उसके लिए आबू के आसपास में ही वास करना खूब जरूरी था ।

आबू के जीर्णोद्धार को लक्ष्य में रखकर विमलमंत्री ने चंद्रावती पर आक्रमण करने की राज आज्ञा शिरोधार्य कर दी...और एक शुभ दिन, शुभ मुहूर्त में विमलमंत्री ने पाटण छोड़कर चंद्रावती की ओर अपना प्रयाण प्रारंभ कर दिया ।

आबू की तलहटी में बसी चंद्रावती नगरी की स्थापना वि.सं. 860 के आसपास हुई थी, उस समय चंद्रावती में परमारवंशीय धंधूक राजा राज्य करता था । 1800 गांवों पर चंद्रावती के महाराजा धंधूक का शासन था । उस समय उस नगरी में 444 जिन मंदिर व 360 करोड़पति जैनों की बस्ती थी ।

पुण्य प्रभाव एवं दैविक सहायता के कारण विमलमंत्री ज्यों ज्यों चंद्रावती नगरी के निकट पहुँचने लगा त्यों त्यों उनके आगमन को सुनकर धंधूक राजा भी बेचैन हो उठा ।

उसने सोचा 'विमल मंत्री के आगे मेरा सैन्य खूब कमजोर है, अतः युद्ध में मौत को भेटने के बजाय तो क्यों न अपने प्राण बचाकर यहां से भाग जाऊं !

इस प्रकार विमलमंत्री के चंद्रावती में आगमन के पूर्व ही धंधूक राजा चंद्रावती को छोड़कर अन्यत्र भाग गया ।

सत्ता परिवर्तन के लिए विमलमंत्री को न तो हाथ में हथियार उठाने पड़े और न ही कहीं खून की एक बुंद नीचे गिरानी पड़ी ।

विमलमंत्री ने चंद्रावती नगरी में गुर्जरेश्वर भीमदेव का शासन जाहिर कर दिया । राजा के सेवक रूप में विमलमंत्री चंद्रावती पर अपना शासन चलाने लगे ।

महाराजा भीमदेव की अनुमति से विमलमंत्री ने चंद्रावती नगरी में अपना आवास कर लिया । एक दिन पू. धर्मघोषसूरिजी म. विहार करते हुए चंद्रावती नगरी में पधारे ।

विमलमंत्री ने अपने उपकारी गुरुदेव का भावभीना स्वागत किया और आगामी चातुर्मास चंद्रावती में करने के लिए विनंति की । भावि लाभालाभ देख पू. आचार्य भगवंत ने उनकी विनंति स्वीकार की ।

चातुर्मास में जल वर्षा के साथ प्रवचन की भी वर्षा प्रारंभ हुई । आचार्य भगवंत की धर्म देशना का श्रवण कर अनेकों के हृदय परिवर्तन के साथ जीवन परिवर्तन होने लगा ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

एक बार आबू के जीर्णोद्धार के लिए कृत संकल्पी बने विमलमंत्री आरासण में जाकर पुनः अट्ठम तप की साधना में बैठ गए । उनके मन में दो मनोरथ थे । एक आबू के जीर्णोद्धार का तो दिल के एक कोने में पुत्र-प्राप्ति का ।

अट्ठम के तीसरे दिन अंबिका देवी ने प्रकट होकर कहा, `विमल ! तेरा पुण्य इतना ही है कि दो मनोरथों में से तुम्हारा एक ही मनोरथ फलीभूत हो सकता है, पसंदगी तुम्हे करनी है– तुम्हें क्या चाहिए आरस या वारस ?'

देवी के इस प्रश्न को सुनकर विमलमंत्री ने मनोमन निश्चय किया कि मेरी धर्मपत्नी श्रीदेवी का भी मनोरथ मेरे मन के अनुरूप ही होगा ।

उसने सोचा, `पूत सपूत ही होगा, उसकी कहां गारंटी है । जब कि यह जिनमंदिर तो हजारों के मनमंदिर में सम्यग् दर्शन की अमर ज्योत को प्रकट करने में निमित्त भूत बनेगा, अतः मुझे वारस नहीं, आरस ही चाहिए ।

`हे माताजी ! शाश्वत को छोड़कर नश्वर को कौन पकड़ेगा ? वारस का भविष्य अनिश्चित है, वह मेरी उज्ज्वल कीर्ति में वृद्धि ही करेगा ऐसी कोई गारंटी नहीं हैं वह मेरी कीर्ति को मटिया मेल भी कर सकता हैं, जबकि यह जिन मंदिर तो जिनशासन की कीर्ति में अभिवृद्धि ही करनेवाला हैं अतः वारस की आहूति के बदले आरस की प्राप्ति मुझे मंजूर है ।

देवी ने कहा, `तुम्हारी भावना-प्रार्थना अति उत्तम है । जिनशासन के सच्चे भक्त के हृदय में नश्वर का नहीं, शाश्वत तत्त्व का ही आकर्षण होता है ।

विमल मंत्री ने सोचा, `वर्तमान में आबू पर्वत पर एक भी जैन मंदिर विद्यमान नहीं हैं और वहां अनेक जैनेतर मंदिर विद्यमान हैं, अतः जैन मंदिर के निर्माण में ब्राह्मणों का विरोध होना स्वाभाविक है । वे भी इस तीर्थ पर पूर्व में जैन मंदिर थे, तो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मांगेंगे । वर्तमान में तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाई नहीं दे रहा है तो क्यों न प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए अंबिका देवी को ही पूछ लूं । इस प्रकार विचार कर विमल ने कहा, `हे देवी ! आबू तीर्थ के जीर्णोद्धार में आपका सहयोग तो मुझे मिल रहा है परंतु वर्तमान में उस क्षेत्र पर ब्राह्मणों का वर्चस्व है, अतः उन्हें संतुष्ट करने के लिए क्या उस भूमि में जिनमंदिर या जिन प्रतिमा का कोई चिह्न मिल सकता है ?

देवी ने कहा, `क्यों नहीं ?' आबू पर्वत के चारों ओर जहां छोटी छोटी पहाड़ियां हैं, वहां चंपा के झाड़ के नीचे कंकु का स्वस्तिक दिखाई देगा । उस भूमि को खोदने पर तुम्हें जिन मंदिर के प्रमाण प्राप्त हो जाएंगें ।'

विमलमंत्री ने देवी के चरणों में प्रणाम किया । विमलमंत्री को आशीर्वाद देकर देवी अदृश्य हो गई ।

कुछ समय बाद विमलमंत्री चंद्रावती में आ गया ।

विमलमंत्री ने आबू पर्वत पर जिन मंदिर निर्माण की कार्यवाही प्रारंभ की...परंतु प्रारंभ में ही ब्राह्मणों ने यह प्रस्ताव रखा कि भविष्य में किसी प्रकार का संघर्ष न हो इसके लिए यहां पूर्व में कोई जिन मंदिर था, उसका कोई प्रमाण मिल जाय तो वह खूब जरूरी है ।

विमल मंत्री ने कहा, `प्रमाण की अपेक्षा है तो इसके लिए भी मेरी तैयारी हूँ' इतना कहकर विमल मंत्री उन सब ब्राह्मणों को आबू पर्वत के उस भाग में चंपा वृक्ष के पास ले गया ।

विमलमंत्री ने अपनी आंखों से चंपा वृक्ष के नीचे कंकु का स्वस्तिक देखा ।

विमल मंत्री के आदेश से उस भूमि की खुदाई प्रारंभ की । दो-चार हाथ खोदने के साथ ही भूमि में से फूल और धूप की सुगंध आने लगी । सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

उसके बाद खूब सावधानी पूर्वक खुदाई की जाने लगी...कुछ ही समय बाद उसमें से जिनप्रतिमा के दर्शन होने लगे । सभी के आश्चर्य का पार न रहा । चारों ओर **'जैनं जयति शासनम्'** का नारा गुंज उठा ।

विधिपूर्वक और खूब सन्मान के साथ उस प्रतिमा को बाहर निकाली गई और योग्य भूमि पर उसे स्थापित की गई ।

प्रतिमा के नीचे वृषभ का लांछन भी था ।

प्रतिमा अत्यंत ही प्राचीन होने पर भी अत्यंत मनमोहक और आकर्षक थी ।

विमल मंत्री की खुशी का कोई पार नहीं था । विमल मंत्री की भावना पूरी हो गई अब उसे ब्राह्मणों को अन्य प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं थी !

विमल मंत्री ने ब्राह्मणों के पास भूमि खरीदनें का प्रस्ताव रखा ।

ब्राह्मणों ने सोचा, `भूमि क्रय के लिए ऐसी रकम बताई जाय कि विमल मंत्री स्वयं ही भूमि खरीदने से इन्कार कर दे ।

विमलमंत्री ने ब्राह्मणों को कहा, `इस आबू पर्वत पर पूर्वकाल में जैन मंदिर थे, इसका तो ठोस प्रमाण मिल चूका हैं, अब हमें मंदिर निर्माण के लिए योग्य जगह चाहिए तो उसका जो भी मूल्य हो, वह हमें सूचित करे ।

ब्राह्मणों ने कहा, `भूमि पर सोना मोहर बिछाकर आपको जितनी जमीन चाहिए, उतनी जमीन प्राप्त कर सकोगे ।'

विमल मंत्री ने सोचा, `जिन मंदिर निर्माण के लिए जो भी भूमिग्रहण आदि कार्य करना है उसमें कहीं भी अन्याय न हो जाय, इसका मुझे पूरा पूरा ख्याल रखना है । अपनी सोना-मोहरें तो गोल हैं, अतः उन सोना मोहरें के बिछाने पर तो बीच बीच रही खाली जगह अन्याय से ग्रहित हो जाएगी, अतः मुझे अन्याय से बचने के लिए गोल सोना मोहरों को गलवाकर चोरस बना देनी

चाहिए ।' इस प्रकार विचार कर विमल मंत्रीश्वर ने अपने खजाने में से लाखों सुवर्ण मुद्राएं गलवाकर उन्हें चौरस बनवा दी ।

इतिहास इस बात का साक्षी हैं कि जिन मंदिर निर्माण के लिए विमलमंत्री ने सिर्फ मुंह मांगा मूल्य ही नहीं दिया, बल्कि गोल सोना मोहरों को चौरस सोना मोहरों में बदलकर न्याय का एक आदर्श भी खड़ा किया ।

विमलशा मंत्री ने अपने मंदिर के निर्माण के पीछे 18 करोड 53 लाख सोना मोहर का सद्व्यय किया, जिनमें एक मात्र मंदिर के लिए योग्य जमीन के पीछे 4 करोड 53 लाख 60 हजार सुवर्ण मुद्राओं का सद्व्यय किया था ।

मंदिर निर्माण की पूर्वभूमिका तैयार होने के बाद एक दिन विमलमंत्री ने अपनी पत्नी श्रीदेवी को बात करते हुए कहा कि हर सन्नारी के दिल में माँ बनने की अभिलाषा रहती है । परंतु अंबिका देवी की ओर से जब आरस या वारस दो में से एक के ही स्वीकार की बात आई तब मैंने वारस के बदले आरस की पसंदगी की है । तो इससे तेरे दिल को दुःख तो नहीं होगा न ! विमलमंत्री की बात को सुनकर श्रीदेवी ने कहा, `स्वामीनाथ ! आपने जो निर्णय लिया है, वह सुयोग्य समुचित ही है ।

तीर्थोद्धार के इस भगीरथ कार्य को साकार रूप देने में आपने संतति व संपत्ति की तो आहूति दी ही हैं परंतु जरूर लगे तो मेरी भी बलि देने की आप को छूट है ।

संतति, संपत्ति और सुंदरी के संबंध तो कई भवों में जुड़ते आए है, परंतु जिन शासन के साथ अपना संबंध तो प्रबल पुण्योदय से ही प्राप्त होता है, अतः आपने जो निर्णय लिया है, उसमें मेरी सहर्ष सम्मति है ।

श्रीदेवी ने कहा, `हे स्वामीनाथ ! आब ऐसे स्थपतिओं को बुलाओं जो पाषाण में भी प्राण भर सके ।' पुण्योदय से प्राप्त इस प्रसंग में कहीं कमी नहीं रहनी चाहिए ।

मंदिर निर्माण के लिए विमलमंत्री ने कुशल शिल्पियों को आमंत्रण दिया और उनसे विचार विमर्श करते हुए मंदिर निर्माण के नक्शे तैयार होने लगे ।

अनेक नक्शों को देख आखिर एक नक्शों पर पसंदगी का कलश ढोला गया । यद्यपि उस शिल्प के निर्माण में पानी के प्रवाह की तरह धन का व्यय था, परंतु इस बात की विमल मंत्री को कहां चिंता थी ।

एक शुभ वेला में आबू पर्वत की धरती पर मंदिर-निर्माण का कार्य प्रारंभ हो गया ।

मंदिर की खनन विधि और शिलान्यास विधि के बाद मंदिर का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ ।

परंतु यह क्या ? दिन में जो भी निर्माण कार्य होता, रात्रि में वह धराशायी हो जाता ।

आखिर शिल्पी ने विमलशा मंत्री को बुलाकर सब बात की ।

विमलशामंत्री को ख्याल आ गया कि यह सब पराक्रम करनेवाला कोई दुष्ट देव होना चाहिए ।

रात्रि के समय में स्वयं विमलशा मंत्री मंदिर के निर्माण भाग की चौकी करने के लिए छिपकर बैठ गए ।

मध्य रात्रि के नीरव शांत वातावरण में मंत्री को कुछ आवाज सुनाई दी ।

तुरंत ही मंत्री ने सिंहगर्जना करते हुए कहा, 'मंदिर के निर्माण में विघ्न करनेवाले तुम कौन हो ?' जो हो वह मेरे सामने उपस्थित हो जाय ?'

और उसी समय अंधेरे में विमल मंत्री को एक ध्वनि सुनाई दी, 'मेरी अनुमति के बिना मेरी भूमि पर अपना निर्माण कार्य करनेवाले तुम कौन हो ?'

विमल मंत्री समझ गया कि यह कोई इस भूमि का क्षेत्रपाल होना चाहिए ।

विमल मंत्री ने कहा, 'यह भूमि मैंने खरीदकर प्राप्त की हैं, अतः इस पर तो मेरा पूर्ण अधिकार है, फिर भी तुम अनधिकृत चेष्टा करोगे तो देवी अंबिका, पद्मावती व चक्रेश्वरी की अकृपा का भाजन बनना पड़ेगा ।'

तीन देवियों की बात सुनकर वालीनाह प्रकट होकर बोला, 'मैं वालीनाह नाम का इस क्षेत्र का देवता हूँ, मुझे प्रसन्न किए बिना तुम्हारा सर्जन सफल नहीं हो सकेगा ।'

विमल ने कहा, 'हे क्षेत्रदेवता ! प्रसन्नता पाने के लिए कल यहां उपस्थित रहे ।'

दूसरे दिन मध्य रात्रि के समय में विमलशा मंत्री पूजा की सामग्री को लेकर वहां उपस्थित हो गए ।

विमल मंत्री ने क्षेत्र देवता को आह्वान किया । तभी वहां उपस्थित हुए वालीनाह ने कहा, 'मैं फल-फूल नैवेद्य से प्रसन्न होनेवाला देव नहीं हूँ-मेरी प्रसन्नता के लिए रक्त-मांस का तर्पण करना होगा ।'

इस बात को सुनकर विमल ने कहा, 'मैं तो इतना ही समझता हूँ कि देव वासना के भूखे होते है और बलि-बाकला से प्रसन्न हो जाते है फिर भी यदि तुम्हें रक्त व मांस ही पसंद है तो मैं अपने जीवन का बलिदान देने के लिए तैयार हूँ परंतु याद रखना मेरा यह तर्पण तुम्हें भारी पड़ेगा, मेरी यह पूजा सहन नहीं कर पाओगे, क्योंकि मेरे पीछे देवीत्रयी की कृपा का बल हैं ।

वालीनाह ! तुम बत्तीस लक्षणा पुरुष का ही भोग चाहते हो तो हम दंपत्ति अभी अपना बलिदान देने के लिए तैयार है ।

अब दो ही विकल्प है हमारा आत्म बलिदान अथवा 'ये फल-नैवेद्य ।'

विमलशा मंत्री के इन शूरवीरता पूर्वक के वचनों को सुनकर वालीनाह ने कहा, 'तुम्हारें इस पराक्रम के आगे मैं भी नतमस्तक हूँ । मुझे तुम्हारी बलि नहीं चाहिए । तुम्हारे फल-नैवेद्य से ही मैं संतुष्ट हूँ ।' इतना कहकर वालीनाह भी अन्तर्धान हो गया ।

दूसरे दिन का मंगल प्रभात उदित हुआ । दैविक उपद्रव का निवारण हो जाने से शिल्पी समूह में प्रसन्नता की लहर फैल गई । दूसरे दिन से ही 800 शिल्पियों की सर्जन यात्रा आगे बढ़ने लगी ।

ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा त्यों-त्यों शिल्पियों का अमर सर्जन देखकर विमल मंत्री का हृदय फूले नहीं समा रहा था ।

शिल्पी अपनी अद्‌भुत कलाओं के द्वारा पत्थर में प्राण भरने लगे । कागज या मोम में जो कलाकृति न हो सके वैसी कलाकृति पाषाण में अवतरित होने लगी ।

वि.सं. 1080 में प्रारंभ हुई यह सर्जन यात्रा निरंतर आठ वर्षो तक चालू रही ।

वि.सं. 1088 में मंदिर का निर्माण कार्य लगभग पूर्ण हुआ ।

121 स्तंभ और 54 जिनालयों से मंडित इस जिनालय की प्रतिष्ठा धर्मदाता **पू.आ.श्री धर्मघोषसूरिजी म.** के वरद हस्तों से संपन्न हुई । विमलमंत्री का एक स्वप्न साकार बना । इस मंदिर के निर्माण में विमलशा ने 18 करोड 53 लाख का सद्व्यय कर अपनी लक्ष्मी को सार्थक की थी ।

विमलशा को संतान नहीं थी, परंतु उसके बड़े भाई 'नेढ' को संतान थी, वह संतान परंपरा वर्षों तक चली और उन्होंने समय समय पर विमलवसही का जीर्णोद्धार भी कराया । नेढ के दो पुत्र धवल और लालिग दोनों कर्णदेव के मंत्री थे । उनके पुत्र आनंद व महिंद सिद्धराज के मंत्री थे । आनंद का पुत्र पृथ्वीपाल सिद्धराज का मंत्री था, उसमें वि.सं. 1204 में विमलवसही के पास हस्तिशाला भी बनाई, जिसमें अपने पूर्वजों तथा अपनी मूर्ति रखी ।

वि.सं. 1368 में मुस्लिम बादशाह ने इस मंदिर के गर्भगृह व गूढ मंडप को नष्ट कर दिया था । चंदसिंह के पुत्र पेथड़ ने इसका जीर्णोद्धार भी कराया ।



आ.श्री सर्वदेवसूरिजी

स्तुति

विशाल तारागण में जैसे, शोभा देता चन्द्रमा,
विशाल शिष्य गण में वैसे, सर्वदेवसूरीश्वरा,
अडतीसवे पट्टधार जो, थे जैन संघ प्रभावका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।42।।

भगवान महावीर की 38 वीं पाट परंपरा में आचार्य सर्वदेवसूरिजी (द्वितीय) हुए । वे देवसूरिजी के पट्टधर थे ।

इनका शिष्य समुदाय खूब विशाल था । उन्होंने आचार्य विजयचंद्रसूरिजी, आ. श्री यशोभद्रसूरिजी, आ. श्री जयसिंहसूरिजी, आ. श्री नेमिचंद्रसूरिजी, आ. श्री रविप्रभसूरिजी, आ. श्री चंद्रप्रभसूरिजी आदि आठ को आचार्य पद प्रदान किया था ।



यशोभद्रसूरिजी
स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1148

आ.श्री
यशोभद्रसूरिजी

नेमिचंद्रसूरिजी
स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1169

आ.श्री
नेमिचन्द्रसूरिजी

स्तुति

पट्टधार उन्चालीसवें, श्री यशोभद्रसूरीश्वरा,
और साथ में पट्टधार थे, श्री नेमिचन्द्रसूरीश्वरा,
महाग्रंथ प्रवचन सारोद्धार, आदि रचनाकारका,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।43।।

भगवान महावीर की 39 वीं पाट परंपरा में दो पट्टधर हुए । आचार्य श्री सर्वदेवसूरिजी ने जिन 8 श्रमणों को आचार्य पद प्रदान किया था, उनमें आचार्य यशोभद्रसूरिजी और आचार्य नेमिचन्द्रसूरिजी खूब शक्तिशाली और प्रभावशाली थें । अतः उन्हें योग्य जानकर उन दोनों को अपने पट्ट पर स्थापित किया था ।

पू. नेमिचन्द्रसूरिजी वडगच्छीय पू.आ. श्री उद्योतनसूरिजी के प्रशिष्य थे । उनकी दीक्षा उद्योतनसूरिजी के शिष्य आम्रदेव उपाध्याय के वरदहस्तों से हुई थी और उनका नाम देवेन्द्रमुनि रखा गया ।

उन्होंने अपने अल्पकालीन दीक्षा पर्याय में अनेक ग्रंथों की रचना की थी । आचार्य पद प्राप्ति के बाद उनका नाम नेमिचन्द्रसूरिजी रखा गया ।

नेमिचन्द्रसूरिजी संस्कृत प्राकृत भाषा के प्रकांड विद्वान थे । जैन धर्म के विविध विषयों का

गहन अध्ययन कर भावि पीढ़ी के हित के लिए उन्होंने अनेक ग्रंथों का निर्माण भी किया था, जिनमें मुख्य निम्नांकित हैं–

1. आख्यान-कमणिकोश :– 52 गाथा प्रमाण उनकी यह प्रथम रचना है । इसमें 41 अधिकार और 146 आख्यान है । इसकी रचना में पं. गुणाकर एवं पं. पार्श्वदेव का भी सहयोग था । वि.सं. 1129 में इसकी रचना हुई थी ।

2. आत्मबोध कुलक :– इसमें कुल 22 गाथाएं है । आत्मा संबंधी उपदेश से भरपूर यह ग्रंथ है । इसका दूसरा नाम धर्मोपदेश कुलक भी है ।

3. रयणचूड-तिलयसुंदरी कहा :– पू. नेमिचन्द्रसूरिजी ने अपनी गणी अवस्था के पर्याय में इसकी रचना की थी । कथानक का मुख्य पात्र रत्नचूड़ है । गौतमस्वामी ने यह कथानक सम्राट् श्रेणिक को सुनाया था । काव्य-गुणों से मंडित एवं सूक्तियों से परिपूर्ण रचना है ।

4. महावीर चरियं :– वि.सं. 1141 में कर्णदेव के शासन में पाटण में रहकर नेमिचंद्रसूरिजी ने प्राकृत में 3000 श्लोक प्रमाण इस ग्रंथ की रचना की है । महावीर प्रभु के पूर्व भवों का एवं साधना का सुंदर वर्णन है । यह उनकी अंतिम रचना थी ।

5. प्रवचन सारोद्धार :– जैन आगमों में से उद्धृत कर अनेक पदार्थों का इसमें संकलन किया है ।

6. उत्तराध्ययन सूत्र टीका :– वि.सं. 1129 में पाटण में रहते हुए अपने गुरु भाई की प्रेरणा से इस लघु टीका की रचना की है । यह टीका वादिवेताल शांतिसूरि की शिष्यहिता टीका के आधार पर रची गई है । इस टीका का नाम सुखबोधा वृत्ति है । यह 12000 श्लोक प्रमाण हैं, इसमें प्राकृत भाषा में 125 कथाएं है ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने वीर गणी के द्वारा विरचित पिंड निर्युक्ति पर की **'शिष्य हिता'** टीका का संशोधन भी किया था ।

जिनशासन की महान् प्रभावना करते हुए नेमिचंद्रसूरिजी म. वि.सं. 1169 के आसपास कालधर्म को प्राप्त हुए थे ।

मलधारी आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी

स्वर्गवास–
वि. सं. 1168

चित्तोड़ के राजा अल्लट ने अलवर नगर बसाया तथा अपनी रानी हरियदेवी के नाम से हर्षपुर नगर बसाया। पुष्कर के पास आया हांसोट गांव का ही नाम हर्षपुर था। वहां के संघ ने आ. प्रियग्रंथसूरि के मज्झिमा शाखा के प्रश्नवाहनकुल के आचार्यों को बुलाया...आगे चलकर प्रश्न वाहन कुल के श्रमणों का 'हर्षपुरीय गच्छ' नाम पड़ गया।

गुजरात के राजा कर्णदेव (सं. 1120 से 1150) के समय में इस गच्छ का नाम 'मलधार गच्छ' पड़ा।

पू. आचार्य अभयदेवसूरिजी, हर्षपुरीय गच्छ के आ. विजयसिंहसूरिजी के शिष्य थे।

वे अपने शरीर पर अत्यंत निःस्पृही थे। वे मात्र दो ही वस्त्र धारण करते थे। वे हमेशा छट्ठ-अट्ठम करते रहते थें। उन्हें जीवन पर्यंत पांच विगई का त्याग था। वे प्रकांड विद्वान थे। चक्रेश्वरी देवी उन पर प्रसन्न थी।

एक बार कर्णदेव, युवराज जयसिंह के साथ बाहर जा रहा था, तभी उसने आचार-संपन्न, मलिन देह व वस्त्रवाले अभयदेवसूरिजी को देखा। तभी राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें **'मलधारी'** बिरुद प्रदान किया। उसके बाद हर्षपुरीय गच्छ का नाम मलधारीगच्छ हो गया।

तत्कालीन विद्वान् **वीराचार्य** ने उन्हें सूरिमंत्र प्रदान किया। उसके बाद उनका प्रभाव खूब बढ़ता गया।

शाकंभरी के राजा विसलदेव के पुत्र पृथ्वीराज ने उनकी पत्र-प्रेरणा को प्राप्त कर रणथंभोर के जिनालय पर सुवर्ण कलश स्थापित किया था।

चंद्रवंशी राजा एलक श्रीपाल की विनंति स्वीकार कर श्रीपुर पधारे थे। और वि.सं. 1142 माघ शुक्ला पंचमी के दिन अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की पावन प्रतिष्ठा की थी। राजा ने अंतरिक्ष पार्श्वनाथ की पूजा के लिए सिरपुर गांव बसाया था।

पूज्य आचार्य अभयदेवसूरिजी ने मेड़ता के कदमयक्ष व हजारों ब्राह्मणों को प्रतिबोध देकर उन्हें जैन बनाया था।

उनके उपदेश को प्राप्त कर सिद्धराज जयसिंह ने पर्युषण पर्व के साथ कुल 11 दिन तक अहिंसा धर्म का प्रवर्तन कराया था।

–जीवन के अंत में उन्होंने अनशन व्रत स्वीकार किया था। 47 दिनों के उपवास बाद उन्होंने अपना देह त्याग किया था। वि.सं. 1168 लगभग उनका कालधर्म हुआ था। सिद्धराज स्वयं उनके दर्शनार्थ आया था।

उनके अग्नि संस्कार के बाद उनकी राख लेने के लिए लोगों में पड़ापड़ी थी। उनके देह की राख भी खूब प्रभावशाली थी।

उनके ही पट्टधर मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी हुए।

मलधारी हेमचन्द्रसूरीश्वरजी

स्वर्गवास–
वि.सं. 1178

गुजरात के शासक सिद्धराज और कुमारपाल के शासनकाल में जैन शासन में दो हेमचन्द्राचार्यजी हो गए है, उनमें कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी तो प्रख्यात है । मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी भी विशिष्ट प्रतिभा संपन्न हुए है । मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी उम्र में बड़े थे ।

बचपन में उनका नाम प्रद्युम्न था, वे राज्य के मंत्री पद पर प्रतिष्ठित थे । अत्यंत रूपवती चार कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण हुआ था ।

मलधारी अभयदेवसूरिजी के सदुपदेश से विरक्त बने महामात्य प्रद्युम्न ने अमाप संपत्ति, प्रतिष्ठित मंत्री पद और रूपवती पत्नियों का त्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद जैन आगमों का गहन अभ्यास कर प्रकांड विद्वान् बने ।

विद्वत्ता हासिल करने के बाद भी वे अत्यंत विनम्र, परम शांत, सत्यप्रिय और अत्यंत ही गंभीर थे ।

उनकी योग्यता देखकर अभयदेवसूरिजी म. ने उन्हें आचार्यपद पर प्रतिष्ठित कर उन्हें अपना उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त किया ।

वे प्रख्यात प्रवचनकार थे । मुख्यतया **'उपमिति भवप्रपंचा'** ग्रंथ के आधार पर उनके प्रवचन होते थे । सिद्धराज जयसिंह भी उनके प्रवचन श्रवण के लिए आता रहता था ।

आचार्यश्री के प्रवचनों से प्रभावित होकर सिद्धराज ने उन्हें राजमहल में पधारने के लिए आमंत्रण दिया ।

महाराजा की आग्रहभरी विनंति का स्वीकार कर आचार्य भगवंत राजमहल में पधारे । राजा उनकी धर्मदेशना से अत्यंत ही प्रभावित हुआ, उसने उत्तम वस्तुओं से आचार्य भगवंत की आरती उतारी । पंचांग प्रणिपात नमस्कार किया और अपने आहार के थाल में से आचार्य भगवंत को चारों प्रकार का आहार-दान किया ।

अतिप्रसन्न होकर निवेदन करते हुए उसने कहा, 'मेरे सद्भाग्य से आज प्रभु महावीर साक्षात् मेरे घर पधारे है ।'

सिद्धराज आचार्य भगवंत के उपदेश से खूब प्रभावित हुआ ।

उसने गुजरात के अनेक मंदिरों पर सोने के कलश भी चढाए ।

भरुच के दंडनायक सांतनु महेता ने भी समली विहार के जिनालय पर सोने का कलश चढाया ।

पू. हेमचन्द्रसूरिजी के अस्तित्व काल में गुजरात मे थोड़ी अराजकता फैली हुई थी । धंधुका सांचोर आदि अनेक क्षेत्रों में अजैनों की ओर से जैनों को अपने धार्मिक अनुष्ठानों में कई विघ्न होते रहते थे । प्रभु की स्थयात्रा आदि में परेशानियां होती थीं ।

श्रावकों ने पूज्य आचार्य भगवंत को इस समस्या का अंत लाने के लिए निवेदन किया । आचार्य भगवंत ने इस हेतु सिद्धराज को निर्देश किया ।

तत्काल ही राजा ने आदेश कर स्थयात्रा आदि में आनेवाले विघ्नों को दूर कर दिया और विघ्न संतोषियों को उचित सजा दी । कई जागिरदारों ने जिन मंदिरों को होनेवाली आय पर प्रतिबंध लगा दिया था । राजा के आदेश से वे प्रतिबंध हटा दिए गए और राजभंडारों में भी जमा की गई, जिनमंदिरों की रकम पुनः जिनमंदिरों को दे दी गई ।

–आचार्यश्री के सदुपदेश से सिद्धराज ने अपने राज्य में प्रतिवर्ष 80 दिनों के लिए अमारि प्रवर्तन कराया था, वह आज्ञा ताम्र पत्र पर लिखकर आचार्य भगवंत के चरणों में अर्पित की थी । आचार्य देवप्रभसूरिजी ने अपनी अलंकारिक भाषा में इस प्रसंग का बहुत ही सुंदर वर्णन करते हुए लिखा है कि, `मलधारी अभयदेवसूरिजी म. के पट्टरूप आकाश में आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी रूपी चंद्र का उदय हुआ । राजा सिद्धराज ने उनके वचनामृत का पान किया, जिसके फलस्वरूप राज्य के अधिकांश प्राणी दीर्घायुषी बने ।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

एक बार मलधारी हेमचन्द्राचार्यजी की निश्रा में पाटण से शत्रुंजय-गिरनार, महातीर्थ का छ'री पालक संघ निकला । इस यात्रा संघ में सैकड़ों श्रावक-श्राविकाएं जुड़े थे । सभी श्रावक-श्राविकाएं अपने अपने वैभव के अनुसार परमात्मा की अपूर्व भक्ति करते थे । जिनपूजा के लिए जाते समय वे श्रावक-श्राविकाएं अनुकंपा दान भी करते थें । संघपति भी खूब उदारता के साथ धन का सद्व्यय कर रहा था । संघ क्रमशः वणथली पहुँचा !

संघवी की इस समृद्धि को देख सौराष्ट्र के महाराजा रा'खेंगार की बुद्धि बिगड़ गई । उसके साथियों ने भी उसे प्रोत्साहन देते हए कहा, `घर बैठे गंगा आ गई । अमाप संपत्तिवाले इस संघ को लूटकर हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते है । आपका खजाना धन से भर जाएगा ।'

राजा ने भी संघ को लूंटने का मनोमन निर्णय कर लिया, परंतु उसे इस बात का डर था कि इस लूंट के बाद मेरी इज्जत का क्या होगा ?

लूंट से धन मिलेगा, परंतु इज्जत धूल में मिल जाएगी ।

दूसरी ओर राजनीति का भी भंग होगा । राजा तो रक्षक कहलाता है । राजा ही भक्षक हो गया तो लोग किसके ऊपर रक्षण की आश करेंगें ?

फिर भी लोभांध बने उस संघ को एक दिन के लिए और रोक दिया ।

योगानुयोग उस दिन राजदरबार में किसी की मौत हो गई ।

आचार्यश्री राजा को आश्वासन देने के लिए राजमहल में पधारे । आचार्य भगवंत ने ऐसा सुंदर उपदेश दिया कि राजा की मैली मुराद दूर हो गई । राजा के अन्तर्मन में पश्चात्ताप का भाव जगा और उसने संघ को लूटने का अपना विचार बदल दिया ।

दूसरे दिन राजा ने संघ को सहर्ष विदाई दी । इस प्रकार पू. आचार्य भगवंत की सत्प्रेरणा से संघ पर आई आपत्ति दूर हो गई ।

शत्रुंजय-गिरनार की यात्रा कर संघ सकुशल पाटण लौटा ।

मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी ने अपने जीवन काल दरम्यान अपूर्व साहित्य साधना भी की ।

साहित्य रचना

आवश्यक सूत्र अंग बाह्य कहलाता है । इसकी रचना सुधर्मास्वामी ने की है ।

आवश्यक सूत्र पर भद्रबाहुस्वामी ने निर्युक्ति की रचना की । उसके बाद जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य की रचना की ।

इस भाष्य पर मलधारी हेमचंद्रसूरिजी म. ने **'शिष्यहिता'** नाम की बृहद्वृत्ति टीका की रचना संस्कृत भाषा में की । यह टीका 28000 श्लोक प्रमाण है ।

इस टीका की रचना में उनकी लघुता-नम्रता स्पष्ट झलकती है ।

वे ग्रंथ के प्रारंभ में लिखते हैं–

'दु:षम काल के प्रभाव से शिष्यों की बुद्धि का ह्रास होता जा रहा है । वर्तमान के मंदमति शिष्यों के लिए विशेषावश्यक भाष्य आदि ग्रंथ गूढार्थ व संक्षिप्त प्रतीत हो रहे है ।

मंदमतिवाले शिष्य विषय वस्तु को विस्तार से समझना चाहते है, उन मंदमतिवाले शिष्यों के लिए ग्रंथ सुबोध्य हो और मेरा स्वयं का श्रुताभ्यास भी संपन्न हो, 'यद्यपि मैं मतिमंद हूँ, तथापि विशेषावश्यक भाष्य की बृहद्वृत्ति की रचना कर रहा हूँ ।'

ग्रंथ की समाप्ति में भी वे लिखते हैं, 'जिनभद्रगणि रचित भाष्य पर स्वयं ग्रंथकार ने व्याख्या की, कोट्याचार्य ने भी व्याख्या की, उन सबके रहते हुए इस वृत्ति का निर्माण यद्यपि सुसंगत नहीं ठहरता, फिर भी जो मंद बुद्धि शिष्य है जो सरल व्याख्या चाहते है, उन पर उपकार की भावना से तथा अपनी श्रुत भक्ति के कारण, स्व-पर कल्याण को लक्ष्य में रखकर इस बृहद्वृत्ति की रचना की है ।'

इस टीका के सिवाय भी उन्होंने कई रचनाएं की है–

1. आवश्यक टिप्पणक :– यह हरिभ्रदीय आवश्यक वृत्ति पर टिप्पण है, यह 5000 श्लोक प्रमाण है ।

2. शतक विवरण :– शिवशर्मसूरि रचित इस ग्रंथ पर 3740 श्लोक प्रमाण टीका है ।

3. अनुयोगद्वार वृत्ति :– अनुयोग द्वार मूल पर 6000 श्लोक प्रमाण टीका है ।

4. उपदेशमाला पुष्पमाला सूत्र :– मूल 505 गाथा प्रमाण इस ग्रंथ पर 14000 श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका रची है ।

5. उपदेशमाला वृत्ति :– यह 23868 श्लोक प्रमाण है ।

6. जीव समास विवरण :– यह 7000 श्लोक प्रमाण टीका है ।

7. विसेसावस्सय–बृहद्वृत्ति :– (28000 श्लोक प्रमाण) (रचना–वि.सं. 1175)

8. भव भावना सूत्र एवं विवरण :– 501 गाथाओं पर संस्कृत टीका 13000 श्लोक प्रमाण हैं । वि.सं. 1177 में इसकी रचना की थी । यह उनकी अंतिम रचना थी ।

उन्होंने लगभग 1 लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत साहित्य की रचना की थी !

वि.सं. 1168 में हेमचन्द्रसूरिजी की आचार्य पदवी हुई थी । इसके बाद एक दशक के बाद उनका कालधर्म हुआ था ।

उनके चार मुख्य शिष्य खूब प्रसिद्ध थे ।

1. आचार्य विजय सिंहसूरि 2. आचार्य चंद्रसूरि 3. आचार्य विबुधचंद्र 4. पं. लक्ष्मण गणी ।

हेमचंद्रसूरिजी म. ने खूब शासन प्रभावना की थी ।

–चैत्यवास के प्रचार-प्रसार पर रोक लगाने के लिए भरसक प्रयत्न किया था ।

अंत में 7 दिन का अनशन कर पाटण में कालधर्म हुए थे । सिद्धराज भी उनकी अंतिम यात्रा में कुछ मार्ग तक जुड़कर उसने आचार्यश्री के प्रति अपना पूज्य भाव व्यक्त किया था ।



स्वर्गवास–विक्रम संवत् 1178

आ.श्री मुनिचन्द्रसूरिजी

स्तुति

था मनोविनय इन्द्रियजय, अद्भूत त्याग जीवन में,
आल्हाद दायक चन्द्र थे, मुनिवृन्द रूपी गगन में,
पट्टधार थे चालीसवें, श्री मुनिचन्द्रसूरीश्वरा,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।44।।

दक्षिण गुजरात के डभोई गांव में चिंतक श्रेष्ठी की धर्मपत्नी मोंघीबाई ने एक तेजस्वी पुत्र रत्न को जन्म दिया । बालक का क्या नाम पड़ा ? इसका कहीं भी उल्लेख मिलता नहीं हैं, परंतु उन्होंने बाल्यवय में ही आचार्यश्री यशोभद्रसूरिजी के पास भागवती दीक्षा स्वीकार की थी ।

दीक्षा दिन से उन्होंने जीवन पर्यंत 12 द्रव्यों का ही आहार लिया था छ विगई का जीवन पर्यंत त्याग किया था । वे सौवीर का पानी लेते थे । लगभग आयंबिल तप ही चालू था । उनके उग्र त्याग के साथ इन्द्रियविजय और मनो-जय भी अजब-गजब का था ।

वे उपाध्याय विनयचन्द्र गणिवर के विद्या शिष्य के रूप में प्रसिद्ध थे ।

अपूर्व धारणा शक्ति

वि.सं. 1094 में अपने मुनि पर्याय में मुनिचंद्र म. अपने गुरुदेव के साथ चैत्य परिपाटी के लिए पाटण (गुज.) पधारे ।

उस समय पाटण में चैत्यवासी साधुओं का खुब जोर था । राजा के साथ हुए समझौते के अनुसार संवेगी साधुओं को उतरने के लिए कोई उपाश्रय नहीं था । फिर भी जिनमंदिरों के दर्शन-वंदन की भावना से वे जहां-तहां रुके हुए थे ।

एक दिन वे थारापद्र गच्छ के आदिनाथ प्रभु के दर्शन के लिए पधारें । मंदिर के पास ही उपाश्रय में वादिवेताल शांतिसूरि महाराज बिराजमान थे । वे विद्वान् आचार्य वादियों के लिए वेताल समान थे ।

वे अपने 32 शिष्यों को बौद्ध दर्शन के प्रमेयवाद का अध्ययन करा रहे थे । आचार्य श्री अस्खलित धारा से विषय का स्पष्टीकरण कर रहे थे ।

ज्ञानपिपासु मुनिचंद्र मुनि के अन्तर्मन में भी ज्ञान की खूब पिपासा थी ।

यद्यपि वाचनादाता की अनुमति बिना वाचना-मंडली में बैठने के लिए अनुमति नहीं होती हैं फिर भी मुनिचन्द्र मुनि अपनी जिज्ञासा वृत्ति को रोक नहीं पाए...और थोड़ी दूरी पर आचार्यश्री को वंदनपूर्वक बैठकर पाठ का श्रवण करने लगे। वाचना में तीव्र रस होने से समय का प्रवाह कैसे व्यतीत हो रहा था, कुछ पता ही नहीं चला।

ज्ञान के तीव्र रस के कारण मुनिचंद्र मुनि प्रतिदिन समय पर उपस्थित रहकर वाचना का श्रवण करने लगे ! इस प्रकार 10 दिन का समय बीत गया।

आचार्यश्री तो अपने 32 शिष्यों को ग्रंथ के सहारे अध्ययन करा रहे थे, जबकि मुनिचंद्र मुनि के पास तो ग्रंथ भी नहीं था फिर भी वे अपनी धारणा शक्ति द्वारा हर पाठ को अच्छी तरह याद रख रहे थे।

10 दिन बाद आचार्यश्री ने अपने शिष्यों की परीक्षा ली। एक भी शिष्य उस कठिन पाठ को याद रख नहीं पाया। इससे आचार्यश्री को खूब खेद हुआ।

उसी समय मुनिचंद्रमुनि ने निवेदन करते हुए कहा, **'यद्यपि मैं वाचना-मंडली में नहीं बैठा हूँ, फिर भी मैंने आपके श्रीमुख से वाचना का श्रवण किया हैं, अतः यदि आपकी अनुमति हो तो मैं संपूर्ण पाठ सुना देता हूँ।'**

वादिवेताल आचार्यश्री को खूब आश्चर्य हुआ कि मेरे शिष्य ग्रंथ सामने रखकर पढ़ रहे थे, फिर भी उनमें से एक शिष्य पाठ को याद नहीं रख पाया और ये मुनि बिना ग्रंथ के सहारे भी संपूर्ण पाठ याद रख पाए।

आचार्यश्री की अनुमति प्राप्तकर मुनिचंद्रमुनि ने अस्खलित गति से संपूर्ण पाठ सुना दिया।

यह देख आचार्यश्री खूब प्रभावित हुए। उन्होंने मुनिश्री को खूब धन्यवाद दिया और कहा, 'अहो ! तुम तो धूल में छिपे हुए मूल्यवान् रत्न समान हो।'

'मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे पास न्याय शास्त्र का अभ्यास करो।'

मुनिश्री ने तुरंत ही अपनी सम्मति प्रदान कर दी। उस समय पाटण में संवेगी साधु के लिए कोई उपाश्रय नहीं था-फिर भी आचार्य भगवंत ने उनके लिए व्यवस्था करवा दी।

पाटण में टंकशाल के पीछे दोहडीशेठ का विशाल मकान था। मुनिचंद्रमुनि ने वहां स्थिरता की...और आचार्यश्री के पास न्याय शास्त्र और दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने लगे। अल्प समय में ही उन्होंने न्याय शास्त्र व षड् दर्शन शास्त्र का गहन अध्ययन कर लिया। अपनी तीव्र स्मरण शक्ति के फलस्वरूप वे अल्प समय में प्रकांड विद्वान् बन गए।

इस प्रसंग के बाद संवेगी साधुओं के लिए बस्ती सुलभ हो गई।

वाद में अजेय

एक बार अर्णो–राज की राज सभा में एक शैववादी ने वाद के लिए ललकारा–उस समय मुनिचंद्रसूरि ने उसे आसानी से परास्त कर दिया।

एक बार दिगंबर वादी गुणचंद्र के साथ राजगच्छ के आचार्य धर्मघोषसूरिजी म. का वाद हुआ, तब मुनिचंद्रसूरिजी ने धर्मघोषसूरि को खूब मदद की थी, जिसके फल स्वरूप गुणचंद्र को हार खानी पड़ी थी ।

इस प्रकार अनेक वादों में विजयी बनकर वे अजोड़ वादी विजेता बने थे ।

वे शास्त्रीय विधि के अनुसार बस्ती की भी गवेषणा करते थे ।

उस काल में वे सर्वमान्य विद्वान् थे ।

–मुनिचंद्रसूरिजी म. साधु के निमित्त से बनी हुई बस्ती में नहीं रहते थे, इस कारण वे हर बार पाटण की अलग अलग बस्ती में रहते थे ।

पू. मुनिचंद्रसूरि म., पू. नेमिचंद्रसूरि के पट्टधर बने हैं, वे दोनों वय, दीक्षा पर्याय और पदस्थ पर्याय में लगभग समान थे, दोनों के गुणों में भी साम्यता थी, परस्पर प्रेम भी था, इस कारण अपनी पाट पर स्थापित किए मुनिचंद्रसूरिजी को पू. नेमिचंद्रसूरिजी अपने गुरु भ्राता के रूप में उल्लेख करते हैं ।

अपनी आचार्य पदवी के पहले व बाद में उन दोनों आचार्य भगवंतों ने अनेक धर्मग्रंथ की रचनाएं की थी, दोनों आचार्य सैद्धांतिक के रूप में प्रसिद्ध थे ।

श्रुत की परीक्षा करने में वे कसौटी के पत्थर की भांति थे, इसलिए उन्हें **'श्रुत हेम निकष'** की पदवी दी गई थी ।

उस काल में उनका जबरदस्त पुण्य प्रभाव था । वि.सं. 1149 में किसी श्रावक को अपने जिनालय की प्रतिष्ठा करानी थी, उस समय वादियों में हस्ती समान चंद्रप्रभसूरि विद्यमान होने पर भी उस श्रावक ने आचार्य मुनिचंद्रसूरिजी के वरद हस्तों से प्रतिष्ठा कराई, इससे आ. चंद्रप्रभसूरि को अपना अपमान सा लगा, इसलिए उन्होंने **'साधु प्रभु प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते हैं और पूनम की पक्खी होगी ।'** इस प्रकार नई प्ररूपणाएं की, जिससे वह मत 'पुनमिया मत' के नाम से प्रख्यात हुआ । उस मत की उत्पत्ति वि.सं. 1159 में हुई । उस कुमत के खंडन के लिए आचार्यश्री ने भी 'आवस्सय सत्तरी' की रचना कर संघ को सन्मार्ग प्रदान किया ।

उन्होंने हरिभद्रसूरि विरचित 'ललित विस्तरा' टीका पर 'पंजिका' की भी रचना की ।

उनका विहार खंभात से नागोर तक था उनके परिवार में 500 साधु व इससे अधिक साध्वियां थी ।

उनके द्वारा विरचित उपदेश पद व धर्मबिंदु की टीका खूब प्रसिद्ध है ।

वि.सं. 1178 कार्तिक वदी-5 के दिन पाटण में उनका समाधिपूर्ण कालधर्म हुआ था, उस समय उनके शिष्य वादिदेवसूरिजी भी निर्यामणा के लिए हाजिर थे । उन्होंने बाद में **'गुरु विरह विलाप' 'मुणिचंद्रसूरि थुई'** की भी रचना की थी ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का हिन्दी साहित्य

1. वात्सल्य के महासागर
2. सामायिक सूत्र विवेचना
3. चैत्यवन्दन सूत्र विवेचना
4. आलोचना सूत्र विवेचना
5. श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना
6. कर्मन् की गत न्यारी
7. आनन्दघन चौबीसी विवेचना
8. मानवता तब महक उठेगी
9. मानवता के दीप जलाएं
10. जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
11. चेतन ! मोहनींद अब त्यागो
12. युवानो ! जागो
13. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-1
14. शांत सुधारस-हिन्दी विवेचना भाग-2
15. रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे
16. मृत्यु की मंगल यात्रा
17. जीवन की मंगल यात्रा
18. महाभारत और हमारी संस्कृति-1
19. महाभारत और हमारी संस्कृति-2
20. तब चमक उठेगी युवा पीढी
21. The Light of Humanity
22. अंखियाँ प्रभुदर्शन की प्यासी
23. युवा चेतना
24. तब आंसू भी मोती बन जाते है
25. शीतल नहीं छाया रे.(गुजराती)
26. युवा संदेश
27. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-1
28. रामायण में संस्कृति का अमर सन्देश-2
29. श्रावक जीवन-दर्शन
30. जीवन निर्माण
31. The Message for the Youth
32. यौवन-सुरक्षा विशेषांक
33. आनन्द की शोध
34. आग और पानी-भाग-1
35. आग और पानी-भाग-2
36. शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)
37. सवाल आपके जवाब हमारे
38. जैन विज्ञान
39. आहार विज्ञान
40. How to live true life ?
41. भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)
42. आओ ! प्रतिक्रमण करे (चौथी आवृत्ति)
43. प्रिय कहानियाँ
44. अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव
45. आओ ! श्रावक बने
46. गौतमस्वामी-जंबुस्वामी
47. जैनाचार विशेषांक
48. हंस श्राद्ध व्रत दीपिका
49. कर्म को नहीं शर्म
50. मनोहर कहानियाँ
51. मृत्यु-महोत्सव
52. Chaitya-Vandan Sootra
53. सफलता की सीढ़ियाँ
54. श्रमणाचार विशेषांक
55. विविध-देववंदन (चतुर्थ आवृत्ति)
56. नवपद प्रवचन
57. ऐतिहासिक कहानियाँ
58. तेजस्वी सितारें
59. सन्नारी विशेषांक
60. मिच्छामि दुक्कडम
61. Panch Pratikraman Sootra
62. जीवन ने तुं जीवी जाण (गुजराती)
63. आवो ! वार्ता कहुं (गुजराती)
64. अमृत की बुंदे
65. श्रीपाल मयणा
66. शंका और समाधान भाग-1
67. प्रवचनधारा
68. धरती तीरथ'री

69. क्षमापना
70. भगवान महावीर
71. आओ ! पौषध करें
72. प्रवचन मोती
73. प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह
74. श्रावक कर्तव्य-1
75. श्रावक कर्तव्य-2
76. कर्म नचाए नाच
77. माता-पिता
78. प्रवचन रत्न
79. आओ ! तत्वज्ञान सीखें
80. क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद
81. जिनशासन के ज्योतिर्धर
82. आहार : क्यों और कैसे ?
83. महावीर प्रभु का सचित्र जीवन
84. प्रभु दर्शन सुख संपदा
85. भाव श्रावक
86. महान ज्योतिर्धर
87. संतोषी नर-सदा सुखी
88. आओ ! पूजा पढाएँ !
89. शत्रुंजय की गौरव गाथा
90. चिंतन-मोती
91. प्रेरक-कहानियाँ
92. आई वडीलांचे उपकार
93. महासतियों का जीवन संदेश
94. श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन
95. Duties towards Parents
96. चौदह गुणस्थान
97. पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन
98. मधुर कहानियाँ
99. पारस प्यारो लागे
100. बीसवीं सदी के महान् योगी
101. अमर-वाणी
102. कर्म विज्ञान
103. प्रवचन के बिखरे फूल
104. कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन
105. आदिनाथ-शांतिनाथ चरित्र
106. ब्रह्मचर्य
107. भाव सामायिक
108. राग म्हणजे आग (मराठी)
109. आओ ! उपधान-पौषध करें !
110. प्रभो ! मन-मंदिर पधारो
111. सरस कहानियाँ
112. महावीर वाणी
113. सद्गुरु-उपासना
114. चिंतन रत्न
115. जैन पर्व-प्रवचन
116. नींव के पत्थर
117. विखुरलेले प्रवचन मोती
118. शंका-समाधान भाग-2
119. श्रीमद् प्रेमसूरीश्वरजी
120. भाव-चैत्यवंदन
121. Youth will shine then
122. नव तत्त्व-विवेचन
123. जीव विचार विवेचन
124. भव आलोचना
125. विविध-पूजाएँ
126. गुणवान् बनों
127. तीन-भाष्य
128. विविध-तपमाला
129. महान् चरित्र
130. आओ ! भावयात्रा करें
131. मंगल-स्मरण
132. भाव प्रतिक्रमण-1
133. भाव प्रतिक्रमण-2
134. श्रीपाल-रास और जीवन
135. दंड़क-विवेचन
136. आओ ! पर्युषण-प्रतिक्रमण करें
137. सुखी जीवन की चाबियाँ
138. पांच प्रवचन
139. सज्झायों का स्वाध्याय
140. वैराग्य शतक
141. गुणानुवाद
142. सरल कहानियाँ
143. सुख की खोज
144. आओ संस्कृत सीखें भाग-1
145. आओ संस्कृत सीखें भाग-2
146. आध्यात्मिक पत्र

147. शंका-समाधान (भाग-3)
148. जीवन शणगार प्रवचन
149. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-1)
150. प्रात: स्मरणीय महापुरुष (भाग-2)
151. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-1)
152. प्रात: स्मरणीय महासतियाँ (भाग-2)
153. ध्यान साधना
154. श्रावक आचार दर्शक
155. अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)
156. इन्द्रिय पराजय शतक
157. जैन-शब्द-कोष
158. नया दिन-नया संदेश
159. तीर्थ यात्रा
160. महामंत्र की साधना
161. अजातशत्रु अणगार
162. प्रेरक प्रसंग
163. The way of Metaphysical Life
164. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1
165. आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2
166. आओ ! भाव यात्रा करें !! भाग-2
167. Pearls of Preaching
168. नवकार चिंतन
169. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1
170. आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2
171. परम-तत्व की साधना भाग-1
172. रत्न-संदेश-भाग-1
173. गागर में सागर
174. रत्न-संदेश-भाग-2
175. My Parents
176. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-1
177. श्रावकाचार-प्रवचन-भाग-2
178. परम तत्त्व की साधना भाग-2
179. परम तत्त्व की साधना भाग-3
180. बाली चातुर्मास विशेषांक
181. उपधान स्मृति विशेषांक
182. नवपद आराधना
183. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1
184. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल
185. आई चे वात्सल्य
186. आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2
187. जैन संघ-व्यवस्था
188. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-1
189. चौबीस तीर्थंकर चरित्र-भाग-2
190. संस्मरण
191. संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)
192. विवेकी बनों !
193. आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3
194. लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)
195. समाधि-मृत्यु
196. कर्मग्रंथ भाग-2
197. कर्मग्रंथ भाग-3
198. आदर्श कहानियाँ
199. प्रवचन-वर्षा
200. अमृत रस का प्याला
201. महान् योगी पुरुष
202. बारह-चक्रवर्ती
203. प्रेरक-प्रवचन
204. पाँचवाँ-कर्मग्रंथ
205. छठा-कर्मग्रंथ
206. Celibacy
207. मंत्राधिराज प्रवचन सार
208. श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र
209. मोक्ष-मार्ग के कदम
210. शंका समाधान भाग-4
211. व्यसन-मुक्ति
212. गणधर-संवाद
213. New Message for a New Day
214. चिंतन का अमृत-कुंभ
215. सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव
216. अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार (भाग-1)
217. अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार (भाग-2)
218. हार्दिक श्रद्धांजलि
219. सुखी जीवन के Mile-Stone
220. महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9 तक)
221. महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40 तक)

जगत् के उद्धार के लिए वीर-प्रभु ने
2577 वर्ष पूर्व 'जिन शासन की ज्योत'
जलाई !
उस ज्योत को बुझाने के लिए कई दुश्मनों ने
आंधी व तुफान का काम किया !
तो कई आचार्यों ने आराधना-प्रभावना के द्वारा
शासन की ज्योत में 'घी' डालने का काम किया
तो कइयों ने उस आंधी-तुफान से
रक्षण के लिए अपने जीवन का आत्म बलिदान
भी दिया ऐसे अनेक
'जिनशासन-ज्योतिर्धर' महापुरुषों के
जीवन-प्रसंगों को जानने-समझने के लिए

महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा

का अवश्य स्वाध्याय करें !

Shubhay 98205 30299